हमारे शिक्षा-प्रतिवेदन

(Reports On Indian Education)

लेखक

वंशगोपाल भिंगरन

एम० एस-सी०, बी० एड० (ऑनर्स, एडिनबर्ग)

प्राचार्य

धर्म समाज प्रशिक्षण महाविद्यालय, अलीगढ़।

एवं

वेदराम शर्मा

एम० ए०, एम० एड०, साहित्यरत्न,

[१६४४ का शिक्षा अधिनियम (बटलर ऐक्ट), आङ्गल शिक्षा-प्रणाली, नागरिक-शास्त्र की पाठयोजनाएँ आदि के लेखक]

व्याख्याता

धर्म समाज प्रशिक्षण महाविद्यालय, अलीगढ़।

प्रकाशक

विश्व-प्रकाशन

अलीगढ़।

प्रथम संस्करण २००० | १९५९ | मूल्य १२॥)

प्राक्कथन

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हमें ऐसी शिक्षा प्रणाली का विकास करना था जो हमारे लोगों की प्रतिभा और संस्कृति के साथ मेल खा सके तथा हमारे समाज की आवश्यकताओं को पूरा करे। अतः भारत सरकार ने गत वर्षों में शिक्षा सम्बन्धी नीतियों तथा कार्यक्रमों के निर्धारित करने के लिये विभिन्न समितियों और आयोगों को नियुक्त किया। उनमें सबसे महत्वपूर्ण विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग और माध्यमिक शिक्षा आयोग थे। मुझे प्रसन्नता है कि आचार्य वंशगोपाल झिंगरन तथा श्री वेदराम शर्मा द्वारा इन आयोगों की मुख्य मुख्य सिफ़ारिशों का हिन्दी अनुवाद अधिकतर जनता को प्राप्य होकर उन्हें हमारी राष्ट्रीय शिक्षा की प्रमुख विशेषताओं की जानकारी बढ़ाने में सहायक हो सकेगा। मुझे विश्वास है कि इस दृष्टिकोण से यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी।

नई दिल्ली,
चैत्र २, शक् १८८१
(२३ मार्च, १९५९)

कालूलाल श्रीमाली

निवेदन

"हमारे शिक्षा-प्रतिवेदन" की रचना दो उद्देश्यों को दृष्टि में रख कर की गयी है : (१) चार राष्ट्रिय शिक्षा-प्रतिवेदनों को प्रतिवेदकों के ही शब्दों में हिन्दी के माध्यम से हिन्दी-जगत के समक्ष उपस्थित करना, तथा (२) विभिन्न अभिस्तावों को आवश्यक विस्तार के साथ उपयुक्त शीर्षकों के अन्तर्गत इस प्रकार से संघटित करना कि एक शीर्षक के अन्तर्गत लिखित विषयवस्तु का अध्ययन करते समय तत्सम्बन्धी एक पूर्ण चित्र वाचक के सम्मुख आ जाए। इस प्रकार इस पुस्तक को जनता तथा छात्र दोनों के लिये उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया गया है।

पुस्तक में केवल चार शिक्षा-प्रतिवेदन सम्मिलित किये गये हैं। इसका कारण यह है कि हम इन चार प्रतिवेदनों को स्वतन्त्र भारत की राष्ट्रिय शिक्षा-प्रणाली का आधार मानते हैं। डॉ० जाकिर हुसैन-समिति के प्रतिवेदन हमारी प्राथमिक शिक्षा के, राधाकृष्णन-प्रतिवेदन के अभिस्ताव हमारी विश्वविद्यालय शिक्षा के, तथा मुदालिअर-प्रतिवेदन के अभिस्ताव हमारी माध्यमिक शिक्षा के पुनःसंघटन के आधार हैं। सार्जेण्ट-योजना के महत्व का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि वह भारतीय शिक्षा के इतिहास में भारत के लिये एक राष्ट्रिय शिक्षा-प्रणाली का निर्माण करने की दिशा में किया गया सर्व प्रथम महत्वपूर्ण प्रयत्न था।

प्रस्तुत पुस्तक मुख्यतः एक अनुवाद-कार्य है। हमने अनेक कारणों से भावानुवाद की अपेक्षा शब्दानुवाद को अधिमान प्रदान किया है। यह एक पारिभाषिक पुस्तक *(Technical Book)* है। सभी जानते हैं कि सामान्य पुस्तकों की अपेक्षा पारिभाषिक पुस्तकों को समझने के लिये वाचक को विशेष प्रयत्न करना ही पड़ता है। इस पुस्तक की पारिभाषिक शब्दावली भारत-शासन के लोक-सभा-सचिवालय द्वारा प्रकाशित *"Glossary Of Parliamentary, Legal And Administrative*

Terms With Hindi Equivalents" तथा प्रो० डॉ० रघुवीर के *"A Comprehensive English-Hindi Dictionary Of Governmental Words & Phrases"* पर आधारित है। पुस्तक को पढ़ते समय पारिभाषिक शब्दों के कारण वाचकों को भाषा की क्लिष्टता का आभास हो सकता है, परन्तु हमारा विश्वास है कि जिस प्रकार इन शिक्षा-प्रतिवेदनों को आङ्गल भाषा में समझने के लिये आङ्गल भाषा का "अच्छा ज्ञान" नितान्त आवश्यक है, उसी प्रकार यदि इन्हें हिन्दी में समझने के लिये हिन्दी का "अच्छा ज्ञान" आवश्यक हो तो यह अनुचित नहीं है। सैद्धान्तिक रूप से भी, हम किसी भाषा के साथ खिलवाड़ करने के पक्ष में नहीं हैं। हमारा मत है कि एक लेखक को उस भाषा के गौरव, परम्परा तथा विकास का ध्यान रखना ही चाहिए जिसमें वह अपने विचार व्यक्त करना चाहता है।

इस पुस्तक को लिखते समय हमने अनेक पुस्तकों तथा अन्य प्रकाशनों से सहायता ली है। हम उनके लेखकों को तथा विशेष रूप से अपने प्रशिक्षण महाविद्यालय के विद्वान व्याख्याता श्री हिमांशु भूषण मुकर्जी को धन्यवाद देना अपना कर्तव्य समझते हैं जिनसे हमें अनेक सुझाव प्राप्त हुये हैं।

हम भारत के शिक्षा-मंत्री माननीय डॉ० के० एल० श्रीमाली के प्रति पुनः पुनः अपनी कृतज्ञता का प्रदर्शन करते हैं कि उन्होंने संसद् के आयव्ययक-सत्र-कार्य में अत्यधिक व्यस्त होने पर भी हमारी पुस्तक के लिये प्राक्कथन लिखने का कष्ट किया।

अन्त में हम अपने वाचकों से अनुरोध करते हैं कि वे हमें अपने सुझावों से अनुग्रहीत करने का कष्ट अवश्य उठायें, जिससे आगामी संस्करण में उनके सुझावों पर यथोचित विचार करके इस पुस्तक को और अधिक उपयोगी बनाया जा सके।

अलीगढ़ — *वंश गोपाल झिंगरन*

होली, २४ मार्च, १९५९ — *वेदराम शर्मा*

पारिभाषिक शब्दावलि

[हम निम्नलिखित पारिभाषिक शब्दावलि को अन्तिम समझते हैं। यदि इस पुस्तक में किसी पारिभाषिक शब्द का प्रयोग इससे भिन्न हो, तो उसके स्थान पर इस शब्दावलि को अन्तिम माना जाए]

क्र० सं०	आङ्गल शब्द	हिन्दी पारिभाषिक शब्द
१	*Academic Council*	अधिविद्य परिषद्
२	*Academic-Qualifications*	शैक्षणिक अर्हताएँ
३	*Academic Year*	विद्या-वर्ष
४	*Act*	अधिनियम
५	*Agency*	अभिकरण
६	*Authority*	प्राधिकारी (व्यक्ति), प्राधिकार (संस्था)
७	*Average Number*	माध्य-संख्या
८	*Basic Education*	आधारभूत शिक्षा, आधार-शिक्षा
९	*Candidate*	अभ्यर्थी
१०	*Class and Section*	श्रेणी तथा उपश्रेणी
११	*Common School*	लोक पाठशाला
१२	*Drawing Master*	उद्लेखन-शिक्षक
१३	*Doctorate*	महाविज्ञता
१४	*Drill and Gymnastic*	योग्या तथा व्यायाम
१५	*Elementary Education*	प्रारम्भिक शिक्षा
१६	*Factor*	कारक
१७	*Federal Language*	संधान-भाषा
१८	*Graduate*	स्नातक
१९	*High School*	उच्च पाठशाला
२०	*Higher Secondary*	उत्तर-माध्यमिक

क्र० सं०	आङ्गल शब्द	हिन्दी पारिभाषिक शब्द
२१	*Intermediate*	मध्यमा
२२	*Junior Basic School*	कनिष्ठ आधार-पाठशाला
२३	*Lecturer*	व्याख्याता
२४	*Master's Degree*	अधिस्नातक-उपाधि
२५	*Matriculation*	प्रवेशिका
२६	*Middle School*	माध्यमिक पाठशाला
२७	*Note Book*	आलोक-पुस्तिका
२८	*Nursery School*	शिशु-शाला
२९	*Physical Training*	व्यायाम
३०	*Primary Education*	प्राथमिक शिक्षा
३१	*Principal*	प्राचार्य, आचार्य
३२	*Private School*	अलोक-पाठशाला
३३	*Professor*	प्राध्यापक
३४	*Public School*	अभिजन-पाठशाला
३५	*Qualified Officer*	अर्हताप्राप्त अधिकारी
३६	*Reader*	प्रवाचक
३७	*Recommendation*	अभिस्ताव
३८	*Refresher Course*	अभिनवन-पाठचर्या
३९	*Report*	प्रतिवेदन
४०	*Residential School*	निवास-पाठशाला
४१	*Senior School*	उपरि-पाठशाला
४२	*Senior Teacher*	ज्येष्ठ अध्यापक
४३	*Stage*	प्रक्रम
४४	*Technical Education*	प्रावैधिक शिक्षा
४५	*Technical School*	औद्योगिक विद्यालय
४६	*Technical Term*	पारिभाषिक पद अथवा शब्द
४७	*Teaching Aids*	अध्यापन-उपकरण
४८	*Undergraduate*	स्नातक-पूर्व

विषय-सूची

प्रथम अध्याय—डॉ० ज़ाकिर हुसैन-समिति-प्रतिवेदन, १९३७ (१–४४)

द्वितीय अध्याय—भारत में युद्धोत्तर-शैक्षणिक विकास
सार्जेंट-योजना, १९४४ (४५-१९४)

(६) प्रौढ़-शिक्षा ८६-९६

(७) अध्यापकों का प्रशिक्षण ९६-१०३

तृतीय अध्याय—विश्वविद्यालय-शिक्षा-प्रतिवेदन अथवा राधाकृष्णन-प्रतिवेदन, १९४९ : (१६५-४०४)

चतुर्थ अध्याय—माध्यमिक-शिक्षा-प्रतिवेदन अथवा मुदालिअर-प्रतिवेदन, १९५३ (४०५-५५२)

अशुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
१९ (तथा सर्वत्र)	१	वर्ग	श्रेणी
४२	८	ग—उपसंहार	घ—उपसंहार
४२	टिप्पण	उपसंहार ······· गया है।	अलिखित समझा जाए
५८ (तथा सर्वत्र)	१६	कर्मचारि-वर्ग	कर्मचारिवृन्द
६३ ७३	१३ } तथा ३ } सर्वत्र	अन्तर्वर्ती-प्रक्रम	मध्यमा प्रक्रम
१४१	२०	लोक-शिक्षण-संचालक	लोक-शिक्षा-संचालक
३३८	२१	*१२ – स्री-शिक्षण*	*११—स्त्री-शिक्षण*
३४५	२२	*१३—संघटन एवं नियन्त्रण*	*१२—संघटन एवं नियन्त्रण*
३६०	२०	*१४—वित्तव्यवस्था*	*१३—वित्तव्यवस्था*
३६६	४	*१५—ग्रामीय महाविद्यालय*	*१४—ग्रामीय महाविद्यालय*
४९०	पद-टिप्पण	*2. Cancel.*	*3. Cancel.*
४९२	पद-टिप्पण	*1. Drill.* *2. Note.* *3. Contact.*	*1. Drill.* *2. Contact.* *3. Note.*
५२७	२०	किसी	किसी

प्रथम अध्याय

डॉ० ज़ाकिर हुसैन-समिति-प्रतिवेदन[1], १९३७

क—प्रस्तावना

डॉ० ज़ाकिर हुसैन-समिति-प्रतिवेदन, जिसमें वार्धा-शिक्षण-योजना[2] अथवा आधारभूत-शिक्षण-योजना[3] समङ्गीकृत है, के अभिस्तावों[4] का उल्लेख करने से पूर्व यहाँ इस प्रस्तावनात्मक अवस्था पर उन परिस्थितियों को समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है जो डा० ज़ाकिर हुसैन-समिति की नियुक्ति के लिये उत्तरदायी थीं। ऐसी परिस्थितियों के तीन प्रसङ्ग विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, (१) भारत-शासन-अधिनियम[5], १९३५, (२) हरिजन-लेख-माला, और (३) अखिल-भारतीय-राष्ट्रिय-शिक्षा-सम्मेलन, वार्धा[6], १९३७।

१—भारत-शासन-अधिनियम, १९३५

भारत-शासन-अधिनियम, १९३५ भारत में ब्रिटिशकालीन शिक्षा-विकास के अत्यन्त महत्वपूर्ण सीमाचिन्हों में से एक है। १९३५ से पूर्व भारत के प्रान्तों में द्वैधशासन[7] प्रचलित था

---

1 The Report Of The Zakir Husain Committee, 1937.
2 The Wardha Scheme Of Education. 3 The Basic Education Scheme. 4 Recommendations. 5 The Government Of India Act, 1935. 6 All India National Conference, Wardha, 1937. 7 Diarchy.

जिसकी स्थापना भारत-शासन-अधिनियम, १९१९ द्वारा की गई थी। द्वैधशासन-प्रणाली के अनुसार विभिन्न प्रान्तीय संसाधनों को आरक्षित[1] एवं हस्तान्तरित[2] विभागों में विभक्त कर दिया गया था। आरक्षित विभागों का प्रशासन निष्पादक-समिति[3] की सहायता से राज्यपालों द्वारा किया जाता था जो भारत-शासन द्वारा राज्य-सचिव[4] के प्रति उत्तरदायी होते थे; हस्तान्तरित विभागों का प्रशासन विधान-मण्डल द्वारा निर्वाचित मन्त्रियों द्वारा होता था जो प्रान्त के निर्वाचक-वर्ग के प्रति उत्तर-दायी होते थे। शैक्षणिक दृष्टिकोण से द्वैधशासन-प्रणाली में दो मुख्य दोष थे, (१) इस प्रणाली द्वारा किया गया संसाधनों का विभाजन युक्तियुक्त न था। उदाहरणार्थ, वित्त-विभाग को एक आरक्षित विषय माना गया था और शिक्षा-विभाग को एक हस्तान्तरित विषय। फलतः शिक्षा-मन्त्री को वित्त के लिये वित्त-मन्त्री पर निर्भर रहना पड़ता था। यही नहीं, यूरोपिअन शिक्षा भी एक आरक्षित विषय थी !!, और (२) स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करने के लिये मन्त्रियों को पर्याप्त शक्ति प्राप्त न थी। भारत-शासन-अधिनियम, १९३५ द्वारा द्वैधशासन-प्रणाली का अन्त करके १९३७ से प्रान्तीय स्वायत्त-शासन[5] की स्थापना की गई। निर्वाचन के परिणाम स्वरूप भारत के ग्यारह प्रान्तों में से सात में कॉन्ग्रेस-मन्त्रिमण्डलों की स्थापना हुई। शिक्षा-विभाग भारतीय शिक्षा-मन्त्रियों के हाथ में आ गये। अब भारतीय शिक्षा-मन्त्रियों को राष्ट्रिय-पुनर्निर्माण के लिये योजनाओं को पूरा करने के लिये पर्याप्त शक्ति प्राप्त हो गई। अतः भारतीय शिक्षा-मन्त्रियों द्वारा भारतीय-शिक्षा का पुनर्निर्माण १९३७ से

---

1 Reserved. 2 Transferred. 3 Executive Council.
4 Secretary Of State 5 Provincial Autonomy.

प्रारम्भ होता है। दुर्भाग्यवश कॉन्ग्रेस-मन्त्रिमण्डल केवल दो वर्ष तक ही शासन कर सके क्योंकि १९३९ में द्वितीय विश्व-युद्ध प्रारम्भ होने पर आङ्गल-शासन से नीति-सम्बन्धी मतभेद के कारण उन्हें १९३९ में त्यागपत्र देने के लिये विवश हो जाना पड़ा ! किन्तु भारतीय-शिक्षा के इतिहास में १९३७ से १९३९ तक दो वर्ष की अवधि को तीन कारणों से असाधारण महत्व प्राप्त है, (१) इस अवधि में भारतीय-शिक्षा-मन्त्रियों ने शिक्षा के विभिन्न रूपों की जाँच के लिये अनेक समितियों एवं विशेष समितियों की नियुक्ति की। उत्तर प्रदेश में शिक्षा के पुनःसङ्गठन एवं पुनर्निर्माण के लिये मार्च, १९३८ में "प्राथमिक एवं माध्यमिक-शिक्षा-पुनःसङ्गठन-समिति[1]" की स्थापना की गई जिसके सभापति आचार्य डॉ० नरेन्द्रदेव थे। इस समिति ने अपना प्रतिवेदन १९३९ में प्रस्तुत किया, (२) केन्द्रीय-मन्त्रणा-मण्डल[2] ने अखिल-भारतीय-स्तर पर शिक्षा-समस्याओं का अध्ययन करने के लिये प्राथमिक, प्रौढ़, एवं आधारभूत शिक्षण के लिये विशेष समितियों की नियुक्ति की, और (३) वार्धा-शिक्षण-योजना का उद्भव हुआ, जिसे प्रान्तीय-शासनों द्वारा स्वीकार कर लिया गया और उन्होंने उस पर अनेक प्रयोग किये।

२—हरिजन-लेख-माला

राष्ट्रपिता महात्मा गान्धीजी केवल एक राजनीतिज्ञ ही न थे वरन् वह एक महान समाज-सुधारक भी थे और समाज की विभिन्न सामाजिक समस्याओं—शिक्षा, अछूत, कृषक, धर्म,

---

1 Primary and Secondary Education Re-organisation Committee, 1938-39. 2 Central Advisory Board of Education.

आदि—के सम्बन्ध में उनके अपने मौलिक विचार थे। वह राष्ट्रिय-पुनर्निमाण के लिये शिक्षा के महत्व से भली भाँति परिचित थे। अतः १९३७ में भारत के सात प्रान्तों में कॉन्ग्रेस-मन्त्रि-मण्डलों की स्थापना होते ही उन्होंने भारतीय जनता, समाज-सुधारकों, शिक्षा-विशेषज्ञों एवं शिक्षा-मन्त्रियों का ध्यान जन-शिक्षा की ओर आकर्षित करने के लिये अपने विश्वविख्यात समाचार-पत्र "हरिजन" में शिक्षा पर लेख लिखना प्रारम्भ कर दिया। आगे चल कर यही लेख वार्धा-शिक्षण-योजना का आधार बने। अतः वार्धा-शिक्षण-योजना के विषय में कुछ लिखने से पूर्व यहाँ महात्मा जी के शिक्षा-दर्शन का ज्ञान प्राप्त कर लेना अत्यन्त आवश्यक है। "हरिजन" में प्रकाशित लेखों के आधार पर महात्मा जी के शिक्षा-सम्बन्धी विचारों का सारांश निम्नलिखित है :—

(१) शिक्षा का अर्थ बच्चे एवं मनुष्य में शरीर, मन एवं भावना-सम्बन्धी जो कुछ सर्वोत्तम है उसको सर्वाङ्गीर्ण बाहर निकालना है।❀

(२) साक्षरता न तो शिक्षा का अन्त है न आदि। वह तो केवल एक साधन है। वह स्वयं शिक्षा भी नहीं है।卐

❀ *"By education I mean an all-round drawing out of the best in child and man—body, mind and spirit."*

—Harijan, 31-7-1937

卐 *"Literacy is not the end of education nor even the beginning. It is only one of the means whereby man and woman can be educated. Literacy in itself is no education."*

—Harijan, 31-7-1937

(३) बच्चे की शिक्षा एक उपयोगी एवं उत्पादक हस्तशिल्प द्वारा होनी चाहिये।❀

(४) यदि राज्य पाठशालाओं में निर्मित वस्तुओं को लेना प्रारम्भ करदे तो प्रत्येक पाठशाला को आत्म-निर्भर बनाया जा सकता है।卐

(५) बच्चों को श्रम की गरिमा का ज्ञान कराना चाहिये।†

(६) सात से चौदह वर्ष तक उत्पादक श्रम की सहायता से बच्चों का शारीरिक एवं मानसिक विकास किया जाना चाहिये।‡

❀ *"I would therefore begin the child's education by teaching it a useful handicraft and enabling it to produce from the moment it begins its training.*

—Harijan, 31-7-1937

卐 *"Thus every school can be made self-supporting, the condition being that the State takes over the manufactures of these schools."* *—Harijan, 31-7-1937*

† *"Given the right kind of teachers, our children will be taught the dignity of labour and learn to regard it as an integral part and a means of their intellectual growth and to realize that it is patriotic to pay for their training through their labour."* *—Harijan, 11-9-1937*

‡ *"Surely, if the State takes charge of the children between seven and fourteen, and trains their bodies and minds through productive labour, the public schools must be frauds and teachers idiots, if they cannot become self-supporting."* *—Harijan, 11-9-1937*

(७) बच्चों को आत्म-निर्भर बनाना पाठशालाओं एवं अध्यापकों का कर्तव्य होना चाहिये ।❀

(८) स्वर-आपरिवर्तन[1] उतना ही आवश्यक है जितना हस्त-प्रशिक्षण । शारीरिक योग्या[2], हस्तशिल्प, उद्रेखण[3] एवं सङ्गीत को साथ-साथ चलना चाहिये ।卐

(९) प्राथमिक शिक्षा की अवधि सात अथवा अधिक वर्ष होनी चाहिये । उसके पाठ्यक्रम में अंग्रेजी के अतिरिक्त प्रवेशिका-स्तर के समस्त विषय एवं एक व्यवसाय सम्मिलित होना चाहिये । इस प्रकार पुनःसङ्गठित प्राथमिक शिक्षा विद्यमान प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च पाठशाला-शिक्षा के स्थान को ग्रहण करेगी ।†

---

1 Modulation of voice. 2 Drill. 3 Drawing.

❀ *"We should be intellectual bankrupts, if we cannot direct the energy of our children so as to get from them, after a year's training, one anna worth of marketable labour per hour."* *--Harijan, 11-9-1937*

卐 *"The modulation of the voice is as necessary as the training of the hand. Physical drill, handicrafts, drawing, and music should go hand in hand in order to draw the best out of the boys and girls and create in them a real interest in their tuition.* *--Harijan. 11-9-1937*

† *Primary education, extending over a period of 7 years or longer, and covering all the subjects up to the matriculation standard, except English, plus a vocation used as the vehicle for drawing out the minds of boys and girls in all departments of knowledge, should take the place of what passes to-day under the name of primary, middle and high school education."* *--Harijan, 2--10-1937*

(१०) प्राथमिक शिक्षा द्वारा लड़कों एवं लड़कियों को अपनी रोटी कमाने योग्य बनाना चाहिये। राज्य उन्हें उनके द्वारा सीखे हुये व्यवसायों में सेवायुक्त करके अथवा राज्य द्वारा निश्चित मूल्यों पर उनके द्वारा निर्मित वस्तुओं को मोल ले कर इसकी प्रत्याभूति दे।❀

(११) उच्च शिक्षा वैयक्तिक उपक्रम के लिये छोड़ दी जाये और उसका उद्देश्य विभिन्न राष्ट्रिय आवश्यकताओं की पूर्ति करना हो।†

(१२) विश्वविद्यालय सर्वथा परीक्षण-निकाय होने चाहियें। वे आत्म-निर्भर हों।卐

३—अखिल-भारतीय-राष्ट्रिय-शिक्षा-सम्मेलन, वार्धा, १९३७

हरिजन में प्रकाशित, महात्माजी के इन विचारों ने समस्त राष्ट्र में एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी। उनके द्वारा प्रस्तुत शिक्षण-योजना के विभिन्न पक्षों को लेकर विचारकों में असाधारण वादविवाद होने लगे। अतः महात्मा जी ने देश

❀ *"This primary education should equip boys and girls to earn their bread by the State guaranteeing employment in the vocations learnt or by buying their manufactures at prices fixed by the state."* —*Harijan, 2-10-1937*

† *"Higher education should be left to private enterprise and for meeting national requirements whether in the various industries teachnical arts, letters or fine arts."* —*Harijan, 2-10-1937*

卐 *"The State Universities should be purely examination bodies, self-supporting through the fees charged for examinations."* *Harijan, 2-10-1937*

के शिक्षण-विदों द्वारा अपनी शिक्षण-योजना की जाँच कराने का निश्चय किया। फलतः २२ और २३ ऑक्टोबर, १९३७ को नवभारत विद्यालय, वार्धा में "अखिल-भारतीय राष्ट्रिय शिक्षा-सम्मेलन" का आयोजन किया गया जिसे संक्षेप में "वार्धा-शिक्षा-सम्मेलन" के नाम से भी पुकारा जाता है। वार्धा शिक्षा-सम्मेलन में भारत के कोने-कोने से आकर भारतीय शिक्षण-विदों, समाज-सुधारकों एवं शिक्षा-मन्त्रियों ने भाग लिया। गान्धीजी के अतिरिक्त उनमें से कुछ सुप्रसिद्ध प्रतिनिधियों के नाम इस प्रकार हैं, (१) सेठ जमनालाल बजाज, (२) आचार्य विनोबा भावे, (३) आचार्य काका साहब कालेलकर, (४) श्री महादेव देसाई, (५) श्री किशोरलाल मशरूवाला, (६) श्री श्रीकृष्णदास जाजू, (७) श्री जे० सी० कुमारप्पा, (८) श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल, (९) श्री के० टी० शाह, (१०) सर पी० सी० रे, (११) आचार्य देव शर्मा, (१२) डॉ० ज़ाकिर हुसैन, (१३) श्री आर्यनायकम्, (१४) प्रो० अब्दुलहक़, (१५) प्रो० के० जी० सईदैन, (१६) प्रो० एन० आर० मलकानी, (१७) मा० पं० रविशङ्कर शुक्ल, शिक्षा-मन्त्री, मध्य प्रदेश, (१८) मा० श्री बी० जी खेर, मुख्य-मन्त्री, बम्बई प्रैसीडैन्सी, (१९) मा० पं० प्यारेलाल शर्मा, शिक्षा-मन्त्री, यू० पी०, (२०) मा० डॉ० सुब्बरॉयन, शिक्षा-मन्त्री, मद्रास, (२१) मा० श्री विश्वनाथदास, शिक्षा-मन्त्री, उड़ीसा, (२२) मा० डॉ० सैयद महमूद, शिक्षा-मन्त्री, बिहार, (२३) डॉ० भगवत, (२४) श्रीमती सौदामिनी महता, (२५) श्रीमती आशा देवी, (२६) श्री टी० ऐस० अविनाशलिङ्गम्, एम० एल० ए०, (२७) मौलवी मुहम्मद हुसैन, (२८) सतीश बाबू। गम्भीर विचार-विमर्श के पश्चात् सम्मेलन द्वारा निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किये गये जो आधारभूत-शिक्षण-योजना के आधार हैं:-

(१) कि इस सम्मेलन के मत से एक राष्ट्र-व्यापक आधार पर सात वर्ष के लिये निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदत्त हो।

(२) कि शिक्षा का माध्यम मातृ-भाषा हो।

(३) कि सम्मेलन महात्मा गान्धी द्वारा किये गये इस प्रस्ताव को पृष्ठाङ्कित[1] करता है कि इस अवधि-भर शिक्षा की प्रक्रिया किसी रूप के हस्त एवं उत्पादक-कार्य के चारों ओर केन्द्रित होनी चाहिये, और कि विकसित होने वाली अन्य समस्त योग्यतायें अथवा दिया जाने वाला प्रशिक्षण, यथा शक्य, बच्चे के वातावरण से पूर्णतः सम्बन्धित होना चाहिये।

(४) कि सम्मेलन प्रत्याशा करता है कि यह शिक्षण-प्रणाली क्रमशः अध्यापकों के वेतन को अन्तर्गत करने योग्य होगी।

उपर्युक्त प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित किये गये, किन्तु प्रो० के० टी० शाह ने इनके आत्म-निर्भरता वाले भाग को स्वीकार नहीं किया। तत्पश्चात् सम्मेलन द्वारा, डॉ० ज़ाकिर हुसैन के सभापतित्व में एक समिति की नियुक्ति की गई जिसे डॉ० ज़ाकिर हुसैन-समिति के नाम से पुकारा जाता है। डॉ० ज़ाकिर हुसैन-समिति की नियुक्ति का उद्देश्य "वार्धा-शिक्षा-सम्मेलन में पारित प्रस्तावों की रेखाओं पर एक सविस्तर पाठ्यविषय तैयार करना" था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये समिति को एक मास का समय दिया गया। समिति में १० सदस्य सम्मिलित थे, किन्तु उसे अधिक सदस्यों का सहवरण[2] करने का अधिकार प्राप्त था। सदस्यों के नाम इस प्रकार हैं; (१) डॉ० ज़ाकिर हुसैन (सभापति), (२) श्री आर्यनायकम् (आयोजक), (३) श्री के० जी० सईदैन, (४) आचार्य विनोबा

1 Endorse. 2 Co-opt.

(५) आचार्य काकासाहब कालेलकर, (६) श्री किशोरलाल मशरूवाला, (७) श्री जे० सी० कुमारप्पा, (८) श्री श्रीकृष्णदास जाजू, (९) श्री के० टी० शाह, और (१०) श्रीमती आशादेवी।

दिसम्बर २, १९३७ को डॉ० ज़ाकिर हुसैन-समिति ने अपना प्रतिवेदन महात्माजी के सम्मुख प्रस्तुत किया। आगामी पंक्तियों में इसी प्रतिवेदन के अभिस्तावों का उल्लेख किया जायगा। किन्तु इससे पूर्व यहाँ इस समिति की तीन विशेषताओं को समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है। प्रथम, डॉ० ज़ाकिर हुसैन-समिति एक वैयक्तिक[1] अथवा अशासकीय समिति थी, द्वितीय, यह वास्तविक अर्थ में एक विशुद्ध भारतीय एवं राष्ट्रिय समिति थी, और तृतीय, इस समिति के अभिस्तावों को कॉन्ग्रेस एवं ब्रिटिश-शासन दोनों ने स्वीकार किया।

ख—डॉ० ज़ाकिर हुसैन-समिति के अभिस्ताव

१—विद्यमान शिक्षण-प्रणाली के दोष

भारतीय मत देश की विद्यमान शिक्षण-प्रणाली की निन्दा करने में व्यवहारतः सर्वसम्मत है। अतः शिक्षण की विद्यमान प्रणाली को एक अधिक रचनात्मक एवं मानुषिक-प्रणाली द्वारा, जो राष्ट्रिय-जीवन की अपेक्षाओं एवं आदर्शों के साथ अधिक भली प्रकार एकीकृत[2] होगी, और इसकी दवाब डालने वाली माँगों की पूर्ति करने के लिये अधिक भली प्रकार योग्य होगी, प्रतिस्थापन[3] के लिये चारों ओर से एक माँग है। (विद्यमान शिक्षण-प्रणाली के दोष निम्नलिखित हैं):—

(१) अतीत में यह राष्ट्रिय-जीवन की अत्यन्त अविलम्बनीय एवं दवाब डालने वाली आवश्यकताओं की पूर्ति और इसकी

1 Private. 2 Integrated. 3 Replacement.

शक्तियों एवं प्रवृत्तियों को समुचित मार्गों में सङ्गठित एवं निदेशित करने में असफल रही है।

(२) परिवर्तित परिस्थितियों के साथ अपने को अनुकूलित करने में अयोग्य, यह अनन्त रूप से एवं जीवन के वास्तविक प्रवाहों से अलग कार्य करने को प्रवृत्त रहती है।

(३) यह न तो विद्यमान स्थिति के याथार्थिक तत्वों के प्रति प्रतिचारी[1] है, न जीवनप्रद एवं रचनात्मक आदर्शों से प्रोत्साहित।

(४) यह व्यक्तियों को समाज के उपयोगी उत्पादक सदस्य, उनके अपने भार को वहन करने एवं इसके कार्य में सफलता-पूर्वक भाग लेने योग्य होने के लिये प्रशिक्षण नहीं देती।

(५) इसके पास नई सहकारी सामाजिक-व्यवस्था की, जिसे शोषण एवं हिंसात्मक शक्ति पर आधारित विद्यमान स्पर्धी एवं अमानुषिक प्रशासन पर प्रतिस्थापित करने के लिये अस्तित्व में लाने के लिये शिक्षा को सहायता करनी चाहिये, अवधारणा[2] नहीं है।

२—नई शिक्षण-योजना का उद्देश्य

इस नई शैक्षणिक-योजना का उद्देश्य मुख्यतः किसी शिल्प को यन्त्रवत् करने योग्य शिल्पकारों का उत्पादन नहीं है, परन्तु शिल्प-कार्य में अस्पष्ट संसाधनों का शिक्षाप्रद उद्देश्यों के लिये समुपयोजन है। इसकी माँग है कि उत्पादक-कार्य को न केवल पाठशाला-पाठ्यक्रम—इसका शिल्प-पक्ष—का एक भाग होना चाहिये, परन्तु समस्त अन्य विषयों के शिक्षण की रीति को प्रोत्साहित भी करना चाहिये। सहकारी-क्रिया,

---

1 Responsive. 2 Conception.

योजना की परिशुद्धता, प्ररुचि[1], और सीखने में वैयक्तिक-उत्तरदायित्व पर विशेष बल रखा जाना चाहिये। हम इसके लिये व्याकुल भी हैं कि उन अध्यापकों एवं शिक्षण-विज्ञों को, जो इस नये शैक्षणिक-उपक्रम को लें, इसमें अन्तर्निहित नागरिकता के आदर्श का स्पष्टतः समझना चाहिये। यह योजना कर्मकारियों का उत्पादन करने के लिये प्ररचित की गई है जो समस्त प्रकार के उपयोगी कार्य—हस्त-श्रम समेत, संमार्जन[2] भी,—को सम्मानपूर्ण मानेंगे, और जो अपने पैरों पर खड़े होने के लिये योग्य एवं उद्यत दोनों होंगे। इस प्रकार नई योजना का, जिसका हम समर्थन कर रहे हैं, उद्देश्य भविष्य के नागरिकों को वैयक्तिक-मूल्य, गरिमा एवं दक्षता की एक प्रबल अनुभूति प्रदान करना होगा, और वह उनमें एक सहकारी समुदाय में आत्म-सुधार एवं सामाजिक-सेवा के लिये इच्छा सबल करेगी।

३—आधारभूत शिक्षण की पाठचर्या

(१) आधारभूत शिल्प[3]—विभिन्न पाठशालाओं में निम्नलिखित आधारभूत शिल्पों के रूप में चुने जा सकते हैं:—

(i) कताई और बुनाई, (ii) तक्षण[4], (iii) कृषि, (iv) फल एवं शाक-उद्यान-कर्म, (v) चर्म-कार्य, (vi) कोई अन्य शिल्प, जिसके लिये स्थानीय एवं भौगोलिक परिस्थितियाँ अनुकूल हों।

(२) मातृ-भाषा।

(३) गणित।

(४) सामाजिक अध्ययन।

---

1 Initiative. 2 Scavenging. 3 Basic craft. 4 Carpentry

(५) सामान्य विज्ञान—(सामान्य विज्ञान के पाठ्यक्रम में निम्नलिखित विज्ञानों से विभिन्न विषय सम्मिलित किये जाने चाहियें) :—

(i) प्रकृति-अध्ययन, (ii) औद्भिदी[1], (iii) प्राणि-शास्त्र, (iv) दैहिकी[2], (v) स्वास्थ्य विज्ञान, (vi) शारीरिक-संवर्धन, (vii) रसायन, (viii) नक्षत्रों का ज्ञान, (ix) महान् वैज्ञानिकों एवं समन्वेषकों की कहानियाँ।

(६) उद्रेखण[3]।

(७) सङ्गीत।

(८) हिन्दुस्तानी।

सामान्य रूपरेखाओं में, पाठशाला की पञ्चम श्रेणी तक लड़कों और लड़कियों के लिये अध्ययन का पाठ्यविषय समान होगा। चतुर्थ एवं पञ्चम श्रेणियों में सामान्य विज्ञान का पाठ्यविषय इस प्रकार आपरिवर्तित किया जायगा कि उसमें लड़कियों के लिये गृह-विज्ञान सम्मिलित हो। षष्ठ एवं सप्तम श्रेणियों में लड़कियाँ आधारभूत शिल्प के स्थान पर गृह-विज्ञान में उच्च पाठ्यविषय लेने के लिये अनुमत होंगी।

४ अध्यापक

(क) *प्रवरण*[4]—अध्यापकों के प्रवरण में उनको अधिमान[5] दिया जाना चाहिये जो उस स्थान से संबद्ध हों जिसमें वह पाठशाला स्थित है। इस व्यवसाय को अपनाने के लिये स्त्रियों को प्रोत्साहित करने के लिये उन्हें अध्यापिकाओं के रूप में

---

1 Botany. 2 Physiology.

3 Drawing. 4 Selection. 5 Preference.

प्रशिक्षित करने के लिये सुविधायें प्रदान करने के लिये विशेष प्रयत्न किये जाने चाहियें। प्रशिक्षण के लिये उपर्युक्त अभ्यर्थियों[1] के प्रवरण की समस्या का सावधानी से और दक्षतापूर्वक परीक्षण किया जाना चाहिये, और प्रवरण की एक विश्वसनीय प्रविधि[2] उद्विकसित की जानी चाहिये। हम विश्वस्त हैं कि जब तक यह कठिन समस्या साधित नहीं होती, इस योजना की सफलता की अल्प संभावना होगी।

(ख) *प्रशिक्षण*—इस योजना की सफलता के लिये अध्यापकों का समुचित प्रशिक्षण संभवतः अत्यन्त महत्वपूर्ण शर्त है। प्रशिक्षण-संस्था में प्रवेश प्राप्त करने के लिये अभ्यर्थी द्वारा किसी राष्ट्रिय अथवा मान्यता-प्राप्त शासन-संस्था में प्रवेशिका-स्तर[3] तक अध्ययन किया होना चाहिये. अथवा वर्नाक्यूलर फाइनल अथवा कोई समान परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् न्यूनातिन्यून दो वर्ष का अध्यापन-अनुभव रखना चाहिये। हम इन प्रशिक्षण-पाठशालाओं के निवास-संस्थायें[4] होने की प्रत्याशा करते हैं जहाँ विद्यार्थी और उनके अध्यापक एक दूसरे के साथ निकट सम्पर्क में होंगे।

I—अध्यापकों की एक पूर्ण पाठचर्या के लिये पाठ्यक्रम
प्रशिक्षण (तीन वर्ष की एक अवधि के लिये)

१—(i) कपास (अथवा ऊन) का उगाना, चुनना और धुनकना, (ii) चरखा की यान्त्रिकी[5], (iii) ग्राम-उद्योगों का अर्थशास्त्र, (iv) प्रारम्भिक तक्षण[6]।

२—निम्नलिखित आधारभूत शिल्पों में से एक में प्रशिक्षण:—
(i) कताई और बुनाई, (ii) शाक एवं फल-उद्यान-

---

1 Candidate. 2 Technique. 3 Matriculation Standard.
4 Residential Institutions. 5 Mechanics.
6 Carpentry.

कर्म, (iii) कृषि, (iv) तक्षण, (v) खिलौने बनाना, (vi) चर्मकार्य, (vii) पत्र-निर्माण अथवा कोई अन्य शिल्प जो किसी विशेष स्थान के लिये उपयुक्त समझा जा सके।

३—शिक्षण के सिद्धान्त, जिनमें (निम्नलिखित का) समावेश होना चाहियेः—

(i) उत्पादक कार्य द्वारा शिक्षण की आधारभूत कल्पना, (ii) पाठशाला का समुदाय से सम्बन्ध, (iii) बाल-मनोविज्ञान की साधारण रूपरेखा, (iv) शिक्षण की रीतियाँ, (v) नई शिक्षा का उद्देश्य।

४—दैहिकी[1], स्वास्थ्यविज्ञान, स्वच्छता एवं आहार-विद्या[2] में एक बहीरेख[3] पाठचर्या।

५—सामाजिक-अध्ययन की आधारभूत पाठचर्या की पुनरावृत्ति एवं अग्रिम विकास।

६—पाठों की एक पाठचर्या तथा मातृ-भाषा का निदेशित[4] अध्ययन।

७—हिन्दुस्तानी का ज्ञान, तथा हिन्दुस्तानी एवं अहिन्दुस्तानी बोलने वाले क्षेत्रों दोनों में हिन्दी एवं उर्दू दोनों लिपियों में पढ़ने तथा लिखने की क्षमता।

८—कृष्णपट्ट-लेखन एवं उद्रेखण।

९—शारीरिक-संवर्द्धन, योग्या[5], एवं देशी खेल।

१०—संबद्ध प्रदर्शन-पाठशालाओं[6] में पर्यवेक्षित अध्यापन-प्रयोग[7]।

---

1 Physiology. 2 Dietetics. 3 Outline. 4 Directed. 5 Drill. 6 Demonstration Schools. 7 Supervised Practice Teaching.

II—अध्यापक-प्रशिक्षण की एक लघु-पाठचर्या के लिये पाठ्यक्रम

इस योजना के साथ, इतना शीघ्र जितना कि सम्भव हो, एक आरम्भ करने के लिये हमने अभिस्तावित किया था कि विद्यमान पाठशालाओं, राष्ट्रिय-संस्थाओं एवं आश्रमों में से विशेष रूप से चुने हुये अध्यापकों के लिये एक वर्ष के प्रशिक्षण की एक लघु आपात[1] पाठचर्या की व्यवस्था की जानी चाहिये। इन अध्यापकों के प्रशिक्षण की पाठचर्या में (निम्नलिखित क्रियायें) सम्मिलित होनी चाहियें :—

१—तकली की सहायता से धुनकन एवं कताई में प्रशिक्षण। यह अनिवार्य होगा, चुना हुआ आधारभूत शिल्प चाहे जो हो।

२—अध्यापक को उस शिल्प में प्रथम तीन वर्ष की पाठशाला-पाठचर्या का अध्यापन करने में समर्थ बनाने के लिये उपरि-लिखित आधारभूत शिल्पों में से एक में पर्याप्त प्रशिक्षण।

३—दैहिकी, स्वास्थ्यविज्ञान, स्वच्छता एवं आहार-विद्या में एक लघु पाठचर्या।

४—शिल्प-पाठशाला एवं इसके सामाजिक-जीवन के साथ सम्बन्ध की आधारभूत कल्पना।

५—समन्वित[2] अध्यापन के एक आधार के रूप में समन्वित-अध्यापनों की साधारण योजनाओं का संविन्यास[3] एवं कार्यकरण[4]।

६—भारतीय राष्ट्रिय-जागरण एवं इस शताब्दी की विश्व-गतिविधियों की प्रवृत्ति पर पाठों की एक लघु पाठचर्या।

७—प्रयोग-पाठशाला में समुचित पर्यवेक्षण के अधीन, न्यूनातिन्यून २५ पाठों का अध्यापन।

---

1 Emergency. 2 Co-ordinated. 3 Formulation. 1 Working.

(ग) *अभिनवन-पाठचर्या*[1]—प्रशिक्षण महाविद्यालयों एवं पाठशालाओं में अध्यापकों की दक्षता को बनाये रखने एवं सुधारने के लिये एक महानुमाप[2] पर क्रमशः अभिनवन-पाठचर्यायें सङ्गठित की जानी चाहियें। ऐसी पाठचर्यायें विभिन्न प्रकार की सांस्कृतिक, व्यावसायिक एवं औद्योगिक होनी चाहियें।

(घ) *प्रदर्शन-पाठशालायें*—प्रदर्शन-पाठशालायें प्रत्येक प्रशिक्षण-संस्था से संबद्ध होनी चाहियें और इन्हें प्रयोगशालाओं, जहाँ शिक्षण की नई रीतियाँ यतित[3] एवं विकसित की जाती हैं, के रूप में सेवा करनी चाहिये। इन पाठशालाओं को—जिनके कर्मचारी विशेषतः अर्हताप्राप्त[4] अध्यापक होंगे—अपने स्थान के लिये आदर्शों के रूप में सेवा करनी चाहिये, और अन्य पाठशालाओं के अध्यापकों को कार्यकरण, अध्यापन-सामग्रियों, एवं प्रविधि[5] को देखने का एक अवसर दिया जाना चाहिये।

(ङ) *निदर्शनात्मक-सामग्री*[6]—एक शिल्प का विषय-प्रवेश, पाठ्यविषय की विषयवस्तु का समन्वय एवं सहसम्बन्ध[7], जीवन के साथ निकट सम्बन्ध, क्रिया द्वारा सीखने की रीति, वैयक्तिक-प्ररुचि[8], और वास्तविक उत्तरदायित्व की भावना, जो यहाँ सुझाई गई नई योजना की मुख्य विशेषताओं में हैं, अध्यापकों एवं छात्रों दोनों को—परन्तु मुख्यतः अध्यापकों को—ऐसी पुस्तकें एवं सामग्री जैसी हमारे उद्देश्य को प्राप्त करने में सहायता करेंगी, प्रदान किये बिना प्राप्त नहीं की जा

1 Refresher Course. 2 Large Scale.
3 Attempted. 4 Qualified. 5 Technique. 6 Illustrative Material. 7 Correlation. 8 Initiative.

सकती। यह आवश्यक है कि प्रदर्शनात्मक-सामग्री, अध्यापक के लिये पुस्तकें, और सहसम्बन्धित कार्य के कार्यक्रम तैयार किये जाने चाहियें।

(च) *वेतन*—अध्यापकों के वेतनों के सम्बन्ध में हम गान्धीजी के इस सुझाव का पृष्ठाङ्कन[1] करते हैं कि 'यह, यदि सम्भव हो तो, पच्चीस रुपये हो और बीस रुपये से कभी कम न हो।" परन्तु हम यह भी अपेक्षा करते हैं कि पाठशाला के उच्च वर्गों के अध्यापन के लिये कुछ उच्च शैक्षणिक अर्हताओं[2] वाले अध्यापकों को सेवायुक्त करना आवश्यक हो सकता है और उनके लिये कुछ उच्चतर वेतन देना पड़ सकता है। हम अभिस्ताव करते हैं कि इस प्रयोग की प्रथम दो अथवा तीन वर्ष पर्यन्त विशेषतः अर्हताप्राप्त एवं योग्य अध्यापक, यदि उनका वेतन कुछ उच्चतर हो तो भी, प्राप्त किये जाने चाहियें।

५—वैज्ञानिक-अन्वेषण एवं शिक्षण-रीतियाँ

हम अभिस्ताव करते हैं कि प्रत्येक प्रान्त में शिक्षा-मण्डल को, अपने शैक्षणिक पार्श्व में, शिक्षण-विशेषज्ञों के एक दक्ष कर्मचारि-वर्ग की व्यवस्था करनी चाहिये। इस कर्मचारि-वर्ग को जनता के वास्तविक जीवन से पाठशाला-पाठ्यक्रम का अन्वायोजन[3] और नये प्रमापों एवं प्राप्ति के आदर्शों के प्रयोग में अध्यापकों का मार्ग-प्रदर्शन करने के लिये वैज्ञानिक-अन्वेषण करना चाहिये। उन्हें अध्यापन की प्रगतिशील रीतियों का यत्न करना चाहिये।

---

1 Endorse.　　2 Qualifications.　　3 To Fit.

६—किसी वर्ग में विद्यार्थियों की माध्य-संख्या[1]

हमारा विचार है कि किसी वर्ग में विद्यार्थियों की माध्य-संख्या तीस से अधिक न होनी चाहिये।

७—पुस्तकें

नई भावना से अतिवेधित[2], सर्वथा नई पाठ्य-पुस्तकें भी आवश्यक हैं। उन प्रान्तों को, जो नई प्रकार की पाठशालायें स्थापित करने की प्रस्थापना[3] करते हैं, इन आवश्यक पुस्तकों और सामग्रियों की तैयारी के लिये यथासम्भव शीघ्र तिथि पर अपेक्षित यान्त्र[4] संस्थापित करना चाहिये।

८—समय-सारणी[5]

हमने पाठ्यक्रम के विभिन्न भागों को पूर्ण करने के लिये अपेक्षित समय का एक प्राक्कलन[6] करने का प्रयत्न किया है। हम अनुभव करते हैं कि निम्नलिखित वितरण लगभग ठीक होगा :—

आधारभूत शिल्प	३ घण्टे २० मिनिट्स।
सङ्गीत, उद्रेखण एवं अङ्कगणित	४० मिनिट्स।
मातृ-भाषा	४० मिनिट्स।
सामाजिक-अध्ययन एवं सामान्य विज्ञान	३० मिनिट्स।
व्यायाम	१० मिनिट्स।
अल्पावकाश[7]	१० मिनिट्स।
	५ घण्टे तथा ३० मिनिट्स।

1 Average Number. 2 Permeated 3 Propose.
4 Machinery. 5 Time-Table 6 Estimate.
7 Recess.

यह प्राक्कलन करने में हमने कताई और बुनाई को आधार-भूत-शिल्प के रूप में रखा है। वितरण एक शिल्प से दूसरे शिल्प तक विभिन्न हो सकता है, परन्तु आधारभूत-शिल्प के लिये निर्धारित समय किसी भी अवस्था में उपर्युक्त प्राक्कलन से अधिक न होना चाहिये। पाठशाला से एक वर्ष में २८८ दिन, एक मास में २४ दिन का माध्य, के लिये कार्य करने की अपेक्षा की जाती है।

९—अवधि

ध्यानपूर्वक विचार के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर आये हैं कि अनिवार्यता लागू करने के लिये ७+समुचित अवस्था होगी, क्योंकि हम यह एक सिद्धान्त के रूप में स्वीकार करते हैं कि, जहाँ तक सम्भव हो वहाँ तक, आधारभूत-शिक्षण सबके लिये समान हो। हम अभिस्ताव करते हैं कि शिक्षा ७ और १४ वर्ष की अवस्थाओं के मध्य समस्त लड़कियों तथा लड़कों के लिये निःशुल्क एवं अनिवार्य होनी चाहिये। तथापि, एक छूट के रूप में, यदि संरक्षक ऐसी इच्छा करते हैं तो, लड़कियों को उनकी द्वादश वर्ष पूर्ण करने के पश्चात् हटाया जा सकता है।

१०—पूर्व-पाठशाला-शिक्षण

हम तीन और सात वर्ष की अवस्थाओं के मध्य वाले बच्चों के लिये राज्य द्वारा सञ्चालित अथवा समर्थित पूर्व-पाठशाला-शिक्षण के किसी सङ्गठन की आवश्यकता का अत्यन्त प्रबल रूप से अनुभव करते हैं। तथापि, हम व्याकुल हैं कि इस सम्बन्ध में राज्य को अपने अन्तिम उत्तरदायित्व की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये।

११—उद्यान एवं क्रीड़ा-स्थल

हमारा विचार है कि एक पाठशाला-उद्यान एवं एक क्रीड़ा-

स्थल के लिये पर्याप्त बड़ा एक भूखण्डक प्रत्येक पाठशाला से संलग्न होना चाहिये।

१२–हल्का अल्पाहार[1]

ग्राम के बच्चों के लगभग सार्वत्रिक अल्पपोषण[2] का विचार करते हुये हम अभिस्ताव करते हैं कि पाठशाला के घण्टों में समस्त बच्चों को हल्का अल्पाहार प्रदान करके इस दोष को सुधारने के लिये प्रत्येक प्रयत्न किया जाना चाहिये। हम विश्रब्ध[3] हैं कि इस उपक्रम में अन्तर्ग्रस्त व्ययों की पूर्ति करने के लिये राज्य जनता से पर्याप्त सहयोग प्राप्त करने के योग्य होगा।

१३–पर्यवेक्षण[4]

पर्यवेक्षण पर्याप्त विशेषित कार्य होता है और हम अभिस्ताव करेंगे कि एक विस्तारवादी[5] पाठशाला-प्रणाली की सदैव वर्द्धमान आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये पर्यवेक्षकों के प्रशिक्षण के लिये व्यवस्था की जानी चाहिये। हमारे मत से एक पर्यवेक्षक के लिये न्यूनतम अर्हता, सफलतापूर्वक अध्यापन के न्यूनातिनून दो वर्ष के अनुभव और पर्यवेक्षण एवं प्रशासन-कार्य में एक वर्ष के विशेष प्रशिक्षण के साथ, एक आधारभूत पाठशाला के अध्यापक के रूप में पूर्ण प्रशिक्षण होनी चाहिये। पर्यवेक्षण केवल निरीक्षण[6] नहीं होना चाहिये। इसका अर्थ वैयक्तिक-सहयोग एवं उसके द्वारा जो अधिक जानता है, एक कम अनुभवी अथवा कम संसाधनयुक्त सहयोगी के लिये प्रस्तुत सहायता होना चाहिये। वास्तव में, पर्यवेक्षकों को

---

1 Light Nourishment. 2 Under-nourishment.
3 Confident 4 Supervision. 5 Expanding. 6 Inspection.

शैक्षणिक-प्रयोगों में नेताओं एवं मार्ग-प्रदर्शकों का कार्य करने योग्य होना चाहिये। अतः पर्यवेक्षक पर्याप्त संख्या में होने चाहियें, और पर्यवेक्षण-मण्डल[1] अप्रबन्ध्य रूप से बड़े नहीं होने चाहियें।

१४—परीक्षायें

हमारे देश में प्रवर्तमान परीक्षा-प्रणाली शिक्षण के लिये एक शाप सिद्ध हुई है। परीक्षा का प्रयोजन एक शिक्षा-मण्डल के निरीक्षकों द्वारा सञ्चालित विद्यार्थियों के चुने हुये समूहों के साफल्य के एक न्यादर्श-प्रमाप[2] के द्वारा एक विहित क्षेत्र में पाठशालाओं के कार्य की एक प्रशासनात्मक जांच द्वारा पूर्ण हो सकता है। इस प्रकार प्रशासित-परीक्षण पाठ्यक्रम-संशोधन के लिये उत्तरदायी विशेषज्ञों के साथ निकट परामर्श से निर्मित होने चाहियें। वे पाठ्यक्रम की पूर्ण सीमा[3] का आच्छादन करने के लिये पर्याप्त लम्बे होने चाहियें और एक ऐसे रूप में होने चाहियें जो अङ्कन[4] को व्यक्ति-निरपेक्ष[5] एवं वैयक्तिक-निर्णय से स्वतन्त्र बनाता है। एक श्रेणी से दूसरी के लिये संपारण[6] छात्रों के ध्यानपूर्वक अभिलेखों[7] के आधार पर पाठशाला के केवल अध्यापन-निकाय[8] द्वारा निश्चित होना चाहिये। पाठशाला-प्रणाली भर अभीष्ट दक्षता के स्तर को बनाये रखने के लिये शिक्षा-मण्डल को विभिन्न मण्डलों की पाठशालाओं की प्रत्येक श्रेणी से विशिष्ट भागों का एक वार्षिक परीक्षण संचालित करना चाहिये। यथा-शक्य, छात्रों से एक श्रेणी के कार्य अथवा उसके पर्याप्त भाग की पुनरावृत्ति करने के लिये नहीं कहा जाना चाहिये। यदि एक वर्ग में छात्रों की

---

1 Supervisory Districts. 2 Sample Measurement.
3 Whole Range. 4 Marking, 5 Objective. 6 Promotion.
7 Records, 8 Teaching Faculty.

एक बड़ी संख्या "विफल" होती है तो अध्यापक का कार्य देख-भाल चाहता है। यदि एक पाठशाला अनेक "विफलों[1]" का अभिलेखन करता है, तो उनके प्रशासन की देख-भाल होनी चाहिये, और यदि समस्त पाठशाला-प्रणाली में विफलों की संख्या बड़ी है तो पाठ्यक्रम एवं विभिन्न श्रेणियों के लिये निर्धारित प्रमापों में कोई दोष है। इसे ठीक किया जाना चाहिये। शिक्षा-मण्डल को अपनी पाठशालाओं की दक्षता का उपरि-लिखित न्यादर्श-निष्पन्न-परीक्षाओं[2] द्वारा, आधारभूत शिल्प में छात्रों की दक्षता द्वारा, और चारों ओर के समुदाय के सामान्य-जीवन के सुधार के लिये अध्यापकों एवं छात्रों द्वारा किये गये अंशदान द्वारा निर्णय करना चाहिये। पाठ-शालाओं के कार्य का एक वार्षिक मण्डल-प्रदर्शन साफल्य के एक निश्चित प्रमाप को बनाये रखने में दूर तक सहायता करेगा।

१५—भारतीय-शिक्षा की केन्द्रीय-संस्था[3]

शासकीय मण्डलों से अलग हम एक स्वतन्त्र, अशासकीय भारतीय-शिक्षा की केन्द्रीय-संस्था, जो प्रशासनात्मक उत्तर-दायित्व से स्वतन्त्र होनी चाहिये और जिसमें शिक्षा-क्षेत्र एवं अन्य सांस्कृतिक-क्रिया-क्षेत्रों के अग्रगण्य व्यक्ति होने चाहियें, का निर्माण अभिस्तावित करेंगे। इस संस्था के उद्देश्य निम्न-लिखित होने चाहियें :—

(i) शैक्षणिक-नीति एवं व्यवहार के विषयों पर एक मन्त्रणा-निकाय[4] के रूप में सेवा करना।

(ii) भारत में एवं बाह्य शैक्षणिक-प्रयत्नों में अन्तर्निहित विचारों एवं उद्देश्यों का अध्ययन एवं चर्चा करना,

1 Failures. 2 Sample Achievement Tests.
3 Central Institute of Indian Education. 4 Advisory Body.

और इस अध्ययन के परिणामों को उन सबको जो अभिरुचि रखते हैं, प्रीप्य बनाना।

(iii) विभिन्न भारतीय प्रान्तों एवं राज्यों, विदेश भी, के शैक्षणिक-कार्य के सम्बन्ध में सूचना इकट्ठा करना और उसके सम्पर्क में रहना।

(iv) शिक्षा से सम्बन्धित समस्याओं पर अन्वेषण सङ्गठित करना।

(v) शैक्षणिक-कर्मकारियों के लिये गुम्फाक्षर[1] एवं एक पत्रिका निकालना।

१६—राज्य-विभागों का सहयोग

यह सामान्य ज्ञान की बात है कि देश की विभिन्न उपयोगी सेवायें, जिन्हें इसके भावी नागरिकों के कल्याण से संबद्ध होना चाहिये, खेदजनक रूप से असमन्वित हैं। हम अभिस्ताव करते हैं कि शिक्षा-विभाग को एक स्वस्थ, सुखी एवं दक्ष पाठशाला-समुदाय के निर्माण में अन्य राज्य-विभागों (यथा, स्वास्थ्य, कृषि, लोक कर्मान्त[2], सहकारिता, स्थानीय-स्वशासन) का सहयोग प्राप्त करने की स्थिति में रख दिया जाना चाहिये।

ग—समीक्षा

१—वार्धा-योजना की प्रगति

पूर्वगत पंक्तियों में डॉ० ज़ाकिर हुसैन-समिति के अभिस्तावों का उल्लेख किया गया है। इन अभिस्तावों द्वारा समिति द्वारा आधारभूत शिक्षण, जिसे गान्धीजी "नई तालीम" के नाम से पुकारा करते थे, की एक रूपरेखा भारत के लिये प्रस्तुत की गई

1 Monographs.　2 Public Works.

हैं। आजकल आधारभूत-शिक्षण भारत की राष्ट्रिय-शिक्षा-प्रणाली का एक भाग है, परन्तु उसका विद्यमान रूप डॉ० ज़ाकिर हुसैन-समिति के अभिस्तावों में वर्णित रूप से पर्याप्त मात्रा तक भिन्न है। समिति के अभिस्तावों को व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिये यह परिवर्तन सर्वथा स्वाभाविक एवं युक्तियुक्त ही माना जायगा। आधारभूत-शिक्षण-प्रणाली को उसका विद्यमान रूप प्रदान करने में तीन अभिकरणों[1] ने मुख्य भाग लिया है, (१) भारत एवं राज्य-शासन, (२) कॉन्ग्रेस, और (३) अखिल-भारतीय-आधारभूत-शिक्षण-सम्मेलन[2]। इनमें से प्रत्येक अभिकरण द्वारा आधारभूत-शिक्षण की प्रगति के लिये किये गये कार्यों का विवरण निम्नलिखित है :-

(क) *भारत एवं राज्य-शासनों द्वारा किये गये कार्य*—शिक्षा के केन्द्रीय-मन्त्रणा मण्डल[3], जिसका कार्य शैक्षणिक समस्याओं पर भारत-शासन को मन्त्रणा प्रदान करना है, ने आरम्भ से ही वार्धा योजना के महत्व का अनुभव किया और उसने जनवरी, १९३८ में माननीय श्री बी० जी० खेर, मुख्य-मन्त्री एवं शिक्षा-मन्त्री, बम्बई के सभापतित्व में एक समिति की नियुक्ति की जिसे "प्रथम खेर-समिति" के नाम से पुकारा जाता है। प्रथम खेर-समिति की नियुक्ति का उद्देश्य वार्धा-योजना का परीक्षण करके अभिस्ताव करना था। दिसम्बर, १९३८ में केन्द्रीय-मन्त्रणा-मण्डल ने प्रथम खेर-समिति के अभिस्तावों को सामान्यतः स्वीकार कर लिया। १९३८ में मण्डल ने आधारभूत शिक्षण के कुछ अन्य प्रश्नों पर विचार करने के लिये श्री बी० जी० खेर के सभापतित्व में पुनः एक समिति की नियुक्ति की

1 Agencies. 2 All-India Basic Education Conference.
3 Central Advisory Board of Education.

जिसे "द्वितीय खेर-समिति" के नाम से पुकारा जाता है। मण्डल ने १९४० में अपनी शिमला-बैठक में द्वितीय खेर-समिति के मुख्य अभिस्तावों को भी सामान्यतः स्वीकार कर लिया। मण्डल ने १९४४ में अपना "भारत में युद्धोत्तर-शैक्षणिक-विकास-प्रतिवेदन[1]" प्रकाशित किया, जिसे संक्षेप में सार्जेण्ट-प्रतिवेदन[2], १९४४ के नाम से पुकारा जाता है। दोनों खेर-समितियों के अभिस्ताव सार्जेण्ट-प्रतिवेदन में समाविष्ट[3] कर दिये गये। सार्जेण्ट-प्रतिवेदन को भारत एवं राज्य-शासनों की सामान्य स्वीकृति प्राप्त हुई और लगभग समस्त राज्य-शासनों ने आधारभूत शिक्षण को अपनी पञ्चवर्षीय-शैक्षणिक-विकास-योजनाओं में, जो सार्जेण्ट-प्रतिवेदन के अभिस्तावों के आधार पर तैयार की गई थीं, और जिनका परिपालन १९४६-४७ से प्रारम्भ हुआ, सम्मिलित कर लिया गया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् १९४७ में एक शिक्षा-मन्त्रालय की स्थापना की गई, जो आजकल छः विभागों में सङ्गठित है। "आधारभूत एवं सामाजिक-शिक्षण-विभाग[4]" भी उनमें से एक है। १९४७ में राज्य-शासनों की प्रार्थना पर केन्द्रीय-मन्त्रणा-मण्डल ने आधारभूत-पाठशालाओं के लिये पाठ्यक्रम तथा आधारभूत पाठशालाओं के अध्यापकों के लिये एक हस्तपुस्तिका[5] तैयार करने के लिये एक समिति की नियुक्ति की जिसने १९४९ में पाठ्यक्रमों को प्रकाशित करने का अनुमोदन किया। हस्तपुस्तिका का प्रकाशन १९५६ में हुआ। २६ नौवम्बर, १९४९ को भारत का

---

1 Report on the Post-War Educational Development in India, 1944.　2 Sargent Report.　3 Incorporated.
4 Basic and Social Education Division.　5 Handbook.

नवीन संविधान अङ्गीकृत किया गया जिसके द्वारा १० वर्ष की अवधि में १४ वर्ष की आयु तक समस्त बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का संकल्प किया गया।❀ प्रथम पञ्चवर्षीय-योजना (१९५२—मार्च, १९५६) और द्वितीय पञ्चवर्षीय-योजना, (एप्रिल १९५६—मार्च, १९६०) में आधारभूत शिक्षण को विशेष महत्व प्रदान किया गया है卐। आधारभूत शिक्षण की प्रगति का निर्धारण करने के लिये शासन द्वारा १९५५ में "आधारभूत-शिक्षण-निर्धारण-समिति[1]" की नियुक्ति की गई जिसका प्रतिवेदन १९५६ में प्रकाशित कर दिया गया है। जून, १९५७ में भारत भर में निःशुल्क एवं अनिवार्य

---

1 Assessment Committee On Basic Education, 1956.

❀ *"The State shall endeavour to provide, within a period of ten years from the commencement of this Constitution, for free and compulsory education for all children until they complete the age of fourteen years."*

—"The Constitution Of India, Part IV, Article 45.

卐 *"The importance of basic educa.ion for a country which seeks to develop rapidly is now well recognised. In the first five year plan basic education programmes began to be implemented effectively for the first time. The progress made in basic education and the targets for the second plan are indicated below :*

	1950-51	*1955-56*	*1960-61*
Schools	*1,751*	*10,000*	*38,400*
Enrolment	*1,85,000*	*11,00,000*	*42,24,000*
Training Schools	*114*	*449*	*729*

—Second Five Year Plan, 1958, P. 506.

प्रारम्भिक-शिक्षा की स्थापना करने के लिये एक "अखिल-भारतीय-प्रारम्भिक-शिक्षा-परिषद्[1]" की स्थापना की गई है जो प्रारम्भिक-शिक्षा-सम्बन्धी विषयों पर केन्द्रीय एवं राज्य-शासनों और स्थानीय-निकायों को मन्त्रणा प्रदान करने के अतिरिक्त भारतीय-संविधान के अनुच्छेद ४५ (जिसे पृष्ठ २७ के पद-टिप्पण में पहले ही लिखा जा चुका है) को यथा-शीघ्र परिपालित करने के लिये कार्यक्रम तैयार करती है। अब पाठ्यक्रम के पुनर्निर्माण, प्रविधि के सहसम्बन्ध, परीक्षण एवं अर्हापण[2], पाठ्यपुस्तकों, शिल्प-सामग्री एवं उपकरण, आदि समेत आधारभूत-शिक्षण के विभिन्न क्षेत्रों में अन्वेषण का सञ्चालन करने के लिये एक "आधारभूत-शिक्षण-राष्ट्रिय-संस्था[3]" की स्थापना की जा रही है। कहने का तात्पर्य यह है कि भारत-शासन द्वारा आधारभूत-शिक्षण को भारत की शैक्षणिक-प्रणाली के प्रतिरूप के रूप में स्वीकार कर लिया गया है और प्रारम्भिक शिक्षा की प्रणाली क्रमशः इसी प्रतिरूप के अनुसार पुनःसङ्गठित की जा रही।❀ विभिन्न राज्यों में

1 All-India Council of Elementary Education. 2 Evaluation.
3 National Institute of Basic Education. 4 Pattern.

❀ *"Basic education being the accepted pattern of our educational system, the system of elementary education is gradually being brought in lines with it.·········The programme for the conversion of the existing elementary schools into basic ones, the opening of new basic schools, the introduction of crafts in non-basic schools, the production of literature on basic education and training of basic school teachers is progressively being carried out."*

—India, 1958, The Publication Division, P. 103.

प्रत्येक राज्य के संसाधनों एवं आवश्यकताओं के अनुसार आधारभूत-शिक्षण-प्रणाली को सङ्गठित किया जा रहा है। यहाँ प्रत्येक राज्य द्वारा किये गये कार्यों का उल्लेख करना समुचित एवं सम्भव नहीं है।

(ख) कॉन्ग्रेस द्वारा किये गये कार्य—गान्धी जी ने मार्च, १९३८ में भारतीय-राष्ट्रिय-कॉन्ग्रेस के हरिपुरा-अधिवेशन में अपनी वार्धा-शिक्षा-योजना कॉन्ग्रेस के समक्ष प्रस्तुत की, जिसे कॉन्ग्रेस ने स्वीकार कर लिया और उसके सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किये :—

(१) एक राष्ट्रिय श्रेणी पर सात वर्ष के लिये निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान की जानी चाहिये।

(२) शिक्षा का माध्यम मातृ-भाषा हो।

(३) इस अवधि भर शिक्षा किसी रूप के हस्त एवं उत्पादक कार्य के चारों ओर केन्द्रित हो और विकसित होने वाली अन्य समस्त क्रियायें अथवा दिया जाने वाला प्रशिक्षण, यथा-शक्य, बच्चे के वातावरण के ध्यान के साथ केन्द्रीय हस्त शिल्प से अनुकूलतः[1] सम्बन्धित होना चाहिये।

इसके अतिरिक्त, कॉन्ग्रेस ने डॉ० ज़ाकिर हुसैन तथा श्री ई० आर्यनायकम् से, गान्धी जी के परामर्श एवं मार्ग-दर्शन में, शिक्षा के आधारभूत भाग के साथ संव्यवहार[2] करने के लिये एक अखिल-भारतीय-शिक्षा-मण्डल" की स्थापना के लिये प्रार्थना की। फलतः एप्रिल, १९३८ में एक अखिल-भारतीय मण्डल की स्थापना की गई जिसे "हिन्दुस्तानी तालीमी संघ" के नाम से पुकारा जाता है। हिन्दुस्तानी तालीमी संघ ने

1 Integrally. 2 To deal with.

आधारभूत पाठशालाओं के सङ्गठन एवं उनके अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिये अनेक कार्य किये हैं।

(ग) *अखिल-भारतीय-आधारभूत-शिक्षण-सम्मेलन*—आधार-भूत-शिक्षण की प्रगति एवं उसे उसका विद्यमान रूप प्रदान करने में अखिल-भारतीय-आधारभूत-शिक्षण-सम्मेलनों के प्रस्तावों का अत्यन्त महत्वपूर्ण हाथ रहा है। इनमें से जनवरी, १९४५ में सेवाग्राम में आयोजित तृतीय सम्मेलन के प्रस्ताव आधारभूत-शिक्षण की प्रगति के दृष्टिकोण से विशेषतः उल्लेख-नीय हैं। सेवाग्राम-सम्मेलन का उद्घाटन करते हुये गान्धी जी ने कहा कि नई तालीम का क्षेत्र केवल ७ से १४ वर्ष तक के बच्चे तक ही सीमित नहीं है; वह तो गर्भधारण से मृत्यु तक फैला हुआ है।❀ इस प्रकार सेवाग्राम-सम्मेलन में नई तालीम को एक नया अर्थ प्रदान किया गया। समस्या के समस्त पक्षों का एक पूर्ण परीक्षण करने के पश्चात् सम्मेलन ने अपने कार्यक्रम को जीवन की चार श्रेणियों के अनुरूप निम्नलिखित चार भागों में विभाजित कर लिया :—

(१) प्रौढ़-शिक्षा[1] अथवा जीवन की समस्त श्रेणियों में अपेक्षी[2]—माता और माता, जब शिशु अभी तक उस पर आश्रित है, की अवेक्षा[3] एवं शिक्षण समेत मनुष्यों एवं स्त्रियों का शिक्षण।

---

1 Adult Eduation. 2 Expectant. 3 Care.

❀ *"Our field now is not merely the child of seven to fourteen years, the field of Nai Talim stretches from the hour of conception in the mother's womb to the hour of death."*

—Report of the Third All-India Basic Education Conference, Sevagram, 1949, P. 28.

(२) पूर्व-आधारभूत-शिक्षण[1] अथवा सात के नीचे बच्चों का शिक्षण।

(३) आधारभूत-शिक्षण[2] अथवा सात से चौदह तक के बच्चों का शिक्षण।

(४) उत्तर-आधारभूत-शिक्षण[3] अथवा उन तरुण व्यक्तियों का शिक्षण जो आधारभूत-शिक्षण पूर्ण कर चुके हैं।

सेवाग्राम-सम्मेलन ने जीवन की इन चार श्रेणियों के लिये शिक्षण-योजनाओं को तैयार एवं पुनरीक्षित करने के लिये चार समितियों की नियुक्ति भी की। इस प्रकार नई तालीम के इतिहास में द्वितीय अध्याय का आरम्भ सेवाग्राम-सम्मेलन, १९४५ से होता है।

२—वार्धा-शिक्षा-योजना की विशेषतायें

विभिन्न स्रोतों के अनुसार वार्धा-शिक्षा-योजना की विशेषतायें निम्नलिखित हैं :—

(क) *डॉ० ज़ाकिर हुसैन-समिति के अनुसार**

(i) एक शिल्प को विषय-प्रवेश, (ii) पाठ्यविषय की विषयवस्तु का समन्वय एवं सहसम्बन्ध, (iii) जीवन के साथ निकट सम्बन्ध, (iv) क्रिया द्वारा सीखने की रीति, (v) वैयक्तिक-प्ररुचि, और (vi) वास्तविक उत्तर-दायित्व की भावना।

---

1 Pre-Basic Education. 2 Basic Education.

3 Post Basic Education.

*Quoted from the Educational Reconstruction, Hindustani Talimi Sangh, Sevagram : Wardha, P. 122.

(ख) "आधारभूत पाठशालाओं के लिये पाठ्यक्रम" के अनुसार卐

(i) क्रिया-केन्द्रितत्व, (ii) सहसम्बन्ध, (iii) अध्यापक-स्वातन्त्र्य, (iv) उत्पादक-पक्ष, (v) हस्त-कार्य के लिये सम्मान, और (vi) नागरिकता का आदर्श।

(ग) डॉ० एम० एस० पटैल के अनुसार❀

(i) निःशुल्क अनिवार्य शिक्षण, (ii) शिक्षण-केन्द्र के रूप में शिल्प, (iii) योजना का आत्म-निर्भर-पक्ष, (iv) शिक्षा का माध्यम, (v) अहिंसा (vi) नागरिकता का आदर्श, और (vii) एक सहकारी समुदाय का आदर्श।

(घ) श्री हंसराज भाटिया के अनुसार†

(i) शिक्षण का केन्द्र बच्चा है, (ii) ज्ञान को एक "एकीकृत सम्पूर्ण" समझा जाता है, (iii) बच्चे क्रिया अथवा आत्म-चेष्टा द्वारा सीखते हैं, (iv) क्रिया सप्रयोजन एवं उत्पादक होती है, (v) शिक्षण किसी शिल्प-कार्य द्वारा प्रदान किया जाता है, (vi) अध्यापक और बच्चे दोनों को कार्य करने की अधिक स्वतन्त्रता होती है, (vii) बच्चे हस्त-श्रम के लिये एक सम्मान प्राप्त करते हैं, (viii) अध्यापक और बच्चे दोनों सामाजिक-प्रगति के लिये कार्य करते हैं, और (ix) सत्य और अहिंसा के

卐 Syllabus for Basic Schools, Ministry Of Education, Government of India, 1956, PP. 5-6.

❀ M. S. Patel, The Educational Philosphy Of Mahatma Gandhi, Navajivan, Ahmedabad, 1956, PP, 113-119.

† Hans Raj Bhatia, What Basic Education Means, Orient Longmans Ltd., 1954, P. 12.

आदर्श को दृष्टि में रखते हुये, जैसा कि धर्मोपदेश किया है, दोनों विश्व-शान्ति के लिये अंशदान करने में सहायता करते हैं।

उपर्युक्त सूचियों से स्पष्ट है कि विभिन्न स्रोतों द्वारा अपने-अपने शब्दों में वार्धा-शिक्षा-योजना की विशेषताओं का वर्णन किया गया है और यद्यपि प्रत्येक स्रोत ने अपनी सूची में अन्य स्रोतों से पृथक कुछ नवीन विशेषताओं का भी समावेश किया है, परन्तु वास्तवता यह है कि अधिकांश विशेषतायें सर्व-साधारण हैं। इस पुस्तक का उद्देश्य इनमें से प्रत्येक विशेषता का सविस्तर वर्णन करना नहीं है, अतः यहाँ समीक्षा के दृष्टि-कोण से विभिन्न विशेषताओं का केवल नामोल्लेख ही किया गया है। विशेषताओं की उपर्युक्त सूचियों में अन्य अनेक विशेषतायें जोड़ी जा सकती हैं, परन्तु हम अनेक कारणों से वार्धा-शिक्षा-योजना की दो अत्यन्त महत्वपूर्ण विशेषताओं की ओर विचारकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं, (१) वार्धा-योजना भारतीय परिस्थितियों के सर्वथा अनुकूल है, और (२) यह योजना राष्ट्रियता, देशभक्ति एवं असाम्प्रदायिकता की प्रतीक है। यदि वार्धा-शिक्षा-योजना के अभिस्तावों—विशेषतः उसके सामाजिक अध्ययन, उत्पादक-शिल्प एवं हिन्दुस्तानी-सम्बन्धी अभिस्तावों की ओर समुचित ध्यान दिया गया होता तो भारत की अनेक विद्यमान सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं का सूत्रपात न हो पाया होता। सामाजिक अध्ययन के अन्तर्गत विश्व के धर्मों के प्रति पारस्परिक सम्मान का विकास करके हम साम्प्रदायिक उपद्रवों एवं भारत-विभाजन के दुखद प्रसङ्गों से, उत्पादक-शिल्प के रहस्य को समझ कर बेकारी के शिकार

होने से, और हिन्दुस्तानी के अभिस्ताव पर गम्भीरतापूर्वक विचार करके हिन्दी-उर्दू, हिन्दी-पञ्जाबी, हिन्दी-अहिन्दी, एवं हिन्दी और दक्षिण जैसे राष्ट्र-नाशक सङ्कटों से सुगमतापूर्वक बच सकते थे। निस्सन्देह, हिन्दी भारत की राष्ट्र-भाषा है, परन्तु उसे वास्तविक अर्थ में राष्ट्र-भाषा बनाने के प्रश्न पर आज भी हमारा यही विचार है कि विद्यमान काल में इस प्रश्न का समुचित एवं प्रभावशाली उत्तर "हिन्दी" नहीं, वरन् एक अल्पकालिक-भाषा के रूप में "हिन्दुस्तानी" ही है❀—ऐसी हिन्दुस्तानी जिसकी लिपि देवनागरी हो और जिसके शब्द-कोष में विभिन्न भाषाओं के—मुख्यतः भारतीय-शब्द सम्मिलित हों। हमारा यह भी विश्वास है कि ऐसी हिन्दुस्तानी हमारी वर्तमान-काल की आवश्यकताओं की पूर्ति करके भविष्य में आप ही समाप्त हो जायगी और हिन्दी स्वाभाविक रूप से उसका स्थान ग्रहण कर लेगी।

३—वार्धा-शिक्षा-योजना के दोष

वार्धा-शिक्षा-योजना के प्रकाशित होते ही भारतीय एवं विदेशीय विचारकों एवं विद्वानों का ध्यान द्रुत गति से उसकी ओर आकर्षित हुआ और उसके प्रथम संस्करण की १००० प्रतियाँ अल्पकाल में ही बिक गईं। असंख्य शिक्षण-विदों एवं

❀ हमें "हिन्दुस्तानी" शब्द से चिढ़ने अथवा अप्रसन्न होने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह हिंदी का ही एक नवीन रूप होगी। उसके शब्द-कोष में मुख्यतः हिन्दी के शब्द होंगे, और वह अन्य समस्त भाषाओं के शब्द-कोष से अधिक विस्तृत होगा। ऐसी भाषा समस्त भारतवासियों को स्वीकार्य होगी।

विचारकों ने वार्धा-योजना के विभिन्न पक्षों के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किये। यही नहीं, योजना के विभिन्न पक्षों के स्पष्टीकरण की माँग करते हुये, उनमें सुधार के हेतु सुझाव देते हुये, उनका समर्थन करते हुये, अथवा उनकी समालोचना करते हुये असंख्य पत्र महात्मा जी को लिखे गये। महात्मा जी ने 'हरिजन" के माध्यम से उन समस्त प्रश्नों के उत्तर दिये। उधर अनेक प्रश्नों के उत्तर डा० ज़ाकिर हुसैन ने दिये। यहाँ विभिन्न प्रश्नों के महात्मा जी अथवा डॉ० साहब द्वारा दिये गये उत्तरों एवं स्पष्टीकरणों का उल्लेख करना प्रस्तुत पुस्तक का उद्देश्य नहीं है, अतः वार्धा-शिक्षा-योजना का एक पूर्ण चित्र वाचकों के समक्ष प्रस्तुत करने के लिये विभिन्न विद्वानों द्वारा इस योजना के विरुद्ध लगाये गये दोषों का केवल नामोल्लेख ही किया जायगा। वार्धा-शिक्षा-योजना के विभिन्न पक्षों के सम्बन्ध में मुख्यतः निम्नलिखित दोषारोपण किये गये हैं :—

(क) क्षेत्र-पक्ष के सम्बन्ध में

(i) यह योजना मुख्यतः गाँवों के लिये है।

(ख) उत्पादिता-सिद्धान्त[1] के सम्बन्ध में

(i) यह सिद्धान्त पाठशालाओं को कुटीर-उद्योगों में परिणत कर देगा, (ii) इस सिद्धान्त के कारण अध्यापक विनैतिक[2] हो जायेंगे क्योंकि वे पाठशालाओं को निर्माणियाँ[3] तथा विद्यार्थियों को धनोपार्जक-साधन समझने लगेंगे, (iii) यह योजना वायुयानों एवं बॉम्बस् के वर्तमान युग में, जबकि विज्ञान अत्यन्त तीव्र गति से प्रगति की ओर अग्रसर है, हम कताई और

1 The Principle of Productivity. 2 Demoralised. 3 Factories.

बुनाई जैसे मध्यकालीन उद्योगों के प्रयोग का उपदेश देकर औद्योगिक प्रगति को रोकने तथा सभ्यता को पीछे की ओर ढकेलने का प्रयत्न करती है।

(ग) आधारभूत-शिल्प के सम्बन्ध में

(i) चर्खा परीक्षाओं से भी अधिक घातक सिद्ध होगा, (ii) शिल्प-कार्य के कारण शिक्षा बड़ी महंगी पड़ेगी, (iii) आधारभूत-शिल्प की सहायता से न तो बच्चों का सर्वाङ्गीण विकास करना सम्भव होगा, न उन्हें उपयुक्त संस्कारी-शिक्षण[1] प्रदान करना क्योंकि, वार्धा-शिक्षा-योजना में व्यावसायिक एवं बौद्धिक-शिक्षण के मध्य समुचित सन्तुलन नहीं है, (iv) आधारभूत-शिल्प द्वारा समस्त विषयों का पढ़ाया जाना असम्भव है।

(घ) पाठचर्या के सम्बन्ध में

(i) कताई--विशेषतः तकली द्वारा कताई—पर आवश्यकता से अधिक बल रखा गया है, (ii) धार्मिक-संशिक्षण की उपेक्षा की गई है, परन्तु सामाजिक अध्ययन के अन्तर्गत "विश्व के धर्मों के प्रति पारस्परिक सम्मान के विकास" को महत्व प्रदान करके एक नवीन धर्म—दीने इलाही—की स्थापना का प्रयत्न किया गया है, (iii) संस्कृति की उपेक्षा की गई है।

(ङ) समय-सारिणी के सम्बन्ध में

(i) शारीरिक-शिक्षण के लिये प्रतिदिन केवल १० मिनिट्स का समय निर्धारित करके उसके साथ

1 Liberal Education.

न्याय नहीं किया गया है, (ii) आधारभूत-शिल्प के लिये प्रतिदिन ३ घण्टे २० मिनिट्स का समय निर्धारित करके शिक्षण के अन्य पक्षों की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है, (iii) एक वर्ष में २८८ कार्य-दिवसों का अभिस्ताव करके छात्रों को अत्यधिक श्रम करने के लिये बाध्य किया गया है।

(च) अन्य पक्षों के सम्बन्ध में

(i) माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा की उपेक्षा की गई है, (ii) सह-शिक्षण को अनिवार्य बना कर भारतीय आदर्श की उपेक्षा गई है, (iii) यह योजना काल्पनिक[1] है, एक अनावश्यक विश्वास[2] है, एक मनःसृष्टि[3] है, और वास्तविक व्यवहार से परे है, (iv) इस योजना में एक सुस्थित शिक्षा-दर्शन की अपेक्षा भावुकता अधिक है। इसे गान्धी जी की महानता से प्रभावित व्यक्तियों ने भावुकतावश ही स्वीकार किया है, (v) यह योजना व्यावसायिक शिक्षा को समय से पूर्व ही बच्चों के सम्मुख प्रस्तुत करती है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि इनमें से अनेक समालोचनायें अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं और वे समालोचकों की दूरदर्शिता, चिन्तन-गांभीर्य एवं शिक्षण-विशेषज्ञता की सूचक हैं, परन्तु कई समालोचनायें ऐसी भी हैं जो केवल समालोचना के दृष्टिकोण से की गई हैं और वे समालोचकों की साधारणता की ही सूचक हैं। वार्धा-योजना में उपरि-लिखित पक्षों में से सर्वाधिक समालोचना उसके उत्पादिता-सिद्धान्त की हुई है। वाचकों को ध्यान होगा कि वार्धा-शिक्षा-सम्मेलन में समस्त

1 Utopian. 2 Fad. 3 Phantasy.

प्रस्तावों के सर्वसम्मति से पारित होने पर भी उनके उत्पादिता-सम्बन्धी भाग को प्रौ० के० टी० शाह ने स्वीकार नहीं किया था। अनेक राजनीतिज्ञों एवं प्रशासकों ने भी इस सिद्धान्त की समालोचना की है। कुछ स्वार्थी समालोचकों ने इसकी आलोचना करते समय इस सिद्धान्त के गुण-दोष अथवा उपयोगिता-अनुपयोगिता पर विचार न करके पाठशालाओं एवं अध्यापकों की स्थिति के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किये हैं। ऐसे समालोचकों से मुझे बस इतना ही निवेदन करना है कि उनकी ये समालोचनायें चार कारणों से दोपयुक्त हैं, (१) वे भौतिकवाद पर आधारित हैं और जीवन के आध्यात्मिक पक्ष की उपेक्षा करती हैं। अतः वे पूर्णतः एकाङ्गी हैं, (२) वे भारत की विद्यमान आवश्यकताओं एवं क्षमताओं को ध्यान में रख कर नहीं की गई हैं, (३) उन्हें प्रस्तुत करते समय देशभक्ति एवं त्याग की भावनाओं के साथ वाञ्छनीय न्याय नहीं किया गया है, और (४) वे विदेशों के साथ प्रतियोगिता एवं कृत्रिमता पर आधारित हैं। हम अत्यन्त आदरपूर्वक कुछ प्रश्न करना चाहते हैं—क्या आप भारत की पाठशालाओं, भारत के अध्यापकों, और भारत के बच्चों को आत्म-निर्भर बनाने का विरोध इसलिये करते हैं कि आपको लङ्काशायर की मिलों द्वारा निर्मित सिल्क के स्थान पर अपने बच्चों के हाथों से निर्मित मोटी, भद्दी खादी पहननी पड़ेगी? क्या आप उसका विरोध इसलिये करते हैं कि आप अनभिज्ञ एवं असहाय व्यक्तियों का शोषण करके श्रम किये बिना "मौज" उड़ाना चाहते हैं? क्या आप उसका विरोध इसलिये करते हैं कि आप शिक्षा के नाम पर अपने जीवन के कृत्रिम भौतिक सुख के एक अंश मात्र का भी त्याग करने

का साहस नहीं रखते ? क्या आपके विचार से वे पागल थे जो भारत की स्वतन्त्रता के नाम पर अपने जीवन तक (भौतिक सुखों की तो गिनती ही क्या है) का मोह न करके हँसते-मुसकराते गोलियों से खेल गये, फाँसी के फन्दों में झूल गये, मौत से जूझ गये ? क्या आपके विचार से भारत उन्नति एवं प्रगति के सर्वोच्च शिखर पर उस समय नहीं पहुँचा था जब यहाँ प्राचीन आर्थिक-व्यवस्था में, अपने हाथों का स्वामी होने के कारण, प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक परिवार, और प्रत्येक गाँव आत्म-निर्भर था ? क्या आपके आर्थिक-सिद्धान्त हृदय एवं भावना-रहित होने के कारण अपूर्ण नहीं हैं ? हमारा विश्वास है कि भारतीय-शिक्षा को आत्म-निर्भर बनाने के लिये उत्पादिता-सिद्धान्त का प्रश्न तर्क का नहीं, विश्वास का प्रश्न है, गम्भीरतापूर्वक परीक्षण करके एक सुस्थित निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रश्न है। यह कहना कि उत्पादिता-सिद्धान्त के कारण भारत के अध्यापक विनैतिक हो जायेंगे, वे पाठ-शालाओं को फैक्ट्रियाँ समझने लगेंगे, वे बच्चों को धनोत्पादक-साधन मानने लगेंगे, भारत के वास्तविक भाग्य-विधाताओं का—गुरुओं का—अपमान करना है, उन्हें देशद्रोही कहने का दुस्साहस करना है ! क्या हमें इसके लिये प्रमाण प्रस्तुत करने की आवश्यकता है कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति से अब तक ११ वर्ष की लम्बी अवधि में विनैतिकता एवं चरित्रहीनता के कार्य स्वार्थी राजनीतिज्ञों एवं प्रशासकों ने ही किये हैं ? क्या हमारी अनुशासनहीनता के अत्यन्त दुखद एवं लज्जाजनक दृश्य हमें अपनी भारतीय-संसद एवं राज्य विधान-सभाओं में भी देखने को नहीं मिलते ? क्या भारत की पाठशालाओं से भारती को निष्कासित करके उन्हें "राजनीति के रङ्गमञ्च"

बनाने का उत्तरदायित्व स्वार्थी राजनीतिज्ञों पर नहीं है ? हमें विश्वास है कि भारत के पुनर्निर्माण के लिये शिक्षा को आत्म-निर्भर बनाने के लिये भारत का अध्यापक आज भी बड़े से बड़ा त्याग करने को तैयार है। आज भी भारत का अध्यापक देश-सेवा के लिये जीवित रहने भर के लिये बस "रोटियाँ" चाहता है, स्वार्थी एवं पथ-भ्रष्ट राजनीतिज्ञों की भाँति ऐश करने के लिये "कोठियाँ" नहीं !! भारत का अध्यापक अपनी निःस्वार्थ देशभक्ति का प्रमाण देने के लिये अपना सर्वस्व भारत की भेंट कर देगा, परन्तु इस दोषारोपण को सहन न करेगा।

उत्पादिता-सिद्धान्त की भाँति समालोचकों ने डॉ० ज़ाकिर हुसैन-समिति के शिल्प-कार्य-सम्बन्धी अभिस्तावों की भी बड़ी आलोचना की है। तत्सम्बन्धी आलोचना के मुख्य आधारों का उल्लेख पृष्ठ ३६ पर "आधारभूत-शिल्प के सम्बन्ध में" शीर्ष के नीचे पहले ही किया जा चुका है। संक्षेप में, अनेक समालोचकों को शिल्प-कार्य की उपयोगिता पर बड़ा सन्देह है, परन्तु डॉ० ज़ाकिर हुसैन-समिति के प्रतिवेदन में ही मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से शिल्प-कार्य की उपयोगिता पर विचार किया गया है जिससे हम पूर्णतः सहमत हैं। समिति के ही शब्दों में शिल्प-कार्य की उपयोगिता के विभिन्न आधार निम्नलिखित हैं :—

"आधुनिक शैक्षणिक-विचार बच्चों को किसी उपयुक्त रूप के उत्पादक-कार्य द्वारा शिक्षा देने की कल्पना का संस्तवन[1] करने में व्यवहारतः एकमत है। इस रीति को एक पूर्ण सर्व-पार्श्व-शिक्षण[2] प्रदान करने की समस्या के लिये अत्यन्त प्रभावशाली प्रवेश-मार्ग समझा जाता है।

1 To Commend. 2 Integral All-Sided Education.

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से, यह वाञ्छनीय है, क्योंकि यह बच्चे की एक सर्वथा साहित्यिक एवं सैद्धान्तिक-शिक्षण, जिसके विरुद्ध इसका सक्रिय स्वभाव सदैव एक प्रशस्त-प्रतिवाद[1] कर रहा है, की निष्ठुरता से मुक्त करती है। यह अनुभव के बौद्धिक एवं व्यावहारिक तत्वों को सन्तुलित करती है, और शरीर एवं मन को समन्वयपूर्वक शिक्षा देने का एक साधन बनाई जा सकती है। बच्चा ऊपरी साक्षरता जिससे प्रायः संमोदन[2] के बिना मुद्रित पृष्ठ को पढ़ने की क्षमता ध्वनित होती है, प्राप्त नहीं करता, परन्तु किसी रचनात्मक प्रयोजन के लिये हस्त एवं बुद्धि का प्रयोग करने की कहीं अधिक महत्वपूर्ण क्षमता (प्राप्त करता है)। यदि हम इस अभिव्यक्ति का प्रयोग करने के लिये अनुज्ञात[3] हो सकते हैं तो यह सम्पूर्ण व्यक्तित्व की साक्षरता है।

सामाजिक दृष्टि से विचार करने पर, शिक्षा में, राष्ट्र के समस्त बच्चों द्वारा भाग लिये जाने वाले, ऐसे व्यावहारिक उत्पादक-कार्य का प्रवेश हस्त एवं बौद्धिक कार्यकर्ताओं के मध्य दोनों के लिये समान रूप से हानिकर विद्यमान पूर्वग्रह[4] के अवरोधकों[5] का विभञ्जन करने को उन्मुख होगा। यह केवल मात्र सम्भव उपाय के रूप में श्रम की गरिमा एवं मानव-एकता की एक सच्ची भावना—अगणित महत्व का एक नैतिक एवं आचारिक लाभ—अन्तर्निविष्ट[6] करेगा।

आर्थिक दृष्टि से विचार करने पर, बुद्धिपूर्वक एवं दक्षतापूर्वक पालन करने पर यह योजना हमारे कर्मकारियों की

---

1 Healthy Protest, 2 Warrant. 3 Permitted.
4. Prejudice. 5 Barriers. 6 To inculcate.

उत्पादक-क्षमता में वृद्धि करेगी, और उन्हें अपने अवकाश का लाभपूर्वक उपयोग करने के लिये समर्थ भी बनायेगी।

सर्वथा शैक्षणिक-दृष्टिकोण से, किसी महत्वपूर्ण शिल्प को शिक्षण का आधार बना कर बच्चों द्वारा प्राप्त ज्ञान को बड़ी मूर्तता एवं वास्तवता दी जा सकती है। इस प्रकार ज्ञान जीवन से सम्बन्धित हो जायगा और इसके विभिन्न पक्ष एक-दूसरे के साथ सहसंबद्ध[1] होंगे।"*

ग—उपसंहार卐

पूर्वगत पंक्तियों में डॉ० ज़ाकिर हुसैन-समिति के अभिस्तावों और उनके आधार पर उद्भूत आधारभूत-शिक्षण की प्रगति एवं उसके गुण-दोषों का विवेचन किया गया है। भारत जैसे निर्धन एवं असङ्गठित देश के हित की दृष्टि से वार्धा-शिक्षा-योजना से ऊँची शैक्षणिक-कल्पना हो नहीं सकती। यदि "सर्जनात्मक-क्रिया का सिद्धान्त" शिक्षा को पश्चिम की एक महान देन है तो 'उत्पादक-क्रिया का सिद्धान्त" उसे भारत की एक महानतम देन है। वार्धा-शिक्षा-योजना गान्धी जी की शैक्षणिक-अन्तर्दृष्टि की प्रतीक एवं उनकी तपस्या का अनुपम

---

1 Cerrelated.

* Quoted from Educational Reconstruction, H. T. S., 1950, P. P. 92-93.

卐 टिप्पणी – उपसंहार से पूर्व वार्धा-शिक्षा-योजना के दो पक्षों—उसका विद्यमान रूप तथा उसे व्यावहारिक रूप प्रदान करने में कठिनाइयाँ—को जानबूझ कर प्रस्तुत नहीं किया गया है। उनका विवरण "आधार-भूत-शिक्षण-निर्धारण-समिति-प्रतिवेदन, १९५६" के अभिस्तावों की समीक्षा के साथ अध्याय षष्ठ में प्रस्तुत किया गया है।

फल है।* हमारा अटल विश्वास है कि जिस प्रकार गान्धी जी की राजनैतिक-योजनाओं—स्वदेशी आन्दोलन, असहयोग आन्दोलन, आदि—में भारत की राजनैतिक समस्याओं का समाधान करने के लिये अतुल शक्ति विद्यमान रहती थी, उसी प्रकार उनकी शैक्षणिक-योजनायें भारत के समस्त शैक्षणिक प्रश्नों के सर्वथा शुद्ध उत्तर देने के लिये पूर्णतः सक्षम हैं। भारत में ऐसे व्यक्तियों की संख्या कभी कम न थी जिन्हें गान्धी जी की राजनैतिक-योजनाओं की सफलता में भारी सन्देह था, परन्तु प्रयोग में लाने के पश्चात् हमने देखा कि उनमें तो इतनी शक्ति थी कि तत्कालीन संसार के सर्वाधिक शक्ति-सम्पन्न अंग्रेज भी, जिनके साम्राज्य में कभी सूर्यास्त ही नहीं होता था, उसके सामने टिकने में अपने को असमर्थ पाकर भारत छोड़ कर चल दिये। इसी प्रकार भारत में गान्धी जी की शैक्षणिक-योजनाओं की सफलता में सन्देह करने वाले व्यक्तियों की संख्या भी कम नहीं है, परन्तु धैर्य-पूर्वक कुछ समय तक प्रयोग करने के पश्चात् ही हमें उनकी वास्तविक शक्ति का अनुमान हो सकेगा। गान्धीजी की योजनाओं

---

* *"Basic education is the last and perhaps the greatest gift of the Father of our Nation. It is the final result of his devoted service to the country extending over half a century. It is also the expression of his deep and innate love for child, so that it may be allowed freedom and opportunity to grow in fulfilment of its own genius. The future of our country depends upon our providing these facilities for our children."*

—Avinashilingam, T. S., Understanding Basic Education, Ministry of Education & Scientific Research, 1957, P. 61.

की एक विशेषता यह भी है कि उनके रूप में आपरिवर्तन करने के लिये सामान्य व्यक्तियों के समक्ष अधिक स्थान नहीं होता। यही कारण है कि गान्धी जी अपने राजनैतिक आन्दोलनों को, जो सारतः अहिंसात्मक होते थे, भूल से भी हिंसात्मक रूप ग्रहण करते देख स्थगित कर देते थे। यह सिद्धान्त उनकी शैक्षणिक-योजनाओं पर भी लागू होता है। आजकल प्रायः यह कहा जाता है कि वार्धा-योजना असफल रही है। हमारा भी यही विचार है, परन्तु हमारी दृष्टि में उसके असफल होने का कारण उसका अपना कोई दोष नहीं है, वरन् उसकी असफलता का कारण यह है कि उसके रूप में कुछ ऐसे आपरिवर्तन कर दिये गये हैं कि उनके कारण उसकी मौलिकता समाप्त हो गई है, उसका सार निकल गया है, उसकी आत्मा कुचल गई है। स्पष्ट है कि मुख्यतः हमारा सङ्केत वार्धा-योजना के उत्पादिता-सिद्धान्त की ओर है। हमें वार्धा-योजना के सुमधुर फल प्राप्त करने के लिये उसे प्रयोग में लाते समय उसकी सफलता के लिये उतनी ही तपस्या करनी पड़ेगी जितनी तपस्या गान्धी जी ने उसकी कल्पना-प्राप्ति के लिये की थी। तपस्या द्वारा प्राप्त होने वाले फलों को भोग द्वारा प्राप्त करना केवल कठिन ही नहीं, असम्भव भी है।

द्वितीय अध्याय

भारत में युद्धोत्तर-शैक्षणिक-विकास[1] : सार्जेण्ट-योजना[2], १९४४

क—प्रस्तावना

१—उत्पत्ति

यद्यपि ईस्ट इण्डिया कम्पनी १७६५ में भारत में एक राजनैतिक शक्ति का रूप ग्रहण कर चुकी थी, परन्तु उसने १७६५ से १८१३ तक भारतवासियों की शिक्षा की ओर कोई ध्यान नहीं दिया और वह यूरोपिअन एवं ऐंग्लो-इण्डियन बच्चों को शिक्षा प्रदान करने तक सीमित बनी रही। राजलेख अधिनियम[3], १८१३ द्वारा भारतवासियों की शिक्षा भी कम्पनी का एक कर्तव्य बना दी गई। इस प्रकार विदेशीय शासन ने १८१३ में सर्वप्रथम भारतीय-शिक्षा के क्षेत्र में पदार्पण किया। १८१३ से १९४४ तक विदेशीय शासन ने भारतीय-शिक्षा के विभिन्न पक्षों का विकास करने के लिये अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये, परन्तु वह समस्त भारत के लिये एक राष्ट्रिय-शिक्षा-प्रणाली का निर्माण न कर सका। भारत छोड़ने से तीन वर्ष पूर्व, १९४४ में विदेशीय शासन ने समस्त भारत के लिये एक

1 Post-War Educational Development in India.

2 Sargent Scheme, 1944. 3 The Charter Act, 1813.

राष्ट्रिय-शिक्षा-प्रणाली का निर्माण करने के लिये सर्वप्रथम प्रयत्न किया। इस प्रयत्न को "भारत में युद्धोत्तर-शैक्षणिक-विकास-योजना" अथवा "शिक्षा का केन्द्रीय-मन्त्रणा-मण्डल-प्रतिवेदन[1], १९४४" अथवा "सार्जेण्ट-योजना, १९४४" के नाम से पुकारा जाता है। ब्रिटिशकालीन भारतीय-शिक्षा-विकास की एक विशेषता यह भी है कि उस समय भारतीय-शिक्षा के विकास पर आङ्गल-शिक्षा-विकास का बड़ा प्रभाव पड़ा। तुलनात्मक-शिक्षा के विद्यार्थियों को ज्ञात होगा कि इङ्गलैण्ड में युद्धोत्तर-पुनर्निर्माण-योजनाओं के अन्तर्गत १९४४ के शिक्षा-अधिनियम द्वारा आङ्गल-शिक्षा-प्रणाली का भी पुनर्निर्माण किया गया था। १९४४ से पूर्व भारतीय-शिक्षा-प्रणाली की भाँति आङ्गल शिक्षा-प्रणाली भी अत्यन्त असन्धियोजित[2] एवं असमन्वित[3] थी और विभिन्न शिक्षा-श्रेणियों में समुचित सम्बन्ध का अभाव था। इङ्गलैण्ड और भारत में क्रमशः बटलर शिक्षा-अधिनियम, १९४४ एवं सार्जेण्ट-योजना, १९४४ के द्वारा एक पूर्णतः सन्धियोजित एवं समन्वित राष्ट्रिय-शिक्षा-प्रणाली के निर्माण के लिये महानतम प्रयत्न किये गये। एक राष्ट्रिय-शिक्षा-प्रणाली के पुनर्निर्माण (क्योंकि उसका निर्माण १९४४ से पूर्व हो चुका था) की दृष्टि से आङ्गल-शिक्षा के इतिहास में जिस प्रकार १९४४ का शिक्षा-अधिनियम एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सीमाचिन्ह माना जाता है उसी प्रकार भारतीय-शिक्षा के इतिहास में भारत में एक राष्ट्रिय-शिक्षा-प्रणाली के निर्माण के दृष्टिकोण से सार्जेण्ट योजना, १९४४ को

---

4 Report By The Central Advisory Board Of Education, 1944.
2 Unarticulated. 3 Uncoordinated.

अत्यधिक महत्व प्रदान किया जाता है।❀ केन्द्रीय-मन्त्रणा-मण्डल ने १९३५ में अपने पुनर्गठन के पश्चात् से भारत में एक राष्ट्रिय-शिक्षा-प्रणाली के निर्माण के लिये भारतीय-शिक्षा के विभिन्न पक्षों का परीक्षण करना प्रारम्भ कर दिया था। यही नहीं, केन्द्रीय-मन्त्रणा-मण्डल ने विभिन्न शैक्षणिक-विषयों का अध्ययन करके प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिये अनेक समितियाँ भी नियुक्त करदी थीं। विभिन्न समितियों द्वारा अध्ययन किये गये मुख्य विषयों के नाम इस प्रकार हैं: (१) आधारभूत-शिक्षण, (२) प्रौढ़-शिक्षा, (३) पाठशालाओं के बच्चों का शारीरिक-कल्याण, (४) पाठशाला-भवन, (५) सामाजिक-सेवायें, (६) प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च पाठशालाओं के अध्यापकों की भर्ती, प्रशिक्षण, तथा सेवा की दशायें, (७) शिक्षाधिकारियों की भर्ती, और (८) औद्योगिक (वाणिज्यिक एवं कला समेत) शिक्षा। केन्द्रीय-मन्त्रणा-मण्डल ने अपनी बैठकों में उपरि-लिखित समितियों के अभिस्तावों का युद्धोत्तर-आवश्यकताओं एवं युद्धोत्तर-विकासों की दृष्टि से सिंहावलोकन किया और सार्जेण्ट-प्रतिवेदन में निर्दिष्ट आपरिवर्तनों[1] के

1 Modifications.

❀ *"In no other period in the history of Indian education was so much time and attention given to the preparation of plans for the comprehensive reconstruction of education in general and for the development of a national system of education in particular. The plans were prepared in both the circles--official and non-official--and at both the levels--Central and Provincial."*

—Nurullah & Naik, A Student's History Of Education In Inda, Macmillan, Calcutta, 1956, P. 343.

अधीन रहते हुये उन्हें सामान्यतः स्वीकार कर लिया। भविष्य में यही लब्धियाँ[1] समेकन[2] के पश्चात् सार्जेण्ट-योजना का आधार बनीं। इसी समय भारत-शासन ने भारत के समस्त प्रान्तीय शासनों को युद्धोत्तर-विकास-योजनायें तैयार करने का आदेश दिया। भारत शासन ने केन्द्रीय-मन्त्रणा–मण्डल को सामान्य-योजना के एक भाग के रूप में एक युद्धोत्तर-शैक्षणिक-विकास-योजना तैयार करके उसे विचार करने के लिये गवर्नर जनरल की निष्पादन परिषद्[3] के समक्ष रखने का भी आदेश दिया। केन्द्रीय-मन्त्रणा-मण्डल ने अपनी पूर्व लब्धियों के आधार पर एक विस्तृत प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, जिसे सार्जेण्ट–प्रतिवेदन के नाम से पुकारा जाता है।

२—सार्जेण्ट-प्रतिवेदन के उद्देश्य

भारत में युद्धोत्तर-शैक्षणिक–विकास के उद्देश्यों का उल्लेख सार्जेण्ट–प्रतिवेदन में विभिन्न प्रसङ्गों के सम्बन्ध में अनेक स्थानों पर किया गया है। उसके विभिन्न उद्देश्यों का सारांश निम्नलिखित है :—

(१) वायसराय की निष्पादन-परिषद् की पुनर्निर्माण–समिति के समक्ष युद्धोत्तर–विकास की एक व्यावहारिक योजना प्रस्तुत करना।卐

1 Findings.　　2 Consolidation.　　3 Executive Council.

卐 *"......the primary object of this report is to place a practicable plan of post-war development before the Reconstruction Committee of the Viceroy's Executive Council,......",*

—Post-War Educational Development in India, Pamphlet No. 37, 1947, P. 1.

(२) इङ्गलैण्ड में पहले से ही तथा अन्य पश्चिम देशों में युद्ध से पूर्व प्राप्त स्तरों से तुलनीय एक स्तर प्राप्त करना।❀

(३) एक ऐसी प्रणाली बनाना जो सारतः भारतीय हो।†

(४) अर्थव्यय की उस गणना-रेखा को नियत करना जिसके नीचे एक राष्ट्रिय-शिक्षा-प्रणाली की आवश्यकताओं की पूर्ति सम्भव न होगी।‡

(५) इस देश की न्यूनतम शैक्षणिक आवश्यकताओं को स्थूल रूपरेखा में निर्दिष्ट करना और यह दिखाना कि उन्हें सन्तुष्ट करने में कितना समय लगेगा तथा अनुमानतः उन पर कितना अर्थव्यय होगा।

❀ *"......the Board have aimed at a standard comparable with those already attained in Great Britain and other Western countries before the War,"......*

—Post-War Educational Development in India, Pomphlet No. 27. P. 1.

† *"......The aim throughout has been to devise a system which is essentially Indian,"......*

—Ibid, P. 2.

‡ *"......it is not difficult to fix a datum line of expenditure below which it can be shown that the requirements of a national system will never be satisfied. The object of report is to fix that datum line, subject of course to the proviso that it will require modification in the light of the conditions obtaining in India in the years to come."*

—Ibid, P. 3.

卐 *(a) Board wish again to make it clear that their object in this report is to indicate in broad outline the minimum educational requirements of this country and to show how long it would take to satisfy them and roughly what it would cost."*

—Ibid, P. 4,

(६) पुरुषों एवं स्त्रियों का रोपण करने के लिये एक योजना प्रदान करना।❀

सार्जेण्ट-प्रतिवेदन के उपर्युक्त उद्देश्यों से स्पष्ट है कि उसका मुख्य उद्देश्य भारत में एक राष्ट्रिय-शिक्षा-प्रणाली का निर्माण करना था। इनसे उस प्रणाली की दो विशेषताओं पर भी प्रकाश पड़ता है: (१) वह मूलतः भारतीय होगी, और (२) वह नवीनताओं को आत्मसात् करने के लिये पर्याप्त लचीली होगी। केन्द्रीय-मन्त्रणा-मण्डल का विचार था कि सार्जेण्ट-प्रतिवेदन के समस्त अभिस्तावों को पूर्णतः कार्यान्वित करने में ४० वर्ष का समय लगेगा† और युद्ध से पूर्व के प्रमापों के

(b) "The Board's object throughout has not been to plan an ideal system of public instruction but rather to lay down the very minimum necessary to place India on an approximate level with other civilised communities "

—Post-War Educacional Development in India, Pamphlet No. 27, 1947, P. 5..

❀ *"The aim of this report, whatever its imperfection, is to provide a plan for planting the men and women, without whom India cannot possibly fulfil the high destiny which the Board believe to be hers."*

—Post-War Educational Development in India, Pamphlet No. 27, 1947, P. 95.

† *"For explicit reasons in the report it would be impossible, even if all the funds required were available, to give complete effect to the proposals which it contains in a period of less than 40 years."*

—Post-War Educational Development in India, Pamphlet No. 27, 1947, P. 93.

आधार पर इन पर ३१,२६० लाख रुपये व्यय होंगे, जिनका विस्तृत विवरण निम्नलिखित है :

	प्राक्कलित सकल वार्षिक व्यय	लोक-निधि से अन्य प्रकार के स्रोतों से प्राक्कलित आय	लोक-निधि से पूर्ण किया जाने वाला प्राक्कलित शुद्ध व्यय
	रुपये लाखों में	रुपये लाखों में	रुपये लाखों में
१. आधारभूत (प्राथमिक तथा माध्यमिक) शिक्षा	२०,०००	—	२०,०००
२. पूर्व-प्राथमिक शिक्षा	३,२०	—	३,२०
३. उच्च-पाठशाला-शिक्षा	७९,००	२९,००	५०,००
४. विश्वविद्यालय-शिक्षा	९,००	२,९०	६,७०
५. औद्योगिक, वाणिज्यिक, तथा कला-शिक्षा	१०,००	२,००	८,००
६. प्रौढ़-शिक्षा	३,००	...	३,००
७. अध्यापक-प्रशिक्षण	६,२०	१,७०	४,५०
८. पाठशाला-स्वास्थ्य-सेवा	....	...	....
९. बाधितों की शिक्षा	....	...	...
१०. विनोदात्मक तथा सामाजिक-क्रियायें	१,००	...	१,००
११. सेवायोजन-विभाग	६०	....	६०
१२. प्रशासन	....	....	...
योग	३१,२६०	३५,६०	२७,७००

इन संख्याओं से सार्जेण्ट-प्रतिवेदन के अभिस्तावों के महत्व का अनुमान करना कठिन नहीं है। आगामी पंक्तियों में सार्जेण्ट-प्रतिवेदन के इन्हीं महत्वपूर्ण अभिस्तावों अथवा प्रस्तावों का उल्लेख किया जायगा। इन अभिस्तावों की एक विशेषता यह है कि इनके अन्तर्गत भारतीय-शिक्षा-प्रणाली के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किये गये हैं वे आज भी पूर्ववत् महत्व रखते हैं।

ख—सार्जेण्ट-प्रतिवेदन के अभिस्ताव

१—आधारभूत (प्राथमिक तथा माध्यमिक) शिक्षा

(क) *अनिवार्यता*

जबकि आगामी अध्याय में दिये हुये कारणों से पाठशाला-प्रस्थान के लिये छः की अपेक्षा एक निम्न आयु शैक्षणिक दृष्टि से अभीष्ट हो सकती है, एक आठ वर्ष का अनिवार्य-पाठशाला-जीवन, जिस पर तात्कालिक युद्धोत्तर-विकास के लिये योजनायें बनाई जानी चाहियें, आधार के रूप में लिया जा सकता है। सार्वत्रिक अनिवार्य शिक्षण की किसी भी प्रणाली को निःशुल्क होना चाहिये।

(ख) *शैक्षणिक क्षय*[1]

इस क्षय को रोकने के लिये केवल एक उपाय है और वह शिक्षा को अनिवार्य बनाना है। शिक्षा-अधिकारियों, जो अपने कर्तव्य को जानते हैं, और न्यायालयों, जो अपने (कर्तव्य का पालन) करने को उद्यत हैं, के अतिरिक्त यदि माता-पिता को यह अनुभव कराना है कि शैशव से प्रौढ़ावस्था के पूर्व वर्षों तक विस्तृत शिक्षा उनके बच्चों के हित में एक परम आव-

1 Wastage.

श्यकता है तो एक प्रगाढ़ श्रेणी[1] पर शैक्षणिक-प्रचार का पालन करना होगा।

(ग) वस्तु-विक्रय द्वारा शोधन[2] का सिद्धान्त

तथापि, मण्डल इस विचार को पृष्ठाङ्कित[3] करने में असमर्थ है कि शिक्षा से किसी अवस्था पर और विशेषतः निम्नतम अवस्थाओं पर छात्रों द्वारा उत्पादित वस्तुओं के विक्रय द्वारा अपने लिये शोधन करने की अपेक्षा की जा सकती है अथवा की जानी चाहिये। वह अधिकतम, जिसकी इस सम्बन्ध में अपेक्षा की जा सकती है, यह है कि विक्रय को व्यावहारिक कार्य के लिये अपेक्षित अतिरिक्त सामग्रियों तथा उपकरणों के परिव्यय (लागत) को अन्तर्गत करना चाहिये।

(घ) दो प्रक्रम[4]

आधारभूत-शिक्षण, जबकि वह अपनी आवश्यक एकता को रखे रहेगा, दो प्रक्रमों, पाँच वर्ष की अवधि के लिये कनिष्ठ[5] (अथवा प्राथमिक) प्रक्रम और तीन वर्ष के लिये ज्येष्ठ[6] (अथवा माध्यमिक) प्रक्रम, द्वारा निर्मित होगा। वे, जिन्हें "आधारभूत" शब्द अनाकर्षक लगता है और इन दो प्रक्रमों के लिये "प्राथमिक" तथा "माध्यमिक" की प्रवर्तमान नामपद्धति को अधिमान[7] देते हैं, यदि वे दोनों प्रक्रमों की आवश्यक एकता को और प्राथमिक-पाठचर्या को इस प्रकार अधियोजित करने की आवश्यकता को कि यह स्वाभाविक रूप से माध्यमिक के लिये मार्ग-प्रदर्शन करती हो, स्वीकार करते हैं तो वास्तव में इन्हें रखने के लिये स्वतन्त्र हैं।

---

1 Intensive Scale. 2 To pay. 3 To Endorse. 4 Stages
5 Junior. 6 Senior. 7 Preference.

(ङ) बच्चों का स्थानान्तरण[1]

(खेर-प्रतिवेदनों में) यह अभिस्तावित किया गया है कि "आधारभूत" पाठशाला से अन्य रूपों की उत्तर-माध्यमिक शिक्षा के लिये बच्चों के स्थानान्तरण की व्यवस्था पञ्चम वर्ग के पश्चात्, अर्थात्, कनिष्ठ आधारभूत (प्राथमिक) प्रक्रम की समाप्ति पर अथवा ११+की आयु के लगभग होनी चाहिये जिससे कि विशेष योग्यताओं[2] एवं अभियोग्यताओं[3] वाले बच्चे, ज्येष्ठ आधारभूत (माध्यमिक) पाठशालाओं में, जहाँ बड़ी बहुसंख्या अपना पूर्ण-कालिक शिक्षण समाप्त करेगी, प्रदत्त (पाठचर्या) की अपेक्षा, अग्रिम शिक्षा की एक अधिक दीर्घ-कालीन पाठचर्या पर आरोहण[4] कर सकें।

(च) ज्येष्ठ आधारभूत (माध्यमिक) पाठशाला[5]

ज्येष्ठ आधारभूत (माध्यमिक) पाठशाला के बारे में (हमें यही कहना है कि) इसका मुख्य उद्देश्य पहले ही परिभाषित कर दिया गया है। इसे छोड़ने पर छात्र को एक कार्यकर्ता एवं एक भावी नागरिक के रूप में समाज में अपना स्थान लेने के लिये तैयार होना चाहिये। उसे ऐसे साधनों द्वारा जैसे कि एक राष्ट्रिय-शिक्षा-प्रणाली उसके अधीन रख सके, अपनी शिक्षा को चालू रखने की इच्छा से प्रोत्साहित होना चाहिये। इस उद्देश्य को दृष्टि में रख कर ज्येष्ठ आधारभूत पाठशाला को व्यायाम[6] एवं सङ्गठित क्रीड़ाओं समेत उन सामूहिक क्रियाओं के लिये जो वर्ग-कोष्ठ में दिये गये शिक्षण की अनुपूर्ति करने के लिये आवश्यक हैं, विस्तृततम संभव अवसर देने चाहियें।

---

1 Transfer. 2 Abilities. 3 Aptitudes. 4 To embark, 5 Senior Basic (Middle) School. 6 Physical Training.

(छ) अंग्रेजी

इस प्रश्न पर कि आधारभूत पाठशालाओं में अंग्रेजी को एक विषय के रूप में प्रविष्ट किया जाना चाहिये ध्यानपूर्वक विचार किया गया है। मण्डल का मत है कि इसे (अंग्रेजी) किन्हीं भी परिस्थितियों कनिष्ठ आधारभूत (प्राथमिक) पाठशाला के पाठ्यक्रम में स्थान नहीं मिलना चाहिये। न वह (मण्डल) इसे ज्येष्ठ आधारभूत (माध्यमिक) स्तर पर प्रविष्ट करने की वाञ्छनीयता से सन्तुष्ट है, परन्तु वह प्रस्वीकार[1] करता है कि कुछ क्षेत्रों में इसके लिये एक तीव्र सार्वजनिक अभियाचन[2] हो सकता है और वह अनुभव करता है कि इस स्थिति में अन्तिम निर्णय प्रान्तीय शिक्षा-विभागों के हाथों में छोड़ दिया जाना चाहिये।

(ज) अध्यापक

एक विशेष रूप से अविलम्बनीय आवश्यकता प्रशिक्षित महिला-अध्यापकों की संख्या में वृद्धि करने के लिये है। पूर्व-प्राथमिक पाठशालाओं से अलग, जहाँ समस्त अध्यापक महिलायें होनी चाहियें, कनिष्ठ आधारभूत पाठशालाओं में अध्यापकों का न्यूनातिनून $\frac{3}{5}$ और ज्येष्ठ आधारभूत पाठशालाओं में $\frac{1}{2}$ महिलायें होनी चाहियें। यह कल्पित कर लिया गया है कि पूर्वोक्त (कनिष्ठ आधारभूत) सामान्यतः मिश्रित होंगी, परन्तु उत्तरोक्त (ज्येष्ठ आधारभूत) में लड़कों और लड़कियों के लिये पृथक् पाठशालाओं का नियम होगा।

(झ) मुख्याध्यापक एवं मुख्याध्यापिकायें

तथापि, जिसे इस विषय में प्रचार-पक्ष के रूप में वर्णित किया जा सकता है उससे अलग समिति का विश्वास है कि

1 To recognise. 2 Public Demand.

लघुतम पाठशालाओं के अतिरिक्त समस्त पाठशालाओं में मुख्याध्यापकों के प्रशासनात्मक उत्तरदायित्व को ही नहीं, परन्तु अत्यधिक महत्वपूर्ण तो यह है कि उस प्रभाव को भी, जिसे उन्हें विशेष रूप से ग्रामीय-क्षेत्रों में छात्रों, माता-पिताओं एवं समाज पर प्रयोग में लाना चाहिये, अब तक प्राप्त प्रस्वीकृति से अधिक (प्रस्वीकृति) मिलनी चाहिये। लघुतम पाठशाला के मुख्याध्यापक को भी मण्डल में एक महत्व का व्यक्ति होना चाहिये और इसे उसके वेतन में प्रतिबिम्बित होना चाहिये।

(ज) छात्र एवं अध्यापक-अनुपात

यह भी स्मरण रखा जायेगा कि ज्येष्ठ आधारभूत (माध्यमिक) प्रक्रम पर वर्ग लघुतर होने को प्रवृत्त होंगे और अधिक अन्तर्विभाग[1] आवश्यक होंगे। विशेषज्ञ अध्यापकों की एक अधिक बड़ी संख्या की भी आवश्यकता होगी। इस प्रकार यह देखा जायगा कि कनिष्ठ आधारभूत (प्राथमिक) में ३० छात्रों के लिये एक अध्यापक और ज्येष्ठ आधारभूत (माध्यमिक) पाठशालाओं में २५ छात्रों के लिये एक अध्यापक अध्यापक-वर्ग के बारे में एक अति-उदार प्रमाप[2] नहीं है।

२—पूर्व-प्राथमिक शिक्षा

(क) परिभाषा

भारतीय-प्रणाली में, जब तक अनिवार्यता के लिये आयु छः पर नियत की जाती है, शिशु-पाठशालाओं[3] के लिये जैसा कि वे पश्चिम में समझी जाती हैं, संभव ही स्थान होगा। अतः, समस्त पूर्व-प्राथमिक शिक्षण, चाहे वह पृथक् पाठ-

---

1 Sud-divisions 2 Over generous standard. 3 Infants Schools.

शालाओं में दिया जाय अथवा कनिष्ठ आधारभूत (प्राथमिक) पाठशालाओं से संबद्ध वर्गों में, सुविधापूर्वक "शिशु"—(शिक्षण) पुकारा जा सकता है क्योंकि यह शब्द स्पष्ट रूप से उस वातावरण एवं अध्यापन की विशेषता को व्यक्त करता है जिसकी अपेक्षा होगी।

(ख) उद्देश्य

शैक्षणिक दृष्टि से शिशु-शाला का उद्देश्य एक सावधानी से नियन्त्रित वातावरण, जो यथा-शक्य स्वस्थतम एवं बुद्धिमता-पूर्ण रीति से वर्धमान बच्चे की मानसिक, शारीरिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं की पर्ति करेगा, की व्यवस्था करना है।

(ग) नगरीय-शिशु-शालायें[1]

यह पहले ही निर्दिष्ट किया जा चुका है कि भीड़[2], निकृष्ट भवन[3] और अधिक रोग-आक्राम्यता[4] के कारण नगरीय क्षेत्रों के बच्चों को उन सुविधाओं की अत्यन्त आवश्यकता है जो एक शिशु-शाला दे सकती है।

(घ) ग्रामीय-शिशु-वर्ग[5]

उन ग्रामीय बच्चों को भी, जिनकी माताओं को अनेक स्थितियों में खेतों में कार्य करना होता है और जिनके गृह प्रायः संभव ही इस नाम के उपयुक्त होते हैं, तत्सम सुखसुविधाओं के लिये एक सबल अधिकार है। परन्तु यह संदिग्ध है कि एक डेढ़ मील के अधिकतम घेरे में जिसकी यात्रा करने के लिये छोटे बच्चों से प्रत्याशा की जा सकती है, और विशेष रूप से

---

1 Nursery Schools. 2 Congestion. 3 Bad housing.
4 Vulnerability to disease. 5 Nursery Class.

उन ग्रामीय-मण्डलों में जहाँ संभव ही वहन[1] के कोई साधन होते हैं, पर्याप्त बच्चे एक युक्तियुक्त रूप से मितव्ययी पाठशाला का निर्माण करने के लिये एकत्र किये जा सकते हैं। अतः इस कारण से, यह सुझाव दिया जाता है कि ग्रामीय-क्षेत्रों में सर्वाङ्गपूर्ण शिशु-शालायें स्थापित करने का प्रयत्न करने के स्थान पर, एक साधारण कनिष्ठ आधारभूत (प्राथमिक) पाठशाला में एक शिशु-वर्ग जोड़ देना चाहिये। वस्तुतः यह वाञ्छनीय है कि समस्त ग्रामीय कनिष्ठ आधारभूत (प्राथमिक) पाठशालाओं में निम्नतम वर्ग शिशु अथवा इन्फैण्ट-वर्ग के नाम से जाना जाय और (उन्हें) उस उद्देश्य के लिये विशेष रूप से अध्यापक-युक्त एवं सज्जित होना चाहिये। यह कहना संभव ही आवश्यक है कि इसे एक महिला अध्यापक (अथवा अध्यापिकाओं), जिन्होंने समुचित प्रशिक्षण प्राप्त कर लिया है, का कर्तव्य होना चाहिये। तब नियमित शिशु-शालायें, वर्तमानकाल के लिये, नगरों तक सीमित की जा सकती हैं।

(ङ) कर्मचारि-वर्ग[2]

शिशु-शालाओं एवं वर्गों के लिये कर्मचारि-वर्ग का प्रश्न एक समस्त महत्व का प्रश्न है। बहुत छोटे बच्चों के साथ बुद्धिपूर्वक संव्यवहार करने के लिये एक अत्यन्त विशेषित प्रकार का प्रशिक्षण अपेक्षित है। कहने की आवश्यकता नहीं कि शिशुओं के लिये अध्यापक महिलायें होनी चाहियें : केवल उन्हीं में आवश्यक सहानुभूति एवं बच्चे के स्वभाव का ज्ञान होता है। अथापि, शिशु-शालाओं को अधिक स्थान एवं अधिक सज्जा की अपेक्षा होती है। दूसरी ओर जहाँ तक कर्मचारि

---

1 Conveyance.　　2 Staff.

वर्ग का सम्बन्ध है यदि उच्च पाठशालाओं तथा ज्येष्ठ आधारभूत पाठशालाओं से आयु में बड़ी लड़कियों को निश्चित अवधियों के लिये शिशु-कल्याण[1] में प्रशिक्षण के लिये संबद्ध कर दिया जाय तो (उसे) सहायता दी जा सकती है।

(च) शिशु-शालाओं की व्यवस्था

शिशु-शालाओं एवं वर्गों की एक पर्याप्त संख्या की व्यवस्था आवश्यक है और यद्यपि, प्रारम्भ में किसी भाव पर भी उपस्थिति अनिवार्य करना संभव ही व्यवहार्य हो सकता है, पाठशालाओं को निःशुल्क होना चाहिये और उन्हें माता-पिताओं को अपने बच्चों को स्वेच्छापूर्वक भेजने के लिये मनाने के उद्देश्य से यथा-शक्य आकर्षक बनाने के लिये कमी न छोड़नी चाहिये।

(छ) शिक्षण की रीति

शिशु-शाला में शिक्षण की रीतियों के बारे में भी एक शब्द संभवतः आवश्यक है। जैसाकि एब्बॉट एवं वुड[2] ने अपने प्रतिवेदन में अभिवचन किया है, एक छोटे बच्चे को "शिक्षण की अपेक्षा अनुभव की अधिक आवश्यकता होती है" और सुतथ्यतः इसकी व्यवस्था करना ही शिशु-शाला का उद्देश्य होना चाहिये। वे आगे कहते हैं "कि छोटे बच्चों के शिक्षण को हितकर क्रियाओं द्वारा उनकी शारीरिक अवेक्षा के लिये, उनके व्यसनों[3] के प्रशिक्षण के लिये, और उनके अनुभव को विस्तृत करने के लिये प्रबन्ध करना चाहिये। हम ऐसी क्रियाओं का विचार करते हैं जैसी निम्नलिखित हैं : अभिनयन एवं गायन, शारीरिक व्यायाम, क्रीड़ायें एवं नृत्य, पुष्पों एवं पशुओं की अवेक्षा, उद्रेखण[4] और वस्तु-निर्माण।

---

1 Child welfare 2 Abbott and Wood. 3 Habits. 4 Drawing.

(ज) *पाठ्यक्रम*

एक शिशु-शाला के दैनिक कार्यक्रम में 3 R's (पठन, लेखन, सङ्गणन) में किसी औपचारिक-शिक्षण के लिये संभव ही कोई स्थान होता है। परन्तु संवेदन-प्रशिक्षण द्वारा, आत्माभिव्यक्ति की उन्नति द्वारा, शिक्षा की दृष्टि से एक नियन्त्रित वातावरण में सामुदायिक-जीवन तथा साहचर्य द्वारा, बच्चे के सर्वतोमुख विकास—मानसिक, सामाजिक एवं शारीरिक—को बढ़ाया जाता है।

(झ) *बच्चों की संख्या एवं आयु-सीमा*

इन रेखाओं पर उपबन्धित होने वाले बच्चों की समस्त संख्या की संभव ही ठीक ठीक गिनती की जा सके। यह सर्वथा प्रश्नाधीन क्षेत्रों की प्रकृति एवं "शिशु"-प्रचार की सफलता पर निर्भर करेगा। तब, आयु-सीमा भी परिदृढ़ता से निश्चित नहीं की जा सकती। एक पूर्व-प्राथमिक पाठशाला में दो और तीन वर्ष आयु (के बच्चों) का उतना ही स्वागत होना चाहिये जितना चार और पाँच वर्ष (के बच्चों का)। परन्तु शिशु-शाला के बच्चे के लिये तीन से छः तक की आयु सामान्य सीमा के रूप में ली जा सकती है।

३—उच्च-पाठशाला-शिक्षा

(क) *उच्च-शिक्षा के लिये प्रवरण*[1]

यह ठीक ही कहा गया है कि उच्च-शिक्षा का मुख्य प्रयोज़न, अपने लिये नहीं, परन्तु समाज के लिये, एक प्रवर[2] का निर्माण करना है। चरित्र और बुद्धि, जो किसी प्रवर के

1 Selection. 2 Elite.

आवश्यक गुण होते हैं, समाज में किसी विशेष वर्ग से सीमित नहीं होते हैं; अतः प्रवृत्य-सिद्धान्त[1], जिसके द्वारा कनिष्ठ आधारभूत (प्राथमिक) अवस्था की समाप्ति पर उच्च-शिक्षा के लिये बच्चों को चुना जाना चाहिये, महत्तम महत्व का होता है। अतः उच्च-शिक्षा के लिये छात्रों का प्रवरण महान महत्व धारण कर लेता है और प्रयुक्त होने वाली रीतियों को अत्यन्त गम्भीर विचार मिलना चाहिये। सामान्यतः बोलते हुये उनका उद्देश्य वास्तविक योग्यता-प्राप्ति की अपेक्षा होनहार (बच्चों) का पता लगाना होना चाहिये और (उन्हें) अभ्यर्थी[2] के पूर्व पाठशाला-अभिलेखों[3] की एक सावधानी से की गई परिनिरीक्षा[4] एवं विशेषज्ञों द्वारा निर्मित एवं सञ्चालित एक परीक्षा में उसके पालन[5] पर आधारित होना चाहिये। निम्नलिखित प्रवृत्य-विधा[6], जो अन्यत्र सफल सिद्ध हो चुकी है, इस देश में यत्न करने के उपयुक्त हो सकती है। सर्वप्रथम, कनिष्ठ आधारभूत (प्राथमिक) पाठशालाओं के मुख्याध्यापकों से उपयुक्त आयु-वर्ग में उन छात्रों के, जो, उनके विचार में तथा उनके पाठशाला-अभिलेख के बल पर, एक उच्च-पाठशाला शिक्षा से लाभ उठायेंगे, नाम प्रस्तुत करने के लिये कहा जाना चाहिये। इस प्रकार प्रस्तुत सूचियाँ, यह देखने की दृष्टि से कि प्रत्येक पाठशाला ने अभ्यर्थियों की एक युक्तियुक्त संख्या का अभिस्ताव किया है, संबद्ध क्षेत्र के निरीक्षक अथवा निरीक्षकों द्वारा परिनिरीक्षित[7] होनी चाहियें। जहाँ आवश्यक हो वहाँ सूचियों के पुनरीक्षण के उद्देश्य से निरीक्षकों एवं मुख्याध्यापकों के

---

1 The Selective Principle. 2 Candidate. 3 Records.
4 Scrutiny. 5 Performance. 6 Selective Process.
7 Scrutinised.

बीच परामर्श को स्थान मिलना चाहिये। तब, इस प्रकार पुनरीक्षित सूचियों पर के छात्रों को एक सामान्य परीक्षा के अधीन होना चाहिये जो अत्यधिक श्रमसाध्य न होनी चाहिये और वास्तविक योग्यताप्राप्ति की अपेक्षा, बुद्धि एवं होनहारत्व की जाँच करने के लिये निर्मित होनी चाहिये। इस सामान्य परीक्षा को इस उद्देश्य के लिये विशेष रूप से निर्मित एक परीक्षक-मण्डल[1] द्वारा नियन्त्रित होना चाहिये।

(ख) प्रवरण-सम्बन्धी विशेष सुविधायें

तथापि, मण्डल यह अनुभव करता है कि ऐसे भी माता-पिता होंगे जो अपने बच्चों से एक उच्च-पाठशाला-शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा करेंगे, यद्यपि वे प्रवेश के लिये सामान्यतः अपेक्षित स्तर तक पहुँचने में असफल हो सकते हैं। मण्डल, ऐसे बच्चों के लिये, इस प्रतिबन्ध पर स्थान प्रदान करने पर आपत्ति नहीं करेगा कि ये (स्थान) योग्यता के आधार पर चुने हुये बच्चों के लिये अपेक्षित स्थानों के अतिरिक्त हैं और कि संबद्ध माता-पिताओं के लिये प्रदत्त शिक्षा का पूर्ण परिव्यय[2] देना आवश्यक है। उन बच्चों के लिये, जिन्होंने यह नहीं दिखाया है कि उनके लिये इसका (उच्च-शिक्षा) पूर्ण लाभ उठाना सम्भव है, उच्च शिक्षा प्रदान करने पर लोक-व्यय करना असाम्यपूर्ण[3] प्रतीत होगा।

उन माता-पिताओं को, जिनके बच्चे अभिस्तावित अभ्यर्थियों[4] की मूल-सूचियों में सम्मिलित नहीं किये गये हैं, यह अपेक्षा करने का अधिकार होना चाहिये कि उनके बच्चे सामान्य परीक्षा में परीक्षित होने चाहियें।

---

1 Board of Examiners 2 Cost. 3 Inequitable.
4 Candidates.

(ग) *विभिन्न पाठशालाओं की स्थिति*

अथापि, उच्च-पाठशालायें समस्त माध्यमिक पाठशालाओं को सशक्त प्रदायकों[1] के रूप में मानने को प्रवृत्त होती हैं और माध्यमिक पाठशाला-शिक्षा, जो अपने में एक पूर्ण अवस्था मानी जाती है, एवं उस (पाठशाला) के बीच जो छात्रों को उच्च पाठशालाओं के लिये तैयार करने के लिये निर्मित की जाती है, संभव ही भेद करने का कोई यत्न किया जाता है। अतः उच्च-पाठशाला-प्रणाली के किसी भी पुनःसङ्गठन को उच्च पाठशालाओं को साधारण ज्येष्ठ आधारभूत (माध्यमिक) पाठशालाओं से, जिनमें अधिकांश बच्चे अपनी पूर्ण-कालिक उच्च पाठशाला शिक्षा समाप्त करेंगे, दृष्टिकोण एवं उद्देश्य में भिन्न पृथक् एककों[2] के रूप में मानना चाहिये।

(घ) *अवधि एवं अन्तर्वर्ती प्रक्रम*[3]

शिक्षा-मण्डल यह विचार करता है कि भविष्य में लगभग ग्यारह वर्ष की आयु से छः वर्षे उच्च-पाठशाला-पाठचर्या के अन्तर्गत होंगी। अतः, जहाँ तक उन बच्चों से सम्बन्ध है जो उच्च-पाठशालाओं में प्रवेश के लिये चुने गये हैं, वहाँ तक (इस पाठचर्या) में माध्यमिक-प्रक्रम भी सम्मिलित होंगे। प्राथमिक-विभाग, यदि वे उन परिकरों में ही स्थित हों जिनमें उच्च पाठशालायें तो भी, सर्वथा पृथग् एकक माने जाने चाहियें और तदनुसार सङ्गठित किये जाने चाहियें।

यह सामान्यतः स्वीकार कर लिया गया है कि विश्व-विद्यालयों में तीन वर्ष की उपाधि-पाठचर्या के स्वीकरण[4] तथा मध्यम-प्रक्रम के लोप के साथ, भविष्य में अधिकांश प्रान्तों में

1 Potential Feeders. 2 Units. 3 Intermediate Stage
4 Adoption.

उच्च-पाठशाला-पाठचर्या में छः वर्षं अथवा VI-XI वर्गों के समान (वर्षं) सम्मिलित होंगी।

(ङ) *रिक्त-स्थानों एवं परिणामी क्षय[1] का परिहार*

रिक्त-स्थानों एवं लोक-धन के परिणामी क्षय का परिहार करने के लिये, उच्च-पाठशाला-छात्रों को, उपयुक्त प्राधिकारियों के अनुमोदन के अतिरिक्त, पाठचर्या को समाप्त करने से पूर्व पाठशाला से निकाल सकने को रोकने के लिये उपाय किये जाने चाहियें। सेवायोजकों[2] एवं माता-पिताओं को इसका महत्व पूर्णतः विदित कराया जाना चाहिये और इस परिणाम के लिये, छात्रों को उच्च-पाठशालाओं में प्रविष्ट करने से पूर्व, प्रत्येक माता-पिता एवं प्रतिपालक से प्रत्याभूतियाँ[3] अपेक्षित होनी चाहियें।

(च) *ग्रामीय एवं नगरीय क्षेत्रों में उच्च पाठशालाओं का वितरण*

ग्रामीय एवं नगरीय क्षेत्रों में उच्च पाठशालाओं का वितरण एक (ऐसा) प्रश्न है जिस पर सावधानी से विचार की आवश्यकता है। साथ ही साथ ग्रामीय उच्च-पाठशालाओं की संख्या में वृद्धि करने के लिये और छात्रावास एवं वहन[4] के बारे में ऐसे प्रबन्ध करने के लिये, जैसे उपयुक्त छात्रों को सुदूर क्षेत्रों से (पाठशालाओं में) उपस्थित होने में समर्थ बनायेंगे, बहुत कुछ कहा जाता है। वस्तुतः नई प्रणाली में एक कृषि-सुझाव[5] के साथ उच्च-पाठशाला को एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग लेना है। यह न केवल सामान्यतः कृषि में सुधार एवं ग्रामीय-उत्थान में सहायता करेगी, परन्तु यह उन

1 Consequent Waste. 2 Employers, 3 Guarantees.
4 Conveyance. 5 Agricultural bias.

अध्यापकों के लिये, जिनकी ग्रामीय आधारभूत पाठशालाओं को इतनी बड़ी संख्याओं में आवश्यकता होगी, भर्ती का स्थान भी होगी।

(छ) उद्देश्य एवं कर्तव्य

उच्च-पाठशाला-शिक्षा, किसी भी कारण से, विश्वविद्यालय-शिक्षा के लिये साधारणतः एक प्रारम्भिक (शिक्षा) के रूप में नहीं, परन्तु अपने में एक पूर्ण प्रक्रम के रूप में समझी जानी चाहिये। जबकि अपने अत्यन्त योग्य छात्रों को विश्वविद्यालयों एवं समान स्तर की अन्य संस्थाओं को भेजना उच्च-पाठशालाओं का एक बहुत महत्वपूर्ण कर्तव्य रहेगा, उच्च-पाठशाला छोड़ने वालों की बड़ी बहुसंख्या को एक (ऐसी) शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये जो उन्हें उपजीविकाओं[1] एवं व्यवसायों में प्रत्यक्ष प्रवेश के योग्य बनायेगी। लोक-शिक्षा की एक सुसङ्गठित प्रणाली में उच्च पाठशाला छोड़ने वालों में से दस से पन्द्रह तक में से केवल लगभग एक विश्वविद्यालयों को जायेगा। परिणामतः उच्च-पाठशालाओं को, अपने उन छात्रों के, जो विश्वविद्यालयों को नहीं जायेंगे, अधिकांश को पाठशाला छोड़ते ही समस्त प्रकार के लाभप्रद एवं परितोषद्-सेवायोजन[2] में प्रवेश के लिये तैयार करने को अत्यन्त महत्व देना चाहिये।

(ज) उच्च-पाठशालाओं के दो प्रकार

पुनःसङ्गठित उच्च-पाठशालायें दो प्रकार की होनी चाहियें—(१) साहित्यिक उच्च-पाठशालायें[3], और (२) औद्योगिक उच्च-

---

1 Occupations. 2 Remunerative Employment.
3 Academic High Schools.

पाठशालायें[1]। एक स्थूल[2], परन्तु परिदृढ़[3] किसी प्रकार भी नहीं, भेदकरण स्वीकार करके, साहित्यिक उच्च-पाठशालायें कलाओं एवं विशुद्ध विज्ञानों में शिक्षा देंगी जबकि औद्योगिक उच्च-पाठशालायें व्यावहारिक विज्ञानों और औद्योगिक एवं वाणिज्यिक विषयों में प्रशिक्षण प्रदान करेंगी।

(झ) पाठशाला-त्याग-प्रमाणपत्र

यह आशा की जाती है कि निकट भविष्य में उच्च-पाठशाला-शिक्षा के एक उच्चतर स्तर के विकास के साथ, एक पाठशाला-त्याग-प्रमाणपत्र, जहाँ आवश्यक हो वहाँ एक औद्योगिक अथवा वाणिज्यिक प्रकार के अग्रिम प्रशिक्षण द्वारा अनुपूरित, शासकीय-सेवा एवं व्यापार-जीवन दोनों में, उच्चतम वर्गों के अतिरिक्त अन्य समस्त के प्रवेश के लिये, एक विश्वविद्यालय-उपाधि की अपेक्षा एक अधिक सामान्य अर्हता के रूप समझा जायेगा।

(ञ) पाठ्यक्रम

दोनों प्रकार (की पाठशालाओं) में, विद्यमान माध्यमिक प्रक्रम को अन्तर्गत करते हुये, कनिष्ठ विभागों में पाठचर्यायें बहुत अधिक समान होंगी और (उनमें) साद्यन्त[4] मानवताओं का एक सामान्य-आन्तरक[5] (भी) होगा। दोनों में कला एवं सङ्गीत पाठ्यक्रम का एक अभिन्न अङ्ग होगा और समस्त लड़कियाँ गृह-विज्ञान में एक पाठचर्या लेंगी। कनिष्ठ-पाठचर्या की समाप्ति तक, किसी भी भाव पर, एक प्रकार से दूसरे के लिये स्थानान्तरण यथा-शक्य सरल बनाया जाना चाहिये। पहले ही दिये गये अनेक कारणों से, ग्रामीय क्षेत्रों में, जहाँ छात्र अपने

---

1 Technical High Schools 2 Broad. 3 Rigid. 4 Throughout.
5 Common Core.

प्रक्षेत्रों[1] पर अथवा अन्यत्र कृषि लेने के लिये संभाव्य हैं, पाठ्यक्रम को एक कृषि-झुकाव दिया जाना चाहिये। अंग्रेजी एक अनिवार्य द्वितीय भाषा होनी चाहिये। समस्त छात्रों को गणित और प्रारम्भिक विज्ञान का कुछ ज्ञान भी प्राप्त करना चाहिये। व्यायाम अनिवार्य होना चाहिये। तथापि अनिवार्य एवं वैकल्पिक कहे जाने वाले विषयों के मध्य कोई परिदृढ़-प्रभेद[2] निकालना वाञ्छनीय नहीं हो सकता। समुचित विषयों की निम्नलिखित सूची व्यापक होने की अपेक्षा सुझावात्मक (होने के लिये) अभिप्रेत[3] है; निश्चय ही यह सुझाव नहीं दिया गया है कि पाठशाला-त्याग-प्रमाणपत्र-स्तर[4] तक समस्त छात्रों को इन सबका अध्ययन करना चाहिये, यद्यपि कुछ केवल ज्येष्ठ प्रक्रम के लिये स्पष्टतः समुचित हैं :—

साहित्यिक-उच्च-पाठशालायें

(१) मातृभाषा (२) अंग्रेजी, (३) शास्त्रीय भाषायें[5], (४) आधुनिक भाषायें, (५) इतिहास (भारतीय एवं विश्व), (६) भूगोल (भारतीय एवं विश्व), (७) गणित, (८) विज्ञान (भौतिकी[6], रसायन, जीवविज्ञान, दैहिकी[7], तथा स्वास्थ्यविज्ञान), (९) अर्थशास्त्र, (१०) कृषि, (११) नागरिक-शास्त्र, (१२) कला, (१३) सङ्गीत, (१४) व्यायाम[8]।

औद्योगिक (प्रावैधिक)-उच्च-पाठशालायें

(१) मातृभाषा, (२) अंग्रेजी, (३) आधुनिक भाषायें, (४) इतिहास (भारतीय एवं विश्व), (५) भूगोल (भारतीय एवं विश्व), ( ) गणित, (७) भौतिकी, (८) रसायन, (९) जीवशास्त्र

---

1 Farms. 2 Rigid Distinction. 3 Intended, 4 School Leaving Certificate Standard. 5 Classical Languages. 6 Physics. 7 Physiology. 8 Physical Training.

(१०) अर्थशास्त्र, (११) प्रौद्योगिकीय विषय[1] (काष्ठ एवं धातु-कर्म, प्रारम्भिक अभियान्त्रिकी[2], मापित-उद्रेखण[3] आदि), (१२) वाणिज्य (पुस्त-पालन[4], आशुलिपि[5], मुद्रलेखन[6], लेखा-कर्म[7], वाणिज्यिक-प्रयोग इत्यादि), (१३) कृषि, (१४) कला (औद्योगिक एवं वाणिज्यिक प्रयोजनों के लिये रूपाङ्कन[8] समेत), (१५) सङ्गीत, (१६) व्यायाम।

बालिका-उच्च-पाठशालायें

उपयुक्त अवस्था पर सबके लिये "गृह-विज्ञान" के साथ उपरि-विषयों का एक वरण[9]।

(ट) *शिक्षण का माध्यम*

समस्त उच्च-पाठशालाओं में शिक्षण का माध्यम छात्रों की मातृभाषा होना चाहिये।

(ठ) *बालिका-शिक्षण*

अध्यापन-व्यवसाय की आवश्यकताओं के अतिरिक्त, सामाजिक-सेवाओं का विकास करने वाली किसी भी योजना में चिकित्सकों[10] एवं उपचारिकाओं[11] की एक विशाल रूप से बढ़ी हुई प्रदाय[12] अन्तर्निहित होगी। प्रवेशकों के विद्यमान अभाव की दृष्टि से अध्यापन एवं भैषजिक[13] दोनों व्यवसायों के लिये ठीक प्रकार की बालिकाओं की एक पर्याप्त संख्या प्रदाय करने की अतिपाती[14] आवश्यकता उन प्रथम समस्याओं में से एक होगी जिनका बालिकाओं की उच्च-पाठशालाओं को साधन

1 Technological Subjects 2 Engineering. 3 Measured Drawing. 4 Book-keeping. 5 Shorthand. 6 Type-writing 7 Accountancy. 8 Designing. 9 Choice. 10 Doctors. 11 Nurses. 12 Supply. 13 Medical. 14 Urgent.

करना होगा। यदि एक युक्तियुक्त अवधि के अन्तर्गत शिक्षा की एक राष्ट्रिय-प्रणाली स्थापित होनी है तो बालिकाओं के लिये शिक्षा को द्रुत छलाँगें भरनी होंगी।

(ड) *अध्यापक*

मण्डल यह भी अभिस्ताव करता है कि उच्च-पाठशालाओं में ज्येष्ठ अध्यापकों में उत्तरदायित्व के कुछ विशेष स्थान, जिनका वेतन साधारण वेतन के अतिरिक्त बीस रुपये अधिक होगा, बनाये जाने चाहियें। ऐसे अध्यापकों को अध्ययनों के मुख्य समूहों, यथा भाषायें, विज्ञान इत्यादि, अथवा पुस्तकालय, क्रीड़ायें, छात्रावास एवं पाठशाला-जीवन की अन्य महत्वपूर्ण विशेषतायें, का प्रभारी[1] होना चाहिये।

४—विश्वविद्यालय-शिक्षा

(क) *विश्वविद्यालय-शिक्षा के दोष*

१—उनके विद्वत्ता एवं अनुशासन के स्तरों की प्रायः समालोचना होती है और (इसका) एक परिणाम यह हुआ है कि वे भारतीय विद्यार्थी, जो यूरोपियन अथवा अमेरिकन विश्वविद्यालयों के स्नातक होते हैं, (वे) उनसे, जो भारतीय विश्वविद्यालयों की उच्चतम उपाधियाँ प्राप्त कर चुके होते हैं, उच्च समझे जाते हैं।

२—वे किसी पर्याप्त संख्या में विदेशीय विद्यार्थियों को आकृष्ट करने में भी असफल रहे हैं।

३—इनमें से गम्भीरतम (कार्यों की विद्यमान स्थिति) उनकी क्रियाओं को पर्याप्त रूप से निकटता से एक पूर्ण

---

6 In charge.

रूप में समाज की व्यावहारिक आवश्यकताओं से सम्बन्धित करने में असफलता है।

४--इसमें सन्देह नहीं हो सकता कि परीक्षाओं को अत्यधिक महत्व दिया जाता है और कि परीक्षायें स्वयं मौलिक विचार एवं वास्तविक विद्वत्ता के मूल्य पर एक सङ्कीर्ण प्रकार के पुस्तक-ज्ञान पर प्रव्याजि[1] रखती हैं।

५--यह कम सत्य नहीं है कि अतिघन[2] व्याख्यान-कोष्ठ और अधिकर्मित[3] व्याख्यान विद्यार्थियों एवं अध्यापकों के मध्य उस वैयक्तिक सम्पर्क में सहायक नहीं होते हैं जिससे एक विश्वविद्यालय-जीवन के महानतम् लाभ प्रायः व्युत्पादित[4] हो सकते हैं।

६--न महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय नियमतः भक्ति एवं आभार का वही भावना प्रोद्दीप्त करते हैं जैसा कि अन्य देशों में सामान्य (रूप से होता) है; एक *alma mater* के रूप में एक ज्ञान-स्थान की अवधारणा[5] वास्तविक अर्थ में तुलनात्मक दृष्टि से कुछ (विश्वविद्यालयों) तक ही सीमित है।

७--जबकि अनेक विश्वविद्यालयों तथा अनेक विभागों में, विशेषतः विज्ञान, प्रथम श्रेणी के स्तर का कार्य किया जा रहा है, सामान्यतः यह नहीं कहा जा सकता कि भारतीय विश्वविद्यालय अभी गुण[6] अथवा मात्रा[7] में राष्ट्रिय-जीवन की समस्त प्रावस्थाओं[8] में उन नेताओं एवं विशेषज्ञों का उत्पादन कर रहे हैं, जिनकी इस देश को निकट भविष्य में अतिपाती रूप से आवश्यकता होने की संभावना है।

---

1 To put a premium. 2 Over-crowded. 3 Over-worked.
4 Derived. 5 Conception. 6 Quality. 7 Quantity.
8 Phases.

(ख) उपर्युक्त दोषों के कारण

१--इनमें तथा अन्य दूरियों तक वास्तविक दुख इस तथ्य में है कि अभी तक ऐसे अनुमाप[1] पर न तो वैयक्तिक धर्मदान[2] न लोक-निधि से अनुदान हुये हैं जैसे कि विश्वविद्यालयों को एक आर्थिक स्थायित्व की स्थिति में रख सकें। जब तक वे विद्यार्थी-शुल्कों एवं परीक्षा-शुल्कों पर बहुत कुछ आश्रित रहते हैं तब तक उनसे प्रवेशों पर ऐसे आयन्त्रण[3] लगाने की सम्भव ही प्रत्याशा की जा सकती है जैसे कि उच्च स्तरों के संधृत होने तथा शिक्षित बेकारी के जोखिमों को कम होने की अनुज्ञा[4] देंगे। न वे इसी कारण से उन नये विकासों की, जो लाभप्रद-सेवायोजन[5] के नूतन साधनों को खोल सकते हैं, वित्तव्यवस्था करने को समर्थ हैं।

२--विश्वविद्यालय-शिक्षा में योजना का एक सामान्य अभाव रहा है, और केन्द्रीय एवं प्रान्तीय-शासन दोनों विश्व-विद्यालयों को अस्तित्व में लाने के लिये, उन्हें सुस्थित रेखाओं पर कार्य करने के लिये समर्थ बनाने के लिये आवश्यक संसाधन[6] प्रदान किये बिना, लोक दबाव के समक्ष झुक गये हैं। अनेक निवेशों[7] में अभी तक इसका अधिमूल्यन[8] होना है कि शिक्षा को अल्पव्यय पर संचालन करना मिथ्या मितव्ययिताओं में से मिथ्यातम है।❀

---

1 Scale. 2 Benefactions. 3 Restrictions.
4 To allow. 5 Employment. 6 Resources. 7 Quarters.
8 Appreciation.

❀ *It has yet to be appreciated in many quarters that to run education on the cheap is the falset of false economies."*

—Post-War Educational Development in India, 1944, Pamphlet No. 27, P. 27.

३—अथापि, विश्वविद्यालय इस तथ्य से कि अधिकांश उच्च-पाठशालाओं में दी जाने वाली शिक्षा एक विश्व-विद्यालय-जीवनकाल के लिये एक अत्यधिक अपर्याप्त तैयारी रही है, गम्भीर रूप से बाधित रहे हैं। जो कुछ एक स्पष्टतः सरल प्रवेश-परीक्षा[1] द्वारा प्रदान किया जाता है उससे परे किसी समुचित प्रवरण की अनुपस्थिति में उन्होंने अपने द्वार उन अनेक विद्यार्थियों के लिये खोल दिये हैं जिन्हें एक अधिक अन्वेषी-परीक्षा[2] प्रवेश से विवर्जित कर देती।

४—वास्तविक योग्यता के उन विद्यार्थियों की, जो विश्व-विद्यालयों में प्रवेश चाहने से निर्धनता द्वारा बाधित हो जाते हैं, सहायता करने के लिये किन्हीं सामान्य एवं उदार प्रबन्धों की अनुपस्थिति द्वारा स्थिति और जटिल हो गई है। अधिकांश विश्वविद्यालयों के पास, आवश्यकताग्रस्त विद्यार्थियों के लिये कुछ थोड़े से निःशुल्क स्थानों अथवा छात्रवृत्तियों से परे, ऐसे विद्यार्थियों को विश्वविद्यालय-जीवन में पूर्ण रूप से भाग लेने में समर्थ बनाने के लिये संधारण-अनुदानों[3] की प्रणाली नहीं है।

५—वहाँ इनमें से (ऐसे छात्र जो विश्वविद्यालयों में नहीं होने चाहिये थे) अधिकांश इसलिये नहीं हैं क्योंकि वे उच्च-शिक्षा के लिये उपयुक्त पाये गये हैं अथवा ज्ञान के लिये एक पिपासा रखते हैं, परन्तु क्योंकि पाठशाला छोड़ने पर उन्हें सेवायोजन के लिये अवसर नहीं मिले और उनके माता-पिता ने इस संभावना पर जुआ खेला कि उनके पुत्र एक विश्व-

---

1 Matriculation Examination. 2 Searching test.

3 Maintenace grants.

विद्यालय-उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् एक सफल जीविकोपार्जन का पता लगा सकते हैं।

(ग) *अन्तर्वर्ती-प्रक्रम*

भारतीय-उच्च-शिक्षा में अन्तर्वर्ती-प्रक्रम की विषम स्थिति की प्रायः समालोचना की गई है। जबकि अधिकांश विश्व-विद्यालय (अन्तर्वर्ती) स्तर के अन्त पर एक परीक्षा द्वारा अनुसरित एक द्वि-वर्षीय अन्तर्वर्ती-पाठचर्या प्रदान करते हैं, अन्तर्वर्ती वर्गों के विद्यार्थियों को स्नातक-पूर्व[1] के रूप में प्रस्वीकार नहीं किया जाता है। कुछ स्थानों में ऐसे अन्तर्वर्ती महाविद्यालय भी हैं जिनका विश्वविद्यालयों के साथ सर्वथा प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता, परन्तु अपने मण्डलों द्वारा नियन्त्रित होते हैं। द्वि-वर्षीय-उपाधि-पाठचर्या, जो सामान्यतः अन्तर्वर्ती (प्रक्रम) का अनुसरण करती है, उन विषयों में, जिन्हें विद्यार्थी विशेषीकरण के लिये चुनते हैं, एक सुस्थित एवं पूर्ण प्रशिक्षण प्रदान करनेके लिये अपर्याप्त क्षेत्र अथवा समय प्रस्तुत करती है। अन्तर्वर्ती पाठचर्या शिक्षा में कोई निश्चित प्रक्रम अङ्कित नहीं करती, और समस्त व्यावहारिक प्रयोजनों के लिये, किन्हीं भी उन व्यावहारिक लाभों के बिना, जिनकी प्राप्ति होने की प्रत्याशा की जा सकती है यदि यह वास्तव में उच्च-पाठशाला के एक भाग का निर्माण करे, उच्च-पाठशाला के विस्तार की अपेक्षा अधिक नहीं मानी जा सकती। सैडलर आयोग[2] ने इस प्रक्रम के अन्त और एक वर्ष की उच्च-पाठशाला-पाठचर्या में तथा दूसरी की विश्वविद्यालय (पाठचर्या) में वृद्धि का ठीक ही अभिस्ताव किया किया था। इसे एक आवश्यक एवं अतिपाती सुधार के रूप में माना जा सकता है।

---

1 Undergraduates. 2. Sadler Commission.

(घ) *विश्वविद्यालय-प्ररूप*[1]

यह सुझाव देने के लिये औचित्य-समर्थन प्रतीत न होगा कि संबन्धक[2] अथवा एकीय[3] अथवा विश्वविद्यालय के किसी अन्य प्ररूप ने अपने को भारतीय आवश्यकताओं के विशेष रूप से उपयुक्त दिखाया है। शिक्षा के किसी भी स्तर पर एकरूपता के लिये कहा जाने के लिये थोड़ा ही है और एक ऐसे विशाल एवं विभिन्न देश में जैसे भारत समस्त प्रक्रमों पर सतत संपरीक्षण[4] की आवश्यकता स्पष्ट होगी। प्रस्थापित पुनःसंगठन में समस्त प्ररूपों के लिये क्षेत्र है। भारत जैसे एक देश में, संबन्धक-विश्वविद्यालय एक आर्थिक आवश्यकता हैं, और उच्च शिक्षा केवल चुने हुये क्षेत्रों में संकेन्द्रित नहीं की जा सकती है। कुछ स्थितियों में जो व्यवहार्य हो सकता है वह यह है कि संबद्ध महाविद्यालयों को अपने को उपाधि-स्तर तक शिक्षण करने तक ही सीमित रखना चाहिये, जबकि विश्वविद्यालय-केन्द्र अपने को उत्तर-स्नातक-शिक्षण एवं अन्वेषण पर संकेन्द्रित करें। किसी भी भाव पर यह आवश्यक है कि महाविद्यालयों से प्रथग् रूप में, विश्वविद्यालय को स्वयं एक सर्वथा प्रशासनात्मक अथवा परीक्षण-निकाय[5] न होना चाहिये परन्तु (उसे) विद्वत्ता के स्तर स्थापित करने और सामान्यतः शिक्षण को प्रोत्साहित करने की स्थिति में होना चाहिये।

(ङ) *अवधि*

तथापि, भारतीय विश्वविद्यालयों के किसी भी पुनःसंगठन का प्रारम्भ एक विश्वविद्यालय-पाठचर्या की न्यूनातिन्यून अवधि निर्धारित करते हुए होना चाहिये। यह स्पष्ट कर दिया जाना चाहिये कि मण्डल तीन वर्षों को किसी भी विश्वविद्यालय-

1 Type. 2 Affiliated. 3 Unitary. 4 Experiment.
5 Examining Body.

पाठचर्या की न्यूनातिन्यून अवधि के रूप में मानता है। वह प्रस्वीकार करता है कि कुछ विषयों में, यथा, आयुर्विज्ञान[1], प्रौद्योगिकी[2] आदि, सामान्य पाठचर्या में आवश्यक रूप से एक दीर्घतर समय का समावेश होगा।

(च) महिला-शिक्षण

इस अवस्था पर विश्वविद्यालयों में महिला-छात्राओं की लघु-संख्या की ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहिये। यद्यपि समस्त विश्वविद्यालयों ने अपवाद के बिना अपनी पाठचर्याओं, परीक्षाओं एवं उपाधियों के लिये महिलाओं का प्रवेश किया है, महिला-छात्राओं का अनुपातन अभी तक योग[3] का केवल दस प्रतिशत है। प्रदत्त किये जाने वाले अतिरिक्त स्थानों में से अनेक महिलाओं द्वारा भरे जाने चाहियें, विशेषतः उन महिला-अध्यापिकाओं एवं चिकित्सिकाओं की बड़ी संख्या की दृष्टि से, जिसकी शिक्षा एवं स्वास्थ्य की किसी भी राष्ट्रिय-योजना के लिये अपेक्षा होगी।

(छ) विश्वविद्यालय-शिक्षा का परिव्यय[4]

विद्यार्थियों के चुनाव के साथ निकट रूप से सम्बन्धित यह सुनिश्चित करने की समस्या है कि विश्वविद्यालय-शिक्षा की लागत योग्यता के निर्धन विद्यार्थियों की स्थिति में प्रतिषेधात्मक न हो जाय। विश्वविद्यालय शिक्षा को अधिक सस्ता करना निश्चय ही समाधान नहीं है, परन्तु प्रश्नाधीन विद्यार्थियों के लिये लोक-निधि से आवश्यक आर्थिक-सहायता प्रदान करना (है)। निःशुल्क स्थानों की एक उदार प्रणाली के अतिरिक्त, उन्हें, जो महाविद्यालयों अथवा विश्वविद्यालयों में अपना

---

1 Medicine. 2 Technology. 3 Total. 4 Cost.

संधारण करने में समर्थ नहीं हो सकते, अभाव से मुक्त रहने और उन्हीं सुखसुविधाओं का उपभोग करने में जैसाकि अन्य विद्यार्थी (करते हैं), समर्थ बनाने के लिये एक पर्याप्त भत्ता दिया जाना चाहिये।

५—प्रावैधिक[1], वाणिज्यिक एवं कला-शिक्षण

(क) *शिक्षण का अर्थ*

प्रावैधिक शिक्षण के कार्य की अवधारणा, इसके उद्देश्य तथा इसकी विषय-वस्तु दोनों विषयक पश्चिम देशों में अभिनव वर्षों में पर्याप्त रूप से संशोधित एवं परिवर्धित हो चुकी है। परिणामतः प्रारम्भ से ही यह बल देना महत्त्वपूर्ण है कि एक राष्ट्रिय-प्रणाली के एक अभिन्न अङ्ग के रूप में प्रावैधिक शिक्षण के विकास के लिये किसी भी योजना में द्विगुण विशेषतायें होनी चाहिये। इसे शिक्षा एवं उद्योग के बीच एक सम्बन्ध बनाना चाहिये और साथ ही साथ इसे मानसिक-प्रशिक्षण के रूप में, जो उनकी भावी उपजीविकाओं[2] का विचार किये बिना बुद्धि के कुछ प्रकारों के लिये विशेष रूप से उपयुक्त होता है, सर्वथा पृथक् विचार मिलना चाहिये। प्रावैधिक शिक्षण को अतीत में रहे (रूप) की अपेक्षा प्रशिक्षण का एक व्यापक एवं अधिक उदार रूप होना चाहिये, इसे निर्माण-विधाओं[3] एवं स्वयं विधाओं में अन्तर्निहित वैज्ञानिक सिद्धान्तों को स्पष्ट करना चाहिये; इसे उत्पादन एवं व्यापार-सङ्गठन के विज्ञानों को रूपाङ्कन[4] एवं विक्रयकला[5] की कलाओं के साथ जोड़ना चाहिये। इसे एक पहले से अनौद्योगिक-

1 Technical 2 Occupations. 3 Processes of Manufacture
4 Design. 5 Salesmanship.

समुदाय[1] के जीवन पर औद्योगिक विकास के प्रभाव के सम्बन्ध में एक सामाजिक विज्ञान की ओर भी ध्यान देना चाहिये और यह उन कर्मकारियों के लिये जो यन्त्र के अर्ध-दक्ष[2] सेवक रहने के लिये पूर्वनिर्दिष्ट हैं, मानसिक एवं नैतिक वृद्धिरोध[3] के विरुद्ध एक प्रतिविष[4] के रूप में सर्वथा सांस्कृतिक एवं विनोदात्मक सुविधाओं की व्यवस्था की भी उपेक्षा नहीं कर सकती।

(ख) प्रावैधिक-शिक्षण के कार्य अथवा उद्देश्य

(i) प्रावैधिक शिक्षण का प्राथमिक कार्य (क) दक्ष शिल्पकारों, (ख) बुद्धिमान कार्यदेशकों[5] एवं निष्पादकों,[6] और (ग) अन्वेषणकर्ताओं के लिये उद्योग एवं वाणिज्य की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने का रहता है और रहने के लिये संभाव्य होता है।

(ii) साथ ही उसी परिवर्धित अवधारणा की ओर सहायता करते हुये प्रावैधिक शिक्षण का एक द्वितीय कार्य होता है, जिसके महत्व को विदेश में वर्धी रूप में प्रस्वीकृत किया जा रहा है और (वह) आङ्गल-शिक्षा-मण्डल की परामर्श-समित के अभिनव प्रतिवेदन (स्पैन्स-प्रतिवेदन) में आश्चर्यजनक बल प्राप्त कर चुका है। तथाकथित प्रावैधिक विषय, अनेक व्यक्तियों के लिये, (जो) आवश्यक रूप से किसी भी प्रकार से कम बुद्धिमान नहीं (और) जिनकी मानसिक शक्तियाँ साहित्यिक अध्ययनों की अपेक्षा व्यावहारिक (अध्ययनों) द्वारा अधिक सक्रिय रूप से जाग्रत और अधिक पूर्ण रूप से सन्तुष्ट होती हैं, एक व्यावसायिक प्रशिक्षण से पृथक् एक सर्वतोमुखी शिक्षा अथवा संस्कृति प्रदान

---

1 Non-industrial Communty. 2 Semi-skilled.
3 Stagnation. 4 Antidote. 5 Foremen. 6 Executives.

करने के योग्य पाये गये हैं। इस अभिप्राय में औद्योगिक-पाठशाला अथवा महाविद्यालय को उच्चतर प्रक्रमों पर, शिक्षा में वृहद् विभिन्नता के प्रवेश की ओर और समुदाय के सर्व-श्रेष्ठ मस्तिष्कों के एक युक्तियुक्त अंश[1] के लिये उद्योग की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने की ओर, जो रूढ़[2] उच्च-पाठशाला के प्रभाव के अन्तर्गत व्यावसायिक उपजीविकायें ढूँड़ते हैं और प्रायः बेकारी प्राप्त करते हैं, एक मूल्यवान अंशदान करना होता है। और यह उन अनेक व्यक्तियों को, जो साधारण प्रकार की एक विश्वविद्यालय-पाठचर्या लेने के उपयुक्त न थे अथवा आर्थिक अपेक्षाओं[3] द्वारा बाधित थे, नागरिकों के रूप में अपने कर्तव्यों के पूर्ण पालन के लिये आवश्यक वस्तुओं का ज्ञान अथवा उनके अवकाश का अधिक लाभप्रद सेवायोजन प्रदान कर सकती है।

(iii) विद्यार्थियों के दृष्टिकोण से विचार करने पर, प्रावैधिक शिक्षण या तो पूर्व-सेवायोजन[4] होगा, अथवा पश्च-सेवायोजन[5], अर्थात्, यह या तो उन तरुण व्यक्तियों को, जो अभी तक कार्य पर नहीं हैं, एक प्रारम्भिक प्रशिक्षण, जो उन्हें औद्योगिक अथवा वाणिज्यिक उपजीविकाओं में प्रवेश के लिये तैयार करेगा, देने के लिये निदेशित[6] होगा या यह उन्हें, जो पहले ही सेवायोजन में हैं, शिल्पकारों के रूप में अपनी दक्षता बढ़ाने के लिये, अधिक उत्तरदायित्व के स्थानों को अभिधारण[7] करने के लिये अपने को उपयुक्त बनाने के लिये, अथवा नागरिकों और कर्मकारियों के रूप में अपनी सर्वतोमुख सज्जा[8] में सुधार करने के लिये अवसर देगा।

---

1 Share. 2 Conventional. 3 Exigencies. 4 Pre-employment. 5 Post-employment. 6 Directed. 7 To occupy. 8 Equipment.

(iv) दक्ष कारीगरों तथा उच्च श्रेणियों के प्रशिक्षण के लिये सुविधाओं की व्यवस्था के अतिरिक्त, प्राविधिक शिक्षण की एक अद्यावधिक[1] प्रणाली को निम्न श्रेणियों के उन (व्यक्तियों) के लिये, जो कर्मकारियों के रूप में तथा नागरिकों के रूप में सज्जा में सुधार करने की इच्छा रखते हैं, भी आहारप्रदान[2] करना चाहिये।

(ग) संस्थाओं के रूप का निर्धारण

सेवित[3] होने वाले क्षेत्र का परिमाण और उसके औद्योगिक विकास का विस्तार एवं प्रवृत्ति यह निर्धारित करेगी कि ऐसा शिक्षण एक संस्था में दिया जाना चाहिये अथवा अनेक में। यदि अनेक में, तो तत्सम विचार यह निर्दिष्ट करेंगे कि इनमें से प्रत्येक संस्था को एक उद्योग की सेवा करनी चाहिये अथवा उद्योगों के समूह की, अथवा कि एक ऐसी केन्द्रीय संस्था होनी चाहिये, जहाँ सुविधापूर्वक वितरित सहायक पाठशालाओं के साथ जो इसे (केन्द्रीय संस्था) अधिक प्रारम्भिक कार्य से मुक्त करेंगी और बदले में समुचित रूप से तैयार किये गये विद्यार्थियों से इसकी सहायता करेंगी, समस्त शाखाओं में अधिक उच्च कार्य संकेन्द्रित[4] होना चाहिये।

(घ) एककलात्मक विरुद्ध बहुकलात्मक[5]

एककलात्मक विरुद्ध बहुकलात्मक का प्रश्न एक पर्याप्त समय से ऊपर एक विवादास्पद विषय रहा है परन्तु बहुकलात्मक, जहाँ-कहीं व्यवहार्य (है) एवं कुछ अपवादों के अधीन, अपने पक्ष में शैक्षणिक, औद्योगिक और आर्थिक तर्कों का एक सबल सन्तुलन रखता है। वास्तव में, प्राविधिक शिक्षण को और

1 Up-to-date. 2 To cater. 3 Served. 4 Concentrated.
5 Monotechnics Versus Polytechnics.

विशेषतः इसकी अधिक उच्च शाखाओं को एक ही छत के नीचे संकेन्द्रित करने के लिये स्थिति को विस्तृत करना संभव ही आवश्यक है। एककलात्मक केवल वहाँ अधिमत[1] होने के लिए है जहाँ एक उद्योग अति स्थानसीमित[2] है, अथवा जहाँ इसकी आवश्यकतायें ऐसी जटिल अथवा विशिष्ट हैं कि उन्हें, उसी भवन में जैसाकि अन्य उद्योगों (के बहुकलात्मक), सन्तुष्ट करना कठिन है, अथवा जहाँ संव्यवहृत[3] होने वाली सामग्री, उदाहरणार्थ प्रशिक्षण में, इसे एक असुविधापूर्ण पड़ौसी बनाती है। बहुकलात्मक में, भले ही यह सहायक संस्थायें रखता हो अथवा नहीं, (i) सामान्य उच्च पाठशाला आयु एवं प्रकार के उन बच्चों केलिये, जिनका प्रशिक्षण इस अभिधारणा पर आधारित होगा कि वे अन्ततः उत्तरदायित्व के स्थानों तक उठ सकते हैं, एक पूर्ण-कालिक पाठशाला (औद्योगिक उच्च पाठशाला), (ii) तरुण कर्मचारियों (शिशिक्षु[4] समेत) के लिये एवं पुराने कर्मचारियों के लिये, एक अंश-कालिक वर्ग, अधिमानतः दिन में परन्तु जब आवश्यक हो तब सायंकाल में, और (iii) अधिक उच्च विद्यार्थियों एवं अन्वेषण-कर्ताओं के लिये पूर्ण-कालिक अथवा अंश-कालिक वर्ग। अन्ततः वहाँ एक अव्यवसायात्मक प्रकार की प्रौढ़-शिक्षा के लिये प्रबन्ध होना चाहिये।

(ङ) प्रविधिज्ञों के प्रवर्ग[5]

यद्यपि यह कहना असम्भव है कि उद्योग एवं वाणिज्य में प्रत्येक मुख्य सेवायोजन[6]-प्रवर्ग में कितने प्रविधिज्ञों की आवश्यकता होगी, स्वयं प्रवर्गों की एवं प्रशिक्षण के उस प्रकार को

---

1 Preferred. 2 Localised. 3 To be dealt with.
4 Apprentices. 5 Categories of Technicians.
6 Employment.

जिसकी उनके सदस्यों को आवश्यकता होगी, विहित[1] करना सम्भव है। उच्चतम प्रवर्ग में भावी मुख्य-निष्पादक[2] और अन्वेषण-कर्ता होंगे। अगले प्रवर्ग में लघु-निष्पादक[3], कार्यदशक[4], प्रभार-हस्त[5] आदि, एक अत्यन्त महत्वपूर्ण वर्ग, अन्तर्विष्ट होंगे। तृतीय प्रवर्ग दक्ष शिल्पकारों, जिनमें से अधिकांश निष्पादक-स्थानों की अभिकाँक्षा करेंगे, का बना होगा। इन तीन प्रवर्गों के नीचे अर्ध-दक्ष एवं अदक्ष श्रमिकों का बृहत् पुञ्ज आयेगा।

(च) *वाणिज्य-शिक्षण*

वाणिज्य-शिक्षण के सम्बन्ध में उन्हें, जो संबद्ध हैं, दो मुख्य समूहों तक घटाना सम्भव हो सकता है (i) वे, जो एक महत्वपूर्ण श्रेणी पर व्यापार करेंगे अथवा व्यावसायिक कार्यों जैसे अधिकोषण[6], लेखा-कर्म[7] आदि, का पालन करेंगे, और (ii) वे जो समूह (i) के कार्यों का अभिलेखन[8] करने में रत होंगे।

(छ) *कला-शिक्षण*

भारतीय निर्माता उत्पादित वस्तुओं के कला-गुणों की ओर अत्यधिक ध्यान देकर बहुत बुद्धिमान होंगे। एक बहुकलात्मक के लाभों में से एक यह है कि यह उन्हें, जो निर्माण में रत हैं, उनके साथ, जो रूपाङ्कन एवं वितरण का अध्ययन करते हैं, निकटतम सम्पर्क में लाता है।

(ज) *अंश-कालिक दिवस-वर्ग अथवा सैण्डविच-प्रणाली*[9]

दूसरी ओर, अंश-कालिक दिवस-वर्ग अथवा सैण्डविच-प्रणाली, जो उसी विचार का एक विस्तार है, प्रावैधिक शिक्षण

---

1 To prescribe. 2 Chief Executives. 3 Minor Executives. 4 Foremen. 5 Charge hands. 6 Banking. 7 Accountancy. 8 Recording. 9 The Sandwich System.

के लिये किसी भी आधुनिक योजना में महान् महत्व के एक कारक[1] की संस्थापना करती है। सैण्डविच-प्रणाली का, जो कर्मकारियों की उच्चतर श्रेणियों के लिये अत्यन्त उपयुक्त है, अर्थ है कि कर्मचारी वर्गों में एक सप्ताह में एक दिन अथवा दो अर्ध-दिवसों के लिये उपस्थित होने के स्थान पर वर्ष को एक प्रावैधिक संस्था में कार्यों[2] एवं उपस्थिति के बीच विभाजित करता है। ऐसी प्रणाली का अङ्गीकरण भारत में विशेष महत्व का होगा, जैसाकि यह अति अनेक प्रावैधिक-पाठचर्याओं की उस विद्यमान अति-साहित्यिक प्रवृत्ति का प्रतिकार करने में सहायता करेगा, जिसके द्वारा एक विद्यार्थी वास्तविक निर्माणी[3]-दशाओं का मूलप्राप्त[4] अनुभव प्राप्त किये बिना प्रशिक्षण के अधीन अनेक वर्ष व्यय कर सकता है।

(ऋ) *अध्यापक*

प्रावैधिक, वाणिज्यिक एवं कला-संस्थाओं में अध्यापक शिक्षा की अन्य शाखाओं के अध्यापकों की अपेक्षा कम महत्व-पूर्ण न होंगे। ऐसे अध्यापकों की एक पर्याप्त प्रदाय[5] का निर्माण करना उद्योग एवं वाणिज्य की प्रत्यक्ष प्रतियोगिता और अधिक प्रेरणा[6], (जिन्हें) वे दक्ष-कर्मकारियों को देने की एक स्थिति में होते हैं, के कारण और भी अधिक कठिन होगा। वेतन एवं सेवा की उन दशाओं को, (जो) दक्ष प्रशिक्षकों[7] को आकृष्ट करने के लिये संभाव्य हैं, निर्धारित करने में इस तथ्य को ध्यान में रखा जाना चाहिये। दूसरी ओर, भर्ती एवं प्रशिक्षण, शिक्षा की अन्य शाखाओं की अपेक्षा, एक लघुतर

1 Factor.　2 Works.　3 Factory.　4 First-hand.
5 Supply.　6 Inducement.　7 Instructors.

प्रशासनात्मक समस्या उपस्थित करते हैं। (उनके लिये) विशेष प्रशिक्षण पाठशालाओं अथवा महाविद्यालयों की आवश्यकता नहीं है। प्रावैधिक अथवा वाणिज्यिक अध्यापक को उद्योग एवं वाणिज्य में मूलप्राप्त[1] अनुभव रखना चाहिये और फिर (उसे) एक प्रावैधिक संस्था में अपना व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त करना चाहिये।

(ज) प्रावैधिक शिक्षण का उद्योग एवं वाणिज्य से सम्बन्ध

प्रावैधिक शिक्षण, विशेषतः अधिक उच्च प्रक्रमों में, महंगा होता है और अतिच्छादन[2] अथवा प्रयत्न के विसर्जन[3] को टालने की आवश्यकता स्पष्ट होगी। यह समान रूप से स्पष्ट है कि शिक्षा की यह शाखा उद्योग एवं वाणिज्य से, जिनकी आवश्यकताओं की सेवा करने के लिये इसका निर्माण किया जाता है, निकट रूप से सम्बन्धित होनी चाहिये। वास्तव में, उद्योग एवं वाणिज्य के साथ निकटतम सम्पर्क स्थापित एवं संधृत होना चाहिये और क्योंकि वे वर्धी रूप से औद्योगिक विद्यालयों की प्रदा[4] पर निर्भर करेंगे, उनमें दिये जाने वाले प्रशिक्षण के तत्पर सहकारी एवं रचनात्मक समालोचक होना उनके हित में है।

(च) प्रावैधिक शिक्षण का नियन्त्रण

क्योंकि इसका (प्रावैधिक शिक्षण) कार्य मुख्यतः शैक्षणिक है, इसका निदेश उनके हाथों में होना चाहिये (जो) सम्पूर्ण शिक्षा के लिये उत्तरदायी हैं। अतः, जब प्रावैधिक शिक्षण शिक्षा प्राधिकारियों के हाथों में होना चाहिये, यह सन्देह करने के लिये कारण है कि यह नूतन दशाओं के अधीन एक प्रान्तीय आधार

---

1 First-hand. 2. Overlapping. 3 Dispersion.
4 Supply.

पर प्रभावशाली ढङ्ग से सङ्गठित हो सकता है। यदि उद्योग के साथ आवश्यक सम्पर्क होना है तो प्राविधिक संस्थाओं को औद्योगिक क्षेत्रों के यथा-शक्य समीप स्थित होना चाहिये। इसका परिणाम यह होगा कि कुछ प्रान्तों में अन्य की अपेक्षा अनेक अधिक प्राविधिक संस्थायें अन्तर्विष्ट होंगी। जबकि आर्थिक एवं अन्य कारणों से उद्योग एवं व्यापार और वे प्राविधिक संस्थायें, जो उनकी सेवा करती हैं, कुछ क्षेत्रों में संकेन्द्रित[1] हो सकती हैं, यह स्पष्ट रूप से अन्याय्य तथा राष्ट्रिय-हित के प्रतिकूल है कि औद्योगिक उपजीविकाओं में प्रवेश मुख्यतः उन छात्रों तक संसीमित होना चाहिये जो प्रश्नाधीन क्षेत्रों में अथवा (उनके) समीप रहते हैं। उन उपयुक्त विद्यार्थियों को, जो प्रविधिज्ञों[2] के रूप में अर्ह[3] होने की इच्छा करते हैं, ऐसा करने का अवसर होना चाहिये, चाहे वे कहीं रह सकते हों।

(छ) प्राविधिक-शिक्षण-राष्ट्रिय-परिषद्[4] की स्थापना

शैक्षणिक सुविधाओं की व्यवस्था का उद्दीपन, समन्वय एवं नियन्त्रण करने के लिये, जिसकी ऐसे विकास तथा प्रवर्तमान उद्योग को आवश्यकता होगी, सर्वोच्च प्रभार से युक्त एक अखिल-भारतीय-निकाय होना चाहिये। तदनुसार यह सुझाया जाता है कि एक प्राविधिक-शिक्षण-राष्ट्रिय-परिषद् स्थापित होनी चाहिये। यह परिषद् सामान्यतः प्राविधिक शिक्षण में नीति का नियन्त्रण करेगी और विश्वविद्यालयों के प्रौद्योगिक-विभागों तथा औद्योगिक उच्च विद्यालयों एवं कनिष्ठ प्राविधिक

1 Concentrated.　　2 Technicians.　　3 To qualify.

4 A National Council for Technical Education.

पाठशालाओं के अतिरिक्त, जिन्हें साधारण प्रान्तीय-प्रणाली का भाग रहना चाहिये, क्योंकि उनका एक शुद्धतया शैक्षणिक तथा एक पूर्व-व्यावसायिक कार्य होता है, समस्त प्रावैधिक संस्थाओं के साथ संव्यवहार करेगी।

(ज) कृषि-शिक्षा

यह तार्किक रूप से प्रावैधिक शिक्षण का एक भाग, और एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग, है। अपनी विशाल जनसंख्या के साथ इस देश में, जैसे ही एक कृषि-झुकाव के साथ ज्येष्ठ आधारभूत पाठशालाओं तथा उच्च पाठशालाओं का अधिक विस्तृत रूप से प्रसार होता है, वैसे ही कृषि-शिक्षा के अधिक उच्च प्रक्रम निम्नतर के साथ निकट रूप से शृंखलाबद्ध होने चाहियें, और प्रत्येक प्रकार के कृषि महाविद्यालय शिखर शैक्षणिक-तल के आवश्यक भागों के रूप में समझे जाने चाहियें और शिक्षा प्राधिकारियों के सामान्य नियन्त्रण में आने चाहियें।

(झ) दिवस सांतत्य पाठशालायें[1]

समस्त लड़कों और लड़कियों के लिये, उस आयु के जिस पर अनिवार्य पूर्ण-कालिक शिक्षा समाप्त होती है, और १८-२० के मध्य, दिवस सांतत्य पाठशालाओं के मूल्य का, औद्योगिक दक्षता की ओर किसी प्रत्यक्ष अंशदान की अपेक्षा विकास में एक निर्णायक[2] प्रावस्था[3] की अवधि में सामान्य, नैतिक, मानसिक तथा शारीरिक कल्याण की ओर उनके अंशदान के आधार पर प्रायः तर्क किया गया गया है।

---

1 Day Continuation Schools. 2 Crucial. 3 Phase.

६—प्रौढ़-शिक्षा

(क) तर्क का आधार

दिसम्बर १९३८ में प्रौढ़-शिक्षा के प्रश्न पर विचार करने के लिये मण्डल ने एक विशेष समिति नियुक्त की थी, और इस अध्याय का तर्क मुख्यतः उन्हीं निर्णयों (मण्डलके) एवं अभिस्तावों (विशेष समिति के) पर आधारित है।

(ख) प्रौढ़-शिक्षा का अर्थ, उद्देश्य एवं कार्य

(१) प्रौढ़-शिक्षा को कभी-कभी इस अर्थ में कि यह प्रौढ़ों को उन अवसरों की पूर्ति करने के लिये, जो उनकी किशोरावस्था में उनके लिये अनंगीकृत[1] थे, एक विलम्बित अवसर देने के लिये एक प्रयत्न है, एक प्रतिकरात्मक (पूरक) माप के रूप में परिभाषित किया गया है। परन्तु इसका समुचित कार्य एक विस्तृत एवं गंभीर (कार्य) है।

(२) इसका उद्देश्य सतत, आजीवन एवं उनकी इससे लाभ उठाने की योग्यता के अनुसार सबके लिये पूर्ण शिक्षा के लोकतन्त्रात्मक सिद्धान्त को कार्यान्वित करना होना चाहिये। अन्य शब्दों में, प्रौढ़-शिक्षा का कार्य एक राज्य के प्रत्येक संभाव्य सदस्य को एक प्रभावशाली एवं दक्ष नागरिक बनाना है और इस प्रकार लोकतन्त्र के आदर्श को सत्यता देना है।

(३) इसकी निजार्हा[2] से सर्वथा अलग, प्रौढ़-शिक्षा की देश को एक साक्षर बनाने की विधा[3] के गतिवर्धन में प्राथमिक शिक्षा के एक सशक्त सहाय के रूप में भी आवश्यकता है। यह

1 Denied.   2 Intrinsic Value.   3 Process.

सत्य है कि निरक्षरता की समस्या का स्थायी समाधान केवल सार्वत्रिक-प्राथमिक शिक्षा है।

(४) यह भी महत्वपूर्ण है कि प्रौढ़ों की दी जाने वाली अग्रिम शिक्षा एक ऐसी प्रकृति की होनी चाहिये जैसी न केवल उन्हें समाज का अधिक लाभप्रद सदस्य बनायेगी, परन्तु कुछ माप में उनकी आर्थिक-स्थिति में सुधार करने में भी उनकी सहायता करेगी। अतः, प्रौढ़-शिक्षा व्यावहारिक एवं सांस्कृतिक होनी चाहिये : इसे विद्यार्थियों के दैनिक जीवन तथा कार्य से निकट रूप से सम्बन्धित भी होना चाहिये। भारत में, जैसी वस्तु-स्थितियाँ हैं, यह अधिकाधिक आवश्यक है कि सांस्कृतिक एवं प्राविधिक शिक्षण का एक निकट साहचर्य प्राप्त किया जाय। अतः यह अपेक्षित है कि प्रौढ़-शिक्षा-केन्द्र न केवल अधिक साहित्यिक विषयों के शिक्षण की व्यवस्था करेंगे, परन्तु उनके लिये, जो प्रारम्भ में प्रौढ़-शिक्षा के सांस्कृतिक पार्श्व[1] द्वारा आकृष्ट नहीं हो सकते तथा कोई शिल्प सीखने की इच्छा कर सकते हैं, व्यावसायिक वर्ग भी रखेंगे।

(ग) साक्षरता की समस्या

साक्षरता एक साधन है और अपने आप में एक उद्देश्य नहीं है। उद्देश्य तो व्यक्ति के व्यक्तित्व की वह पूर्ण शिक्षा है जो उसकी शारीरिक, बौद्धिक एवं नैतिक शक्तियों को उच्चतम मात्रा तक विकसित करेगी, उसे एक मनुष्य के पूर्ण डीलडौल[2] तक उठायेगी, और (उसे) समाज के एक चेतन एवं लाभप्रद सदस्य में परिवर्तित करेगी। मात्र साक्षरता इस उद्देश्य को इस अर्थ में बढ़ाती है कि (यह) इसकी

1 Side. 2 Stature.

(उच्चतम विकास) ओर एक आवश्यक प्रथम उपाय होता है, परन्तु, यह केवल एक प्रथम उपाय ही होता है। वह साक्षर, जो साक्षर है और अधिक कुछ नहीं, व्यक्तित्व के उस पूर्ण विकास की, जिसे प्राप्त करने की सबको चाह करनी चाहिये, केवल देहली पर ही खड़ा होता है। यह साक्षरता के एक उस स्तर को उपधारणा[1] करता है जो असंदिग्ध रूप से उच्च होता है, परन्तु आवश्यक की अपेक्षा उच्चतर नहीं, यदि व्यक्ति के लिये और उस समुदाय के लिये, जिसका वह सदस्य होता है, साक्षरता को स्थायी मूल्य होना है। अतः, जैसी कि आवश्यकता है, निरक्षरता को यथा-शक्य शीघ्रता से तथा मितव्ययिता से हटाने के लिये सर्वोच्च विचार यह होना चाहिये कि कार्य चिरस्थायी होना चाहिये।

(घ) *पाठचर्या एवं अवधि*

अतः, यदि प्रौढ़ों को न केवल साक्षर बनाना उद्देश्य है, परन्तु स्थायी रूप से साक्षर और साथ ही योग्य एवं अग्रिम शिक्षा से लाभ उठाने के इच्छुक होने के लिये पर्याप्त रूप से साक्षर (बनाना उद्देश्य है), तो साक्षरता-पाठचर्या परिपूर्ण होनी चाहिये। एक स्वाभाविक रूप से बुद्धिमान विद्यार्थी की स्थिति में भी ऐसी पाठचर्या से एक शत घण्टों से कम में मूर्त परिणाम उत्पन्न करने की प्रत्याशा नहीं की जा सकती, क्योंकि *Three R's* (पठन, लेखन, सङ्गणन) के शिक्षण में जीवन में विद्यार्थी के व्यवसाय से सम्बन्धित कुछ प्रारम्भिक शिक्षण और नागरिक-शास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास, भूगोल तथा स्वास्थ्य-विज्ञान के प्रारम्भिक तत्वों का कुछ सामान्य ज्ञान जोड़ा जाना

1. Postulates.

चाहिये। इसमें एक पूर्ण वर्ष से कम का समावेश नहीं होना चाहियें, क्योंकि बड़े विद्यार्थियों से वर्गों में एक सप्ताह में चार बार से अधिक उपस्थित होने के लिये प्रत्याशा करना युक्तियुक्त न होगा और अनेक स्थितियों में उनकी उपजीविकायें उन्हें वर्ष में छः मास से अधिक की अवधि में उपस्थित होने की अनुमति नहीं देंगी।

(ङ) *आयु-सीमा*

प्रौढ़-शिक्षा के लिये आयु-सीमा स्थिर करना सरल नहीं है; ऐसी आयु-सीमायें जैसी कि इस देश में विभिन्न प्रान्तों में और अन्य देशों में स्थिर की गई हैं, पर्याप्त रूप से विभिन्न होती हैं। यह निर्धारित करने में कि क्या आयु सीमायें, यदि कोई हों तो, वाञ्छनीय हैं, निम्नलिखित बिन्दुओं को विचार में लिया जाना चाहिये :—

(i) एक प्राथमिक पाठशाला में एक उस लड़के अथवा लड़की का, जो वहाँ न्यूनातिन्यून चार वर्ष के लिये नहीं ठहर सकती, प्रवेश करना हानिकर है। आवश्यक रूप से इसका अर्थ यह होगा कि जब अनिवार्य शिक्षा प्रवेशित की जाती है तब उनके लिये, (जो) दस की आयु से ऊपर हैं कुछ वैकल्पिक प्रबन्ध किये जाने चाहियें।

(ii) इस देश में जीवन की सामान्य प्रत्याशा और निरक्षर व्यक्तियों के मानसिक-विकास की, विशेषतः गाँवों में, दृष्टि से नियमतः चालीस वर्ष से ऊपर आयु के व्यक्तियों को शिक्षित करने का प्रयत्न करने से लाभप्रद प्रयोजन सेवित नहीं होगा।

ये विचार यह सुझाते हैं कि प्रौढ़-शिक्षा की सामान्य आयु-सीमा १०+से ४० तक होनी चाहिये।

(च) *वर्ग*

तथापि, जैसाकि प्रौढ़-शिक्षा-समिति द्वारा अभिस्तावित है, इस पर बल दिया जाना चाहिये कि यथा-शक्य दस और सोलह वर्षों के बीच के लड़कों के लिये पृथक् वर्ग, अधिमानतः दिवस-समय में, संगठित किये जाने चाहियें, क्योंकि प्रौढ़-वर्गों में लड़कों और मनुष्यों को मिलाना अनेक दृष्टिकोणों से अवाञ्छनीय है। तरुण लड़कियों के लिये पृथक् वर्ग रखना भी अधिमान्य[1] होगा, परन्तु तरुण लड़कियों एवं स्त्रियों को मिलाने का उद्देश्य ऐसा गम्भीर नहीं है जैसी लड़कों एवं मनुष्यों की स्थिति और प्राप्य संसाधनों तथा अन्य व्यावहारिक विचारों के कारक[2] द्वारा सरलता से अतिभारित[3] हो सकता है।

(छ) *अध्यापक*

उपरि-वर्णित उद्देश्य को कार्यान्वित करने के लिये एक विस्तृत कार्यक्रम अधियोजित करने में विचारित होने के लिये प्रथम प्रश्न अध्यापकों की एक पर्याप्त प्रदाय प्राप्त करने का है। (इसके लिये) तीन सम्भव स्रोत हैं, दिवस-पाठशालाओं में रत व्यावसायिक अध्यापक, अव्यावसायिक अध्यापक, जो प्रौढ़-शिक्षा-कार्य के लिये विशेष प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके हैं, और स्वयंसेवक। इस योजना के उद्देश्यों के लिये स्वयंसेवक-अध्यापकों का गणन करना प्रस्थापित[4] नहीं है क्योंकि उनकी लगभग संख्या का भी निर्धारण करना सर्वथा असम्भव है। वे, जो आगे आने वाले हैं, वास्तविक प्रौढ़-शिक्षा के कार्य के लिए, जिसके लिए पृथक् शिक्षण-कर्म-चारिवर्ग की व्यवस्था नहीं की जा रही है, अथवा वे साक्षरता-कार्य के लिये, इस प्रकार अग्रिम शिक्षा के लिये अन्य अध्यापकों की तदनुरूप संख्या छोड़ते हुये,

1 Preferable. 2 Factor. 3 Out-weighed. 4 Proposed

उपयोजित[1] हो सकते हैं, प्रयुक्त हो सकते हैं। इस पर अत्यन्त प्रबल रूप से बल नहीं दिया जा सकता कि प्रौढ़-शिक्षा, अपने सामान्यतम रूप में भी, एक सरल कार्य नहीं है; यह एक विशेष तथा कठोर प्रविधि[2] मांगती है। केवल उत्साह और अच्छे अभिप्राय एक अच्छा अध्यापक नहीं बना सकते, न एक बच्चों की पाठशाला में एक अध्यापक की सफलता प्रौढ़ों को पढ़ाने के लिये उसकी उपयुक्तता की प्रत्याभूति[3] हो सकती है। बच्चों की स्थिति में की अपेक्षा यह और अधिक आवश्यक है कि प्रौढ़-शिक्षा-समिति के शब्दों में, "अध्यापक की रीति उद्दीपक[4] तथा विषय-वस्तु रुचिकर होनी चाहिये।" चातुर्य की एक उच्च मात्रा, समझ तथा प्रोत्साहित एवं नेतृत्व करने की योग्यता अध्यापक के लिये अपेक्षित है, क्योंकि उसे एक उस बच्चे के साथ संव्यवहार नहीं करना होता है, जो मानसिक रूप से अपक्व एवं ग्राही[5] होता है, और जिसे अनिवार्य रूप से पाठशाला में उपस्थित होना पड़ता है, परन्तु एक बड़े व्यक्ति के साथ (संव्यवहार करना होता है); जिसे अधिक उद्दीपक एवं रुचिकर शिक्षण की अपेक्षा होती है और जो उसी क्षण वर्ग को छोड़ने के लिये सम्भाव्य होता है (जब) वह पाठों को लाभदायक नहीं पाता। अतः, विद्यार्थियों की रुचि को जीवित रखना, शिक्षण को व्यावहारिक बनाना, और इसे उनकी अपनी क्रियाओं तथा वातावरण से सम्बन्धित करना आवश्यक है। अन्ततः, बच्चों के लिये एक पाठशाला में की अपेक्षा एक प्रौढ़-पाठशाला में वैयक्तिक-कारक[6] और अधिक महत्वपूर्ण होता है। अध्यापक एक पीठ[7] के ऊपर एक

1. Utilised. 2. Technique. 3 Guarantee. 4 Stimulating. 5 Receptive. 6 Personal Factor. 7 Pedestal.

ऊँचा व्यक्ति नहीं है, परन्तु केवल वह अन्य पुरुष अथवा स्त्री (है), जो संयोग से कुछ विषयों में अधिक ज्ञान रखता है। अतः, अध्यापक एवं उसके प्रौढ़ विद्यार्थियों के बीच निकट एवं मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध होने चाहियें।

(ज) *शिक्षण-सहाय*[1]

प्रौढ़ विद्यार्थियों की रुचि को उद्दीप्त करने और एक व्यावहारिक एवं वास्तविक वायुमण्डल के साथ शिक्षण को नियोजित[2] करने के उसी उद्देश्य के साथ, दार्ष्टिक[3] एवं यान्त्रिक-सहायों जैसे, चित्र, निदर्शन[4], कलात्मक एवं अन्य पदार्थ, माया-दीप[5], चलचित्र, सीतावाद्य[6], वितन्तु[7] आदि, का पूर्णतः सम्भव-शक्य प्रयोग करना आवश्यक है। नृत्य, विशेषतः लोक नृत्य, सङ्गीत, घोष[8] एवं ध्वन्यात्मक दोनों, और नाटक भी न केवल अपने में प्रिय प्रसूतियों[9] तथा विनोदात्मक क्रियाओं के रूप में, परन्तु प्रौढ़ विद्यार्थियों को आकृष्ट एवं उद्दीप्त करने के लिये सहायता करने के रूप में भी लाभप्रद होंगे।

(झ) *भवन*

प्रौढ़-शिक्षा-केन्द्रों के लिये पृथक् भवनों की व्यवस्था करना यदा-कदा ही आवश्यक होगा, यद्यपि यह स्पष्टतः आवश्यक है कि प्रत्येक केन्द्र को उसका अपना एक निश्चित गृह रखना चाहिये, यद्यपि वर्ग प्रायः द्वारों के बाहर हो सकते हैं। नगरों में पाठशालाओं अथवा अन्य उपयुक्त परिकरों का प्रयोग प्राप्त करने में कठिनाई नहीं होनी चाहिये जबकि गाँवों में आधारभूत[10] (प्राथमिक अथवा मध्यम) पाठशाला एक स्पष्ट

---

1 Teaching Aids. 2 Investing. 3 Visual. 4 Illustrations.
5 Magic Lantern. 6 Gramophone. 7 Radio. 8 Vocal
9 Accomplishments. 10 Basic.

समाधान देगी। सार्वत्रिक शिक्षा की प्रगति के साथ, सर्वत्र प्रचुर स्थान प्राप्य हो जायगा, परन्तु इस बीच में, जब तक उपयुक्त पाठशाला-भवनों की व्यवस्था नहीं की जा सकती, प्रौढ़-शिक्षा-केन्द्रों के लिये स्थानीय-मण्डल-भवनों, स्वास्थ्य-केन्द्रों, ग्रामीय-विकास-केन्द्रों, अथवा अवक्रीत[1] भवनों में भी स्थान प्राप्त किया जा सकता है। उन प्रान्तों में, जहाँ ग्रामीय-विकास का कार्य अच्छी प्रगति कर चुका है, ग्रामीय-विकास-केन्द्र सम्भवतः अत्यन्त उपयुक्त होने के लिये सम्भाव्य हैं।

(ञ) *पुस्तकालय*

सम्भवतः एक साक्षरता-आन्दोलन का अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य अनेक एवं पर्याप्त पुस्तकालयों की व्यवस्था करना है, क्योंकि एक साक्षर तब तक साक्षर, अत्यन्त कम प्रगति, नहीं रह सकता, जब तक कि वह उपयुक्त एवं रुचिकर वाचन-सामग्री[2] तक सुविधाजनक प्रवेश[3] नहीं रख सकता। स्पष्टतः भारत जैसे एक देश में एक बहुत विशाल पुस्तकालय-प्रणाली आवश्यक होगी, परन्तु एक समुचित रूप से संगठित परिचल-पुस्तकालयों[4] और पुस्तकों के विनिमय की प्रणाली के साथ लागत के लिये प्रतिषेधात्मक[5] होने की आवश्यकता नहीं है। पुस्तकालय शिक्षण-सम्भार आदि के साथ, प्रौढ़-शिक्षा-केन्द्रों के रूप में प्रयुक्त परिकरों में स्थित होने चाहियें।

(ट) *वैयक्तिक-प्रयत्न एवं राज्य*

प्रौढ़-शिक्षा की समस्या इतनी विशाल है और इसमें जन-रुचि इतनी स्पष्टतः वृद्धि पर रही है कि सहायता के लिये

1 Hired. 2 Reading Material. 3 Access.
4 Circulating Libraries. 5 Prohibitive

स्वैच्छिक[1] प्रयत्न की ओर देखना स्वाभाविक है। तथापि एक पूर्ण के रूप में प्रौढ़-शिक्षा की समस्या असाहाय्यित स्वैच्छिक प्रयत्न की सामर्थ्य के भीतर होने के लिये अत्यधिक विशाल है, इसका सङ्गठन कुछ भी क्यों न हो, इसका प्रचार कितना ही प्रभावशाली क्यों न हो, और वह जनता जो इसका समर्थन करती है कितनी ही तत्पर एवं उदार क्यों न हो। राज्य को इस समस्या का साधन करने के लिये प्राथमिक उत्तरदायित्व को स्वीकार करना ही चाहिये। राज्य को ऐसे सङ्गठनों एवं व्यक्तियों की, यदि वे राष्ट्रिय-योजना के सामान्य सिद्धान्तों के समनुरूप होने के लिये तैयार हैं और उनके शिक्षण कार्य के स्तर राज्य-स्तर से कम नहीं हैं तो, स्वैच्छिक सेवाओं का स्वागत करना चाहिये और समस्त सम्भव सहाय देनी चाहिये।

(ठ) *महिलायें*

यह स्पष्ट है कि प्रौढ़-शिक्षा के लिये पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का कार्य न केवल बृहत है, परन्तु अत्यन्त कठिन भी (है)। यह महिलाओं के सम्बन्ध में अधिक विशेष रूप से ऐसा है। सामाजिक रूढ़ियों के कारण उनकी अपनी विशिष्ट कठिनाइयों के अतिरिक्त, वे बाधायें, जो मनुष्यों को अपनी शिक्षा प्राप्त करने से रोकती हैं, उदाहरण के लिये मानसिक-तन्द्रा[2], आधुनिक उपायों के प्रति अनभिज्ञ अविश्वास, और अवकाश का अभाव, महिलाओं की स्थिति में अधिक भीषण हैं। अथापि, यदि अन्य समस्त दशायें भी युक्तियुक्त रूप से अनुकूल होतीं, एक लगभग दुर्गम्य बाधा तब भी महिला-अध्यापिकाओं के अभाव के कारण होगा। यह एक दुष्ट-चक्र[3]

---

1 Voluntary. 2 Lethargy, 3 Vicious Circle.

है, जो प्रभावशाली रूप से केवल तभी तोड़ा जायेगा जब एक राष्ट्रिय-शिक्षा-प्रणाली शिक्षित महिलाओं के अपने पूर्ण अभ्यंश[1] का उत्पादन कर रही है। इस बीच में, महिलाओं को साक्षर, और विशेषतः मातायें, बनाने का महत्व भावी सन्ततियों के लिये इतना महान् है कि जो कुछ किया जा सकता है किया जाना चाहिये। स्पष्ट रूप से महिलाओं में साक्षरता का स्तर किसी भी स्थिति में पुरुषों में के स्तर की अपेक्षा निम्न नहीं होना चाहिये। परन्तु, जब तक पर्याप्त संख्या में महिला-अध्यापिकायें प्राप्य नहीं हैं और जहाँ सामाजिक रूढ़ियाँ मिश्रित वर्गों की अनुज्ञा नहीं देती हैं, एक बड़ी मात्रा तक स्वयंसेवक अध्यापकों पर, यदि उनका प्रशिक्षण और अर्हतायें[2] सामान्यतः अपेक्षित से न्यून हों तो भी, निर्भर करना आवश्यक हो सकता है।

(ङ) *शुल्क*

यदि एक स्वैच्छिक आधार पर निरक्षरता परिशमित[3] होनी है तो शुल्क लेना व्यवहार्य न होगा। एक अधिक उच्च प्रकार के प्रौढ़-शिक्षा-वर्गों के लिये एक युक्तियुक्त शुल्क लिया जा सकता है। इस स्रोत से सम्भव आय की गणना नहीं की जा सकती है और किसी भी स्थिति में (यह) अपेक्षया अल्प ही होगी।

(ढ) *निरक्षरता-निरसन[4] की अवधि-सीमा*

मण्डल इच्छा करता है कि पच्चीस वर्ष से कम (वर्षों) में निरक्षरता को हटाना सम्भव होता, परन्तु वह इस निष्कर्ष पर आ चुका है कि यदि इस कार्य को समुचित रूप से किया जाना

---

1 Quota. 2 Qualifications. 3 Extinguished. 4 Elimination.

है तो केवल अध्यापकों की समस्या इसे अव्यवहार्य लघुतर अवधि बनाती है।

७—अध्यापकों का प्रशिक्षण

(क) प्रशिक्षण का महत्व

शैक्षणिक-प्रणाली में किसी व्यापक विकास की आधारभूत[1] अपेक्षा अध्यापकों की और उनके प्रशिक्षण के लिये आवश्यक संस्थाओं की व्यवस्था है। उपरोक्त को (संस्थाओं) केवल अपेक्षित व्यावसायिक प्रशिक्षण ही प्रदान नहीं करना चाहिये, परन्तु (उन्हें) जीवन का एक मार्ग भी, जो उस तरुण व्यक्ति अथवा स्त्री को, जो एक अध्यापक होने का विचार करती है, आकृष्ट करेगा और (उसके ऊपर) अपना चिन्ह बनायेगा, अन्तर्निविष्ट[2] (करना चाहिये)। शिक्षण को पर्याप्त रूप से परितोषित[3] होना चाहिये, परन्तु तथ्य यह है कि इसे अभिलाषी अध्यापकों पर उनके प्रशिक्षण के समस्त प्रक्रमों पर आरोपित एक व्यवसाय[4] और एक वृत्ति[5] भी होना चाहिये। एक संख्या (ऐसे) भारतीय अध्यापकों की भी है, जो अपना व्यावसायिक प्रशिक्षण विदेश[6] में लेते हैं, परन्तु इनकी संख्या ज्ञात नहीं है। मण्डल इसे अत्यन्त वाञ्छनीय समझता है कि चुने हुये अध्यापकों को व्यावसायिक प्रशिक्षण अथवा अन्वेषण के लिये विदेश जाने के लिये प्रत्येक प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये। इस प्रयोजन के लिये अध्ययन-अवकाश देने की प्रथा व्यापक रूप से विस्तृत की जानी जानी चाहिये।

---

1 Fundamental.   2 To inculcate.   3 Remunerated.
4 Vocation.   5 Profession.   6 Abroad.

(ख) विद्यमान प्रशिक्षण-प्रणाली के दोष

१—प्रशिक्षण-संस्थाओं की संख्या, जो आजकल अस्तित्व में हैं, भारत जैसे एक विशाल देश की आवश्यकताओं के लिये पूर्णतः अपर्याप्त हैं।

२—इसके अतिरिक्त, शिक्षण का प्रकार, जो कि ये संस्थायें देती हैं, प्रायः गम्भीर समालोचना के लिये खुला है।

३—यह शिक्षा में आधुनिक विचारों के साथ पद रखने में विफल रहती है और सिद्धान्त एवं व्यवहार के बीच अपर्याप्त समन्वय होता है।

४—पाठ्यक्रम कठोर होने के लिये प्रवृत्त होता है और प्रशिक्षण की दशायें प्रशिक्षण में छात्र को अथवा उसके अध्यापकों को भी, निश्चित रूप से यह निश्चित करने का कि वह शिक्षण के लिये वस्तुतः उपयुक्त है अथवा नहीं, दुर्लभतः एक अवसर देती हैं। परिणाम यह है कि अनेक अनुपयुक्त अभ्यर्थी[1], जो साधारण रूप में छँट जाने चाहियें, शिक्षण-व्यवसाय में अपना मार्ग प्राप्त कर लेते हैं।

(ग) महिला-अध्यापिकाओं का सेवायोजन[2]

इस विषय में यह सुझाया जा सकता है कि विवाहित स्त्रियाँ एवं विधवायें इस व्यवसाय में वर्धी रूप से सेवायुक्त होनी चाहियें, क्योंकि अब यह अनुभव किया जा रहा है कि विवाह एवं मातृत्व ज्ञान और अनुभव की एक पृष्ठभूमि प्रदान करते हैं, जो कि तरुण (व्यक्तियों) की अवेक्षा[3] एवं प्रशिक्षण को सौंपी हुई स्त्रियों के लिये अप्राक्कल्य[4] मूल्य का होता है।

---

1 Candidates. 2 Employment. 3 Care. 4 Inestimable.

(घ) प्रशिक्षण-सिद्धान्त

मण्डल ने यह सिद्धान्त अभिस्वीकृत[1] किया है कि समस्त अध्यापक प्रशिक्षित होने चाहियें। अतः यह स्पष्ट है कि संस्थाओं की विद्यमान संख्या प्रवर्तमान स्थापन[2] के अपव्यय[3] की पूर्ति और संभवतः उन विद्यमान अध्यापकों को, जो अप्रशिक्षित हैं, प्रशिक्षण प्रदान करने की अपेक्षा अधिक (कुछ) नहीं कर सकती : वे इसे दक्ष रूप में करने के योग्य केवल तब होंगी जब वे पुनःसंगठित की जा चुकी हैं और आधुनिक अपेक्षाओं के साथ पंक्तिबन्धन में ला दी गई हैं। अध्यापकों की विशाल सेना, जिसकी एक राष्ट्रिय-प्रणाली को आवश्यकता होगी, प्रदान करने के लिये नई प्रशिक्षण-संस्थाओं की एक बड़ी संख्या आवश्यक होगी।

(ङ) प्रशिक्षण की अवधि

केन्द्रीय-मन्त्रणा-मण्डल अपनी समिति के (इन) अभिस्तावों को स्वीकार कर चुका है कि प्रशिक्षण की सामान्य अवधियाँ निम्नलिखित होनी चाहियें : पूर्व-प्राथमिक अध्यापकों के लिये दो वर्ष, कनिष्ठ आधारभूत[4] (प्राथमिक) के लिये दो वर्ष ज्येष्ठ आधारभूत[5] (मध्यम) के लिये तीन वर्ष, उच्च पाठशालाओं में अस्नातकों[6] के लिये दो वर्ष, और उच्च पाठशालाओं में स्नातकत्व के पश्चात् स्नातकों के लिये एक वर्ष। इसके अतिरिक्त, पूर्व-प्राथमिक अथवा शिशु-शाला के अध्यापकों के लिये विशेष ध्यान की अपेक्षा होगी, जोकि (उनकी) वैयक्तिक विशेषताओं एवं अभियोग्यताओं[7] का लेखा लेगा जबकि ज्येष्ठ आधारभूत

1 Adopted.　2 Establishment.　3 Wastage.　4 Junior Basic.　5 Senior Basic,　6 Non-graduates.　7 Aptitudes.

(मध्यम) पाठशालाओं के लिये अध्यापकों को शिल्पों में विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता होगी। उच्च पाठशालाओं के लिये अस्नातक अध्यापकों के प्रशिक्षण को एक कुछ भिन्न अनुस्थापन[1] देना होगा, क्योंकि उनमें से अधिकांश चुने हुये बच्चों को साहित्यिक विषय पढ़ाने के लिये बुलाये जायेंगे। अतः, प्रशिक्षण की अवधि में उनकी शैक्षणिक पृष्ठभूमि को सबल करना और उन्हें शिक्षण-रीतियों में शिक्षा देना भी आवश्यक होगा।

(च) *प्रशिक्षण-पाठशालाओं के प्ररूप*[2]

प्रशिक्षण पाठशाला के न्यूनातिन्यून तीन पृथक् प्ररूप अपेक्षित होने के लिये प्रतीत होंगे, अर्थात् :—

१—पूर्व-पाठशाला अध्यापकों के लिये।

२—आधारभूत (प्राथमिक एवं मध्यम) अध्यापकों के लिये।

३—उच्च पाठशालाओं में अस्नातक अध्यापकों के लिये।

(छ) *प्रशिक्षण के लिये प्रवरण*[3] *का आधार*

विचार के लिये अगला प्रश्न (यह) है कि प्रशिक्षण के लिये प्रवरण का आधार क्या होना चाहिये। इस सम्बन्ध में यह सुझाया जाता है कि इङ्गलैण्ड के कुछ भागों में प्रचलित (प्रणाली) के समान एक प्रणाली अभिस्वीकृत[4] हो सकती है। इस प्रणाली में वे उपयुक्त छात्र, जो अध्यापक होने की इच्छा करते हैं, उनकी उच्च-पाठशाला-पाठचर्या की अन्तिम दो वर्षों की अवधि में चुन लिये जाते हैं। वे मुख्यों[5] एवं निरीक्षकों द्वारा अवलोकनाधीन[6] रखे जाते हैं और (उन्हें) अन्य पाठशालाओं को देखने तथा वास्तविक शिक्षण पर यत्न करने का अवसर

---

1 Orientation. 2 Types. 3 Selection 4 Adopted.
5 Heads. 6 Under observation.

दिया जाता है। इस साधन से, संदिग्ध व्यक्ति छन जाते हैं। ऐसे छात्र प्रायः विशेष छात्रवृतियाँ प्राप्त करते हैं। इस प्रणाली से, अन्य (लाभों) में, यह निश्चित करने का लाभ (भी) होता है कि अभिलाषी अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में प्रविष्ट किये जाने से पूर्व प्रथम दृष्ट्या[1] क्षतिपूर्ति करने के लिये सम्भाव्य हैं।

(ज) पाठचर्या

प्रशिक्षण महाविद्यालय में प्रथम वर्ष की अवधि में पाठ-चर्या, पाठशालाओं के वीक्षणों[2], वाद-विवादों, और विद्यार्थियों की रुचि को उद्दीप्त करने के अन्य साधनों द्वारा अनुपूरित, सामान्य एवं व्यावसायिक विषयों के अध्ययन में निरत होनी चाहिये। इस अवधि का पर्याप्त भाग अध्यापन-अभ्यास के लिये अर्पित होना चाहिये, जो कि द्वितीय वर्ष के लिये कभी पूर्णतः दूर नहीं करना चाहिये। जब कभी एक प्रशिक्षण महाविद्यालय की स्थापना की जाती है, उन समस्त पाठशालाओं को, जो सुगमतापूर्वक प्रवेश्य[3] हैं, अध्यापन-अभ्यास के लिये प्राप्य बना लिया जाना चाहिये। जब तक यह नहीं किया जाता है एक अभिसंविदित[4] अवधि के भीतर बड़ी संख्याओं को प्रशिक्षित करना कठिन होगा। अथापि, सर्वोत्तम अध्यापन-अभ्यास साधारण पाठशालाओं में ही किया जा सकता है, क्योंकि प्रशिक्षण महाविद्यालयों से संबद्ध आदर्श पाठशालाओं का वायुमण्डल प्रायः कृत्रिम होता है। द्वितीय वर्ष की पाठचर्या एक अधिक गहन[5] प्रवृत्ति की होनी चाहिये : विद्यार्थियों को अधिक व्यापक रूप से पढ़ने के लिये प्रोत्साहित किया जाना चाहिये और अवबोध्यों[6] पर अधिक बल रखा जाना चाहिये।

---

1 *prima facie*　2 Visits.　3 Accessible.　4 Stipulated.
5 Intensvie.　6 Tutorials.

शिक्षार्थियों को अपनी विशेष अभियोग्यताओं का अनुसरण करने के लिये भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। द्वितीय वर्ष की पाठचर्या के अन्त पर उन विद्यार्थियों को, जो शिल्प-कार्य में विशेष रुचि अथवा उसके लिये अभियोग्यता दिखा चुके हैं, ज्येष्ठ आधारभूत (मध्यम) पाठशालाओं में सेवा के लिये अथवा उच्च पाठशालाओं में शिल्प-अध्यापकों के रूप में (सेवा करने के लिये), एक तृतीय वर्ष के प्रशिक्षण के लिये चुन लिया जाना चाहिये। उपयुक्त पाठचर्या के अन्त पर सफल विद्यार्थियों को प्रदत्त अध्यापक-प्रमाणपत्र[1] के मूल्य को बढ़ाने के लिये प्रत्येक प्रयत्न किया जाना चाहिये।

(झ) उप-स्नातक[2]-प्रशिक्षण-महाविद्यालय में प्रशिक्षण एकक[3]

लगभग ३०० शिक्षार्थियों अथवा एक द्विवर्षीय-पाठचर्या के लिये १५० के वार्षिक प्रवेश के साथ एक संस्था एक प्रशिक्षण महाविद्यालय के लिये एक युक्ति-युक्त एकक होगी।

(ञ) स्नातक-प्रशिक्षण-महाविद्यालय में प्रशिक्षण एकक

स्नातकों के लिये एक प्रशिक्षण महाविद्यालय के लिये एकक २०० से अधिक नहीं होनी चाहिये, यद्यपि एक एकीय[4] विश्व-विद्यालय का शिक्षा-विभाग अधिक बड़ा हो सकता है।

(ट) शुल्क एवं संधारण[5]

यदि प्रस्थापित[6] वेतनों के लिये अध्यापकों की एक पर्याप्त प्रदाय[7] प्राप्त करनी है तो कोई शिक्षण-शुल्क लेना व्यवहार्य न होगा। जहाँ तक संधारण का सम्बन्ध है, अधिकांश प्रशिक्षण संस्थायें आवश्यक रूप से निवास[8] (संस्थायें) होंगी, और

1 Teacher's Certificate. 2 Under graduates. 3 Unit.
4 Unitary. 5 Maintenance. 6 Proposed. 7 Supply.
8 Residential.

सामान्य दशाओं में २५०) प्रति व्यक्ति में छात्रावास-शुल्कों का समावेश होना चाहिये। विद्यार्थियों के एक उचित अनुपात को इसकी (छात्रावास-शुल्क) ओर कुछ अंशदान करने के योग्य होना चाहिये और यह माना जा सकता है कि समस्त लागत का आधा इस प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है।

(ठ) स्नातक-प्रशिक्षण-महाविद्यालयों का विशेष कर्तव्य : अन्वेषण

उस प्रशिक्षण महाविद्यालय को, जो केवल स्नातक-अध्यापकों के लिये ही अभिप्रेत[1] है, सामान्यतः एक वर्ष की पाठचर्या प्रदान करनी चाहिये, परन्तु (उसमें) उनके लिये, जो अन्वेषण चलाने की अथवा वर्ष की पाठचर्या की पूर्ति के पश्चात् अध्यापन की विशेष रेखाओं का अनुसरण करने की इच्छा करते हैं, सुविधायें भी प्रदान की जा सकती हैं। विश्वविद्यालयों अथवा महाविद्यालयों में उनकी विश्वविद्यालय-पाठचर्या भर, संभाव्य-अध्यापकों के अन्य व्यवसायों के लिये विद्यार्थी-प्रशिक्षण से पृथक्करण को, जहाँ भी संभव हो, टाला जाना चाहिये।

(ड) महिला एवं पुरुष-अध्यापकों का अनुपात

मण्डल के मत में पूर्व-प्राथमिक पाठशालाओं में केवल महिला-अध्यापिकायें कर्मचारी होनी चाहियें। कनिष्ठ आधारभूत पाठशालाओं में, अध्यापकों का न्यूनातिन्यून $\frac{3}{5}$ अन्ततः महिलायें होना चाहिये और यह सत्य रहेगा, भले ही वे मिश्रित[2] अथवा एकलिङ्ग[3] पाठशालाओं के रूप में सङ्गठित की जाती हैं। बालिकाओं के लिये ज्येष्ठ आधारभूत (मध्यम) और उच्च पाठशालाओं के लिये भी महिला-अध्यापिकायें अपेक्षित होंगी। अतः, आदर्शतः अध्यापन-स्थापन में पुरुषों की अपेक्षा

---

1 Meant. 2 Mixed. 3 Single-Sex.

पर्याप्त रूप से अधिक महिलायें अन्तर्विष्ट[1] होनी चाहियें, परन्तु प्रारम्भ में महिला-अध्यापिकाओं का एक अत्यन्त गम्भीर अभाव होगा।

(ढ) *अन्य प्रकार की प्रशिक्षण-संस्थायें*

प्रावैधिक संस्थाओं (औद्योगिक उच्च विद्यालयों के अतिरिक्त) तथा बाधित[2] बच्चों के लिये विशेष पाठशालाओं के लिये अध्यापकों के प्रशिक्षण के विषय में आजकल विस्तृत योजना बहीरेखित[3] नहीं की जा सकती, क्योंकि यह पूर्वानुमान करना असम्भव है कि ऐसे कितने अध्यापक अपेक्षित होंगे। नियमतः प्रावैधिक एवं वाणिज्यिक-अध्यापक उद्योग में अपना व्यावहारिक-अनुभव[4] पायेंगे और अपना सांशैक्षिक-प्रशिक्षण[5] स्वयं औद्योगिक-संस्थाओं में। उनकी स्थिति में विशेष प्रशिक्षण-महाविद्यालय अपेक्षित न होंगे।

(ण) *अभिनवन-पाठचर्या*[6]

अध्यापकों के वास्तविक प्रशिक्षण के लिये उपरि-प्रबन्धों के अतिरिक्त, प्रशिक्षित अध्यापकों को अद्यावधिक[7] रखने के लिये मण्डल के अभिस्तावों के अनुसार बार-बार अभिनवन-पाठचर्यायें प्रदान की जानी चाहियें। ऐसी पाठचर्याओं में पाठ्यक्रम के समस्त विषय और सामान्य अभिरुचि के नवीन विचारों एवं रीतियों का भी समावेश होना चाहिये।

८—पाठशाला-बालक का स्वास्थ्य

(क) *प्रस्तावों का आधार*

इस अध्याय के प्रस्ताव मुख्यतः पाठशाला-बालकों के

---

1 To contain. 2 Handicapped. 3 Outlined.
4 Practical Experience. 5 Pedagogical Training.
6 Refresher Courses. 7 Up-to-date.

स्वास्थ्य-निरीक्षण और पाठशालाओं में स्वास्थ्यविज्ञान के अध्यापन पर प्रतिवेदन[1] करने के लिये १९४१ में शिक्षा एवं स्वास्थ्य के केन्द्रीय-मन्त्रणा-मण्डलों द्वारा नियुक्त संयुक्त-समिति[2] की प्राप्तियों[3] पर आधारित हैं।

(ख) स्वास्थ्य-अभिरक्षण[4] का महत्व

पाठशालाओं में शारीरिक स्वास्थ्य बढ़ाकर भावी सन्ततियों के स्वास्थ्य की अभिरक्षा करने का महत्व, अभिनव वर्षों में, समस्त सभ्यकृत समुदायों द्वारा स्वीकृत किया जा चुका है। यह सामान्यतः प्रस्वीकृत किया जाता है कि केवल उन बच्चों से, जो सुस्थित स्वास्थ्य में हैं, प्रदत्त शैक्षणिक सुविधाओं का पूर्ण लाभ लेने की प्रत्याशा की जा सकती है। अब एक दक्ष पाठशाला-स्वास्थ्य-सेवा समस्त प्रगतिशील देशों में शिक्षा की लोक-प्रणाली के एक आवश्यक भाग के रूप में समझी जाती है।

(ग) पाठशाला-स्वास्थ्य-सेवा के उद्देश्य एवं कार्य

पाठशाला-स्वास्थ्य-सेवा का उद्देश्य प्रत्येक पाठशाला-बालक का स्वस्थ शारीरिक-विकास है। जहाँ बच्चे अस्वस्थ अथवा सदोष होते हैं, (वहाँ) इसका कार्य पहले तो यह सुनिश्चित करना है कि दोष क्या है और फिर यह सुनिश्चित करना कि ठीक उपचार[5] प्राप्य है; जहाँ वे सामान्य स्वास्थ्य में हैं, इसका कार्य शारीरिक-क्रिया और स्वास्थ्यविज्ञान के सिद्धान्तों एवं व्यवहार में, जोकि स्वस्थ को स्वस्थतर बनायेगा, एक प्रशिक्षण देना है। क्षेत्र में पूर्वोक्त कार्य मुख्यतः भैषजिक[6]

---

1 To report. 2 Joint Committee. 3 Findings.
4 Safeguarding. 5 Treatment. 6 Medical.

है, उत्तरोक्त मुख्यतः शैक्षणिक है। पाठशाला-स्वास्थ्य-निरीक्षण दोषों की संख्याओं का संग्रह करने की अपेक्षा बहुत अधिक कुछ होता है, (और) पाठशाला-विरुजालय[1] एक बाह्य-रोगी-औषधालय[2] की अपेक्षा बहुत अधिक कुछ और।

(घ) भारत में पाठशाला-स्वास्थ्य-समस्या की विशेषताओं के कारण एवं उसके दोष

१—भारत में निर्धनता एवं अनभिज्ञता के कारण यह समस्या जनपुञ्ज[3] की निर्धनता और निम्न स्वास्थ्य-स्तरों, वैयक्तिक एवं सार्वजनिक दोनों, से उठने वाली विशेष विशेषतायें रखती है।

२—भारत में लोक-स्वास्थ्य-सेवाओं का विकास भी तुलनात्मक दृष्टि से अभिनव[4] उत्पत्ति का है और उत्तरदायी अधिकारियों ने अब तक भैषजिक-सहायता[5] तथा व्यापक रोगों के नियन्त्रण की अधिक तात्कालिक समस्याओं की ओर अपने ध्यान का अधिकांश दिया है।

३—वे सामान्यतः महत्वपूर्ण नगरों तक सीमित थे, केवल कुछ पाठशाला-स्वास्थ्य-अधिकारी नियुक्त किये जाते थे, और जहाँ प्राप्य (होती थीं वहाँ), नगरपालिका अथवा जिला-स्वास्थ्य-अधिकारियों की सेवायें उपयोजित[6] होती थीं। चिकित्सकों एवं उपचारिकाओं के अभाव के कारण इन योजनाओं ने एक पूर्ण के रूप में पाठशाला-जनसंख्या की झल्ली[7] को केवल छुआ ही है।

1 School Clinic. 2 Outpatient Dispensary. 3 Masses.
4 Recent. 5 Medical Relief, 6 Utilized.
7 Fringe.

४—प्राथमिक पाठशालाओं की अपेक्षा, जहाँ स्पष्टतः किसी भी पाठशाला-स्वास्थ्य-सेवा का आरम्भ होना चाहिये, मध्यम तथा उच्च पाठशालाओं की ओर अधिक ध्यान दिया गया है।

५—अधिकांश स्थितियों में लड़कियाँ इन योजनाओं के सर्वथा बाहर छोड़ दी गई हैं।

६—इस विषय में कि शासन का कौनसा विभाग (इन योजनाओं का) प्रभारी[1] हो, कोई निश्चित नीति भी नहीं रही है, और उनके मौलिक महत्व के अधिमूल्यन[2] का एक पूर्ण अभाव रहा है।

७—शिक्षा की दूसरी किसी शाखा में वैत्तिक तङ्गी अथवा कृपणता ने (इससे) अधिक भीषण परिणाम उत्पादित नहीं किये हैं।

(ङ) *स्वास्थ्य-निरीक्षण की आयु*

बच्चों के स्वास्थ्य-निरीक्षण के लिये प्रथम आवश्यकता वस्तुतः पूर्व-पाठशाला-प्रक्रम पर उठती है और इस प्रयोजन के लिये प्रसूति[3] एवं शिशु-कल्याण-कार्यकर्ताओं की सहायता प्राप्त करना आवश्यक होगा। स्वास्थ्य की दृष्टि से पाठशाला-प्रवेश की आयु, जोकि बच्चे को नियमित स्वास्थ्य-निरीक्षण के अधीन ला देगी, छः की अपेक्षा पाँच होनी चाहिये।

(च) *स्वास्थ्य-निरीक्षण*

यह प्राक्कलन[4] किया जाता है कि इस देश में पाठशाला-बालकों के ५० प्रतिशत को किसी प्रकार की स्वास्थ्य-अवेक्षा[5] अथवा अवलोकन की आवश्यकता होगी। अन्य देशों में अनुभव

---

1 In-charge. 2 Appreciation. 3 Maternity.
4 Estimated. 5 Medical Attention.

यह दिखलाता है कि प्रति वर्ष समस्त छात्रों के एक नैत्यक[1] निरीक्षण.में प्राप्त परिणामों के अनुपात के बाहर कार्य की एक मात्रा अन्तर्ग्रस्त होती है और (वह) वस्तुत: आवश्यक नहीं है। संयुक्त-समिति ने अभिस्तावित किया था कि नैत्यक परीक्षण, (i) लगभग षष्ठ वर्ष पर एक आधारभूत (प्राथमिक) पाठशाला में प्रवेश पर, (ii) एकादश वर्ष पर, और (iii) चतुर्दश वर्ष में छोड़ने से पूर्व, होना चाहिये। उच्च पाठशालाओं में छात्रों के लिये सोलह अथवा सत्रह की आयु पर एक अन्तिम परीक्षण वाञ्छनीय है। एक स्वास्थ्य-निरीक्षण-योजना रहित एक वैयक्तिक[2] पाठशाला से एक माध्यमिक पाठशाला को जाने वाले बच्चों को प्रवेश के पश्चात् यथा-शक्य शीघ्र एक नैत्यक परीक्षण दिया जाना चाहिये। प्रत्येक बच्चे के लिये एक स्वास्थ्य-अभिलेख[3] संधृत[4] किया जायगा, जो बच्चे के साथ तब जायगा जब वह एक पाठशाला से दूसरी को जाता है। नैत्यक परीक्षणों के बीच में माता-पिता अथवा स्वयं (अध्यापकों) द्वारा अवलोकित दोषों की स्थितियों का, पाठशाला-चिकित्सक को ध्यान दिलाने के लिये अध्यापकों द्वारा सावधानी ली जानी चाहिये। अध्यापकों को एक वर्ष में दो बार प्रत्येक छात्र की ऊंचाई एवं भार का एक अभिलेख भी रखना चाहिये और असामान्यताओं[5] को चिकित्सक के ध्यान में लाना चाहिये।

परीक्षण भुजायन-परीक्षाओं[6] में और कुपोषण[7] के चिन्हों के उपलम्भन[8] में और कान, नाक तथा कण्ठ की दशाओं में

---

1 Routine. 2 Private. 3 Medical Record. 4 To maintain.
5 Abnormalities. 6 Refraction Tests. 7 Malnutrition.
8 Protection.

विशेष प्रशिक्षण के साथ आधुनिक वैज्ञानिक आयुर्विज्ञान के एक अर्हता-प्राप्त[1] भेषजवृत्तिक[2] द्वारा सञ्चालित होना चाहिये। निरीक्षण पाठशाला-परिकरों में होना चाहिये, और यदि सम्भव हो तो माता-पिता की उपस्थिति में। पाठशाला के शारीरिक-शिक्षक[3] को भी, यदि एक है तो, निरीक्षण से संबद्ध होना चाहिये, क्योंकि वह उपयुक्त व्यायामों द्वारा कुछ दोषों के अपनयन[4] में सहायता करने के योग्य हो सकता (सकती) है। चिकित्सक को अपने निरीक्षण के परिणामों को सदैव मुख्या-ध्यापक के साथ पूर्ण करना चाहिये।

स्वास्थ्य-निरीक्षण, जब तक यह आविष्कृत दोषों के उपचार और जहाँ आवश्यक हो वहाँ रोगियों का पीछा करने के लिये प्रबन्धों के साथ शृंखलांकित न हो, कम मूल्य का ही होता है। ऐसी स्वल्प संख्यायें जैसी प्राप्य हैं सूचित करती हैं कि भारत में पाठशाला-बच्चों की मुख्य निर्योग्यतायें[5] परिवर्धित गलावाताम[6], ग्रसनीवाताम[7], दन्ताशना[8], पूयस्राव[9], कुपोषण और सदोष दृष्टि होती हैं। आविष्कृत दोषों का अपनयन अल्पतम समय में और पाठशाला-उपस्थिति में न्यूनतम हस्तक्षेप के साथ संसाधित होना चाहिये।

(छ) *पाठशाला-विरुजालय*[10]

अध्यापक-सुयुक्त एवं औषधियों इत्यादि से सुसज्ज, (और) पाठशालाओं से सुविधाजनक दूरियों पर, केवल पाठशाला-

---

1 Qualified. 2 Medical Practitioner. 3 Physical Instructor. 4 Removal. 5 Disabilities. 6 Enlarged Tonsils. 7 Adenoids. 8 Dental Caries. 9 Pyorrhoea. 10 School Clinics.

विरुजालयों की व्यवस्था ही उपचार के लिये ठीक सुविधायें प्रदान करेगी। यदि विकास-कार्यक्रम की प्रारम्भिक अवस्था में ऐसे पाठशाला-विरुजालयों की व्यवस्था अव्यवहार्य है तो आगामी सर्वोत्तम योजना, स्थानीय चिकित्सालय में केवल पाठशाला-बालकों के लिये सौंपा गया एक पृथक् समय, अधिमानतः अपराह्न में, प्राप्त करना है। विरुजालयों के मार्ग में जो भी प्रबन्ध किये जा सकते हों, लघु रोगों का स्वयं पाठशाला में उपचार करना आवश्यक होगा। संक्रमण-काल में, जबकि पाठशाला उपचारिकायें[1] पर्याप्त संख्याओं में प्रशिक्षित की जा रही हैं, कार्य, यथा-शक्य व्यवहार्य, पाठशाला-चिकित्सक के अनुदेशों के अधीन अध्यापक द्वारा किया जायगा। दोषों के तात्कालिक उपचार से अलग, यदि उपागण्य[2] प्रगति प्राप्त होनी है तो पाठशाला-बालकों में रोगों के प्रह्रास एवं निवारण के लिये घरों में कोई अभियान ले जाया जाना चाहिये। इस विषय में, माता-पिता का सहयोग प्राप्त करने के उद्देश्य से अध्यापकों एवं स्वास्थ्य-दर्शकों[3] के मध्य निकट सम्पर्क महान मूल्य का होगा।

(ज) उपचार-योजनायें

१—कुपोषण[4]

क्योंकि कुपोषण बच्चों की एक पर्याप्त प्रतिशतता को प्रभावित करता है, उपचार की योजनाओं में, जहाँ आवश्यक हो वहाँ मध्याह्न-भोजन[5] समेत, अनुपूरक-पोषण[6] की व्यवस्था का समावेश होना चाहिये। यह पहले ही बतलाया जा चुका है

---

1 School Nurses, 2 Appreciable. 3 Health Visitors.
4 Malnutrition. 5 Mid-day Meal. 6 Supplementary Nourishment.

कि इस देश में पाठशाला-बालकों में स्वास्थ्य-दोषों के मुख्य कारणों में से एक कुपोषण है: यह अवस्था अधःपोषण[1] अथवा असन्तुलित-आहार अथवा दोनों के कारण हो सकती है। अधः-पोषण के विषय में, पाठशाला में एक मध्याह्न-भोजन की व्यवस्था, कुपोषण का प्रतिरोध करने के लिये और पाठशाला-दिवस के अन्त पर प्रदत्त पाठों द्वारा लाभ उठाने के लिये बच्चों को समर्थ बनाने के लिये, एक उत्तम वस्तु होने के लिये प्रस्वीकृत है। यदि समुचित रूप से सङ्गठित की जाय तो यह सामाजिक-प्रशिक्षण के लिये एक मूल्यवान् अवसर भी देती है। एक असन्तुलित आहार के कारण कुपोषण के विषय में, पोषण के आधारभूत सिद्धान्तों से युक्त सरल पाठ्य-पुस्तकें विभिन्न भारतीय-भाषाओं में प्राप्य बनाई जानी चाहियें।

२—छात्रों की वैयक्तिक स्वास्थ्य-रक्षा[2]

पाठशाला का वायुमण्डल और अध्यापक द्वारा उपस्थित उदाहरण छात्र की वैयक्तिक-स्वास्थ्य-रक्षा पर एक महत्वपूर्ण प्रभाव रखते हैं। अतः, यह सुनिश्चित करने के लिये पग उठाये जाने चाहियें कि अध्यापक स्वयं शारीरतः स्वस्थ हैं। एक प्रशिक्षण महाविद्यालय में प्रवेश से पूर्व उनकी स्वास्थ्य-परीक्षा होनी चाहिये और उनके अपने स्वास्थ्य तथा पाठशाला-जन-संख्या की स्वास्थ्य-रक्षा के लिये नियुक्ति के पश्चात् समयान्तरों[3] पर पुनः परीक्षा होनी चाहिये। यह भी सामान्यतः ज्ञात बना दिया जाना चाहिये कि उसके अन्य सद्गुण चाहे जो हों, एक अध्यापक, जो यह नहीं देखता कि वह और उसकी पाठशाला

---

1 Under-Nourishment. 2 Personal Hygiene. 3 Intervals.

दोनों स्वच्छ हैं, पदोन्नति प्राप्त नहीं करेगा। पाठशाला आरम्भ होने से पूर्व प्रति दिन स्वास्थ्य एवं स्वच्छता का एक संयुक्त प्रदर्शन होना चाहिये।

३—भवन

वे भवन, जिनमें पाठशालायें स्थित हैं, यदि वे इस प्रयोजन के लिये विशेष रूप से निर्मित नहीं किये गये हैं तो, स्थानीय-स्वास्थ्य-अधिकारियों द्वारा उपयुक्त एवं स्वास्थ्यकारी के रूप में प्रमाणित होने चाहियें। जहाँ नवीन पाठशालायें निर्मित की जाती हैं (वहाँ), वे पाठशाला-भवनों पर मण्डल के प्रतिवेदन में विहित[1] प्रमापों[2] के समनुरूप होनी चाहियें। समस्त स्थितियों में प्रकाश, संवातन[3], तापन[4] अथवा शीतलायमान[5], स्वास्थ्यप्रद पीने के जल की व्यवस्था, और स्वच्छ शौचागारों की ओर यथोचित ध्यान दिया जाना चाहिये।

४—पाठशाला-स्वच्छन[6]

पाठशाला और इसके आसपास के क्षेत्रों को स्वच्छ करने के लिये बच्चों द्वारा (किये गये) सहकारी[7] प्रयत्नों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। ऐसे प्रयत्न, बच्चों को योग्य एवं स्वस्थ रखने के अतिरिक्त, उन्हें लाभप्रद नागरिक बनाने में (भी) सहायता करेंगे।

५—स्वास्थ्य-रक्षा में शिक्षण

स्वास्थ्य-सेवा से अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि बच्चों को स्वास्थ्य-रक्षा में समुचित शिक्षण प्राप्त करना चाहिये। इस विषय में पाठशालाओं के पाठ्यक्रम

---

1 Prescribed. 2 Standards. 3 Ventilation, 4 Heating.
5 Cooling. 6 Cleaning up. 7 Co-oprative.

और अध्यापक की सज्जा एवं प्रशिक्षण विशेष ध्यान के लिये आह्वान करते हैं। व्यावहारिक स्वास्थ्य-रक्षा अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिये समस्त पाठ्यक्रमों में एक अनिवार्य विषय होना चाहिये और पूर्व-प्राथमिक तथा आधारभूत (प्राथमिक एवं मध्यम) प्रक्रमों के लिये अध्यापकों के प्रशिक्षण में इस विषय पर विशेष बल रखा जाना चाहिये। प्रशिक्षण महाविद्यालयों में इस विषय में पाठ्यविषय को संशोधित होने और आधुनिक पाठशाला-स्वास्थ्य-सेवा में एक दक्ष भाग लेने के लिये अध्यापक को सज्जित करने के लिये अद्यावधिक[1] बनाये जाने की आवश्यकता है। भारत में स्वास्थ्य-रक्षा के विशिष्ट वैयक्तिक, सामुदायिक[2], और पर्यावरिक[3] पक्षों की दृष्टि से, जो एक कोष्ण[4] जलवायु के (पक्षों) से विस्तृत रूप से भिन्न होते हैं, भारतीय दशाओं से सम्बन्ध रखने वाली पाठ्य-पुस्तकें अपरिहार्य[5] हैं। पाठशाला-अध्यापकों द्वारा प्रयोग के लिये स्वास्थ्य-शिक्षा पर एक हस्त-पुस्तक[6] भी महान मूल्य की होगी और इसके लिये कि इस विषय में अध्यापक की अभिरुचि जीवित बनी रहे, स्वास्थ्य-रक्षा में अभिनवन-पाठ्यक्रम[7], वारंवार प्रदान किये जाने चाहियें।

प्रारम्भ में, स्वास्थ्य-रक्षा में बच्चों की शिक्षा पूर्णतः व्यावहारिक रेखाओं पर निरत और मुख्यतः वैयक्तिक स्वास्थ्य-रक्षा के लिये होनी चाहिए। स्वास्थ्य-विषयों में बच्चों का सक्रिय एवं तत्पर सहयोग लोकप्रिय आन्दोलनों और क्रीड़ाओं, यथा कनिष्ठ रक्त-स्वस्तिक[8] एवं कनिष्ठ रक्त-स्वस्तिक-स्वास्थ्य-

---

1 Up-to-date. 2 Communal. 3 Environmental.
4 Temperate. 5 Indispensable. 6 Handbook.
7 Refresher Course. 8 The Junior Red Cross.

क्रीड़ा[1] द्वारा सर्वोत्तम प्राप्त किया जाता है। उच्च वर्गों में, छात्र अपनी क्रियाओं को पाठशाला से बाहर समुदाय तक विस्तृत कर सकते हैं। मैकैञ्जी-पाठशाला-प्रथमोचार-पाठ्यक्रम[2], स्वास्थ्य-रक्षा, और स्वच्छता मूल्यवान होने चाहियें और लड़कियों को उच्च वर्गों में बाल-कल्याण-केन्द्रों के लिये वीक्षणों[3] के साथ संयुक्त[4] मातृकला में प्रशिक्षण प्राप्त करना चाहिये।

६—शारीरिक-शिक्षण

भारत में स्वास्थ्य-सेवा की भांति शारीरिक-शिक्षण ने भी प्राथमिक प्रक्रम की अपेक्षा माध्यमिक (प्रक्रम) में अधिक ध्यान प्राप्त किया है। जैसाकि सामान्य है, लड़कियों का स्वास्थ्य-शिक्षण लड़कों के (स्वास्थ्य-शिक्षण) से पीछे रहता है। प्रशिक्षित शिक्षकों का सेवायोजन[5] माध्यमिक पाठशालाओं तक सीमित है और दिये जाने वाले व्यायामों के प्ररूप कुछ स्थितियों में प्राचीन सजधज के हैं। अनेक पाठशालाओं में दिवस के अन्त पर एक समय, जिसका यदि सम्भव हो तो परिहार[6] किया जाना चाहिये, शारीरिक-शिक्षण होता है। समस्त बच्चों को शारीरिक-शिक्षण प्राप्त करना चाहिये, यद्यपि वह रूप, जिसे यह ग्रहण करता है, स्वास्थ्य-मन्त्रणा के प्रकाश में वैयक्तिक स्थितियों में आपरिवर्तित[7] किया जा सकता है। अधिक औपचारिक व्यायामों के अतिरिक्त शारीरिक-शिक्षण में संगठित क्रीड़ाओं और समामेलित क्रियाओं[8] के अन्य लाभप्रद रूपों का (भी) समावेश होना चाहिये।

---

1 The Junior Red Cross Health Game. 3 The Mackenzie School Course of First Aid. 3 Visits. 4 Combined. 5 Employment. 6 To avoid. 7 To modify. 8 Corporate Activity.

७—शिक्षक-वर्ग एवं प्रशासनात्मक सङ्गठन

अनिवार्य शारीरिक-शिक्षण की प्रणाली से सन्तोषजनक परिणामों की उत्पत्ति के लिये शिक्षक-वर्ग की दक्षता और समुचित प्रशासनात्मक सङ्गठन अपेक्षित हैं। प्रत्येक शिक्षा-विभाग के मुख्यालयों[1] पर पाठशालाओं एवं महाविद्यालयों में योजना का संगठन करने के लिये एक अनुभवी एवं सुयोग्य अधिकारी होना चाहिये। उसके अधीन प्रत्येक जिले में एक जिला-स्वास्थ्य-शिक्षण-निरीक्षक[2] होना चाहिये। लड़कियों में स्वास्थ्य-शिक्षण की प्रगति की गति बढ़ाने के लिये प्रत्येक प्रयत्न किया जाना चाहिये और इसे देखने-भालने के लिये सुयोग्य संघटनकर्ताओं की नियुक्ति आवश्यक है।

८—स्वास्थ्य-चेतना का विकास

समामेलित-क्रियाओं[3] द्वारा, जो शारीरिक-उपयुक्तता, सामाजिक सेवा, प्रकृति-अध्ययन, शिल्पों, शिविर-जीवन और अन्य स्वास्थ्यपूर्ण क्रियाओं पर बल देती हैं, स्वास्थ्य-चेतना का विकास अत्यन्त महत्व का है और (इसे) साहित्यिक-अध्यापन के साथ प्रत्येक पाठशाला के जीवन में अपना स्थान प्राप्त करना चाहिये। समामेलित-क्रियाओं के लिये उन संगठनों में, जो आज पाठशालाओं में अस्तित्व में हैं, कनिष्ठ रक्त-स्वस्तिक[4], बाल-चर[5], बाल-चारिका[6], हिन्दुस्तान (भारत) बालचर[7], व्रतीबालक और व्रतचारी-आन्दोलन हैं। ये समस्त संघठन लाभप्रद हैं, परन्तु (कोई) कारण नहीं है कि पाठशालायें अपनी समामेलित-क्रियाओं को एक पाठ्यविषय पर, जिसमें प्रत्येक

---

1 Headquarters. 2 District Inspector of Physical Education. 3 Corporate Activities. 4 Junior Red Cross. 5 Boy Scouts. 6 Girl Guides. 7 Hindustan Scouts.

(क्रिया) की सर्वोत्तम विशेषतायें समंगीकृत[1] हों अथवा वे (क्रियायें जो) स्थान के सर्वोत्तम उपयुक्त हों, क्यों न आधारित करें । शारीरिक-शिक्षण और क्रीड़ाओं को निर्धारित[2]-समय के अतिरिक्त, पाठशालाओं में किसी समामेलित-क्रिया के लिये एक सप्ताह में न्यूनातिन्यून एक घण्टा[3] अलग रखा जाना चाहिये ।

९— समय-सारणी[4] एवं पाठशाला-अवधियाँ[5]

समय-सारणी और पाठशाला-अवधियाँ दोनों के निर्धारण में, विशेषतः अपनी विभिन्न जलवायु-दशाओं युक्त इस देश में, पाठशाला-बालक का स्वास्थ्य एक महत्वपूर्ण विचार होना चाहिये । शैक्षणिक-अधिकारियों को जलवायु-कारकों[6] की ओर यथोचित ध्यान देना चाहिये और यथासम्भव न्यूनतम मानसिक एवं शारीरिक-थकान के साथ अधिकतम मानसिक-उत्पाद सुनिश्चित करने की दृष्टि से पाठशाला-समयों[7] को नियत (करना चाहिये) ।

१०—बाधित[8] छात्रों के लिये सुविधायें

मानसिक एवं शारीरिक दृष्टि से बाधित बच्चों के लिये सुविधाओं की व्यवस्था पृथक् उल्लेख के लिये आह्वान करती है । संभवतः इनमें से अनेक को दीर्घकालीन एवं विशेषित चिकित्सा भोगनी होगी, और एक पृथक् स्वास्थ्य-सेवा सहित विशेष पाठशालायें आवश्यक होंगी । विशेष दशाओं में ऐसे छात्रों के लिये उपचार अथवा स्वास्थ्यलाभ की अवधि में अध्यापन की भी अपेक्षा हो सकती है । विशेष पाठशालाओं की व्यवस्था से

1 Embodied. 2 Allotted. 3 Period. 4 Time-Table.
5 School Terms. 6 Climatic Factors. 7 School Hours.
8 Handicapped.

अलग, इन व्यक्तियों के साथ संव्यवहार करने में मनश्चिकित्सक[1], शैक्षणिक मनोवैज्ञानिक और मानसिक-कल्याण में अनुभव-प्राप्त सामाजिक कार्यकर्ताओं समेत विशेषित स्वास्थ्य-अधिकारियों की सहायता लेना आवश्यक होगा। इस प्रयोजन के लिये, न्यूनातिन्यून अंश-कालिक कार्य के लिये, पाठशाला-स्वास्थ्य-सेवा से विशेषित चिकित्सक संबद्ध हो सकते हैं। सामाजिक-कार्यकर्ता उन पर्यावरिक कारणों को, जो गृह और इसके बाहर दोनों पर बच्चे की दशा के लिये अंशदान करते हैं, ढूंढने और प्रत्युपाय[2] करने के योग्य होंगे।

(झ) *कर्मचारि-वर्ग*

इस देश की आवश्यकतायें (निम्नलिखित) होनी चाहियें :-

१—चिकित्साधिकारी[3] ८९२३
२—विशेषित चिकित्साधिकारी १३,०५३ (अंश-कालिक)
३—दन्तचिकित्सक ९,६०२
४—उपचारिकायें ३४,२९५

पूर्णतः प्रशिक्षित पाठशाला-स्वास्थ्य-अधिकारियों के प्रदाय[4] को चिकित्सकों[5] द्वारा अनुपूरित करना (भी) आवश्यक हो सकता है। इन अधिकारियों के कर्तव्य पाठशाला, स्वास्थ्य-सेवा और छात्र के गृह के सहयोग से कार्य करना होंगे। इस सेवा को या तो प्रशिक्षित अध्यापकों से अथवा उपयुक्त शैक्षणिक अर्हताओं से युक्त अन्य व्यक्तियों से भर्ती किया जाना चाहिये। उनके प्रशिक्षण को उन्हें लघु रोगों के साथ संव्यवहार करने, यह देखने कि पाठशाला-स्वास्थ्य-अधिकारी द्वारा विहित

1 Psychiatrists. 2 To remedy. 3 Medical Officer.
4 Supply. 5 Medical Attendants.

उपचार पालित होता है, और साधारण स्वास्थ्य-विषयों के विषय में. अध्यापकों एवं सामान्यतः माता-पिता को मन्त्रणा देने के लिये समर्थ करना चाहिये।

(ञ). *प्रशासनात्मक-तन्त्र*[1]

वे (शिक्षा एवं स्वास्थ्य के केन्द्रीय-मन्त्रणा-मण्डल) अभिस्ताव करते हैं कि पाठशाला-स्वास्थ्य-सेवायें, मुख्यतः शिक्षा से संबद्ध होने से, शिक्षा-विभागों के प्रशासनात्मक एवं वित्तीय-नियन्त्रण के अधीन रखी जानी चाहियें। प्रत्येक प्रान्त में, सेवा का प्रबन्ध करने के लिये, पाठशाला बालकों के स्वास्थ्य-निरीक्षण एवं उपचार के प्रशासनात्मक एवं निष्पादक[2] कर्तव्यों के लिये चिकित्सकों[3] की एक पर्याप्त संख्या द्वारा साहाय्यित, एक मुख्य-पाठशाला-स्वास्थ्य-अधिकारी[4] होना चाहिये। जैसाकि पाठशाला-स्वास्थ्य-कार्य में नैरन्तर्य[5] महत्व-पूर्ण होता है, ऐसे कार्य के लिये न्यूनातिन्यून चार से पाँच वर्षों के लिये एक चिकित्सक प्रतिनियुक्त[6] किया जाना चाहिये और, जहाँ सम्भव हो वहाँ (उसे) अपना सारा समय इसको (स्वास्थ्य-कार्य को) देना चाहिये।

(ट) *समन्वय-समिति*[7] *की स्थापना*

जैसाकि इस कार्य को भैषजिक एवं लोक-स्वास्थ्य-विभागों के कार्य के साथ समन्वित करने की आवश्यकता होगी, सदस्य के रूप में, लोक-शिक्षण-संचालक[8], महा-शल्यचिकित्सक[9] (अथवा जानपद-चिकित्सालय-महानिरीक्षक[10]) और लोक-

---

1 Machinery. 2 Executive. 3 Doctors. 4 Chief School Medical Officer. 5 Continuity. 6 Deputed. 7 Committee of Co-ordination. 8 Director of Public Instruction. 9 The Surgeon-General. 10 Inspector-General of Civil Hospitals.

स्वास्थ्य-संचालक[1] के साथ एक समन्वय-समिति की व्यवस्था करना (भी) वाञ्छनीय हो सकता है।

६—बाधितों[2] की शिक्षा

(क) बाधितों का विभाजन

बाधित दो मुख्य समूहों में विभाजित हो सकते हैं;

१—मानसिक रूप से बाधित, और

२—शारीरिक रूप से बाधित।

I—मानसिक रूप से बाधित

(१) मानसिक रूप से बाधितों के प्रभेद

मानसिक रूप से बाधितों में दो स्थूल प्ररूप प्रभेदित[3] हो सकते हैं (i) वे, जो माध्य[4] के नीचे बुद्धि के साथ उत्पन्न होते हैं और (ii) वे, जो किसी प्रकार के कुसमायोजन[5] अथवा शारीरिक रोग के कारण, जिसने अस्थायी मानसिक विमन्दन[6] कर दिया है, पश्चवर्ती[7] हैं। वे बच्चे, जो मानसिक दृष्टि से बाधित हैं, सामान्य से एक मूलतः[8] भिन्न वर्ग नहीं होते हैं, यद्यपि जैसे सभ्यता जटिलता में आगे बढ़ी है वैसे सामान्यता एवं असामान्यता के बीच विभाजक-रेखा उठती हुई प्रतीत होती है। तथापि, पश्चवर्ती बच्चों में दो प्ररूप सामान्यतः पाये जाते हैं:—

१—वे, जो प्रयत्न करते हैं, और

२—वे, जो प्रयत्न नहीं करते।

---

1 Director of Public Health, 2 Handicapped,
3 Distinguished. 4 Average. 5 Maladjustment.
6 Retardation. 7 Backward. 8 Radically.

(२) पश्चवर्तिता के कारण

पूर्वोक्त प्रवर्ग में पश्चवर्तिता (निम्नलिखित) कारणों से हो सकती है--

१--शिक्षण की प्रारम्भिक अवस्था में मार्गप्रदर्शन का अभाव।

२--शिक्षण की दोषपूर्ण रीतियाँ,

३--बारंबार प्रव्रजन[1] अथवा अस्वस्थता के कारण अध्ययन-व्याघात[2],

४--विशिष्ट निर्योग्यतायें, जिनका निदान केवल एक विशेषज्ञ (ही) कर सकता है, और

५--भीरु एवं स्वभाव-सम्बन्धी कारक[3]।

उत्तरोक्त में पश्चवर्तिता के कारण (निम्नलिखित) हो सकते हैं--

१-- ओजस[4] (जीवनशक्ति) का अभाव,

२--पर्यावरिक[5] प्रभाव, यथा असन्तोषजनक गृह-दशायें,

३--गृह पर अति-निरति[6] अथवा अति-अनुशासन और

४--अताड़ित[7] शारीरिक हीनता।

(३) अधःसामान्य[8] बच्चों के समूह

आजकल एक निश्चित वैषयिक[9]-स्तर के निर्देश द्वारा पश्चवर्तिता की मात्रा को मापने के लिये प्रयत्न किये जा रहे हैं। बुद्धि-परीक्षाओं के आधार पर अधःसामान्य बच्चे तीन समूहों में रखे जा सकते हैं (जो निम्नलिखित हैं) :--

(i) मन्द बच्चे[10]--८५ और ७० के बीच बुद्धि-अङ्क वाले

1 Migration. 2 Interruption. 3 Factors. 4 Vitality.
5 Environmental. 6 Over-indulgence. 7 Undetected.
8 Subnormal. 9 Objective. 10 Dull Children.

बच्चे मन्द होते हैं। साधारण पाठशाला-पाठचर्या में ये बच्चे सामान्य समूह के साथ पद नहीं रख सकते। वे शिक्षा-दृष्टि से सदैव पश्चवर्ती होंगे और उनके उपयोगी नागरिक होने के अवसर विद्वत्ता-सम्बन्धी (योग्यताओं के विकास) की अपेक्षा अन्य योग्यताओं के विकास पर निर्भर करेंगे। मन्द बच्चे प्ररुचि एवं उत्तरदायित्व की एक सीमित मात्रा का आह्वान करने वाले कुछ कार्यों का पालन करने योग्य होते हैं, परन्तु यदि उन्हें युक्तियुक्त रूप से दक्ष होना और रहना है तो (उन्हें) सहानुभूतिपूर्ण पर्यवेक्षण की एक नियत राशि की सदैव आवश्यकता होगी।

(ii) दुर्बल-मनस्क[1] बच्चे—७० से नीचे बुद्धि-अङ्क वाले बच्चों को प्रायः "दुर्बल" शब्द दिया जाता है; यदि सरल यथार्थ वस्तुओं के साथ संव्यवहार करने के लिये उनका आह्वान किया जाता है तो वे भी साधारण पाठशालाओं में रखे जा सकते हैं।

(iii) क्षीणबुद्धि[2] बच्चे--वे, जिनके बुद्धि-अङ्क ५५ से नीचे गिरते हैं, अर्थात्, "क्षीण बुद्धि," आधुनिक संसार में उपयोगी स्थान प्राप्त नहीं कर सकते और (उन्हें) गृह पर अथवा संस्थाओं में विशेष ध्यान की आवश्यकता होती है।

(४) अधःसामान्य अथवा पश्चवर्ती बच्चों की शिक्षा

मनोवैज्ञानिक अथवा अन्य कारणों से पाठशालाओं में अधःसामान्य अथवा पश्चवर्ती बच्चों को पृथक् करना वाञ्छनीय नहीं है। अतः मानसिक दृष्टि से बाधित उन बच्चों को, जो शिक्ष्य[3] हैं सामान्य शैक्षणिक-प्रणाली में ही रहना चाहिये,

1 Feeble Minded. 2 Imbeciles. 3 Educable.

यद्यपि उनकी विशेष आवश्यकताओं के लिये विशेष प्रबन्ध किया जाना होगा। एक पिछली अवस्था पर "दुर्बल-मनस्कों" के लिये विशेष पाठशालाओं की व्यवस्था करनी पड़ सकती है।

(५) बाधितों की शिक्षा का उद्देश्य

जैसाकि सामान्य (बच्चों) की स्थिति में (होता है), बाधितों की शिक्षा का उद्देश्य उन्हें समुदाय के लिये एक उपयोगी सेवक और अपने लिये प्रसन्नता का जीवन व्यतीत करने के लिये समर्थ करना होना चाहिये।

(६) बाधितों के लिये शिक्षण की रीति

बच्चों का वैयक्तिक अध्ययन यह निश्चित करने में पाठशाला का मार्गप्रदर्शन करेगा कि उन्हें किन उपयोगी व्यसनों[1] का निर्माण करना चाहिये, उन्हें किस प्रकार का कौशल[2] प्राप्त करना चाहिये, मस्तिष्क की किस अभिरुचि एवं दृष्टिकोण का विकास करने के लिये उनका नेतृत्व किया जाना चाहिये और किस ज्ञान के लिये उन्हें प्रयत्न करना चाहिये। बच्चे की संभावी योग्यताओं, साहित्यिक एवं व्यावसायिक, के उपयुक्त सावधानी से अधियोजित एक कार्यक्रम बच्चे को निश्चित स्तरों की ओर कार्य करने के लिये समर्थ करेगा। उसकी सफलता सामान्य समूहों की प्राप्तियों[3] के शब्दों की अपेक्षा उसकी अपनी सम्भाव्यताओं के सम्बन्ध में आंकी जानी चाहिये। संक्षेप में, जब यह अनुभव कर लिया जाता है कि बच्चे का अवबोध[4] मुख्य महत्व का होता है और कि विषय-वस्तु गौण होती है, तब, और केवल तब, एक पाठशाला प्रत्येक बच्चे की अपनी क्षमताओं का अनुभव करने के लिये सहायता कर सकती है।

1 Habits. 2 Skill, 3 Achievements, 4 Understanding.

II—शारीरिक रूप से बाधित

(१) शारीरिक रूप से बाधित बच्चों का विभाजन

शारीरिक रूप से बाधित निम्नलिखित प्रवर्गों में विभाजित किये जा सकते हैं :—

१—वे, जो एक अथवा अधिक विशेष इन्द्रियों[1] में अपूर्ण हैं; अन्धे, बधिर, बधिर एवं अन्धे, बधिर-मूक[2], आदि ।

२—वे, जो श्वसन, हृदय, तथा विरूप[3] दशाओं सहित प्रेरक-हीनता[4] द्वारा विमन्दित[5] हैं और

३—वे, जो भाषण में दोषयुक्त हैं ।

(२) अन्ध-शिक्षण

१—यदि इस समस्या को प्रभावशाली ढङ्ग से साधित होना है तो प्रदत्त सेवाओं को व्यापक होना चाहिये ।

२—वह समय आ गया है जब सामान्य-योजना के एक आवश्यक भाग के रूप में राज्य को बाधित बच्चों की शिक्षा ले लेनी चाहिये, यद्यपि यह, निःसन्देह, सदैव स्वैच्छिक सहायता का प्रोत्साहन एवं स्वागत करेगा ।

३—मण्डल ने अनुरोध किया है कि ग्रेट ब्रिटेन में अन्ध-व्यक्ति-अधिनियम[6] की रेखाओं पर अन्धों के सामान्य हितों में व्यापक विधान[7] बढ़ाया जाना चाहिये ।

४—ऐसे विधान को, अन्य उपायों में, अन्धे बच्चों की अनिवार्य शिक्षा और सेवायोज्य अन्धों के लिये सेवायोजन प्रदान करने के लिये व्यावसायिक-प्रशिक्षण के लिये सुविधायें भी,

---

1 Senses. 2 Deaf-mutes. 3 Orthopaedic. 4 Motor Deficiency. 5 Retarded. 6 The Blind Persons Act. 7 Legislation.

एवं उनके लिये आर्थिक सहायता, जो आत्म-निर्भर नहीं बनाये जा सकते, सुनिश्चित करनी चाहिये।

५—अन्धों के कल्याण के लिये एक प्रभावशाली योजना का सूत्रपात करने के लिये एक प्रारम्भिकता[1] के रूप में, यह आवश्यक है कि भारत में यथा-शक्य शीघ्र अन्धों की एक विशेष गणना ली जानी चाहिये।

६—एक सम्पूर्ण रूप में भारतीय भाषाओं के लिये एक एकरूप ब्रेले-संकेतावलि[2] अभिस्वीकृत[3] करना भी आवश्यक है।

७—एक आधुनिकतम समुद्भरण-संयन्त्र[4] के साथ एक केन्द्रीय मुद्रणालय और भारत में समस्त संस्थाओं की सेवा करने के लिये एक केन्द्रीय पुस्तकालय के साथ आवश्यक शैक्षणिक साधित्रों[5] का निर्माण करने के लिये एक निर्माणशाला का निर्माण करना अभी तक शेष है।

८—अन्धों के लिये शिक्षण सुविधाओं से अलग, प्रत्येक क्षेत्र में, उन्हें जो प्रशिक्षित हैं, कृत्यकों[6] में स्थापित करने के लिये एक पश्चावेक्षा-विभाग[7], और शिक्षण की सुद्धृत[8] रीतियों एवं सेवायोजन के नवीन साधनों का अनुसन्धान करने के लिये एक अन्वेषणालय[9] भी होना चाहिये।

९—अन्ध-पाठशालाओं के लिये अध्यापकों को प्रशिक्षित करने के लिये विशेष प्रशिक्षण-संस्थायें भी आवश्यक होंगी।

१०—जबकि पाठशालायें, अपनी स्वास्थ्य-सेवाओं के साथ, अन्धों को शिक्षित करने एवं (उन्हें) जीवन में स्थापित करने के लिये वह सब करेंगी जो वे कर सकती हैं, इस समस्या

---

1 Preliminary. 2 Braille Code. 3 To adopt. 4 Embossing Plant. 5 Apparatus. 6 Jobs. 7 After-care Department. 8 Improved. 9 Research Bureau.

के अनेक अन्य पक्ष, यथा, अन्धता का निवारण, लोक-मत का शिक्षण, भिक्षा, आदि, भी हैं जो प्रभावशाली ढङ्ग से केवल अपने पीछे राज्य के संमोदन[1] के साथ एक अखिल-भारतीय-समिति[2] द्वारा ही साधित हो सकते हैं।

(३) बधिर-शिक्षण

१—प्रवर्तमान संस्थाओं में बधिरों, बधिर-मूकों[3] और अन्य शारीरिक रूप से निर्बलों[4] का शिक्षण अन्धों के शिक्षण के साथ मिलाना एक सामान्य प्रथा है। जैसाकि उनकी आवश्यकतायें पृथग् एवं प्रभिन्न होती हैं, प्रत्येक मुख्य प्रवर्ग के शिक्षण के लिये विशेष संस्थायें होनी चाहियें।

२—बधिर-मूकों और प्रस्तर-बधिरों[5] के लिये बधिरों के लिये एक विशेष पाठशाला में शिक्षण की आवश्यकता होती है; अंशतः बधिरों को, उनकी त्रुटि की मात्रा के अनुसार, या तो अंशतः बधिरों के लिये एक पाठशाला अथवा वर्ग में पढ़ाया जाना चाहिये, या एक साधारण पाठशाला में वर्ग के अग्र-स्थान में रखा जाना चाहिये।

(४) सुकुमार[6] एवं पंगु[7]-शिक्षण

शारीरिक-दृष्टि से बाधित इस कुछ जटिल समूह में अधः-जीवनशक्ति-युक्त[8], यक्ष्म[9], और हृद्रोग[10] पर एक साथ विचार किया जा सकता है। उस उप-समूह का समावेश करने के लिये, जिसकी हीनतायें अधिक अथवा कम एक अस्थायी प्रकृति की होती हैं, "सुकुमार" शब्द प्रयुक्त हो सकता है। सुकुमारों के

1 Sanction. 2 All-India Society. 3 Deaf-mutes.
4 Infirm. 5 Stone-deaf. 6 Delicate. 7 Cripples.
8 Under-vitalized. 9 Tubercular. 10 Cardiac.

लिये अपेक्षित सुविधायें, अनेक प्रकार से, उनके लिये (सुविधाओं) के समान होती हैं जो स्थायी रूप से बाधित अथवा "पंगु" होते हैं। इस प्रकार के बच्चे के लिये, अभिनव-पवन-वर्ग[1] और खुली पाठशालायें[2] वह सर्वोत्तम हैं जो कि शैक्षणिक एवं स्वास्थ्य-विशेषज्ञ विहित[3] करने के योग्य हुये हैं। खुली पाठशाला को एक क्रीड़ा-भूमि और एक पाठशाला-कोष्ठ[4] संयुक्त होना चाहिये। इस देश में, जलवायु-दशायें इन पाठशालाओं को उन स्थानों में बनाना आवश्यक कर देती हैं जहाँ शीत ऋतु मृदु होती है और ग्रीष्म अति यत्न करने वाला[5] नहीं (होता), अर्थात्, समुद्रतट पर अथवा मध्यम ऊँचाई के पर्वत-स्थानों में।

(५) भाषण-दोष-ग्रस्त का शिक्षण

भाषण-दोष के रूपों की विभिन्नता और उन कारणों की संख्या, जिनके लिये ये दोष उपारोपित[6] किये जाते हैं, ऐसी बाधाओं से यातना सहने वाले बच्चे की अवेक्षा[7], उपचार, और शिक्षा अत्यन्त जटिल बना देती है। (ऐसे बच्चों को) या तो पूर्ण-कालिक, दिवस अथवा निवास, विशेष पाठशालाओं में अथवा अधिक सरलता एवं मितव्ययिता से पाठशाला-घण्टों के पश्चात् धृत[8] विशेष वर्गों में उपचार प्रदान किया जा सकता है जिससे बच्चे अन्य समयों पर अपने साधारण वर्गों में उपस्थित होने के लिये स्वतन्त्र हो सकें। वस्तुतः विशेषज्ञ अध्यापक सेवायुक्त करना और वैयक्तिक-शिक्षण देना आवश्यक है। माता-पिता का सहयोग प्राप्त करना भी महत्वपूर्ण है।

---

1 Fresh Air Classes. 2 Open Air Schools. 3 Prescribed.
4 School Room. 5 Trying. 6 Attributed. 7 Care.
8 Held.

(६) अपराधियों[1] का शिक्षण

यह केवल अभी की (बात) है कि एक समूह, जिसे प्रायः "अपराधी" नामपत्रित[2] किया जाता था "सामाजिक दृष्टि से बाधित" अथवा "सामाजिक-अनुपयुक्त[3]" के रूप में वर्गीकृत किया जाने लगा है और शैक्षणिक-पुनरवापण[4] की संभव-सीमा के रूप में समझा जाने लगा है। यह समस्या पृथक्करण की अपेक्षा एक पुनरवापण की (समस्या) है। सभ्यकृत देशों में प्रति-दण्डात्मक-दृष्टिकोण[5] शनैः शनैः एक शैक्षणिक-प्रवेश-मार्ग[6] द्वारा प्रतिस्थापित किया जा रहा है और इस देश में पुनः प्रतिष्ठापन की दृष्टि से एक आधुनिक शैक्षणिक-प्रणाली को इस समूह के समुचित शिक्षण के लिये सुविधायें प्रदान करनी चाहिये। एक अनिवार्य शिक्षा-प्रणाली के प्रवेशन के साथ, जिसे पाठशाला में समस्त बच्चों को उपयोगी रूप से अभिधृत[7] रखना चाहिये, इस समस्या का परिमाण[8] किसी दूरी तक स्वतः कम हो जायगा। अपचारी[9] अथवा सामाजिक दृष्टि से कुसमायोजित[10] बच्चों के साथ संव्यवहार करने के लिये अधिकारियों द्वारा निस्सन्देह शिशु-पथप्रदर्शन-निरुजालय[11] स्थापित होंगे।

(ख) अध्यापक

मण्डल ने मानसिक एवं शारीरिक रूप से बाधित बच्चों के लिये विशेष पाठशालाओं में अध्यापकों की स्थिति में न्यूनतम शैक्षणिक अर्हताओं[12] एवं उपयुक्त प्रशिक्षण-पाठचर्याओं

---

1 Criminals, 2 Labelled. 3 "Social Misfits",
4 Educational Reclamation. 5 Retributive Attitude.
6 Approach. 7 Occupied. 8 Magnitude. 9 Delinquent.
10 Maladjusted. 11 Child Guidance Clinics.
12 Qualifications.

में प्रवेश के लिये न्यूनतम आयु पर विचार किया है और (उसका) मत है कि यहाँ (भी उनकी) अपेक्षायें सामान्यतः वही होनी चाहियें जो प्राथमिक पाठशालाओं की स्थिति में (होती हैं)। ऐसी पाठशालाओं के लिये नवसैनिक[1] चुनने में वैयक्तिक विशेषताओं एवं अभियोग्यताओं की ओर विशेष ध्यान दिया जाना होगा। तथापि, वह अभिस्ताव करता है कि अन्ध-पाठशालाओं में अध्यापकों के लिये प्रशिक्षण-पाठचर्या भिन्न होनी चाहिये और इस प्रवर्ग के अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिये एक विशेष अखिल-भारतीय-संस्था स्थापित की जानी चाहिये। यही बधिरों के अध्यापकों की स्थिति में लागू होगा।

(ग) स्थान एवं विशेष पाठशालायें

शारीरिक दोषों से युक्त बच्चों के लिये गमनागमन के लिये अधिक स्थान की आवश्यकता होगी और प्रायः विशेष उपस्कर[2] आवश्यक होंगे, जबकि मानसिक रूप से अधः-सामान्य वर्ग में गमनागमन की स्वतन्त्रता, व्यावहारिक उपजीविकाओं की विभिन्नता, और अध्यापक द्वारा वैयक्तिक-पर्यवेक्षण सब पर्याप्त भूमितल-स्थान की माँग करते हैं। इन पाठशालाओं की विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये निर्माण के विशेष प्रकार आवश्यक होंगे। सामान्यतः, साधारण पाठशालाओं की अपेक्षा विशेष पाठशालायें अधिक बहुव्यय होंगी और प्रत्येक प्रकार की पाठशाला की लागत अन्तर्ग्रस्त विशेष-सेवाओं एवं आवश्यकताओं की प्रकृति के साथ भिन्न होगी। विशेष-सेवायें, भवन, एवं

---

1 Recruits. 2 Furniture.

उपकरण, शिक्षण की अधिक उच्च लागत, और कुछ स्थितियों में अध्यापकों के अधिक ऊँचे वेतन सब शैक्षणिक-प्रणाली की इस शाखा की लागत में जोड़ने के लिये प्रवृत्त होंगे।

(घ) राज्य

वह समय आ गया है जब राज्य-कार्यवाही और अधिक विलम्बित नहीं हो सकती। जबकि एक वित्तीय तङ्गी की अवधि में सामान्य (बच्चों) की अभ्यर्थनाओं[1] को अधिमान[2] देने के लिये कुछ औचित्य-समर्थन हो सकता है, वास्तविक व्यापक रेखाओं पर एक शिक्षा-प्रणाली में, जो अब ध्यान में है, बाधितों की आवश्यकताओं की उपेक्षा करने के लिये हेतु[3] नहीं हो सकता।

१०—विनोदात्मक एवं सामाजिक-क्रियायें

(क) विनोद का उद्देश्य

अभिनव वर्षों में यह धारणा वर्धमान रही है कि शिक्षा को वास्तविक अर्थ में, मानसिक, नैतिक, अथवा शारीरिक शिक्षण की एक विशेष मात्रा के केवल अन्तःक्षेप[4] की अपेक्षा सामाजिक-समायोजन[5] की विधा[6] में एक शिक्षण होना चाहिये। परिणामतः, पाठशाला एवं महाविद्यालय-जीवन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य, वर्ग-कोष्ठ के बाहर और भीतर सामाजिक एवं नागरीय-शिक्षण[7] के लिये अवसर प्रदान करना होना चाहिये। इस उद्देश्य को प्राप्त करने का एक साधन विनोदात्मक एवं सामाजिक क्रियाओं की व्यवस्था एवं संघठन द्वारा है।

(ख) विनोद का महत्व

१—विनोदात्मक-क्रियायें उन अन्तश्चालनाओं[8] को सन्तुष्ट

---

1 Demands. 2 Preference, 3 Excuse. 4 Injection,
5 Adjustment, 6 Process. 7 Civic Training, 8 Urges.

करने का एक मूल्यवान साधन देती हैं जो लगभग समस्त तरुण मनुष्यों के स्वभाव में स्वाभाविक होती हैं, यथा, यूथचारत्व[1], भक्ति, सहानुभूति, जिज्ञासा, अनुकरण, और समनुमोदन-प्रेम[2]।

२—बच्चा एक सामाजिक-मनुष्य उत्पन्न नहीं होता और अपनी शिक्षा की प्रारम्भिक अवस्थाओं में, उसे यह अनुभव कराने की आवश्यकता होती है कि वह एक बृहद् सामाजिक-पद्धति का एक सदस्य है और कि उसके बाहर वे एकक[3] हैं जिनकी संभवतः वह उपेक्षा नहीं कर सकता। विनोदात्मक क्रियाओं को वे स्वाभाविक-क्रियायें देनी चाहियें, जिनमें बच्चे जो कुछ, विचार एवं क्रिया दोनों में, सहयोग की भावना, और समूह-कार्य, वर्ग-कोष्ठ में सीखने के लिये सम्भाव्य नहीं हैं, वह सीख सकें। ऐसी विशेषतायें जैसे नेतृत्व, सूत्रपात[4], संसाधनयुक्तता, आदि, पाठ्यक्रम के सामान्य विषयों के केवल अध्ययन से ही विकसित नहीं की जा सकतीं, परन्तु उनके विकास के लिये विनोदात्मक-क्रियायें एक बहुत विस्तृत क्षेत्र प्रदान करती हैं।

३—इसके अतिरिक्त, जब लड़के और लड़कियाँ अपने को उनकी अपनी आयु एवं समझ की सीमा, अभिरुचियों एवं आदर्शों की अन्य (क्रियाओं) के साथ क्रियाओं में रत पाती हैं, तब इस प्रकार प्राप्त अनुभव पुस्तकों से प्राप्त (अनुभव) की अपेक्षा एक अधिक स्थायी एवं उपयोगी प्रकृति का होने के लिये प्रवृत्त होता है।

४—अन्ततः, वे व्यक्ति, जो भिन्न होते हैं अथवा विशेष अभियोग्यतायें रखते हैं, अपनी शक्तियों के प्रयोग के लिये इस विस्तृत क्षेत्र में किसी क्रिया का आविष्कार करने के लिये सम्भाव्य होते हैं।

---

1 Gregariousness. 2 Love of Approbation. 3 Units.
4 Initiative.

(ग) विनोद का क्षेत्र

विनोद के लिये आवश्यकता को केवल पाठशाला-जनसंख्या तक सीमित नहीं किया जा सकता; यह प्रत्येक के लिये जीवन की प्रत्येक अवस्था पर एक आवश्यकता है। इस कारण से, शिक्षा की एक राष्ट्रिय-प्रणाली में विनोद भिन्न रूपों में सबके लिये प्रदान किया जाना चाहिये और विस्तृत अर्थ में सामाजिक-सेवायें भी। क्रिया के किसी भी रूप को संघठित करते समय स्थानीय दशाओं को सहजतः विचार में लिया जाना चाहिये। तीन (ऐसे) क्षेत्र होंगे, जिनकी आवश्यकतायें समन्वेषित[1] होनी चाहियें—

१—पाठशाला एवं महाविद्यालय-काल;
२—उनकी स्थिति में, जो पाठशाला छोड़ चुके हैं, किशोर-काल;
३—सामान्यतः सामाजिक-सेवा।

(घ) विभिन्न प्रक्रमों पर क्रियायें

१—आधारभूत[2] शिक्षा-प्रक्रम पर

आधारभूत शिक्षा की पूर्व वर्षों में बच्चों के सामाजिक-आवेग[3] केवल कुछ-कुछ विकसित होते हैं। शारीरिक रूप से वे खेल के अधिक श्रमसाध्य रूपों में भाग लेने के लिये पर्याप्त प्रबल अथवा समूह-क्रीड़ाओं के विषय में उत्साही होने के लिये सामाजिक दृष्टि से पर्याप्त चेतन नहीं होते हैं। ऐसी क्रियायें जैसे उद्यानकर्म, लोक-नृत्य, स्वैडिश-योग्या[4] एवं शारीरिक-व्यायामों के अन्य रूप, कनिष्ठ-रक्त-स्वस्तिक-समूह[5], अभिनयन[6], तरुण-

---

1 Explored. 2 Basic. 3 Social Impulses. 4 Swedish Drill. 5 Junior Red Cross Groups. 6 Acting.

बालचर[1] एवं तरुण बालचारिकायें[2], क्रीड़ायें (आभ्यन्तर एवं बाह्य), व्यायाम[3], आमोद विहार, और व्यासंग[4] ग्यारह अथवा बारह वर्ष की आयु तक के बच्चों के लिये अत्यन्त उपयुक्त हैं।

२—उच्च-पाठशाला-प्रक्रम पर

क्योंकि १२-१३ की आयु के लगभग सामाजिक-आवेग अधिक प्रबलता से विकसित होना आरम्भ करते हैं, किशोरावस्था का उद्भव[5] सामूहिक प्रकार की विनोदात्मक क्रियाओं को संघठित करने के लिये समय होता है। इस आयु के बच्चों के लिये, वाद-विवाद-नाट्यकला. संघठित-क्रीड़ायें, अन्तर्पाठशाला-प्रतियोगितायें, आदि, प्रदान की जानी चाहियें। ग्रामीय-क्षेत्रों में तरुण-कृषक-गोष्ठियाँ[6] उत्साह जाग्रत कर सकती हैं। उपरि-क्रियाओं के अतिरिक्त, देश के भिन्न भागों में अनेक देशीय-क्रीड़ायें हैं, जिनका पाठशाला-उद्देश्यों के लिये पूर्ण विनोदात्मक-मूल्य अभी तक समन्वेषित[7] होने को है।

३—विश्वविद्यालय-प्रक्रम पर

जैसे ही छात्र उच्च पाठशाला से उत्तीर्ण होता है और विश्वविद्यालय-प्रक्रम को पहुँचता है, वह वर्धमान रूप से उस समाज से चेतन हो जाता है, जिसमें वह चलता-फिरता है। अथापि, जैसे ही उसकी सामाजिक-चेतना परिवर्धित होती है, वह अपनी अपेक्षा अन्य मनुष्यों के हित के लिये आकल्पित[8] सामूहिक-क्रियाओं में हितपरायण[9] हो जायेगा। किशोरावस्था-

---

1 Cubs. 2 Bluebirds. 3 Athletics. 4 Hobbies.
5 Onset of Adolescence. 6 Young Farmer's Clubs.
7 Explored. 8 Designed. 9 Interested.

काल में पूर्व से ही सामाजिक-सेवा का विचार अन्तर्निविष्ट[1] किया जाना चाहिये।

४—पाठशाला-उपस्थिति से मुक्त तरुण व्यक्तियों के लिये क्रियायें :

दिवस-सांतत्य-पाठशालायें[2]

उन तरुण व्यक्तियों के साथ संव्यवहार करने की समस्या, जो पाठशाला-अनुशासन के अधीन नहीं हैं और जो नूतन अनुभवों, समस्याओं एवं प्रलोभनों के अधीन होते हैं, जिनके साथ उस समय पर्याप्त रूप से संव्यवहार करना असम्भव था जबकि वे पाठशाला में थे, किशोर-समस्याओं में से एक है जिसने शिक्षण-विज्ञों एवं समाज-सुधारकों का ध्यान सदैव रत रखा है। नैतिक के अतिरिक्त आर्थिक प्रश्न भी हैं, क्योंकि इस अवस्था पर तरुण व्यक्ति प्रायः अपने सेवायोजन में अव्यवस्थापित[3] और अच्छी मन्त्रणा की आवश्यकता में होते हैं। तृतीय स्थान में, उनका मनोविनोद करने और उन्हें स्वस्थ रखने की आवश्यकता होती है। दिवस-सांतत्य-पाठशालाओं के पक्ष में मुख्य तर्क यही है कि वे अभीष्ट उद्देश्य की ओर बहुत कुछ अंशदान करेंगी।

(ङ) नेता

इस प्रकार के कार्य में नेताओं के रूप में ठीक प्रकार के व्यक्तियों को प्राप्त एवं प्रशिक्षित करना मुख्य समस्याओं में से एक है। एक अच्छे तरुण नेता में सुस्थित प्राविधिक शिक्षण[4], मनोविज्ञान का कुछ ज्ञान (सैद्धान्तिक रूप की अपेक्षा व्यावहारिक रूप से प्राप्त), समझ, अनुकूलता[5], मूल्य की एक भावना,

---

1 Inculcated. 2 Day Continuation Schools 3 Unsettled.
4 Technical Training. 5 Adaptability.

रसिकता[1], उत्साह जाग्रत करने की एक शक्ति, और अन्तिम, परन्तु लघुतम नहीं, कौशल[2] होना चाहिये।

(च) सङ्गठन

यह मस्तिष्क के अन्तर्गत होना चाहिये कि एक ऐसे आन्दोलन को, जहाँ सम्भव हो वहाँ, स्वैच्छिक संगठनों एवं उनके द्वारा कार्य का प्रयोग करना चाहिये। राज्य को केवल वहाँ प्रत्यक्ष रूप से बीच में आना चाहिये जहाँ ये विफल रहते हैं। जबकि प्रान्तीय अथवा अधिक लघु क्षेत्र, यथा, जिले, संघठन के लिये प्राथमिक एकक[3] रहने चाहियें, केन्द्रीय-मार्ग-प्रदर्शन एवं मन्त्रणा देने के लिये और नेताओं को प्रशिक्षित करके एवं जहाँ आवश्यक हो वहाँ आर्थिक-सहायता दे कर इस आन्दोलन के विकास की सहायता करने के लिये एक अखिल-भारतीय-तरुण-समिति[4] की नियुक्ति होनी चाहिये। अन्तिम उद्देश्य प्रत्येक प्रान्त में प्रत्येक जिले के लिये दो जिला-सङ्गठनकर्ताओं (१ पुरुष तथा १ महिला), और चार सहायक-सङ्गठनकर्ताओं (२ पुरुष तथा २ महिलायें) प्राप्त करना है। दो केन्द्रीय-प्रशिक्षण-संस्थायें विचारित[5] हैं, एक पुरुष संघटनकर्ताओं के प्रशिक्षण के लिये और दूसरी महिलाओं के लिये, क्योंकि प्रशिक्षण में प्रविधि के दो पृथग् प्रकारों का समावेश होगा।

(छ) नेता-प्रशिक्षण की अवधि

प्रशिक्षण-काल की अवधि एक वर्ष से कम न होगी। प्रशिक्षण-केन्द्र नेताओं के, अंश-कालिक और पूर्ण-कालिक भी,

---

1 Humour. 2 Tact. 3 Units. 4 All-India Youth Committee. 5 Envisaged.

प्रशिक्षण के लिये और ऐसी अभिनवन-पाठचर्यायें[1] एवं ऐसा अग्रिम-प्रशिक्षण, जैसा अनुभव सुझा सके, देने के लिये भी प्रयुक्त होंगे।

११—सेवायोजनालय[2]

(क) सेवायोजनालय का महत्व

सेवायोजनालय किसी भी शैक्षणिक-प्रणाली का एक आवश्यक उपासंग[3] होता है। एक अर्थ में पाठशालायें एवं महाविद्यालय निर्माणियाँ[4] होते हैं जो एक देश के समस्त पदार्थों में संभाव्यतः जो अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं मूल्यवान होते हैं उनको प्रदान करती हैं, अर्थात्, इसके भावी कार्यकर्ता एवं नागरिक। यह विचित्र प्रतीत हो सकता है कि शिक्षाधिकारियों को अपने उत्पाद के लिये हाट प्राप्त करने में अन्य की अपेक्षा कम कष्ट करना चाहिये, परन्तु भारत में दुर्भाग्यवश यही तथ्य है। माता-पिता को उन उपजीविकाओं के विषय में मन्त्रणा देने के लिये, जिनके लिये उनके बच्चे अत्यन्त उपयुक्त होते हैं अथवा पाठशाला अथवा महाविद्यालय छोड़ने वालों को उपयुक्त पदों में स्थापित करने के लिये संभव ही कुछ किया जाता है। यह तथ्य कि भारत में प्रगतिशील एवं परितोषद्-सेवायोजन[5] के मार्ग अन्य देशों की अपेक्षा अधिक आयन्त्रित[6] हैं, एक ऐसी सेवा की अनुपस्थिति को और अधिक खेदजनक बना देता है।

(ख) सेवायोजनालय के मुख्य कार्य

सेवायोजनालय के मुख्य कार्य निम्नलिखित रूप में संक्षिप्त किये जा सकते हैं:—

---

1 Refresher Courses. 2 Employment Bureaux. 3 Adjunct.
4 Factories. 5 Remunerative Employment. 6 Restricted.

१—उन समस्त पाठशालाओं के साथ सम्पर्क स्थापित करना जिनसे, पाठचर्या की समाप्ति पर, लड़के एवं लड़कियाँ सामान्तः सेवायोजन में प्रवेश करते हैं और (i) पाठशाला-अभिलेखों[1], (ii) अभियोग्यता एवं अन्य परीक्षाओं, (iii) उस उपजीविका के विषय में, जिसे (पाठशाला) छोड़ने वालों को प्रवेश करने के लिये ढूंढना चाहिये, के प्रकाश में माता-पिता एवं मुख्याध्यापकों को मन्त्रणा देना ;

२—(i) यह सुनिश्चित करने कि (क्षेत्र में) क्या मार्ग प्राप्य होने के लिये संभाव्य हैं और उन्हें भरने के लिये आवश्यक योग्यतायें (क्या हैं), (ii) सेवायोजकों से सेवायोजनालयों द्वारा अपने कर्मचारियों को भर्ती करने के लिये अनुनय करने, (iii) अन्ध-वीथि उपजीविकाओं[2] को यथा-शक्य कम करने की दृष्टि से क्षेत्र में श्रम के सेवायोजकों के साथ सम्पर्क स्थापित करना;

३—उन (पाठशाला) छोड़ने वालों को, जो अपने लिये पहले ही स्थान प्राप्त नहीं कर पाये हैं, उपयुक्त सेवायोजन में स्थापित करना;

४—तरुण श्रमिकों की पश्चावेक्षा[3] के लिये, विशेषतः अनुपयुक्तों के साथ संव्यवहार करने के लिये, प्रबन्ध करना; और

५—सेवायोजकों के सहयोग से उन व्यापारों में नियमित शिशिक्षा-प्रणालियाँ[4] स्थापित करना और (उनका) पर्यवेक्षण करना, जिनके लिये ये उपयुक्त हैं।

(ग) सेवायोजनालय के सदस्य

एक सेवायोजनालय के कर्मचारि-वर्ग के ज्येष्ठ सदस्य

1 School Records. 2 Blind-Alley Occupations.
3 After-Care. 4 Systems of Apprenticeship.

विशेषित योग्यताओं युक्त दोनों लिंगों के सावधानी से चुने हुये व्यक्ति होने चाहियें। क्योंकि यह आवश्यक है कि उन्हें पाठ-शाला संघठन एवं बच्चों के मनोविज्ञान, विशेषतः किशोर, से परिचित होना चाहिये, अध्यापन का कुछ व्यावहारिक अनुभव आवश्यक है। औद्योगिक-दशाओं का मूलप्राप्त अनुभव वाञ्छनीय है, परन्तु अधिक महत्वपूर्ण नहीं। तथापि, इसे आवश्यक समझा जा सकता है कि समस्त सेवायोजनाधिकारियों[1] को अभियोग्यता एवं बुद्धि-परीक्षण समेत व्यावहारिक अथवा औद्योगिक मनोविज्ञान की एक पाठचर्या भोगनी चाहिये।

(घ) *सेवायोजनालय का नियन्त्रण*

सेवायोजनालय को शैक्षणिक-प्रशासनात्मक-सेवा के एक अभिन्न अङ्ग के रूप में और लोक-शिक्षण-संचालक के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में समझा जाना चाहिये। यह केन्द्रीयित है अथवा (यह) स्थानीय शाखाओं की एक संख्या रखती है, यह एक (ऐसा) विषय है, जो स्थानीय-दशाओं के प्रकाश में निश्चित होने के लिये है, परन्तु अधिक बड़े प्रान्तों में, किसी मूल्य पर, प्रान्तीय शैक्षणिक-मण्डलों[2] के समस्त मुख्यालयों पर और सम्भवतः जनसंख्या के अन्य बड़े केन्द्रों पर भी शाखायें रखना निश्चित रूप से आवश्यक होगा। तथापि, इस पर अति प्रबलता से बल नहीं दिया जा सकता कि इन आलयों को, जो शैक्षणिक-संस्थाओं के उत्पाद से प्रत्यक्षतः संबद्ध हैं, शिक्षा-विभाग के नियन्त्रण में होना चाहिए।

(ङ) *सेवायोजनालय का उत्तरदायित्व*

सेवायोजनालय को समस्त प्रकारों की ज्येष्ठ आधारभूत[3],

---

1 Employment Officers. 2 Provincial Educational Districts. 3 Senior Basic.

कनिष्ठ औद्योगिक[1] और उच्च पाठशालाओं से छोड़ने वालों के लिये उत्तरदायी होना चाहिये। विश्वविद्यालयों और विश्व-विद्यालय-प्रास्थिति की अन्य संस्थाओं को अधिमानतः उनके अपने सेवायोजनालय अथवा नियुक्ति-मण्डल[2] रखने चाहियें।

१२—प्रशासन

(क) प्रान्तों की स्थिति

यह अपरिहार्य प्रतीत होगा कि भौगोलिक, ऐतिहासिक तथा अन्य कारणों से प्रशासनात्मक प्रयोजनों के लिए प्रान्तों को मुख्य एकक रहना चाहिए। यह भी स्पष्ट है कि इस प्रति-वेदन[3] में आयोजित अनुमाप पर एक राष्ट्रिय-प्रणाली की स्थापना में (i) केन्द्रीय एवं प्रान्तीय शासनों के बीच अधिक निकट सहयोग, (ii) अन्तर्प्रान्तीय-अवरोधकों के नाश, (iii) निर्धन क्षेत्रों के हित में भारित आर्थिक प्रबन्धों का समावेश होगा।

(ख) केन्द्रीय एवं प्रान्तीय शासनों में सहयोग

वास्तव में, मण्डल के मत में केन्द्र के लिये स्थानीय-प्रशासन के क्षेत्र में बीच में आना अव्यवहार्य होगा और अवाञ्छनीय भी। साथ ही, केन्द्रीय एवं प्रान्तीय-शिक्षा-विभागों के बीच कुछ प्रभावशाली सम्पर्क रखना होगा जिससे पूर्वोक्त (केन्द्रीय-विभाग) सामान्य योजना के समनुरूप बनाने में उत्तरोक्त (प्रान्तीय-विभागों) को न केवल मन्त्रणा एवं सहायता कर सकता है, परन्तु यह भी सुनिश्चित कर सकता है कि केन्द्रीय-सहायतायें अनुमोदित विकासों पर व्यय की जा रही हैं।

---

1 Junior Technical. 2 Appointment Boards. 3 Report.

(ग) अन्तर्प्रान्तीय अवरोधकों का नाश

यह स्पष्ट है कि प्रौद्योगिक एवं अन्वेषण-संस्थाओं की स्थिति बहुत कुछ औद्योगिक एवं आवश्यकताओं द्वारा निर्धारित होगी और प्रान्तीय-क्षेत्रों द्वारा नहीं। साथ ही, यह (भी) आवश्यक है कि एक राष्ट्रिय-प्रणाली में छात्रों का उन संस्थाओं तक प्रवेश होना चाहिये, जो उस विशेष प्रशिक्षण को प्रदान करती हैं जिसकी उन्हें आवश्यकता है, भले ही उनकी उत्पत्ति का स्थान कुछ भी हो। इसे सम्भव बनाने के लिये, विद्यार्थियों के प्रवेश के लिये परस्पर-प्रबन्ध[1] आवश्यक होंगे और यह देखने के लिये एक अखिल-भारतीय-निकाय होना चाहिये कि ये प्रबन्ध प्रभावशाली और सामान्यतः विकास का नियन्त्रण एवं समन्वय करने के लिये हैं।

(घ) आर्थिक प्रबन्ध

इस अवस्था पर यह पूर्वानुमान करना असम्भव है कि शिक्षा की राष्ट्रिय-प्रणाली के वित्त-प्रबन्ध के लिये भावी प्रबन्ध क्या रूप लेंगे। यह स्पष्ट है कि उन्हें प्रवर्तमान प्रणाली में एक उग्र[2] परिवर्तन की आवश्यकता होगी और यह नितान्त संभाव्य है कि (उनके लिये) केन्द्रीय आगमों[3] से पर्याप्त सहायता आनी होगी।

(ङ) स्थानीय-निकाय[4]

सिद्धान्त में, शिक्षा में स्थानीय-हित[5] प्राप्त करना एक अच्छी वस्तु है और स्थानीय-निकायों को नियन्त्रण की एक निश्चित राशि सौंपने के लिये कहा जाने के लिये बहुत (कुछ) है, यदि वे इसका प्रयोग करने के लिये क्षम हैं। तथापि,

---

1 Reciprocal Arrangments. 2 Drastic. 3 Central Avenues. 4 Local Bodies. 5 Local Interest.

व्यवहार में, उन निकायों को, जिनके सदस्य मुख्यतः अशिक्षित अथवा शिक्षा में अहितपरायण अथवा दोनों हैं, उठती हुई सन्तति की शिक्षा के लिये उत्तरदायित्व सौंप कर अप्रत्युपाय अपकार[1] किया गया है। स्थिति तब भी अधिक बुरी हो जाती है जब स्थानीय-निकायों के पास वे निधियाँ[2] नहीं होतीं जिनकी उन्हें अपने कर्तव्यों का पालन करने के लिये, यदि वे ऐसा करने के लिये तत्पर एवं योग्य होते तो भी, आवश्यकता होगी। यहाँ अनुत्तरदायित्व, अक्षमता, अध्यापकों के प्रति दुर्व्यवहार, धार्मिक एवं राजनैतिक पक्षपात, बन्धुभरण[3], और उपरोपण[4] के उन अन्य रूपों की पुनरावृत्ति करना अनावश्यक है जो प्रान्तीय-प्रतिवेदनों में वारंवार एवं मलिन वाचन बनाते हैं। अतः यह आवश्यक प्रतीत होगा कि अपने पुनर्निर्माण-कार्यक्रमों पर नौरोपण[5] करने से पूर्व प्रान्तीय शासनों को स्थानीय-निकायों से, जहाँ वे सन्तुष्ट हैं कि ये परिवर्धित उत्तर-दायित्वों को लेने के लिये क्षम हैं के अतिरिक्त, समस्त शैक्षणिक शक्तियों का पुनर्ग्रहण[6] कर लेना चाहिये।

(च) पाठशाला-मण्डल[7] एवं पाठशाला-प्रबन्धक-निकाय[8]

तथापि शिक्षा में स्थानीय-हित को यथा-शक्य रखने के लिये यह अपेक्षित है कि जहाँ अपेक्षित ज्ञान, उत्साह, समग्रता[9], एवं स्थिति से युक्त पर्याप्त मनुष्य अपनी सेवाओं को देने के लिये तैयार हैं वहाँ उपयुक्त परिमाण के क्षेत्रों में आधारभूत[10] (प्राथमिक एवं मध्यम) पाठशालाओं के साथ संव्यवहार करने

---

1 Irremediable Harm. 2 Funds. 3 Nepotism. 4 Graft. 5 To embark. 6 To resume. 7 School Boards. 8 Bodies of School Managers. 9 Integrity. 10 Basic.

के लिये पाठशाला-मण्डल[1] और वैयक्तिक पाठशालाओं के लिये पाठशाला-प्रबन्धक-निकाय[2] स्थापित किये जाने चाहियें। इन निकायों के सदस्य, दोनों स्थितियों में, प्रान्तीय-शिक्षा-विभाग द्वारा मनोनीत होने चाहियें और इस पर अत्यन्त प्रबलता से बल नहीं दिया जा सकता कि, जब तक ठीक प्रकार के पर्याप्त मनुष्य उनमें सेवा करने के लिये प्राप्य न हों, वे किसी भी दशा में स्थापित नहीं किये जाने चाहियें। नियमतः, वैयक्तिक-निकायों द्वारा संधृत पाठशालायें उनके अपने प्रबन्धक-निकाय रखेंगी। पाठशाला-मण्डल को या तो इसके (मण्डल के) क्षेत्र में प्रत्येक प्रस्वीकृत पाठशाला (शासकीय अथवा साहाय्यित) के प्रबन्धक-निकाय पर सेवा करने के लिए अथवा जहाँ प्रबन्धक-निकाय नहीं है, वहाँ पाठशाला-कल्याण में एक वैयक्तिक रुचि लेने के लिये, अपने सदस्यों में से एक अथवा अधिक को नियुक्त करना चाहिये। जैसे और जब वे अपना मूल्य सिद्ध करती हैं, इन निकायों की शक्तियाँ क्रमशः परिवर्धित हो सकती हैं, परन्तु (इन शक्तियों में) किसी भी स्थिति में अध्यापकों की नियुक्ति, पदोन्नति, स्थानान्तरण, अथवा वियुक्ति[3] के ऊपर किसी नियन्त्रण का समावेश नहीं होना चाहिये। जहाँ अन्वीक्षा की एक युक्तियुक्त अवधि के पश्चात् ऐसे निकाय अपने को उदास अथवा अदक्ष दिखलाते हैं, वहाँ उनको अविलम्ब उत्पादित कर देना चाहिये।

(छ) *शिक्षा-समितियाँ[4] एवं मन्त्रणा-मण्डल[5]*

जब बोध[6] फैलता है और शिक्षा में अभिरुचि की वृद्धि होती है, तब अधिक बड़े जिलों के लिये ऐसे कार्यों, मन्त्रणा-

1 School Boards. 2 Bodies of School Managers, 3 Dismissal. 4 Education Committees. 5 Advisory Board. 6 Enlightenment.

सम्बन्धी और/अथवा निष्पादक, के साथ जैसे कि परिस्थितियाँ सुझा सकती हैं, शिक्षा-समितियों और प्रान्तीय केन्द्र पर शिक्षा के केन्द्रीय-मन्त्रणा-मण्डल के कुछ समान रेखाओं पर एक मन्त्रणा-मण्डल की स्थापना करना वाञ्छनीय एवं व्यवहार्य दोनों होगा।

(ज) *केन्द्रीय-शिक्षा-विभाग*

उस उद्दीपन एवं साहाय्य को प्रदान करने के लिये, जिसकी शिक्षा की एक राष्ट्रिय-प्रणाली के स्थापन की आवश्यकता होगी, केन्द्र पर एक प्रबल शिक्षा-विभाग का सर्जन करने के लिये आवश्यकता पहले ही उल्लिखित की जा चुकी है, और यह स्पष्ट है कि यदि दोनों के ज्येष्ठ प्राधिकारी न केवल अन्तर्निमेय[1], परन्तु समान सेवा का अंग होने से चेतन होते तो केन्द्र और प्रान्तों के बीच आवश्यक सहयोग सुविधाजनक एवं सशक्त होगा। प्रत्येक प्रान्त को प्रतिनिधित्व की एक उचित राशि सुनिश्चित करने के लिये कुछ स्थान संघीय तथा अन्य प्रान्तीय लोक-सेवा-आयोगों[2] द्वारा भरे जाने चाहियें। किसी भी मार्ग द्वारा नियुक्त प्राधिकारियों को पदस्थिति में समान एवं पदोन्नति अथवा स्थानान्तरण के लिये समान रूप से योग्य समझा जाना चाहिये।

(झ) *लोक-शिक्षण-संचालक*[3]

लोक-शिक्षण-संचालक को प्रान्त भर में शिक्षा के सामान्य-प्रशासन (विश्वविद्यालय एवं उच्च प्रावैधिक-शिक्षा के अतिरिक्त) के लिये शासन के प्रति उत्तरदायी होना चाहिये। इस प्रयोजन

1 Interchangeable. 2 Provincial Public Service Commissions. 3 Director of Public Instruction.

के लिये उसे शिक्षा-सचिव[1], यदि ऐसे एक पद की वस्तुतः आवश्यकता हो तो, और लोक-शिक्षण-संचालक भी होना चाहिये। लोक-शिक्षण-संचालक और मन्त्री अथवा मण्डल के बीच में, जिसके प्रति उसे प्रत्यक्षतः उत्तरदायी होना चाहिये, शिक्षा के एक विशेषित ज्ञान से रहित एक प्राधिकारी को अन्तर्थापित[2] करने के लिये एक औचित्य-समर्थन न होगा।

(ञ) *विभिन्न सेवाओं से समन्वय*

एक राष्ट्रिय शैक्षणिक-सेवा और उन अन्य सेवाओं के बीच जिनके साथ यह निकट रूप से सम्बन्धित है, निकट-सहयोग सुनिश्चित करने के लिये पद उठाये जाने चाहियें।

१३—निष्कर्ष

(क) *लागत*

जब पूर्ण चलनावस्था[3] में हो तब शिक्षा की एक राष्ट्रिय-प्रणाली की शुद्ध वार्षिक लागत लगभग २७७ करोड़ रुपयों के समान होगी।

(ख) *अवधि*

यदि समस्त आवश्यक निधियाँ प्राप्य हों तो भी इस प्रतिवेदन में स्पष्ट कारणों से, उन प्रस्तावों को, जो इसमें अन्तर्विष्ट हैं, ४० वर्ष से कम की अवधि में पूर्ण प्रभाव देना असम्भव होगा। यह सुझाया जा सकता है कि प्रथम पाँच वर्ष❀ अधियोजन, प्रचार एवं अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिये आवश्यक सस्थाओं की व्यवस्था के लिये निरत[4] होनी चाहियें और कि

1 Secretary for Education. 2 To interpose.
3 Working Order. 4 Devoted.

❀ सार्जेण्ट-प्रतिवेदन में इस अवधि को *"Preparatory Period"* का नाम प्रदान किया गया है।

तत्पश्चात् योजना के वास्तविक पालन को सात पञ्चवर्षीय कार्यक्रमों में विभाजित किया जाना चाहिये, जिनमें से प्रत्येक में एक क्षेत्र अथवा क्षेत्रों--यदि प्रत्येक पर्याप्त परिमाण का हो तो कोई कारण नहीं कि इन्हें संस्पर्शी[1] होना चाहिये--के साथ पूर्णतः संव्यवहार होना चाहिये। प्रत्येक प्रान्त की स्थिति में इन क्षेत्रों का परिमाण प्रत्येक कार्यक्रम-अवधि में विभिन्न कारकों[2] द्वारा निर्धारित होगा, जिनमें से प्रदाय[3] अत्यन्त महत्वपूर्ण होगा।

(ग) वित्तव्यवस्था

यह सर्वथा स्पष्ट होगा कि एक राष्ट्रिय-प्रणाली के लिये वित्तीय उत्तरदायित्वों को केन्द्रीय एवं प्रान्तीय शासनों में किसी प्रकार भी विभाजित किया जाय, अन्तर्ग्रस्त समस्त व्यय एक उस अंक के समान होगा, जो उस पूर्ण आधार के एक उग्र पुनर्विचार को आवश्यक बना देगा, जिस पर शिक्षा की अर्थव्यवस्था की जाती है। केन्द्र और प्रान्तों के बीच आर्थिक-भार के किसी भी पुनर्वण्टन[4] को विभिन्न क्षेत्रों की आगम-उत्पादक-क्षमता[5] में विभिन्नताओं[6] का ध्यान रखना चाहिये। इससे पूर्व कि कोई आरम्भ किया जाता है, इन प्रश्नों को निश्चित किया जाना चाहिये।

इन प्रस्तावों द्वारा उठाये गये बृहद् आर्थिक-प्रश्नों के बारे में, मण्डल यह अनुभव करता है कि अन्य आवश्यक सेवाओं की भाँति शिक्षा की लागत की पूर्ति अन्ततः वर्तमान आगम से होनी चाहिये और यह तब तक सम्भव न होगा जब तक कि देश की करयोग्य-क्षमता[7] अनेक गुनी नहीं बढ़ाई जाती है।

---

1 Contiguous. 2 Factors. 3 Supply.
4 Re-allocation. 5 Revenue Producing Capacity.
6 Variations. 7 Taxable Capacity.

इसके लिये वह (मण्डल) केवल एक ओर उद्योग के एक युक्ति-युक्त विस्तार और दूसरी ओर कृषि के विकास द्वारा राष्ट्रिय-संसाधनों के एक भरसक विकास की ओर (ही) देख सकता है। तथापि, वह विश्वास करता है कि शैक्षणिक-सुविधाओं के विस्तृत विस्तार और उस बोध के फैलाव एवं विशेषित ज्ञान के बिना, जिसे यह बढ़ायेगा, इनमें से कोई (विस्तार अथवा विकास) सम्भव न होगा।

(घ) वार्धा-योजना

मण्डल ने उस ध्यान के साथ, जिसके वे पात्र हैं, उन विभिन्न प्रस्तावों की जाँच ली है जो एक राष्ट्रिय-श्रेणी पर शिक्षा के आर्थिक-भार को कम करने के उद्देश्य से उपस्थित किये गये हैं। इनमें से अत्यन्त रुचिकर एवं महत्वपूर्ण वार्धा-योजना है, जो कुछ वर्ष पूर्व मि० गान्धी जी के संरक्षण[1] में निर्गमित हुई थी। इसका उद्देश्य आधारभूत[2] पाठशालाओं में शिल्प-कार्य का स्तर एक ऐसी पराकाष्ठा[3] तक उठाना था कि छात्रों द्वारा उत्पादित वस्तुओं का विक्रय, पूर्णतः अथवा बहुत कुछ, शिक्षण की लागत को देगा। जबकि मण्डल प्रसन्नता-पूर्वक यह प्रस्वीकार करता है कि इस योजना में वे अत्यन्त सुस्थित शैक्षणिक-सिद्धान्त अन्तर्विष्ट हैं, जिन्हें उसने अपनी आधारभूत-शिक्षा-प्रणाली में समाविष्ट करने में संकोच नहीं किया है, वह विश्वस्त है कि इसकी आर्थिक-प्रत्याशायें[4], किन्हीं परिस्थियों में उनके प्राप्य होने की अत्यन्त संदिग्ध दशा में भी, केवल एक उस शैक्षणिक-दक्षता के मूल्य पर ही प्राप्त हो सकती हैं जिसकी अपेक्षा करने के लिए वह तैयार नहीं है। अतः वह

---

1 Auspices, 2 Basic, 3 Pitch. 4 Financial Expectations.

अनिच्छा से इस निष्कर्ष की ओर चालित[1] है कि यदि भारत एक समुचित शिक्षा-प्रणाली चाहता है तो उसे अन्य देशों की प्रथा का अनुसरण करना होगा और इसके लिए देना होगा।

ग—समीक्षा

(क) सार्जेण्ट-योजना की सामान्य विशेषतायें

(१) सार्जेण्ट-योजना ब्रिटिशकालीन-शिक्षा-विकास के इतिहास में भारत के लिये एक राष्ट्रिय-शिक्षा-प्रणाली के निर्माण की दृष्टि से सर्वप्रथम अत्यन्त महत्वपूर्ण शैक्षणिक-प्रयत्न है।卐 यह कहना सर्वथा समुचित है कि सार्जेण्ट-योजना भारत में विदेशीय शासन-काल की प्रथम एवं अन्तिम अत्यन्त महत्वपूर्ण शैक्षणिक घटना है।

(२) यह एक व्यापक शिक्षा-योजना है जो शिक्षा-प्रणाली के विभिन्न पक्षों के साथ संव्यवहार करती है।❀

---

1 Driven.

卐 *"As the first official attempt to plan a national system of education for India, it deserves a careful study."*

—Syed Nurullah and Naik, J. P., A Students' History Of Education In India, Macmillan, Calcutta, 1956, P. 344.

❀ *"Its chief virtue, however, lies in its comprehensiveness. It boldly visualises Indian education as a whole, and deals not only with the different types of institutions needed in the country, but also with the allied problems of the School Medical Service, Recreative and Social Activities, Employment Bureau etc."*

—Bhagwan Dayal, The Development Of Modern Indian Education, Orient Longmans, Bombay. 1955, P. 164.

(३) इस योजना की अभिधारणायें अत्यन्त निर्भीक हैं और इसमें तत्कालीन भारतीय-शिक्षा-प्रणाली के दोषों का उल्लेख बड़ी निर्भीकता के साथ किया गया है।†

(४) यह योजना शिक्षा-प्रणाली के दोषों को बतलाती है और साथ ही उनमें सुधार करने के लिये उपाय भी सुझाती है।‡

(५) यह योजना शिक्षा के विभिन्न प्रक्रमों पर अवसर-समानता की इच्छा से प्रोत्साहित है।卐卐

---

† *"It may be noted that the Report is rather very bold in its admissions and some of its remarks are noteworthy, e. g., 'The present system does not provide the foundations on which an effective structure could be erected."*

—Mukerji, S. N., History Of Education In India, Acharya Book Depot, Baroda, 1951, 253.

‡ *"It not only pointed out the main defects but suggested remedies too."*

—Mukerji, S. N., History Of Education In India, Acharya Book Depot, Barods, 1951, P. 254.

卐卐 *"......it is inspired by the desire to provide equality of opportunity at different stages of education. At the primary stage it envisages not merely the provision of free schooling but also of other facilities without which the poorer children cannot fully avail themselves of the educational opportunities--midday meal, books, scholarships, medical inspection and treatment. At higher stages, free places and scholarships are proposed for all bright and deserving students."*

—Saiyidain, K. G., Year Book of Education, Evans Brothers. 1949, P. 507.

(ख) सार्जेण्ट-योजना के सामान्य दोष

(१) सार्जेण्ट-योजना एक मूल-लेख्य नहीं है। यह तो उपयोगी सुझावों का एक संक्षेप मात्र है। यह विभिन्न प्रतिवेदनों का एक खण्ड-कार्य[1] है।卐

(२) इस योजना में प्राप्त किये जाने वाले आदर्श का केवल उल्लेख ही किया गया है; विकास का एक पूर्ण कार्यक्रम प्रस्तुत नहीं किया गया है।†

(३) यह योजना एक शिक्षा-योजना की केवल रूपरेखा ही प्रस्तुत करती है और इसमें पाठ्यक्रम, शिक्षण-रीतियाँ, धार्मिक-शिक्षा, स्त्री-शिक्षा, परीक्षायें जैसे महत्वपूर्ण प्रश्नों का समावेश नहीं किया गया है।

(४) यह योजना राष्ट्रिय-प्रणाली की एक अपूर्ण रूपरेखा प्रस्तुत करती है, क्योंकि इसमें ग्रामीय-शिक्षा जैसे महत्वपूर्ण प्रश्न पर्याप्त पर विचार नहीं किया गया है।

---

1 Patch-Work.

卐 *(i) "The Sargent Scheme is not an original document. At best it is only a good summary of the useful suggestions made by previous reports and schemes, including the Wardha Scheme."*

—Bhagwan Dayal, The Development Of Modern Indian Education, Orient Longmans, Bombay, 1955, P. 164.

(ii) The report is, however, a patch-work of different reports published from time to time by the C. A. B, to consider the different aspects of Indian Educational problems."

—Mukerji, S. N., History of Education In India, Acharya Book Depot, Baroda, 1951, P. 250.

(५) यह योजना एक सच्चे अर्थ में राष्ट्रिय नहीं है क्योंकि यह आङ्गल-शिक्षा-प्रणाली का अनुसरण करती है, जो किसी भी दशा में भारत के लिये एक आदर्श-प्रणाली नहीं हो सकती।

(६) यह योजना पहुँच की रीति में कोई आमूल परिवर्तन करने की अपेक्षा शासनों से अधिक उदारता की अपेक्षा करती है।

(७) यह एक अतिमार्गी प्रतिवेदन है। यही कारण है कि इसमें एक निर्धारित धनराशि के व्यय एवं अवधि से कम व्यय एवं अवधि द्वारा प्राप्त हो सकने वाली किसी मध्यमार्गी शिक्षा-योजना पर विचार नहीं किया गया है।

(८) यह एक अत्यन्त व्ययसाध्य योजना है क्योंकि इस योजना को कार्यान्वित करने के लिये लगभग ३१३ करोड़ रुपये व्यय होने का अनुमान किया गया है जो भारत जैसे एक निर्धन देश के लिये संभव नहीं है।

(९) इस योजना को पूर्णतः कार्यान्वित करने के लिये ४० वर्ष की जो अवधि निर्धारित की गई है वह आवश्यकता से अधिक लम्बी है।

हमारा अभिमत यह है कि इन दोषारोपों को उपस्थित करते समय विचारकों ने सार्जेण्ट-योजना को प्रस्तावना में वर्णित योजना के उद्देश्यों, सीमाओं एवं क्षेत्र की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया है। किसी योजना की आलोचना करते समय हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि प्रत्येक योजना के कुछ निश्चित उद्देश्य होते हैं और उसका एक निश्चित क्षेत्र होता है। एक योजना की समालोचना करते समय यह सुगमतापूर्वक कहा जा सकता है कि अमुक प्रश्नों का समावेश न होने के कारण

वह योजना दोषपूर्ण है, परन्तु यदि वे प्रश्न योजना के उद्देश्यों एवं क्षेत्र-सीमाओं से परे हैं अथवा उस योजना में उन प्रश्नों का समावेश न करने के कारणों को स्पष्ट कर दिया गया है तो उन्हें योजना का दोष बतलाना उचित नहीं है। यही सिद्धान्त सार्जेण्ट-योजना पर लागू होता है। इस योजना की प्रस्तावना को दृष्टि में रखते हुये हम उपर्युक्त आरोपों के विषय में निम्न-लिखित निवेदन करना चाहते हैं :—

(१) प्रथम आरोप के विषय में हमारा मत यह है कि सार्जेण्ट-योजना का एक मूल-लेख्य न होना कोई दोष नहीं है। हम इस आरोप के समर्थकों से पूछना चाहते हैं कि क्या अन्ततः संसार में कोई भी शिक्षा-योजना एक मूल-लेख्य का स्थान प्राप्त कर सकती है ? यदि हम गम्भीरतापूर्वक किसी शिक्षा-योजना का विश्लेषण करें तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि वह एक मूल-लेख्य नहीं है। अतः किसी शिक्षा-योजना का एक मूल-लेख्य होना अथवा न होना उतना महत्वपूर्ण नहीं, जितना उसके अभिस्तावों का व्यवहार्य एवं उपयुक्त होना। निस्सन्देह, सार्जेण्ट-योजना का आधार विभिन्न समितियों के प्रतिवेदन हैं, परन्तु उन समितियों के अभिस्तावों को इस योजना में स्थान देने से पूर्व उन पर पर्याप्त विचार किया गया था और आवश्यकतानुसार उनमें आपरिवर्तन किया गया था। अतः, सार्जेण्ट योजना एक ऐसी योजना है जिसमें विभिन्न प्रतिवेदनों का सार विद्यमान है। इसे केवल एक खण्ड-कार्य कहना किसी भी दृष्टि से युक्तियुक्त नहीं हो सकता। इस सम्बन्ध में सार्जेण्ट-योजना की प्रस्तावना के ये शब्द वाचनीय हैं:—

"१९३५ में अपने पुनर्निर्माण से उसने (केन्द्रीय-मन्त्रणा-मण्डल ने) अन्य विषयों में, निम्नलिखित पर (भी) अध्ययन एवं प्रतिवेदन करने लिये समितियों की रूपरचना की है :—

१—आधारभूत शिक्षण (२ प्रतिवेदन)।

२—प्रौढ़-शिक्षा।

३—पाठशालाओं के बच्चों का शारीरिक-कल्याण।

४—पाठशाला-भवन।

५—सामाजिक-सेवायें।

६—प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च पाठशालाओं के अध्यापकों की भर्ती, प्रशिक्षण, तथा सेवा की दशायें।

७—शिक्षाधिकारियों की भर्ती।

८—औद्योगिक (वाणिज्यिक एवं कला समेत)-शिक्षा।

अपनी पिछली दो बैठकों में उसने युद्धोत्तर-आवश्यकताओं और युद्धोत्तर-विकासों के विशेष निर्देश के साथ इन समितियों के अभिस्तावों का सिंहावलोकन किया है, और वह सन्तुष्ट है कि, ऐसे आपरिवर्तनों के अधीन जैसे कि इस प्रतिवेदन में निर्दिष्ट होंगे, वे उन आधारों को प्रदान करते हैं जिन पर इस देश की आवश्यकताओं एवं परिस्थितियों के उपयुक्त, लोक-शिक्षण की एक दक्ष प्रणाली प्रभावशाली रूप से खड़ी की जा सकती है।

"क्योंकि इस प्रतिवेदन का प्राथमिक उद्देश्य वायसराय की निष्पादक-समिति की पुनर्निर्माण-समिति के समक्ष, जिसके पास शैक्षणिक-रीतियों एवं प्रविधि के विषयों से अपने को सम्बन्धित करने के लिये संभव ही समय अथवा इच्छा होगी, युद्धोत्तर-विकास की एक व्यवहार्य-योजना उपस्थित करना है, इन प्रतिवेदनों की विषयवस्तुओं को केवल ऐसा निर्देश किया जायगा

जैसा उन सामान्य सिद्धान्तों को विशद करने के लिये आवश्यक हो सकता है, जिन पर मण्डल के अभिस्ताव आधारित हैं।"

(२) कुछ विचारकों के मतानुसार सार्जेण्ट-योजना का मुख्य दोष यह है कि उसमें अनेक महत्वपूर्ण शैक्षणिक प्रश्नों को विचार करने से या तो पूर्णतः छोड़ दिया गया है अथवा उन पर पर्याप्त विचार नहीं किया गया है। ये आरोप योजना के क्षेत्र से सम्बन्धित हैं। इनके सम्बन्ध में हम यही कह सकते हैं कि संसार की कोई शिक्षा-योजना पूर्ण एवं अन्तिम होने का दावा नहीं कर सकती। तब, सार्जेण्ट-योजना के अधियोजकों से ही ऐसी अपेक्षा क्यों ? स्वयं सार्जेण्ट-योजना के अधियोजकों ने अपनी योजना के पूर्ण एवं अन्तिम होने का दावा नहीं किया। इसके प्रतिकूल, उन्होंने तो अपनी योजना में अनेक महत्वपूर्ण शैक्षणिक प्रश्नों का समावेश न करने के कारणों पर प्रकाश डाला है। इसके अतिरिक्त, सार्जेण्ट-योजना की प्रस्तावना में यह पूर्णतः स्पष्ट कर दिया गया है कि "इस प्रतिवेदन में उसका (मण्डल का) उद्देश्य स्थूल रूपरेखा में इस देश की न्यूनतम शैक्षणिक-आवश्यकताओं को निर्दिष्ट करना और यह दिखलाना है कि उन्हें सन्तुष्ट करने में कितना समय लगेगा तथा उन पर अनुमानतः कितना व्यय होगा। इस अवस्था पर, उन यथार्थ रेखाओं को विहित करना स्पष्टतः उसकी शक्ति से बाहर है, जिनका भावी विकासों को अनुसरण करना चाहिये, यद्यपि उसने सामान्य मार्गप्रदर्शन के लिये सिद्धान्त निर्धारित करने का प्रयत्न किया है। जैसा कि पहले ही बतलाया जा चुका है, उन क्षेत्रों की विशेष आवश्यकताओं के उपयुक्त विस्तृत

योजनायें अथवा संस्थायें बनाना, जिनके प्रति वे उत्तरदायी हैं, शिक्षा-प्रशासन से, इसकी विभिन्न अवस्थाओं पर, न्यस्त विभिन्न प्राधिकारियों का (कर्तव्य) होगा।"

(३) सार्जेण्ट-योजना में पाठ्यक्रम एवं शिक्षण की रीतियों पर विचार क्यों नहीं किया गया है?—यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। वस्तुतः ऐसा न करना सार्जेण्ट-योजना का एक दोष नहीं, परन्तु एक असाधारण गुण है। इस प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व हमें अध्यापक, पाठ्यक्रम एवं शिक्षण की रीतियों के प्रति आङ्गल-दृष्टिकोण को समझना होगा। आङ्गल-शिक्षा-प्रणाली से परिचित विचारकों को यह ज्ञात होगा कि आङ्गल-संसद् द्वारा पारित १९४४ के महान् शिक्षा-अधिनियम (बटलर ऐक्ट) में भी, जिसने आङ्गल-शिक्षा के क्षेत्र में अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन कर डाले हैं, पाठ्यक्रम एवं शिक्षण की रीतियों के प्रश्नों पर विचार नहीं किया गया है। क्यों? हमारे मत में इस प्रश्न का वही उत्तर है जो सार्जेण्ट-योजना सम्बन्धी प्रश्न का। सत्यता यह है कि इङ्गलैण्ड में अध्यापक को एक अत्यन्त उत्तरदायी व्यक्ति माना जाता है और उसकी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये प्रत्येक संभव प्रयत्न किया जाता है। फलतः नूतन शिक्षण-सिद्धान्तों की दृष्टि से इङ्गलैण्ड में अध्यापकों को यह स्वतन्त्रता रहती है कि वे अपनी पाठशालाओं के लिये पाठ्यक्रम एवं शिक्षण की रीतियों का निर्धारण स्वयं करें।❀ यही कारण है कि १९४४ के शिक्षा

❀ *(i) "No freedom that teachers in this country possess is so important as that of determining the curriculum and methods of teaching."*

—Lester Smith, W. O., Education, Penguin Books, 1957, P. 161. (Continued)

अधिनियम अथवा सार्जेण्ट-योजना में पाठ्यक्रम एवं शिक्षण की रीतियों पर विचार नहीं किया गया है।

(४) सार्जेण्ट-योजना की प्रस्तावना में धार्मिक-शिक्षा-सम्बन्धी नीति का स्पष्टीकरण निम्नलिखित शब्दों में किया गया है :—

"तथापि, धार्मिक-शिक्षा का प्रश्न एक भिन्न प्रवर्ग में पड़ता है। उस महत्व पर पहले ही बल दिया जा चुका है, जो यह मण्डल शिक्षा के समस्त स्तरों पर चरित्र-शिक्षा के साथ जोड़ता है। संभवतः इस पर सामान्य सम्मेलन होगा कि विस्तृततम अर्थ में धार्मिक-शिक्षा को समस्त शिक्षा को प्रोत्साहित करना चाहिये और कि एक नैतिक आधार-रहित पाठ्यक्रम अन्त में अफल सिद्ध होगा। निश्चित रूप से मण्डल यह विचार करता है कि साम्प्रदायिक अथवा अन्य निकायों द्वारा संचालित वैयक्तिक पाठशालाओं का एक राष्ट्रिय-प्रणाली में उपयुक्त स्थान होगा, यदि, जहाँ तक लौकिक-शिक्षा से सम्बन्ध है, वे राज्य-पाठशालाओं की स्थिति में विहित शर्तों का पालन करती हैं और स्तरों तक पहुँचती हैं। उन सुविधाओं के अधिक कठिन प्रश्न पर विचार करना उत्तरदायी प्राधिकारियों का (कर्तव्य) होगा, जो राज्य-पाठशालाओं में उन बच्चों को दी

(ii) It is not possible to lay down any rules as to the exact number of the subjects which should be taken in an individual school."

Handbook Of Suggestions, H. M. S. O., 1949. P. 39.

(iii) "On the question of methods, the English attitude is pragmatic—those methods are best, which produce the best result."

Kandel, I. L,. Comparative Education, Harrap, P. 378.

जा सकती हैं अथवा दी जानी चाहियें, जिनके माता-पिता उनसे मतीय धार्मिक-शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा करते हैं। साथ ही, मण्डल यह अनुभव करता है कि उस सर्वोत्तम मार्ग के सम्बन्ध में, जिसके द्वारा धार्मिक-शिक्षा के पूर्ण प्रश्न तक पहुँचना चाहिये, मार्गप्रदर्शन के लिये निश्चित सामान्य सिद्धान्तों को निर्दिष्ट करना लाभप्रद हो सकता है और इस प्रयोजन के लिये उसने तदनुसार एक विशेष-समिति नियुक्त करदी है।"

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि सार्जेण्ट-योजना में धार्मिक-शिक्षा की उपेक्षा नहीं की गई है; इसके प्रतिकूल, मण्डल ने उसे इतना महत्व प्रदान किया है कि उसके समस्त पक्षों पर युक्तियुक्त रूप से विचार करने के लिये एक विशेष समिति की नियुक्ति करना आवश्यक समझा। अतः, धार्मिक-शिक्षा के विषय में विस्तृत ज्ञान प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्तियों को इस विशेष-समिति के प्रतिवेदन का अध्ययन करना चाहिये।

(५) सार्जेण्ट-प्रतिवेदन में स्त्री-शिक्षा के प्रश्न पर एक पृथग् अध्याय में विचार नहीं किया गया है, जिसके कारण कुछ आलोचकों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि उसमें स्त्री-शिक्षा की उपेक्षा की गई है, परन्तु वास्तवता यह नहीं है। स्त्री-शिक्षा के सम्बन्ध में सार्जेण्ट-प्रतिवेदन की प्रस्तावना के निम्नलिखित शब्द विचारणीय हैं:—

"इस प्रतिवेदन में बालिकाओं एवं स्त्रियों के लिये शिक्षा के प्रश्न पर अधिक विशिष्ट निर्देश[1] की अनुपस्थिति के लिये कुछ क्षमायाचना अथवा स्पष्टीकरण आवश्यक हो सकता है। निश्चित रूप से यह इस प्रश्न की महत्ता को पहचानने के लिये

1 Specific Reference.

किसी विफलता के कारण नहीं है; वस्तुतः (सत्यता) सर्वथा विपरीत है। बालिकाओं एवं स्त्रियों की शिक्षा को इसकी अपनी एक समस्या के रूप में समझने की भूतकालिक प्रवृत्ति ने—जो अनेक प्रान्तीय-शिक्षा-प्रतिवेदनों में तब भी अपने लिये एक अध्याय का उपयोग करती है—ध्यान को इस सत्य से बाँट दिया है कि किसी भी आधुनिक समुदाय में पिताओं की अपेक्षा माताओं के लिये शिक्षित होना कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है और कि परिणामतः समस्त शैक्षणिक सुविधाओं को यथोचित परिवर्तन करके[1]—और भेद किसी भी प्रकार से ऐसे मूलभूत नहीं हैं जैसे कि पुराविध[2] कल्पना करते हैं—दोनों लिङ्गों के लिये समान रूप से प्राप्य होना चाहिये। अतः आगामी पृष्ठों में यह कल्पित है कि जो कुछ बालों एवं पुरुषों के लिये आवश्यक है, बालिकाओं एवं स्त्रियों के लिये कम आवश्यक न होगा। अब से कुछ वर्ष पश्चात् यह प्रावैधिक-शिक्षण पर भी लागू हो सकता है।"

(६) सार्जेण्ट-प्रतिवेदन की प्रस्तावना में परीक्षाओं के प्रश्न की उपेक्षा के सम्बन्ध में निम्नलिखित स्पष्टीकरण दिया गया है:—

"इस लोप के दो कारण हैं। प्रथमतः, यह विषय मण्डल की एक समिति द्वारा विचाराधीन रहा है, जिसने अपना अनुसंधान अभी पूर्ण किया है और इसके अभिस्तावों के लिये सम्बन्धित प्राधिकारियों द्वारा वह ध्यान प्राप्त करने का समय नहीं रहा है जिसके वे पात्र हैं। द्वितीयतः, जबकि शिक्षा एक राष्ट्रिय-प्रणाली, निस्सन्देह, तब भी किसी प्रकार की की परीक्षायें रखेगी, (पहले) प्रणाली को आरम्भ करना और

---

1 *mutatis mutandis.* 2 The old-fashioned.

तब इसके उपयुक्त परीक्षायें प्रकल्पित करना अत्यन्त वाञ्छनीय प्रतीत होता है।"

(७) यह सत्य है कि सार्जेण्ट-योजना में स्त्री-शिक्षा की भाँति ग्रामीय-शिक्षा के प्रश्न पर भी एक पृथग् अध्याय में विचार नहीं किया गया है, परन्तु इसका यह अर्थ निकालना समुचित प्रतीत नहीं होता कि इस योजना में ग्रामीय-शिक्षा की उपेक्षा की गई है। सार्जेण्ट-प्रतिवेदन का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सार्जेण्ट-समिति ने वार्धा-योजना का महत्व स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि वार्धा-योजना की अस्वीकृति शब्दान्तर से ग्रामीय-शिक्षा के महत्व की ही अस्वीकृति है, क्योंकि गान्धी जी की वार्धा-योजना वस्तुतः ग्रामीय शिक्षा की ही एक योजना है।

(८) यह भी कहा गया है कि सार्जेण्ट-योजना राष्ट्रिय नहीं है, क्योंकि आङ्गल-शिक्षा-प्रणाली का अनुसरण करने के कारण उसे भारत के लिये एक आदर्श-प्रणाली के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। हम प्रस्तुत अध्याय की प्रस्तावना में पहले ही यह स्पष्ट कर चुके हैं कि ब्रिटिशकालीन भारतीय-शिक्षा के विकास पर आङ्गल-शिक्षा के विकासों का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है। इस कथन में पूर्ण सत्यता है कि सार्जेन्ट-योजना आङ्गल-शिक्षा-प्रणाली का अनुसरण करती है, परन्तु हम इस मत से सहमत नहीं हैं कि केवल इसी कारण से वह राष्ट्रिय नहीं हो सकती। हमारा मत है कि शिक्षा की ऐसी कोई भी योजना, जो भारत की आवश्यकताओं, आदर्शों एवं परिस्थितियों के प्रकाश में बनाई गई हो, राष्ट्रिय कहलाने की अधिकारिणी

होनी चाहिये। सार्जेण्ट-योजना में इन तथ्यों की ओर समुचित ध्यान दिया गया है, अतः वह प्रत्येक दृष्टिकोण से राष्ट्रिय है। हमारी वार्धा-योजना अमेरिकन प्रोजैक्ट-योजना के सिद्धान्तों का पर्याप्त अनुसरण करती है। क्या हम इस आधार पर उसे अराष्ट्रिय कहना समुचित समझेंगे ? निश्चित रूप से नहीं। यही सिद्धान्त सार्जेण्ट-योजना की स्थिति पर लागू होता है। इसके अतिरिक्त, यदि सार्जेण्ट-योजना अराष्ट्रिय होती तो उसमें वार्धा-योजना के लिये संभव ही कोई स्थान होता।

(९) इन आरोपों का कि सार्जेण्ट-योजना द्वारा पहुँच की कोई नवीन रीति नहीं सुझाई गई है और राज्यों से अधिक उदारता की अपेक्षा की गई है, सार्जेण्ट-प्रतिवेदन के ही शब्दों में निम्नलिखित उत्तर दिया जा सकता है :—

"प्रवर्तमान दोषों को या तो अतिरञ्जित करने की अथवा निश्चित समयों एवं स्थानों पर गम्भीर कठिनाइयों के मुख में जो कुछ प्राप्त किया गया है उसकी उपेक्षा करने की निश्चित रूप से मण्डल की इच्छा नहीं है, परन्तु उसके विचारित मत में यह अचिन्त्य है कि जो कुछ अब अस्तित्व में है उससे अथवा अब तक अनुसरित रीतियों से एक युक्तियुक्त अवधि के भीतर एक वस्तुतः राष्ट्रिय-प्रणाली विकसित अथवा उद्विकसित की जा सकती थी। उस अत्यन्त मन्द प्रगति से अलग, जो युद्ध से पूर्व की जा चुकी थी, विद्यमान प्रणाली उन आधारों को प्रदान नहीं करती, जिन पर एक प्रभावशाली संरचना[1] खड़ी की जा सके; वस्तुतः विद्यमान विभ्रमणकारी भवन[2] को इसलिए खुरचना होगा कि अधिक अच्छा कुछ प्रतिस्थापित हो सके।"

1 Structure. 2 Rambling Edifice.

(१०) कुछ विचारकों ने सार्जेण्ट-योजना पर अतिमार्गी होने का दोषारोप करते हुये एक मध्यमार्गी योजना का समर्थन किया है और इस सम्बन्ध में चार सुझाव दिये हैं : (१) शिक्षा केवल कुछ स्थानों में समस्त बच्चों तक सीमिति होनी चाहिये, (२) शिक्षा सर्वत्र केवल कुछ बच्चों तक सीमित होनी चाहिये, (३) शिक्षा कुछ स्थानों में कुछ बच्चों तक सीमित होनी चाहिये, और (४) प्रथमतः केवल कनिष्ठ आधारभूत (प्राथमिक) प्रक्रम के अन्त तक अनिवार्यता लागू की जानी चाहिये और तब इसे क्रमशः ऊपर बढ़ाया जाना चाहिये। सार्जेण्ट-प्रतिवेदन में इन सुझावों को निम्नलिखित आधारों पर अस्वीकृत किया गया है:-

"यदि एक ऐसे भेदकरण को सामाजिक न्याय की माँगों के अनुरूप भी समझा जा सकता (तो भी), यह देखना कठिन है कि संनिहित प्रवरण[1] किस प्रकार उचित रूप से किया जा सकता था। यदि अवसर-समानता के समान कुछ भी होना है तो राष्ट्र के कुछ बच्चों के लिये सुविधायें प्रदान करना और अन्य के लिये नहीं उचित ठहराना असम्भव है। अतः प्रथमतः, एक राष्ट्रिय-प्रणाली सार्वत्रिक के अतिरिक्त अन्य कुछ सम्भव ही हो सकती है। द्वितीय, यदि वह हानि, जो आजकल एक स्वैच्छिक प्रणाली में अस्तित्व में है, बनाये रखने और गुरुतर करने के लिये भी नहीं है तो इसे (राष्ट्रिय-प्रणाली को) अनिवार्य भी होना चाहिये। और तृतीय, यदि शिक्षा को सार्वत्रिक एवं अनिवार्य होना है तो साम्य[2] (यह) अपेक्षा करता है कि इसे निःशुल्क होना चाहिये और सामान्य बुद्धि (यह) माँग करती है कि इसे अपने मूलभूत उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये पर्याप्त समय तक चालू रहना चाहिये।"

1 Selection.　　2 Equity.

"प्रथमतः केवल कनिष्ठ आधारभूत[1] (प्राथमिक) प्रक्रम तक अनिवार्यता लागू करने और तब इसे ज्यों ही परिस्थितियाँ सुझाती हैं अथवा वित्तसाधन अनुज्ञा देते हैं त्योंही क्रमशः ऊपर बढ़ाने के लिये आर्थिक आधारों पर किसी भी प्रस्ताव के विरुद्ध अन्यत्र अनुभव पर आधारित चेतावनी का एक शब्द आवश्यक है। यह सत्य है कि इङ्गलैण्ड एवं अन्य देशों में इस रीति का अनुसरण किया गया है, परन्तु वे, जो इसका अनुभव रखते हैं, (यह) जानते हैं कि इसने कितनी अदक्षता एवं हानि समाविष्ट[2] की है। इसके अतिरिक्त, ६ से १४ तक आधारभूत शिक्षा एक प्रांगारिक सम्पूर्ण[3] होती है और यदि इस प्रकार न समझी जाय तो (वह) अपने मूल्य का अधिकांश खो देगी; किसी भी स्थिति में, एक शिक्षा जो केवल पाँच वर्ष चालू रहती है और लगभग ग्यारह की आयु में समाप्त हो जाती है, या तो जीवन अथवा जीविका के लिये एक पर्याप्त सज्जा[4] के रूप में नहीं समझी जा सकती।"

(११) निस्सन्देह भारत-जैसे एक निर्धन देश के लिये ३१३ करोड़ रुपये की एक शिक्षा-योजना अत्यन्त व्ययसाध्य ही मानी जायगी, परन्तु वित्तप्रबन्ध के साथ भारत की विशाल जनसंख्या एवं शिक्षा की उपयोगिता के प्रश्नों पर भी गम्भीरता-पूर्वक विचार करना होगा। यदि करोड़ों की जनसंख्या वाले भारत जैसे एक देश में एक राष्ट्रिय-शिक्षा-योजना का निर्माण करने के लिये करोड़ों रुपयों की आवश्यकता होती है तो वह सर्वथा उचित ही है। हमें यह न भूलना चाहिये कि शिक्षा की एक राष्ट्रिय-प्रणाली का मुख्य उद्देश्य राष्ट्र के प्रत्येक बच्चे

---

1 Junior Basic. 2 Entailed. 3 Organie Whole.
4 Preparation.

को समुचित शिक्षा प्रदान करना होता है। यह वह न्यूनतम है जिसकी एक राष्ट्रिय-प्रणाली से अपेक्षा की जा सकती है। प्रत्येक देश में शिक्षा का सङ्गठन इसी उद्देश्य की प्राप्ति के दृष्टिकोण से किया जाना चाहिये और उस देश के शासन एवं जनता को ऐसी शिक्षा-प्रणाली के निर्माण के लिये प्रत्येक त्याग करने के लिये सदैव तत्पर रहना चाहिये। वर्तमान काल में, किसी भी स्थिति में शिक्षा के महत्व का अधोमूल्यन नहीं होना चाहिये। शिक्षा द्वारा ही एक देश की निर्धनता दूर हो सकती है और वह महान् बन सकता है। शिक्षा राष्ट्र-वृक्ष का मूल होती है और राष्ट्रिय-जीवन के अन्य पक्ष उस वृक्ष की विभिन्न शाखाओं के समान। जिस प्रकार मूल की ओर समुचित ध्यान देने से एक वृक्ष की विभिन्न शाखायें स्वयं सशक्त बनी रहती हैं उसी प्रकार एक राष्ट्र के शिक्षा-पक्ष को साधने से उसके अन्य पक्ष स्वयं साधित हो जाते हैं। किसी भी दृष्टिकोण से देखिये, शिक्षा राष्ट्रिय-जीवन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष होती है। अतः उसे अन्य पक्षों की अपेक्षा अधिमान दिया जाना चाहिये। सार्जेण्ट-प्रतिवेदन के शब्दों में "शिक्षा का अल्पव्यय पर संचालन करना मिथ्या मितव्ययिताओं में से मिथ्यातम है।" अतः शिक्षा के प्रश्न पर मितव्ययिता के दृष्टिकोण से विचार करना बुद्धिमत्ता न होगी।

(१२) सार्जेण्ट-योजना के धनराशि एवं अवधि-सम्बन्धी अभिस्तावों की सर्वाधिक समालोचना की गई है। एक समय था जब भारतीय विचारक ३१३ करोड़ रुपयों की धनराशि एवं ४० वर्षों की अवधि के उल्लेख मात्र से ही अंग्रेजों के अभिप्राय पर सन्देह करने लगते थे। वे कहने लगते थे कि

अंग्रेज भारतवासियों की शिक्षा की ओर समुचित ध्यान नहीं देना चाहते, वे शिक्षा के साथ न्याय नहीं करना चाहते, वे भारत में शिक्षा की एक राष्ट्रिय-प्रणाली का निर्माण नहीं करना चाहते। यही कारण है कि वे ऐसी काल्पनिक संख्यायें प्रस्तुत करके वास्तवता को छुपाना चाहते हैं। परन्तु, स्वतन्त्रता-प्राप्ति के ग्यारह वर्ष पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि सार्जेण्ट-योजना के धनराशि एवं अवधि-सम्बन्धी अभिस्ताव अत्यन्त विवेकपूर्ण अभिस्ताव थे। स्वयं भारत के शिक्षा-मन्त्री माननीय डॉ० के० एल० श्रीमाली ने इन अभिस्तावों के महत्व, गम्भीरता एवं सत्यता को स्पष्टतः स्वीकार किया है।❀

❀ *"When the Report of the Central Advisory Board of Education on Post-War Educational Development in India, popularly known as the Sargent Plan, which aimed at providing free and compulsory education within a period of forty years, was drawn up in 1944, strong opposition was impressed from all sides on the ground that this was too long a period and the country could not remain without a system of free and compulsory education for forty years. Thirteen years have passed since the Sargent Plan was drawn and we are still far from attaining the goal. The main difficulty in implementing the directive of the Constitution with regard to free and compulsory education is financial, and a proposal is already under consideration to reduce the target from age limit of 14 to 11 and this too to be achieved by the end of the Third Five Year Plan."*

—Shrimali, K. L., Whither Basic Education ?, The Hindustan Times Republic Day Suppliment, January, 26, 1958, P. 11.

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि सार्जेण्ट-योजना पर किये गये अधिकांश दोषारोप सुदृढ़ आधारों पर आधारित नहीं हैं। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वह सर्वथा दोषरहित है। नहीं, उसमें अनेक दोष भी हैं। उदाहरणार्थ, हम यहाँ सार्जेण्ट-योजना की वार्धा-योजना-सम्बन्धी नीति की ओर विचारकों का ध्यान विशेषतः आकृष्ट करना चाहते हैं। हम जानते हैं कि उत्पादिता-सिद्धान्त वार्धा-योजना के प्राण के समान है, परन्तु सार्जेण्ट-योजना में वार्धा-योजना को स्थान प्रदान करते समय उसके उत्पादिता-सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया गया है जिसे समुचित नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार, उच्च वर्गों में शिक्षा के माध्यम के प्रश्न पर कोई अभिमत प्रकट नहीं किया गया है जबकि निम्न वर्गों की स्थिति में बच्चे की मातृभाषा को स्पष्टतः शिक्षा का माध्यम घोषित किया गया है। इससे प्रतीत होता है कि सार्जेण्ट-योजना उच्च वर्गों में अंग्रेजी को पूर्ववत् शिक्षा का माध्यम बनाये रखने के पक्ष में है जिसे कोई देशभक्त भारतीय स्वीकार न करेगा। परन्तु, अनेक दोषों के होते हुये भी सार्जेण्ट-योजना एक महान् शिक्षा-योजना है और वह आज भी भारत में एक राष्ट्रिय-शिक्षा-प्रणाली के निर्माण की दिशा में प्रस्थान-बिन्दु का स्थान ग्रहण कर सकती है।

घ—उपसंहार

सार्जेण्ट-योजना भारत में शिक्षा की एक राष्ट्रिय-प्रणाली का निर्माण करने के लिये उठाया गया सर्वप्रथम महत्वपूर्ण पद थी। इससे पूर्व भारतीय-शिक्षा के विभिन्न पक्षों पर स्वतन्त्र रूप से पृथग्‌तः विचार हुआ था और उन्हें परस्पर समन्वित

करने की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया था। यह कार्य सर्वप्रथम सार्जेण्ट-योजना द्वारा किया गया। आलोचकों ने सार्जेण्ट-योजना में अनेक गुण एवं दोष बतलाये हैं, परन्तु यह देख कर हमें आश्चर्य होता है कि सार्जेण्ट-योजना के निर्माण से लेकर अब तक इस चौदह वर्ष की लम्बी अवधि में भारतीय शिक्षा-प्रणाली का निर्माण करते समय हम उसे न तो उन गुणों से युक्त कर सके हैं जो सार्जेण्ट-योजना में विद्यमान हैं और न उसे उन दोषों से मुक्त कर पाये हैं जिनकी ओर सार्जेण्ट-योजना में सङ्केत किया गया है। सत्य तो यह है कि हम आलोचना के लिये आलोचना करने के इतने आभ्यासिक हो चुके हैं कि हमारी रचनात्मक शक्ति मन्द पड़ गई है और हम जितना कहते हैं उतना कर नहीं पाते! यदि हम सार्जेण्ट-योजना के अभिस्तावों पर आधारित अग्रलिखित प्रश्नों के प्रकाश में विद्यमान भारतीय-शिक्षा-प्रणाली का सिंहावलोकन करें तो हमारे उपर्युक्त कथन की सत्यता पूर्णतः स्पष्ट हो जायगी : (१) क्या हमारी वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में ६ से १४ वर्ष तक के बच्चों को निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा प्रदान की जाती है और वह सच्चे अर्थ में "आधारभूत" है ?, (२) क्या हमारे देश में ३ से ६ वर्ष तक के शिशुओं को निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की जा चुकी है ?, (३) क्या हमारी उच्च पाठशालाओं में छात्रों को प्रवरण के आधार पर भर्ती किया जाता है ?, (४) क्या हमारे समस्त विश्वविद्यालयों में प्रथम उपाधि-पाठचर्या की अवधि तीन वर्ष करदी गई है और अन्तवर्ती प्रक्रम को समाप्त कर दिया गया है ?, (५) क्या हमारे देश में समस्त प्रक्रमों पर प्रावैधिक शिक्षाप्रदान की जाती है ?, (६) क्या राज्य ने प्रौढ़-शिक्षा का उत्तरदायित्व

स्वीकार करके भारत से निरक्षरता का अन्त कर दिया है ?, (७) क्या हमारे समस्त अध्यापक प्रशिक्षित हैं और सन्तुष्ट भी ?, (८) क्या हमने एक पाठशाला-स्वास्थ्य सेवा-की स्थापना करके अपने बच्चों के शारीरिक कल्याण को सुनिश्चित कर दिया है ?, (९) क्या हमारी वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में बाधितों के साथ न्याय किया जाता है ?, (१०) क्या हम अपने बच्चों को पर्याप्त विनोदात्मक एवं सामाजिक क्रियायें प्रदान करने के लिये अखिल-भारतीय-आधार पर एक तरुण-आन्दोलन की स्थापना कर चुके हैं ?, (११) क्या सेवायोजनालय हमारे शैक्षणिक प्रशासन का एक आवश्यक अङ्ग बन चुका है और हमारी पाठशालाओं में शिक्षा के साथ बच्चों की जीविका की ओर भी ध्यान दिया जाता है ?, (१२) क्या हमारी वैयक्तिक पाठशालाओं का "प्रबन्धकों" के हाथों में रहना लाभप्रद एवं वाञ्छनीय है ?, (१३) क्या हम पिताओं की अपेक्षा माताओं को शिक्षित करने की ओर विशेष ध्यान दे रहे हैं ?, (१४) क्या हमारी शिक्षा-प्रणाली असन्धियोजन एवं असमन्वय के दोषों से मुक्त हो चुकी है ? इन प्रश्नों के उत्तर हमारी आँखें खोल देंगे और हम यह अनुभव करने लगेंगे कि बड़ी बड़ी पत्र-योजनाओं की कल्पना करने की अपेक्षा छोटी-छोटी व्यावहारिक-योजनाओं को लागू करना कहीं अधिक महत्वपूर्ण होता है। यदि हमने सार्जेण्ट-योजना पर विवाद न करके उसे कार्यान्वित कर दिया होता तो हमारी वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में उपर्युक्त दोषों का कोई अस्तित्व न होता।

तृतीय अध्याय

विश्वविद्यालय-शिक्षा-प्रतिवेदन[1]

अथवा

राधाकृष्णन--प्रतिवेदन, १९४९

क—प्रस्तावना

१—आयोग की स्थापना

१५ अगस्त १९४७ को एक लम्बे संघर्ष के फलस्वरूप भारत विदेशीय-शासन के बन्धनों से मुक्त हुआ और भारतवासियों के हितों की दृष्टि से उसके पुनर्निर्माण का उत्तरदायित्व स्वयं भारत के नेताओं एवं जनता पर आ गया। स्वतन्त्रता-प्राप्ति से निरन्तर राष्ट्रिय-जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में नवनिर्माण हो रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में भारतीय शिक्षा-प्रणाली के पुनर्निर्माण की यह विशेषता रही है कि शिक्षा का पुनर्निर्माण विश्वविद्यालय-शिक्षा-प्रक्रम की ओर से प्रारम्भ किया गया है। इसी नीति के अनुसार शिक्षा-मन्त्रालय ने, जिसकी स्थापना स्वतन्त्र भारत में ही हुई है, सर्वप्रथम दिसम्बर, १९४८ में डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन के सभापतित्व में एक आयोग की नियुक्ति की, जिसे विश्वविद्यालय-शिक्षा-आयोग अथवा लोक-प्रचलित रूप में राधाकृष्णन-प्रतिवेदन, १९४९ के नाम से पुकारा जाता है। राधाकृष्णन आयोग ने अपना प्रतिवेदन अगस्त १९४९ में प्रस्तुत किया।

---

1. The Report Of The University Education Commission or The Radhakrishnan Report, 1949.

२—आयोग की स्थापना के उद्देश्य

राधाकृष्णन-आयोग की स्थापना का उद्देश्य "भारतीय-विश्वविद्यालय-शिक्षा पर प्रतिवेदन करना और उन सुधारों एवं विस्तारों को सुझाना था जो देश की वर्तमान एवं भावी आवश्यकताओं के उपयुक्त होने के लिये वाञ्छनीय हो सकें।"❀

३—आयोग के सदस्य

राधाकृष्णन-आयोग में दस सदस्य सम्मिलित थे, जिनके नाम इस प्रकार हैं: (१) डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन, सभापति, (२) डॉ० ताराचन्द, (३) डॉ० सर जेम्स एफ० डफ०, (४) डॉ० ज़ाकिर हुसैन, (५) डॉ० आर्थर ई० मौर्गन, (६) डॉ० ए० लक्ष्मणस्वामी मुदालिअर, (७) डॉ० मेघनाद साह, (८) डॉ० कर्मनारायण बहल, (९) डॉ० जौन जे० टिगर्ट, और (१०) श्री निर्मल कुमार सिद्धान्त।

४—आयोग का क्षेत्र : निर्देश-पद[1]

राधाकृष्णन-आयोग की क्षेत्र-सीमाओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिये उसके निर्देश-पदों का अध्ययन करना आवश्यक है। निर्देश-पदों के अनुसार राधाकृष्णन-आयोग की स्थापना विश्व-विद्यालय-शिक्षा के निम्नलिखित पक्षों पर विचार एवं उनके सम्बन्ध में अभिस्ताव करने के लिये की गई थी :—

---

1 Terms of Reference.

❀ *"......to report on Indian University Education and suggest improvements and extensions that may be desirable to suit present and future requirements of the country......".*

—The Report Of The University Education Commission, 1949, Simla 1950, P. 1,

(१) भारत में विश्वविद्यालय-शिक्षा एवं अन्वेषण के उद्देश्य एवं प्रयोजन।

(२) भारत में विश्वविद्यालयों के सङ्गठन, नियन्त्रण, कार्यों एवं अधिकार-क्षेत्र में आवश्यक एवं वाञ्छनीय विचारित परिवर्तन और उनके शासनों, केन्द्रीय एवं प्रान्तीय, के साथ सम्बन्ध।

(३) विश्वविद्यालयों के वित्तसाधन।

(४) विश्वविद्यालयों एवं उनके नियन्त्रणाधीन महाविद्यालयों में अध्यापन एवं परीक्षा के उच्चतम स्तरों का संधारण।

(५) विशेषतः भाषाशास्त्रों[1] एवं विज्ञानों के बीच और शुद्ध विज्ञान एवं प्रौद्योगिकीय प्रशिक्षण[2] के बीच एक सुस्थित सन्तुलन के संधारण तथा ऐसी पाठचर्याओं की अवधि के सम्बन्ध में विश्वविद्यालयों में पाठचर्यायें।

(६) एक स्वतन्त्र विश्वविद्यालय-प्रवेश-परीक्षा की वाञ्छनीयता एवं उन अन्याय्य भेदभावों, जो मूल अधिकार २३ (२) के प्रतिकूल होते हैं, के परिहार के सम्बन्ध में विश्वविद्यालय-पाठचर्याओं के लिये प्रवेश के स्तर।

(७) विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम।

(८) भारतीय संस्कृति, इतिहास, साहित्यों, भाषाओं, दर्शन और ललित कला में उच्च अध्ययन के लिये प्रबन्ध।

(९) एक प्रादेशिक अथवा अन्य आधार पर अधिक विश्वविद्यालयों की आवश्यकता।

(१०) प्रयत्न एवं संसाधनों की हानि से बचते हुए एक

---

1 Humanities 2 Technological Training.

सुसमन्वित सजधज में विश्वविद्यालयों और उच्च अन्वेषण की संस्थाओं की समस्त शाखाओं में उच्च अन्वेषण का संघटन।

(११) विश्वविद्यालयों में धार्मिक शिक्षा।

(१२) बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय और अखिल-भारतीय स्वरूप की अन्य संस्थाओं की विशेष समस्यायें।

(१३) अध्यापकों की अर्हतायें[1], सेवा की दशायें, वेतन, विशेषाधिकार और कार्य तथा अध्यापकों द्वारा मूल अन्वेषण।

(१४) विद्यार्थियों के अनुशासन, छात्रावास, और अवबोधकीय कार्य[2] का संघटन तथा वह कोई अन्य विषय जो विश्वविद्यालय शिक्षा के समस्त पक्षों एवं भारत में उच्च अन्वेषण में एक पूर्ण एवं व्यापक जाँच के लिये उपयुक्त एवं आवश्यक है।

राधाकृष्णन-आयोग द्वारा प्राचीन, मध्यकालीन एवं ब्रिटिशकालीन विश्वविद्यालयों की विशेषताओं का सिंहावलोकन किये जाने के पश्चात् साक्ष्य एवं रचनात्मक सुझावों पर आधारित अत्यन्त महत्वपूर्ण अभिस्ताव किये गये हैं।※ आगामी पृष्ठों में उन्हीं अभिस्तावों का अध्ययन किया जायगा।

---

1 Qualifications. 2 Tutorial Work.

※ *"Our recommendations are largely based on the valuable evidence and the constructive suggestions we have received. We have endeavoured to interpret the hopes and ambitions of University men and women and tried to give form to their aspirations and ideals."*

—The Report OF The University Education Commission, 1949, Simla, 1950, P. 4.

(ख) राधाकृष्णन-प्रतिवेदन के अभिस्ताव

(१) विश्वविद्यालय शिक्षा के उद्देश्य

१—विश्वविद्यालयों का महत्व

उसे वस्तुतः अन्धा होना चाहिये, जो यह नहीं देखता कि, राजनैतिक परिवर्तन जैसे सशक्त होते हैं, वे मूल प्रश्न कहीं अधिक गम्भीर होते हैं जो विश्वविद्यालयों में जो कुछ होता है उसके द्वारा निर्णीत होंगे। प्रत्येक वस्तु कारण की कसौटी तक लाई जा रही है, आदरणीय धर्मविद्यायें[1], प्राचीन राजनैतिक संस्थायें, समयादृत[2] सामाजिक व्यवस्थायें, सहस्र वस्तुयें जो एक पीढ़ी पूर्व ऐसी स्थिर प्रतीत होती थीं जैसे पर्वत। यदि भारत को हमारे समय के संभ्रम[3] के संमुख होना है तो उसे मार्गप्रदर्शन के लिये, उनकी ओर नहीं, जो केवल गये समय की अत्यावश्यकताओं में खो गये हैं, परन्तु अपने पण्डितों[4] और वैज्ञानिकों की ओर, अपने कवियों एवं कलाकारों की ओर, अपने आविष्कर्ताओं एवं उपज्ञाताओं[5] की ओर मुड़ना चाहिये। सभ्यता के ये बौद्धिक अग्रगामी[6] उन विश्वविद्यालयों में प्राप्त एवं प्रशिक्षित होने को हैं, जो राष्ट्र के आन्तर-जीवन के शरण्य[7] होते हैं। विश्वविद्यालय बौद्धिक उपक्रम[8] के गृह होते हैं।

२—विश्वविद्यालयों के सामान्य उद्देश्य

(क) नेतृत्व के लिये प्रशिक्षण

(स्वतन्त्र भारत में) विद्योचित[9] समस्या ने नवीन आकार ग्रहण कर लिया है। अब हम विश्वविद्यालयों के कर्तव्यों एवं

---

1 Theologies. 2 Time-honoured. 3 Confusion.
4 Men of Letters. 5 Inventors. 6 Pioneers.
7 Sanctuaries. 8 Intellectual Adventure. 9 Academic.

उत्तरदायित्वों की एक अधिक विस्तृत अभिधारणा रखते हैं। उन्हें राजनीति एवं प्रशासन, व्यवसायों, उद्योग एवं वाणिज्य में नेतृत्व प्रदान करना है। उन्हें उच्च शिक्षा के प्रत्येक प्रकार, साहित्यिक एवं वैज्ञानिक, प्राविधिक एवं व्यावसायिक, के लिये वर्धी माँग की पूर्ति करनी है। उन्हें वैज्ञानिक एवं प्राविधिक ज्ञान के प्रयोग एवं विकास द्वारा देश को, यथा-शक्य अल्प काल में, अभाव, रोग एवं अनभिज्ञता से स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिये समर्थ बनाना चाहिये।

(ख) बुद्धि एवं ज्ञान

यह पूर्व एवं पश्चिम के विचारकों द्वारा स्वीकार किया जाता है कि समस्त शिक्षा का प्रयोजन विश्व का एक समनुगत चित्र[1] एवं जीवन का एक एकीकृत मार्ग[2] प्रदान करना है। इसके द्वारा हमें नेत्रदशा की एक अनुभूति[3], एक सारांश-दृष्टि[4], ज्ञान के भिन्न पदों का एक समन्वय प्राप्त करना चाहिये। वे विषय, जिनका हम अध्ययन करते हैं, एक सम्बन्धित पाठ्यक्रम के भागों के रूप में पढ़ाये जाने चाहियें। हम ज्ञान के कुछ आधार के बिना बुद्धिमान् नहीं हो सकते, यद्यपि हम ज्ञान सरलता से प्राप्त कर सकते और बुद्धिरहित[5] रह सकते हैं। जब तक कोई वस्तु उनमें आत्मा का जीवन जीने के लिये एक सहज योग्यता जागृत नहीं करती, तब तक तथ्य-सम्बन्धी सूचना की राशि साधारण मनुष्यों को शिक्षित अथवा "साधु[5]" नहीं बनायेगी, क्योंकि शिक्षा मस्तिष्कों का एक प्रशिक्षण

---

1 A Coherent Picture.　　2 An integrated way of life.
3 A Sense of Perspective.　　4 A Synoptic Vision.
Virtuous.

और आत्माओं का एक प्रशिक्षण दोनों होती है, इसे ज्ञान एवं बुद्धि दोनों देने चाहियें।

३—भारत में विश्वविद्यालय-शिक्षा के उद्देश्य

हमें उस सामाजिक-व्यवस्था की एक अभिधारणा रखनी चाहिये जिसके लिये हम अपने युवकों को शिक्षित कर रहे हैं। हमारी शिक्षा-प्रणाली को अपने मार्गप्रदर्शक सिद्धान्त उस सामाजिक व्यवस्था के उद्देश्यों में प्राप्त करने चाहियें, जिसके लिये यह तैयार करती है, (और उस) सभ्यता की प्रकृति में (प्राप्त करने चाहियें) जिसे बनाने की यह आशा करती है। उस सामाजिक दर्शन की रूपरेखायें, जिसे हमारी समस्त संस्थाओं को, शैक्षणिक और आर्थिक एवं राजनैतिक भी, विनियमित करना चाहिये, हमारे प्रारूप संविधान[1] की प्रस्तावना में निर्दिष्ट हैं। यह निम्नलिखित है :—

> "हम, भारत के लोग, भारत को संपूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाने के लिये तथा उसके समस्त नागरिकों को, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक **न्याय**, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की **स्वतन्त्रता**, प्रतिष्ठा और अवसर की **समता** प्राप्त कराने के लिये, तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित कराने वाली **बन्धुता** बढ़ाने के लिये, दृढ़-संकल्प होकर अपनी इस संविधान-सभा में एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।" —२६ जनवरी, सन् १९५० ई०

हम न्याय, स्वतन्त्रता, समता एवं बन्धुता की प्राप्ति द्वारा लोकतन्त्र की खोज में रत हैं। (आगामी पंक्तियों में इन्हीं शीर्षकों

1 Draft Constitution.

के नीचे विश्वविद्यालय-शिक्षा के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला जायगा।

I—लोकतन्त्र

(क) *आत्म-प्राप्ति*[1]

शिक्षा का कार्य मनुष्यों एवं वस्तुओं के वास्तविक विश्व के सम्मुख प्रत्येक व्यक्ति की क्षमताओं[2] की प्राप्ति के इस उपक्रम[3] का मार्गप्रदर्शन होता है। इसका उद्देश्य व्यक्ति का विकास, उसकी विशेष प्रज्ञा[4] का आविष्कार, प्रशिक्षण और उपयोग होता है। अध्यापक का कार्य उद्दीपन एवं मार्गप्रदर्शन द्वारा वृद्धि[5] की सहायता करना है। ज्ञान एवं दक्षताओं के अर्जन द्वारा वृद्धि प्रगत होती है। ये उत्तरोक्त (दक्षतायें) व्यक्ति की संभाव्यताओं को स्वतन्त्र एवं विकसित करने के लिये अभिप्रेत होती हैं। शिक्षा, यदि मौन-संमत[6] प्रकृति हो तो, एक उदासीन पर ऊपर से आरोपित अनुशासन नहीं है। यह अन्तर्मुख प्रकृति को इसकी पूर्ति तक आगे बढ़ाने वाली एक विधा होती है। समस्त सत्य विकास आत्म-प्राप्ति है। वृद्धि के रूप में शिक्षा-विधा संतत एवं यावज्जीवन होती है। हम अध्यापक से, स्वयं द्वारा, एक दूसरे से और जीवन अथवा अनुभव से सीखते हैं। शिक्षा सदैव औपचारिक नहीं होती है। जहाँ हम एक बौद्धिक समुदाय के सदस्यों के रूप में प्रबल तरुण व्यक्तियों की एक संख्या रखते हैं, वहाँ वे दैनिक देन-लेन[7] द्वारा एक दूसरे को शिक्षित करते हैं। अनुभव एक महान् अध्यापक होता है। हम प्रतिदिन एवं प्रतिघण्टा अपने घर से, अपने समुदाय से,

---

1 Self-Realization. 2 Potentialities. 3 Adventure.
4 Talents. 5 Growth. 6 Acquiescent.
7 Give and Take.

अपने मुद्रणालय, वितन्तु[1] और गतियुक्त चित्रों[2] से सीखते हैं। समस्त जीवन अनुभव और इसलिये शिक्षा होता है।

(ख) शारीरिक स्वास्थ्य

मनुष्य स्वभाव में मनो-भौतिक[3] होते हैं। वे शरीर रखते हैं जो वृद्धि के कुछ निश्चित नियमों का पालन करते हैं। ये स्वास्थ्य की एक स्थिति और शारीरिक समुपयुक्तता में रखे जाने चाहियें। शारीरिक व्यायामों, क्रीड़ाओं, तथा व्यायामिक क्रियाओं द्वारा शरीर की शिक्षा प्ररुचि, साहस, अनुशासन, निष्पक्ष व्यवहार और सामूहिक भावना के गुणों का विकास करने में सहायता करती है। स्वास्थ्य एवं शारीरिक ओजस् के बिना हम अपनी बौद्धिक संभाव्यताओं का पूर्णतः अनुभव नहीं कर सकते। प्रबल शारीरिक आधारों के बिना महान् राष्ट्र नहीं बनाया जा सकता।

(ग) मानसिक विकास

समस्त मनुष्य समान प्रकार से बने हुये नही होते हैं। वे भिन्न प्रकारों के, विचारमग्न[4], भावनामय[5], अथवा क्रियात्मक[6], होते हैं, यद्यपि केवल ऐसे ही नहीं होते। सच्चे शिक्षक को छात्र की दैहिक रचना, स्वभाव को समझना चाहिये और अपने अध्यापन को छात्र के मस्तिष्क के अनुकूल करना चाहिये। जिस प्रकार चिकित्सक अपने रोगियों का उनके वैयक्तिक दोषों की दृष्टि से उपचार करते हैं और उस विशेष रोग के विरुद्ध प्रत्युपाय[7] विहित करते हैं, जिसकी ओर वे अभिनत होते हैं, उसी प्रकार अध्यापकों को प्रत्येक छात्र की प्रवृत्तियों एवं दुर्बलताओं का पता निकालना चाहिये, उनकी वाञ्छनीय अभियोग्यताओं

---

1 Radio. 2 Movies. 3 Psycho-physical. 4 Reflective.
5 Emotional. 6 Active. 7 Remedy.

को प्रोत्साहन देना चाहिये और उन दुर्बलताओं का उपचार करना चाहिये जिनकी ओर ये अभिनत हैं। एक सुयोजनाबद्ध शिक्षा-प्रणाली में, छात्रों को प्रत्येक स्तर पर, उनकी विचारात्मक शक्तियों, कलात्मक योग्यताओं एवं व्यावहारिक कार्य के लिये अवसर दिये जायेंगे। हृष अध्यापक[1] छात्र की मानसिक रचना को ज्ञात करने के योग्य होगा, कि वह अपने में अधिक विचारात्मक, कलात्मक अथवा व्यावहारिक झुकाव रखता है। यदि वह विचारात्मक है तो उसे यह ज्ञात करना चाहिये कि कि वह दार्शनिक अथवा वैज्ञानिक, गणितीय अथवा भाषा-प्रज्ञा[2] रखता है; यदि वह कलात्मक है तो उसे यह पता निकालना चाहिये कि वह साहित्य अथवा सङ्गीत, चित्रण अथवा मूर्तिकर्म[3] के लिये स्वाद रखता है; यदि वह व्यावहारिक मस्तिष्क वाला है तो उसे यह ध्यान देना चाहिये कि वह एक महान् संपरीक्षक[4] है अथवा यान्त्रिक मस्तिष्क वाला है। इन विभिन्न प्रवृत्तियों का पता माध्यमिक पाठशाला-प्रक्रम पर निकाला जा सकता है।

(घ) ज्ञान का संरक्षण एवं उन्नति

अस्तित्व के तीन प्रकार होते हैं जो परस्पर-संबद्ध होते हैं, प्राकृतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक। अध्यापन की विषय-वस्तुयें तीन शीर्षकों के अधीन वर्गीकृत की जा सकती हैं, वस्तुओं अथवा प्रकृति के साथ हमारा सम्बन्ध; मनुष्यों अथवा समाज के साथ हमारा सम्बन्ध; मूल्यों अथवा भावना विश्व के साथ हमारा सम्बन्ध।

(१) प्रकृति—प्राकृतिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी[5] इस शीर्षक

---

1 Sensitive Teacher.   2. Talents.   3 Sculpture.
4 Experimenter.   5 Technology.

के नीचे आती है। प्रकृति को समझने की इच्छा विज्ञान तक ले जाती है; निश्चित उद्देश्यों के लिये प्रकृति के ज्ञान को प्रयोग में लाने की इच्छा हमें प्रौद्योगिकी को देती है। प्रत्येक छात्र को उस भौतिक विश्व का ज्ञान रखना चाहिये जिसमें वह रहता है।

(२) समाज—प्रत्येक (मनुष्य) को उस समाज के विषय में कुछ जानना चाहिये जिसमें वह रहता है, उन महान् शक्तियों को जो समकालीन सभ्यता को सांचे में ढालती हैं। इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति, समाज मनोविज्ञान, मानविकी[1] सामाजिक विज्ञानों के समूह का विषय होती है।

(३) भावना—भाषाशास्त्रों[2] का प्रयोजन मनुष्य को उसकी आन्तरिक महत्वाकांक्षाओं और आदर्शों को समझने के लिये समर्थ बनाना होता है। भाषा और मातृभाषा के साहित्य को सामान्य-शिक्षा में प्रथम स्थान अभिधारण करना चाहिये। साहित्य मानवीय भावना का स्पन्दन एवं परिवर्धन करता है। सङ्गीत एवं चित्रण की भांति कलायें हमारे आवेगों को शिक्षित तथा निर्वाह को एक निश्चित अनुग्रह देती हैं। निर्वाह—व्यापार के लिये पुरुषों एवं स्त्रियों को तैयार करने के लिये अभिप्रेत शिक्षा की किसी भी पाठचर्या में दार्शनिक अध्ययनों का समावेश होना चाहिये, जो जीवन के आचरण एवं उद्देश्यों के साथ संव्यवहार करते हैं।

विषयों का विज्ञानों, सामाजिक अध्ययनों एवं भाषाशास्त्रों में विभाजन अनन्य[3] नहीं है। स्थूलतः ये तीन विभाजन

1 Anthropology. 2 Humanities. 3 Exclusive.

तथ्यों[1], घटनाओं[2] एवं मूल्यों[3] के साथ संव्यवहार करते हैं। किसी भी मनुष्य को, जो आधुनिक विश्व में बुद्धिमत्ता से रहना चाहता है, (१) विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, (२) इतिहास समेत सामाजिक अध्ययनों और, (३) भाषा एवं साहित्य, ललित कलाओं, नीतिशास्त्र, दर्शन एवं धर्म समेत भाषाशास्त्रों के तीन क्षेत्रों से चुनी हुई सामग्री का कुछ ज्ञान रखना चाहिये।

(ङ) वैयक्तिक गुण का उन्नयन

जबकि ज्ञान का संरक्षण एवं उन्नति विश्वविद्यालयों का एक प्रमुख प्रयोजन है, उनका उद्देश्य अपने सदस्यों के वैयक्तिक गुण का उन्नयन और उन्हें अच्छे जीवन की चाहना करने वाले बनाना भी होना चाहिये। एक मनुष्य प्रकृति के विश्व में रहता है, परन्तु मूल्यों के विश्व को समझता है। हम उसे चक्र के ऊपर तोड़ सकते हैं, स्थूण[4] पर उसे जला सकते हैं, एक संकेन्द्रण-शिविर[5] में उसे जीवित गाढ़ सकते हैं अथवा उसका वध[6] कर सकते हैं, परन्तु हम उससे झूठ नहीं बुलवा सकते, चोरी नहीं करा सकते अथवा उस कारण का भेद नहीं खुलवा सकते जिसमें वह विश्वास रखता है। हमारी शिक्षा को अपने सदस्यों में मस्तिष्क की निर्भयता, अन्तःकरण की शक्ति और प्रयोजन की पूर्णता के विकास को प्रोत्साहन देना चाहिये। यदि मानव-जीवन को मानवीय रहना है तो इसे नैतिक दायित्व की एक भावना को गहरा करना चाहिये और (उसी के) साथ रहना चाहिये। नैतिक स्वतन्त्रता के बिना सच्चा लोकतन्त्र नहीं हो सकता।

---

1 Facts.   2 Events.   3 Values.   4 Stake.
5 Concentration Camp.   6 To Crucify.

(च) *समाज का शाश्वतीकरण*[1]

वस्तुतः यह सत्य है कि यदि समाज को असंतत नहीं होना है तो हमें विद्यार्थियों को एक प्रतिरूप[2] के सांचे में ढालना चाहिये जो अतीत द्वारा संमोदित है। शिक्षा एक साधन है जिसके द्वारा समाज अपना शाश्वतीकरण करता है। उस राज्य को दुर्बल करने के लिये किसी भी शिक्षा-प्रणाली को निदेशित नहीं किया जा सकता जो इसका संधारण करता है। परन्तु शिक्षा सामाजिक परिवर्तन के लिये भी एक साधन है। हमें अपने को, सामाजिक वातावरण में समायोजित करने के लिये केवल समर्थ बनाना ही इसका उद्देश्य नहीं होना चाहिये। शिक्षा का उद्देश्य नवीन मूल्यों के लिये स्थान बनाना और उन्हें शक्य बनाना भी होना चाहिये।

II—न्याय

(छ) *वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति*

(१) कृषि-शिक्षा—हमारी जनता की विशाल बहुसंख्या कृषि-रत है और अन्नोत्पादन के सम्बन्ध में हमारी स्थिति कारुणिक है। हमने ग्रामक्षेत्र की उपेक्षा की है, ग्राम-समुदायों को प्रविदारित[3] किया है और ग्रामीय प्ररुचि को नष्ट किया है। यदि हम अपना अन्नोत्पादन बढ़ाना चाहते हैं तो हमें कृषकों को प्रशिक्षित करना चाहिये और कृषि में वैज्ञानिक अन्वेषण के परिणामों का खेतों में उपयोग करना चाहिये।

(२) प्रौद्योगिक शिक्षा—हमारे नेताओं ने करोड़ों रुपयों के व्यय को अन्तर्ग्रस्त करते हुये हमारे देश के औद्योगीकरण के लिये महत्वाकांक्षी योजनायें खींची हैं। वे संचार में सुधार करना चाहते हैं, सिंचाई की प्रणालियों का विकास करना

1 Perpetuation. 2 Pattern. 3 Disrupted.

चाहते हैं, गाँवों को विद्युत् का वितरण करना चाहते हैं। वे स्वास्थ्य एवं स्वच्छता के सुधार के लिये बृहद् योजनायें रखते हैं। यदि इन योजनाओं को प्राप्त किया जाना है तो हमें, स्नातकों की अपेक्षित संख्या उत्पन्न करने के लिये और देश भर में औद्योगिक विद्यालयों का निर्माण करने के लिये जो इस प्रयोजन के लिये अपेक्षित प्रविधिज्ञों[1] की अधिक बड़ी संख्या देंगे, व्यावसायिक महाविद्यालयों, कृषि, आयुर्विज्ञान और अभियान्त्रिक[2], की संख्या में वृद्धि करनी है।

(३) ग्रामीय-विकास—देश के औद्योगीकरण को इस तथ्य पर विचार करना चाहिये कि हमारी जनता की विशाल बहु-संख्या गाँवों में रहती है। वे टूट चुके हैं। आज हमें उनको पुनर्जीवित करना है और, यथा-शक्य, आत्मनिर्भर बनाना है। कुटीर-उद्योगों एवं लघु सहकारी-संस्थाओं के विकसित होने की और कुटीरों में रहने वाले मनुष्यों के श्रमों को हल्का करने के लिये यन्त्रों की आवश्यकता है। कृषि एवं ग्राम-उद्योगों द्वारा समर्थित, आवश्यक महानुमाप[3] उद्योगों द्वारा अनुपूरित जो, कुछेक उद्योगपतियों के लाभ के लिये नहीं, परन्तु सामान्य-कल्याण के लिये चालित हैं, हमारी अर्थव्यवस्था को विकेन्द्रीयित[4] (अर्थव्यवस्था) होना चाहिये। यन्त्र को मनुष्य के सामाजिक विकास के एक स्वाभाविक सहायक[5] के रूप में समझा जाना चाहिये। यह स्वतन्त्र व्यक्ति का साधन होता है और उसका स्वामी नहीं। इसे शक्तिशाली स्वार्थपर व्यक्तियों एवं समूहों का सेवक नहीं होना चाहिये।

---

1 Technicians.   2 Engineering.   3 Large Scale.
4 Decentralized.   5 Accessory.

(ज) *नेतृत्व-प्रशिक्षण*

व्यवसायों में और जन-जीवन में नेतृत्व के लिये प्रशिक्षण विश्वविद्यालय शिक्षा के केन्द्रीय उद्देश्यों में से एक है, जिसे प्राप्त करना कठिन है। पुरुषों एवं स्त्रियों को बुद्धिमत्ता-युक्त नेतृत्व के लिये प्रशिक्षित करना विश्वविद्यालयों का कार्य है, उन्हें तरुण पुरुषों एवं स्त्रियों को मानवीय अनुभव के अभिलेखों[1] को, जैसा कि वे विश्व के साहित्य में अभिव्यक्त होते हैं, अन्तर्दृष्टि पूर्वक पढ़ने के लिये, नैतिक मूल्यों की प्रकृति एवं परिणामों को जानने के लिये, आज विश्व में चालू सामाजिक शक्तियों के अर्थ को समझने के लिये और जीवन की जटिलताओं एवं दुर्गमताओं को इसकी समस्त विशालता, भौतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक, में समझने के लिये समर्थ बनाना चाहिये।

(झ) *चरित्र-सुधार*

हम एक सभ्यता का निर्माण कर रहे हैं, एक निर्माणी[2] अथवा एक निर्माणशाला[3] का नहीं। एक सभ्यता का गुण भौतिक सज्जा अथवा राजनैतिक तन्त्र पर नहीं, परन्तु मनुष्यों के चरित्र पर निर्भर करता है। शिक्षा का मुख्य कार्य चरित्र का सुधार है।

III—स्वतन्त्रता

(ञ) *तमसो मा ज्योतिर गमय : संस्कारी शिक्षण*[4]

समस्त शिक्षा उदार होने के लिये प्रत्याशित हैं। इसे हमें अनभिज्ञता, प्रतिकूलता और आधार रहित विश्वास की बेड़ियों से स्वतन्त्र करना चाहिये। यदि हम अच्छा जीवन प्राप्त करने के असमर्थ हैं, तो यह हमारे अन्तर-मानव[5] में

1 Records. 2 Factory. 3 Workship. 4 Liberal Education. 5 Inward Being.

दोषों, हमारे में अन्धकार के कारण है। शिक्षा की विधा इस अंधकार पर मन्द विजय है। शिक्षा का उद्देश्य हमें अन्धकार से प्रकाश की ओर बढ़ाना, हेतु[1] के अतिरिक्त प्रत्येक प्रकार के प्रभुत्व से हमें स्वतन्त्र करना है।

IV—समता

(ट) *सामाजिक मोक्षण*[2]

लोकतन्त्र जीवन के एक मार्ग के रूप में और केवल एक राजनैतिक व्यवस्था (के रूप में) नहीं, अपने अनुपक्तों[3] से न केवल उनके अपने अधिकारों के लिये परन्तु समान रूप में दूसरों के वैसे अधिकारों के लिये एक ईर्ष्यायुक्त ध्यान की अपेक्षा करता है। यह अपने समस्त सदस्यों के लिये, रक्त, धर्म, लिङ्ग, उपजीविका अथवा आर्थिक स्थिति से उपेक्षावान्, समान स्वतन्त्रता एवं समान अधिकारों के सिद्धान्त पर आधारित है। शिक्षा सामाजिक मोक्षण का महान साधन है जिसके द्वारा एक लोकतन्त्र अपने सदस्यों में समता की भावना स्थापित करता है, बनाये रखता है और उसकी रक्षा करता है। यदि हम लोकतन्त्र के सामाजिक-स्वभाव[4] का विकास करेंगे तो हम एक दूसरे में विश्वास रखेंगे। समान अवसर का अर्थ सबके लिये एकसम[5] अवसर नहीं है। इसका अर्थ प्रत्येक अर्हताप्राप्त व्यक्ति के लिये शिक्षा की समान प्राप्यता है। हमारी प्रणाली को उस मात्रा तक प्रत्येक व्यक्ति के लिये शिक्षा का उपबन्ध करना चाहिये कि वह इससे लाभ उठा सकता है और (उस) प्रकृति (की शिक्षा को उपबन्ध करना चाहिये जो) उसके स्वभाव का अधिकतम विकास सुनिश्चित करने के लिये सर्वोत्तम

1 Reason. 2 Social Emancipation. 3 Adherents.
4 Temper. 5 Identical.

आकल्पित है। वस्तुतः इसे देन[1] एवं अभिरुचियों के भेदों को प्रस्वीकार करना चाहिये। एक लोकतन्त्रात्मक समाज में ज्ञान का अवसर केवल एक प्रवर[2] के लिये ही नहीं, परन्तु उन सबके लिये खुला होना चाहिये जिन्हें नागरिकता का विशेषाधिकार एवं उत्तरदायित्व वहन करना है। शिक्षा एक सार्वत्रिक अधिकार है, एक वर्ग-विशेषाधिकार नहीं। शैक्षणिक अवसर के वितरण में चित्तचांचल्य[3], पूर्वग्रह[4], पक्षपात, विशेष अधिकार, अथवा अन्य मनमानी कार्यवाही नहीं होनी चाहिये। सामान्यतः प्रत्येक व्यक्ति को उस प्रकार का और उस मात्रा तक शैक्षणिक अवसर रखना चाहिये जो उसकी सामर्थ्य एवं अभिरुचि के उपयुक्त है और जो उसके कुल शैक्षणिक संसाधनों के उचित अंश का प्रतिनिधित्व करता है। यदि हमें समता की माँग को सार एवं वास्तविकता देनी है तो हम मानते हैं कि हमें एक (ऐसी) प्रणाली बनानी चाहिये, जिसमें अर्हताप्राप्त व्यक्ति आर्थिक अवरोधकों द्वारा उस प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने से बाधित नहीं होते हैं, जिसके लिये वे अपनी क्षमताओं एवं अभिरुचियों द्वारा उपयुक्त हैं। दशायें भारत में अधिक बुरी हैं। यदि हमें अत्यन्त निर्धनों को भी केवल कुछ नहीं परन्तु वह सर्वोत्तम शिक्षा प्राप्त करने के लिये समर्थ बनाना है जिसके वे योग्य हैं, तो हमें छात्रवृत्तियों की एक (ऐसी) बृहत् एवं उदार प्रणाली सङ्गठित करनी चाहिये जो नितल[5] से विश्वविद्यालय प्रक्रम तक एक (ऐसे) सोपान का उपबन्ध करेगी जिसके साथ कोई भी बच्चा अपनी सामर्थ्य की मात्रा तक आरोह कर सकता है। इन छात्रवृत्तियों में केवल शिक्षण लागत ही नहीं परन्तु

---

1 Gifts. 2 *elite*. 3 Caprice. 4 Prejudice. 5 Bottom.

भोजन[1] संवास[2] एवं जीवन की अन्य आवश्यकताओं की लागतों का भी समावेश होना चाहिये। ज्ञान प्राप्त करने की संभावना को विशेष समूहों के सदस्यों के लिये कम करना (भारतीय संविधान के) मूल अधिकार का विरोधी है। यह हमारे समाज के स्तरविन्यास[3] को बढ़ाने के लिये प्रवृत्त होगा। हम इन अनुसूचित जातियों[4] एवं पश्चवर्ती समुदायों[5] की अपना सांस्कृतिक स्तर उठाने की चिन्ता के साथ बड़ी सहानुभूति में हैं। उनकी पश्चवर्तिता एक लम्बी अवधि के असमान अवसर का परिणाम है और इसका यथा-शक्य वेग पूर्वक प्रत्युपाय किया जाना चाहिये। हमें उनके लिये अतिरिक्त सहायता का उपबन्ध करना चाहिये जो उन्हें राष्ट्र के अन्य (बच्चों) के साथ अपने बच्चों को समान शैक्षणिक अवसर देने में समर्थ करेगी। महाविद्यालयों में सुविधाओं का विस्तार एवं उनकी संख्या में वृद्धि करके, हम शैक्षणिक अवसरों के समकरण की ओर सरकने के योग्य होंगे। दस वर्ष की अवधि के लिये आरक्षण के सिद्धान्त को अंगीकार किया जा सकता है।

V—बन्धुता

(ठ) भ्रात्रीयता एवं सद्भाव

बन्धुता भारत एवं विश्व की जनता में भ्रात्रीय ऐक्य एवं सद्भाव की आवश्यकता की ओर निर्देश करती है। यदि हम जाति, समुदाय एवं धर्म के भेदों पर बल नहीं देते तो यह शिक्षण-संस्थाओं में भिन्न समुदायों के सदस्यों में बढ़ाई जा सकती है। छात्रावासों और क्रीड़ास्थलों और संघों में छात्रों

---

1 Board.　2 Lodging,　3 Stratification.　4 Scheduled Castes.　5 Backward Communities.

को जीवन के लोकतन्त्रात्मक मार्ग में प्रशिक्षित किया जाना चाहिये। महाविद्यालय की पाठ्य-बाह्य क्रियायें[1] (उन) साधनों का उपबन्ध करती हैं जिनके द्वारा छात्र निर्णय करने में और संयुक्त उपक्रमों में भाग ले सकें। छात्रों को उन क्षेत्रों की सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्रियाओं में भाग लेने के लिये प्रोत्साहित किया जाना चाहिये जिनमें महाविद्यालय स्थित हैं जिससे वे उस समाज की आवश्यकताओं के प्रति जीते जागते हो सकें जिसमें वे रहते हैं।

(ड राष्ट्रिय अनुशासन

आज हम छात्रों में एक बड़े परिमाण में अननुशासन की सुनते हैं। विश्वविद्यालय दो समूहों में खण्डित हो गया है। अध्यापकों का विश्व विद्यार्थियों के विश्व से पृथक् है। विद्यार्थी प्राधिकारियों के प्रति कार्मिक-संघ-दृष्टिकोण[2] अङ्गीकार करते हैं। वे अपने अध्यापकों के लिये अल्प आदर और विद्योचित स्तरों के लिये अल्प चिन्ता रखते हैं। वे विश्वस्त होते हैं कि अध्यापक उस समाज की अस्वस्थता के बारे में, जिसमें हम रहते हैं, उनकी अपेक्षा अल्प सूचित हैं। तरुण व्यक्ति सहायता की निराशोन्मत्त आवश्यकता में हैं। विश्वविद्यालय-परिपार्श्व[3] निगम-जीवन[4] के लिये पर्याप्त अवसरों का उपबन्ध नहीं करते। अध्यापक केवल शिक्षा ही नहीं देता, परन्तु भावना की शक्ति भी पहुँचाता है। महाविद्यालय-भित्तियों के भीतर अनिवार्य निवास, जो विश्व के अनेक विश्व-विद्यालयों में आवश्यक है, अध्यापक के परिपक्व चरित्र और छात्रों के अभी तक अनिर्मित मस्तिष्क के बीच इस अमूल्य मिथः-क्रिया[5] को धारण करता है। इस वैयक्तिक

1 Extra-Curricular Activities. 2 Trade Union Attitude.
3 Surroundings. 4 Corporate Life, 5 Interaction.

सम्बन्ध की अनुपस्थिति वर्धी अननुशासन के लिये कम मात्रा तक उत्तरदायी नहीं है। महाविद्यालय को एक समुदाय-केन्द्र होना चाहिये और केवल एक वर्गकोष्ठ अथवा एक आवासगृह[1] नहीं। विश्वविद्यालयों को सत्य-व्यवहार एवं शिष्टाचरण में राष्ट्र के लिये उदाहरण होना चाहिये। यह शिक्षा-संस्थाओं में ही (सम्भव) है कि हम शरीर, बुद्धि एवं इच्छा के अनुशासन द्वारा चरित्र का प्रशिक्षण कर सकते हैं, व्यक्तित्व का निर्माण कर सकते हैं।

(ढ) *एक सांस्कृतिक पैतृकसम्पत्ति का पारेषण*[2]

यदि समाज को वैयक्तिक विशेषज्ञों के एक समूह में वियोजित[3] नहीं होना है तो हमें तरुणों को मूल्यों का एक केन्द्रीय आन्तरक[4] प्रदान करना चाहिये, उन तक एक सांस्कृतिक पैतृक-सम्पत्ति का पारेषण (करना चाहिये)। यह अकेली ही (उस) समाज में एक संलागी[5] शक्ति के रूप में सेवा कर सकती है, जो अतिविशेषीकरण द्वारा खण्डित हो रहा है। यह विशेषित व्यावसायिक पाठचर्याओं को उद्देश्य की एक एकता और संगति प्रदान करेगी और एक अधिक प्रचुर वैयक्तिक जीवन एवं एक अधिक स्वतन्त्र सामाजिक व्यवस्था के योग्य होगी। उस शिक्षा-प्रणाली के विपरीत, जो इस देश में एक शताब्दी से ऊपर प्रमुख रही है, गम्भीर परिवादों[6] में से एक यह है कि इसने भारत के अतीत की उपेक्षा की, कि इसने भारतीय विद्यार्थियों के लिये उनकी अपनी संस्कृति का उपबन्ध नहीं किया। कुछ स्थितियों में इसने यह भावना उत्पन्न की है कि हम मूलरहित हैं; अन्य (स्थितियों) में, जो अधिक बुरा है, कि

1 Hotel.　　2 Transmission of a Cultural Heritage.
3 Disintegrated, 4 Core.　　5 Cohesive.　　6 Complaints.

हमारी जड़ें हमें उससे अति भिन्न, जो हमें घेरता है, एक विश्व से बाँधती हैं। राष्ट्र मुख्यतः व्यापारियों एवं राजनीतिज्ञों द्वारा नहीं बनाये जाते हैं। वे कलाकारों एवं विचारकों, सन्तों एवं दार्शनिकों द्वारा बनाये जाते हैं। राष्ट्रिय एकता एवं प्रगति को एक राजनैतिक एवं आर्थिक व्यवस्थाओं की अपेक्षा एक अधिक गहरी नींव की आवश्यकता होती है। यह भावना का ही जीवन है जिसने हमारे सामूहिक जीवन को आकार दिया है और एकरूप किया है और (जो) भारतीय जनता में एकता का वास्तविक बन्ध रहा है। भारतीय संस्कृति एक (उस) हस्तलेख[1] के समान है जिसमें नवीन लिपियाँ प्राचीन को सर्वथा मिटाती नहीं। केवल एक सामाजिक प्रतिकृति में भिन्न युगों के खण्ड उपस्थित होते हैं। दो परस्परविरोधी प्रेरणाओं ने भारतीय बौद्धिकों को आकृष्ट किया है। एक, पश्चिम (की प्रतिभा एवं परम्परा) से पूर्णतः पृथक्, भारतीय प्रतिभा एवं परम्परा में एक ईर्ष्यायुक्त अभिमान है। दूसरी पश्चिम के उदाहरण से लाभ उठाने की इच्छा है (जो) कम ईर्ष्यायुक्त नहीं। हमें समालोचनात्मक एवं प्रवरणशील[2] होना चाहिये और अतीत का प्रयोग वर्तमान को प्रकाशित करने के लिये करना चाहिये। अधःपतन के क्रूरतम[3] दिनों में भी, भारतीय संस्कृति का प्रकाश कभी विफल नहीं हुआ। यह फुरफुरित हो सका है, परन्तु यह कभी बुझा नहीं।

(ए) विश्व-शान्ति

एक राष्ट्र-राज्य एक राजनैतिक संघटन का आदि और अन्त नहीं है, यद्यपि यह आधुनिक जीवन की एक आवश्यक विशेषता

---

1 Palimpsest. 2 Selective. 3 Darkest.

है। परिवहण एवं संचार तथा आर्थिक अन्योन्याश्रय के कारण, विश्व केवल एक निकाय[1] हो गया है। हमें जनता के विचार में विश्व की एकता की प्रस्वीकृति एवं स्वीकृति प्राप्त करनी चाहिये। परस्पर समझ में वृद्धि इस प्रस्वीकृति से उठती है कि भिन्न संस्कृतियाँ भावना की एक ही भाषा की बोलियाँ हैं। हमारा विचार अभी तक प्रान्तीयता के चिन्ह वहन करता है। हम अभी तक अन्य मनुष्यों की ओर सन्देह एवं अविश्वास के साथ देखने के लिये प्रवृत्त होते हैं अथवा उन्हें घटिया एवं पश्चवर्ती के रूप में निस्सारित[2] कर देते हैं क्योंकि वे हमसे भिन्न होते हैं। हमें जीवन के उन मानवीय मूल्यों एवं मार्गों के संभाव्य मूल्य को ग्रहण करना सीखना चाहिये जिन्हें हम स्वयं स्वीकार नहीं करते। एक संकुचित रूप से प्रान्तीय मस्तिष्क के लिये सांस्कृतिक भेद कोपकारी होते हैं, परन्तु एक उदार हृष[3] मस्तिष्क के लिये वे अत्यन्त पारितोषिकप्रद[4] होते हैं। एक संयुक्त विश्व में एक विस्तृत अनेकरूपता के लिये स्थान होगा। विश्व-संघ का अर्थ विश्व का क्षीण होना नहीं परन्तु समृद्धि होगा। विश्वविद्यालय विश्व-शान्ति के लिये महत्वपूर्ण अंशदान कर सकते हैं। जैसाकि उनके नाम से ही ध्वनित होता है, विश्वविद्यालय अन्य संस्कृतियों का एक सक्रिय अधिमूल्यन एवं समझ बढ़ाने के लिये उपयुक्त होते हैं। अक्षरों, विज्ञान, कला, संगीत के विश्व में प्रभावशाली राष्ट्रिय सीमायें नहीं रही हैं। विश्व नागरिकता के लिये शिक्षा का एक कार्यक्रम प्रत्येक व्यक्ति की सामान्य शिक्षा का एक भाग बना दिया जाना चाहिये। विश्वविद्यालयों को

---

1 Body. 2 To dismiss, 3 Sensitive. 4 Rewarding.

अन्तर्राष्ट्रिय कार्यों के भिन्न पक्षों, यथा अन्य सभ्यताओं एवं संस्कृतियों की प्रकृति एवं विकास, अपने अन्तर्राष्ट्रियता के साथ सम्बन्ध में राष्ट्रियता, युद्धों की ओर ले जाने वाली आततियाँ[1], अन्तर्राष्ट्रिय सुरक्षा एवं अन्तर्राष्ट्रिय समस्याओं के शान्तिपूर्ण समाधान के लिये आकल्पित विभिन विश्व सङ्गठनों की संरचना एवं क्रियाकरण[2], के अध्ययन के लिये व्यवस्था करनी चाहिये।

(२) अध्यापक वर्ग

१—अध्यापक का महत्व

शैक्षणिक-विधा[3] की सफलता अध्यापक के चरित्र एवं योग्यता पर इतनी निर्भर करती है कि विश्वविद्यालय-सुधार की किसी भी योजना में मुख्य कार्य अपने बहु-पार्श्व कर्तव्यों का पालन करने के लिये आवश्यक अर्हताओं-युक्त एक पर्याप्त कर्मचारिवृन्द को प्राप्त करने के लिये होना चाहिये। व्यवसाय द्वारा अध्यापक सत्यान्वेषण के लिये समर्पित होता है। वह उस पथ पर एक तीर्थयात्री होता है जो बौद्धिक-सन्तोष के यत्नोद्देश तक ले जाता है और वह एक उस मनोहर मण्डली में एक यात्री होता है जो उसे उद्दीप्त एवं प्रोत्साहित करती है। वह एक उस विश्व में रहता है जहाँ वह यह भावना रखता है कि वह इसका अंग है और जहाँ वह अन्यदेशीयता की भावना नहीं रखता। वह एक ऐसा जीवन व्यतीत करने का, जिसमें कार्य सुख होता है, वह अवसर रखता है जिसे अन्य कुछ ही रखते हैं।

---

1 Tensions. 2 Operation. 3 Process.

२—अध्यापक का मुख्य कर्तव्य

अध्यापक का मुख्य उत्तरदायित्व अध्यापन के क्षेत्र में, जिसके लिये वह उत्तरदायी होता है, छात्र की अभिरुचि जागृत करना है। उसे केवल तथ्य-सम्बन्धी सूचना एवं सिद्धान्तों और उन सामान्यानुमानों[1] को ही, जो उनसे प्राप्त होते हैं, ले जाना नहीं होता है, (परन्तु) उसे जाँच एवं समालोचना की भावना उद्दीप्त करनी होती है जिससे मस्तिष्क स्वतन्त्र एवं अनभिनत[2] निर्णय का प्रयोग करने का स्वभाव प्राप्त करना, और पर्याप्त एवं अपर्याप्त, सम्बद्ध एवं असम्बद्ध सामग्री के बीच विभेद करना, और निष्कर्षों पर पहुँचने में शीघ्रता एवं अनिर्णय की चरमसीमाओं का परिहार[3] करना सीख सकें।

३—अच्छे अध्यापक के गुण

वह अध्यापक, जो क्षेत्र का स्वामी नहीं है, जो अपने विषय में नवीनतम विकासों के सम्पर्क में नहीं है और जो अपने कर्तव्यों से संबद्ध एक स्वतन्त्र एवं अलिप्त[4] मस्तिष्क उपस्थित नहीं करता, युवक को सत्य के उस प्रेम के साथ प्रोत्साहित करने में कभी सफल न होगा जो समस्त उच्च शिक्षा का मुख्य उद्देश्य होता है।

अध्यापक उन परम्पराओं एवं आदर्शों का वाहक भी होता है जो एक समाज की सामान्य प्रकृति[5] का निर्माण करते हैं। न बौद्धिक एवं नैतिक गुणों के बीच कोई वास्तविक विभेद करना ही सम्भव है। बौद्धिक क्षेत्र में परिणाम प्राप्त करने की इच्छा करने वाले एक अच्छे अध्यापक को अपने छात्रों में

---

1 Generalisations.　　2 Unbiased.　　3 To avoid.
4 Untrammelled.　　5 Ethos.

अनिवार्य रूप से उचित मूल्यों के लिये, सत्य के लिये आदर प्रविष्ट करना चाहिये, और व्यवहार के व्यसन[1] एवं रीतियाँ अन्तर्निविष्ट[2] करनी चाहियें, जिनके द्वारा उनके जीवन उनकी प्राप्ति के लिये सांचे में ढाले जा सकें।

४—अध्यापकों की वर्तमान स्थिति

(क) अध्यापन एवं अनुशासन के प्रमापों[3] की अवनति

नूतनता एवं उत्साह के अभाव के प्रतिवाद प्रचुर होते हैं। पर्याप्त अध्यापक निश्चित[4] सूचना की पुनरावृत्ति से सन्तुष्ट हैं, जो अध्यापन को निर्जीव करने और अभिरुचि को मारने के लिये प्रवृत्त होती है।

(ख) अध्यापक-राजनीतिज्ञों का भय

हमारे विश्वविद्यालयों में लोकतन्त्रात्मक नियन्त्रण एवं निर्वाचनों की प्रस्तावना के साथ अध्यापकों में अपने को अपने यथार्थ कर्तव्यों की अपेक्षा विश्वविद्यालय के प्रशासनात्मक कार्यों में अधिक हितपरायण होने की एक प्रवृत्ति बढ़ गई है।

(ग) पर्याप्त वित्तसाधनों का अभाव

दूसरी ओर विश्वविद्यालय सामान्य उपेक्षा का प्रतिवाद करते हैं। वे शासनों एवं जनता से पर्याप्त आर्थिक आश्रय का अभाव सहन करते हैं। उनके पुस्तकालय एवं प्रयोगशालायें अपर्याप्त एवं असज्ज होते हैं और विद्वत्ता एवं अन्वेषण के लिये अल्प क्षेत्र देते हैं।

(घ) निम्न वेतन

वे वेतन, जिनका समादेश विश्वविद्यालय नहीं दे सकते

1 Habits. 2 To inculcate. 3 Standards. 4 Stereotyped

परन्तु उद्योग एवं शासन सुगमतापूर्वक देते हैं, कर्मचारि वृन्दों को अधिक निर्धन, डाहयुक्त एवं असन्तुष्ट छोड़ते हुये छीन रहे हैं।

(ङ) *परिणामी विनैतिकता*

अभिनव वर्षों का एक दुर्भाग्यपूर्ण विकास यह है कि अध्यापक ने एक बड़ी मात्रा तक अपने छात्रों का विश्वास खो दिया है।

५--अध्यापकों का वर्गीकरण

तब, अपने विश्वविद्यालयों के लिये हम अध्यापकों के लिये निम्नलिखित श्रेणियों का अभिस्ताव करते हैं :—

(क) *प्राध्यापक*[1]

सामान्यत: प्राध्यापक को एक ऐसा व्यक्ति होना चाहिये जो उच्चतम वर्गों को पर्याप्त वर्ष-संख्या के लिये पढ़ा चुका है, विद्वत्ता के लिये अपनी विख्याति स्थापित कर चुका है, केवल एक संकीर्ण विशेषज्ञ नहीं है, परन्तु विस्तृत अभिरुचियाँ एवं एक स्थूल दृष्टिकोण रखता है, जिससे वह विभाग में अपने सहयोगियों को प्रोत्साहन एवं उद्दीपन कर सकता है और विश्वविद्यालय की विद्योचित समस्याओं के समाधान के लिये प्रभावशाली अंशदान कर सकता है। यह समान रूप से महत्व-पूर्ण है कि उसे ज्ञान की उन्नति में एक प्रबल अभिरुचि रखनी चाहिये। उसे न केवल अध्ययनों की अपनी शाखा में नवीनतम विकासों के साथ सम्पर्क में होना चाहिये, परन्तु उसे स्वयं उस कारवाँ का एक सक्रिय सदस्य होना चाहिये जो ज्ञान के

---

1 Professor.

मूल्यवान् भार को ले जा रहा है। साधारणतः वह लगभग ४५ की आयु का होगा।

(ख) *प्रवाचक*[1]

प्रवाचक का पद, अथवा जैसा कि इसे यू० एस० ए० में जाना जाता है सहकारी प्राध्यापक[2] का (पद), उसके लिये अभिप्रेत होता है जो प्राध्यापक के सहकारी के रूप में कार्य करने के लिए सु-अर्हताप्राप्त होता है, (जो) ज्ञान एवं अन्वेषण का एक (ऐसा) व्यक्ति होता है जो विद्वत्ता के विश्व में अपना चिन्ह लगा रहा है। जैसे ही वह अपनी नियुक्ति में प्रस्थान करता है जबकि वह लगभग ३५ वर्ष की आयु का होता है, वह प्राध्यापक के अनुभव की लम्बाई नहीं रखता है। परन्तु वह प्रशासनात्मक कर्तव्यों से भारित नहीं होता है जैसाकि प्राध्यापक होता है, और उसका मुख्य कार्य अध्यापन एवं अनुसंधान के साथ होता है। या तो वह एक अन्वेषण-उपाधि धारण करता है अथवा प्रस्वीकृत एवं सुसंस्थापित पत्रिकाओं में अपने अन्वेषणों के परिणामों को देते हुये पत्र प्रकाशित करा चुकता है। वह अध्ययन की अपनी रेखा की प्रगति के साथ चलता है, और अन्वेषण-छात्रों[3] के मार्गप्रदर्शन के योग्य होता है।

(ग) *व्याख्याता*[4]

व्याख्याता में हम एक प्रथम श्रेणी के शैक्षणिक अभिलेख की प्रत्याशा करते हैं और यह वाञ्छनीय है कि उसे कुछ अध्यापन-अनुभव धारण करना चाहिये। उसे अन्वेषण की ओर एक यथार्थ मनोवृत्ति एवं विद्वता के लिये तीव्रता रखनी

1 Reader. 2 Associate Professor. 3 Research Students.
4 Lecturer.

चाहिये। एक व्याख्याता को साधारणतः एक अन्वेष्टा[1] अथवा अधिसदस्य[2] के रूप में, जो एक अन्वेषप्रबन्ध[3] पूर्ण कर चुका है, आरम्भ करना चाहिये। उसे स्पष्टतः और प्रवाह[4] की कुछ मात्रा के साथ बोलने में योग्य होना चाहिये। उसे अपने छात्रों का आदर प्राप्त करने के योग्य होना चाहिये, और सहानुभूति, कौशल एवं व्यवसाय की एक भावना रखनी चाहिए। एक व्याख्याता एक प्रवाचक की अपेक्षा लगभग १० वर्ष (कम आयु के व्यक्ति के रूप) में आरम्भ करेगा।

(घ) शिक्षक[5] अथवा अधिसदस्य

वे कनिष्ठ[6] वर्गों के अध्यापन में भाग लेंगे, और अवबोधकीय समूहों[7] का प्रभार[8] रखेंगे। इसके अतिरिक्त वे पाठ्य-बाह्य क्रियाओं[9] के चालन में छात्रों की सहायता करेंगे। शिक्षक अथवा अधिसदस्य का पद ३ से ५ वर्ष की एक अवधि के लिये एक अवधि-नियुक्ति होना चाहिये। यह उन साहित्याधिस्नातकों[10], विज्ञानाधिस्नातकों[11], वाणिज्याधिस्नातकों[12] आदि के लिये खुला होना चाहिये जिनका शैक्षणिक जीवन उज्ज्वल रहा है, और जो विद्वता के लिये एक वास्तविक झुकाव रखते हैं।

६—अन्वेषण-अधिसदस्य

यह हमारा मत है कि अध्यापन अथवा अन्य प्रकार के नैत्यक[13] कर्तव्यों के साथ भाररुद्ध[14] किये बिना अपने अन्वेषणों में रत विद्वानों के रखने के लिये कुछ साधन ज्ञात किया जाना

---

1 Research Scholar. 2 Fellow. 3 Thesis. 4 Fluency.
5 Instructor. 6 Junior 7 Tutorial Groups.
8 Charge. 9 Extra-curricular Activities.
10 Masters of Arts. 11 Masters of Science. 12 Masters of Commerce. 13 Routine. 14 Encumbered.

चाहिये। वे अन्वेषण-अधिसदस्यों के रूप में अभिहित[1] किये जा सकते हैं।

७—वेतन-श्रेणियाँ

समस्त वस्तुओं को ध्यान में लेते हुये हम विश्वविद्यालय अध्यापकों के भिन्न वर्गों के लिये निम्नलिखित वेतन-श्रेणियाँ अभिस्तावित करते हैं:—

प्राध्यापक	रु० ९००—५०—१,३५०
प्रवाचक	रु० ६००—३०— ९००
व्याख्याता	रु० ३००—२५— ६००
शिक्षक अथवा अधिसदस्य	रु० २५०
अन्वेषण-अधिसदस्य	रु० २५०—२५— ६००

हम यह भी अभिस्ताव करते हैं कि १५००) प्रतिमास पर एक निश्चित अवधि के लिये, जो पाँच वर्ष से अधिक न हो, विशेष प्राध्यापक नियुक्त किये जा सकते हैं। प्रावैधिक विषयों में प्राध्यापकों की नियुक्ति की स्थिति में ५००) प्रतिमास तक एक वैयक्तिक भत्ता दिया सकता है।

८—पदोन्नति

हमारे मत में वह सेवा-प्रणाली जो शासन-विभागों में पाई जाती है, जहाँ एक व्यक्ति अपने अधिकतम के लिये केवल समय-स्यन्द[2] द्वारा उठता है, विश्वविद्यालय के हितों के लिये अहितकारी है। व्याख्यानत्व[3] से प्रवाचकत्व[4] एवं प्रवाचकत्व से प्राध्यापकत्व[5] के लिये पदोन्नति अनुभव, विद्वता एवं अन्वेषण

---

1 Designated. 2 Flux of time. 3 Lectureship.
4 Readership. 5 Professorship.

और अध्यापन-वरेण्यता[1] पर निर्भर होनी चाहिये। केवल ज्येष्ठता[2] पदोन्नति के लिये आधार नहीं होनी चाहिये। योग्यता के ध्यान के बिना स्वयंक्रिय[3] वेतन वृद्धियाँ उत्तेजक को रोकेंगी।

६—सेवा की दशायें

(क) भविष्य-निधि[4]

इसके अतिरिक्त हम प्रत्येक अध्यापक के लिये एक भविष्य-निधि की व्यवस्था प्रस्थापित करते हैं, जिसके लिये अध्यापक अपने वेतन का ८ प्रतिशत देगा, और विश्वविद्यालय ८ प्रतिशत।

(ख) निवास-स्थान

अध्यापकों को विश्वविद्यालय के परिकर[5] में अथवा इसके यथा-शक्य निकट रहना चाहिये। यह आवश्यक है कि विश्व-विद्यालय-भवनों में प्रत्येक अध्यापक के लिये एक कोष्ठ अलग रखा जायगा।

(ग) समुचित भर्ती

विश्वविद्यालय-नियुक्तियों के लिये गुण के अतिरिक्त, यह ध्यान रखते हुये कि गुण में विद्योचित प्रभेद, अध्यापन-योग्यता, छात्र-क्रियाओं में नेतृत्व का समावेश होता है, अन्य मानदण्ड[6] नहीं होना चाहिये।

(घ) पदावधि-सुरक्षा

पदावधि की सुरक्षा एवं उन्नति की युक्तियुक्त प्रत्याशंसायें[7] सेवा के स्वास्थ्य एवं प्रवृत्ति को बनाये रखने के लिये आवश्यक हैं।

---

1 Distinction in Teaching. 2 Seniority, 3 Automatic.
4 Provident Fund. 5 Campus. 6 Criterion. 7 Prospects.

(ङ) सेवानिवृत्ति-आयु[1]

अतः, हम अभिस्ताव करते हैं कि समस्त अध्यापकों के लिये सामान्य अधिवार्षिक[2]-आयु साठ होनी चाहिये, परन्तु एक प्राध्यापक, यदि वह अच्छे स्वास्थ्य में हो तो, ६४ तक सेवा करने के लिये अनुमत होना चाहिये; तथापि एक बार में २ वर्ष से अधिक के लिये सेवा नहीं बढ़ानी चाहिये।

(च) लिखित संविदा[3]

हम सामान्यतः कह सकते हैं कि एक लिखित संविदा आवश्यक है। विश्वविद्यालय प्राधिकारियों एवं एक अध्यापक के बीच विवादों के लिये अध्यापक के प्रतिनिधियों, विश्वविद्यालय एवं एक प्रमाणपुरुष[4] द्वारा रचित एक न्यायाधिकरण[5] को निर्देश भी आवश्यक है।

(छ) अध्ययनावकाश

इसके (आकस्मिक अवकाश) अतिरिक्त यह वाञ्छनीय है कि अध्ययनावकाश के लिये व्यवस्था होनी चाहिये। किसी भी उस अध्यापक के लिये, जो अध्ययन में निरत नैत्यक कर्तव्यों से स्वतन्त्रता के अन्तराल[6] प्राप्त करने की इच्छा करता है, एक बार में एक वर्ष का अवकाश और सम्पूर्ण सेवा में तीन वर्ष का अवकाश प्राप्य होना चाहिये। एक अध्यापक को अध्ययनावकाश में आधा वेतन मिलना चाहिये।

(ज) काम के घण्टे

अवबोधकीय[7] वर्गों सहित एक सप्ताह में अठारह घण्टे[8] वह अधिकतम है जिसमें कार्य करने के लिये कोई भी अध्यापक

---

1 Age of Retirement. 2 Superannuation. 3 Contract.
4 Umpire. 5 Tribunal. 6 Intervals. 7 Tutorial.
8 Periods.

अपेक्षित होना चाहिये। उन्हें जो अधिस्नातक-उपाधि-वर्गों[1] के प्रभारी[2] हैं और (जिन्हें) अन्वेषण-छात्रों का मार्गप्रदर्शन करना होता है, १२ से १५ घण्टों के बीच (घण्टे) रखने चाहियें।

१०—विश्वविद्यालय-अध्यापन के उद्देश्य

इस प्रतिवेदन में अन्यत्र हम विश्वविद्यालय-अध्यापन के उद्देश्यों एवं प्रयोजनों की चर्चा कर चुके हैं। संक्षेपतः वर्णित वे (निम्नलिखित) हैं:—

१—मानवता की बौद्धिक एवं नैतिक पैतृक सम्पत्ति को तरुणों तक भेजना;

२—इस पैतृक सम्पत्ति की समृद्धि एवं ज्ञान की सीमाओं का विस्तार;

३—व्यक्तित्व का विकास।

३—अध्यापन के स्तर

१–उच्च स्तरों का महत्व

अपने अध्यापन एवं परीक्षाओं के उच्चतम स्तर बनाये रखना एक विश्वविद्यालय का प्राथमिक कर्तव्य है। जब तक अध्यापन एवं परीक्षाओं के उच्च स्तर नहीं बनाये रखे जाते हैं तब तक अन्वेषण सहन करेगा, क्योंकि अन्वेषण अखण्डित रूप से केवल (तभी) चालू रह सकता है यदि विशेषित अन्वेषण-कार्य के लिये सामान्य शिक्षा द्वारा सुनिर्मित स्नातकों[3] की एक नियमित प्रदाय[4] हो। द्वितीयतः, यदि अध्यापकों द्वारा अन्वेषण की उपेक्षा की जाती है, तो उनके अध्यापन में जीवनशक्ति का

---

1 Master's Degree Classes. 2 In-charge. 3 Graduates.
4 Supply.

अभाव होगा और (वे) द्रुत रूप से वीतकाल हो[1] जायेगें। जब तक हम अपने विश्वविद्यालयों में अध्यापन के उच्चतम स्तर सुनिश्चित नहीं करते, तब तक हमारी उपाधियाँ या तो हमारे अपने देश में अथवा विदेश में प्रस्वीकृति एवं आदर प्राप्त न करेंगी, और विद्यार्थियों की बड़ी संख्या को अपनी उच्च शिक्षा के लिये बाहर जाना होगा। हमारे विश्वविद्यालयों को अपने कार्य के विद्योचित स्वरूप को अन्य देशों के विश्वविद्यालयों द्वारा पर्याप्त के रूप में प्रस्वीकृत एक स्तर पर बनाये रखना चाहिये। विश्वविद्यालय हमारी राष्ट्रिय संस्थायें हैं, और हमारी राष्ट्रिय प्रतिष्ठा को रखने के लिये हमारी उपाधियाँ ऐसी होनी चाहियें कि (वे) अन्तर्राष्ट्रिय प्रस्वीकृति प्राप्त कर सकें।

२—वार्षिक-क्षय[2] के कारण

यदि हम मस्तिष्क में इस तथ्य को रखते हैं कि मध्यमा[3] परीक्षा से पूर्व उच्च पाठशाला प्रक्रम पर दो वर्ष पूर्व प्रच्छादन[4] की एक तत्सम विधा होती है, तो यह डगमगाने वाली (बात) है कि वार्षिक क्षय विफलों के कारण ३७·५ प्रतिशत से ६० प्रतिशत तक विस्तृत हो। इसमें थोड़ा भी सन्देह नहीं है कि यह विपुल क्षय, प्रथमतः, मध्यम वर्गों को आने वाले अनुपयुक्त प्रवेशकों[5] की बड़ी संख्या, द्वितीयतः, मध्यम वर्गों में प्रदत्त अध्यापन के अल्प सामान्य गुण, और तृतीयतः, स्वयं छात्रों के आलस्य, अथवा उनके द्वारा किये गये अपर्याप्त कार्य के कारण होता है।

---

1 Stale. 2 Wastage. 3 Intermediate. 4 Screening.
5 Entrants.

३–पाठशालाओं एवं विश्वविद्यालयों के कार्य

वस्तुतः, एक पाठशाला को पर्याप्त वर्गकोष्ठ[1]-बौद्धिक-अनुशासन के लिये उपबन्ध करना चाहिये, परन्तु साथ ही अपने छात्रों के व्यायाम, एवं निगम[2]-क्रियाओं पर समान बल रखना चाहिये। एक पाठशाला अपने प्रयोजन में विफल है यदि यह अपने छात्रों के इन तीन पक्षों में से किसी की उपेक्षा करती है। दूसरी ओर, विश्वविद्यालय को तरुण पुरुषों एवं स्त्रियों के लिये एक महान् मिलन-भूमि होना चाहिये, जहाँ वे अपने अध्यापकों से उच्च शिक्षण प्राप्त करते हैं और अपने समकालीनों एवं ज्येष्ठों के साथ सम्पर्क द्वारा जीवन के लिये तैयारी भी करते हैं। इसे स्पष्टतः प्रस्वीकृत किया जाना चाहिये कि एक विश्वविद्यालय के अपने सदस्यों को शिक्षा देने एवं ज्ञान के सीमान्तों[3] की उन्नति करने के द्विगुण कार्य में विरोध संनिहित नहीं है—वस्तुतः, दोनों कार्य पूरक हैं।

४–विश्वविद्यालय-पाठचर्याओं में प्रवेश

विद्यार्थी विश्वविद्यालय-कार्य के लिये परिपक्वता की अवस्था पर लगभग १८ की आयु में आते हैं, यद्यपि आपवादिक[4] व्यक्ति भी होते हैं जो इस तक १८ से पूर्व पहुँच जाते हैं। परिपक्वता की अवस्था तक पहुँचने से पूर्व, एक लड़के अथवा लड़की को एक पाठशाला के औपचारिक अनुशासन के अधीन रहना चाहिये और (उसे) पाठशाला की रीतियों से, तथा विश्व-विद्यालय की रीतियों से नहीं, पढ़ाया जाना चाहिये। भारत में हमारी विद्यमान मध्यम श्रेणियों[5] में अधिकांश कार्य वस्तुतः पाठशाला-कार्य होता

---

1 Classroom. 2 Corporate. 3 Frontiers. 4 Exceptional.
5 Intermediate classes.

है और, जैसा यू० के० तथा यू० एस० ए० में (होता है), (उसे) समुचित रूप से पूर्व विश्वविद्यालय कार्य के रूप में समझा जाना चाहिये। अतः, हम अभिस्ताव करते हैं कि विश्व-विद्यालय-प्रवेश का स्तर विद्यमान मध्यमा[1] परीक्षा होनी चाहिये, (जो) एक विद्यार्थी द्वारा एक पाठशाला तथा एक मध्यम महाविद्यालय में पूर्ण १२ वर्ष का अध्ययन पूर्ण करने के पश्चात्, सामान्यतः अठारह वर्ष की आयु में ली जानी चाहिये।

५—विश्वविद्यालय-छात्रों का दृष्टिकोण

हमारे विश्वविद्यालयों में सामान्य छात्र अपने साथ अपने अध्ययनों की ओर पाठशाला-दृष्टिकोण लाता है। वह विश्व-विद्यालय में भी एक पाठशाला-बालक के समान समझा जाने के लिये प्रत्याशा करता है। वह यह अनुभव नहीं करता कि अध्ययन करना उसका कर्तव्य है और उससे अध्ययन कराना अध्यापक का कर्तव्य नहीं। वह उन अवसरों का पूर्ण उपयोग नहीं करता, जो विश्वविद्यालय उसे देता है और, अतः विश्व-विद्यालय से समुचित लाभ प्राप्त नहीं करता। जब तक वह अपने अध्यापकों के लिये, शुद्ध करने के लिये स्वयं काम नहीं करता और पर्याप्त लिखित कार्य नहीं करता, वह अपने अध्यापकों से लाभ प्राप्त नहीं कर सकता। छात्रों का यह दृष्टि-कोण अन्य ध्यान देने योग्य दोष की ओर ले जाता है, अर्थात्, वर्गों में कार्य की प्रगति की अत्यन्त मन्द गति।

६—मध्यम महाविद्यालय

जबकि हम उच्च पाठशाला एवं मध्यम महाविद्यालयों के

---

1 Intermediate.

लिये संस्थाओं के एकरूप प्रतिरूप[1] का आग्रह नहीं करते और उपाधि महाविद्यालयों में मध्यम श्रेणियों को चालू रहने के लिये अनुमति भी देंगें, जैसा दक्षिण भारत में, हम यह सोचते हैं कि केवल एक ही सार्वजनिक परीक्षा होनी चाहिये और वह भी मध्यमा परीक्षा-प्रक्रम पर। यह परीक्षा माध्यमिक शिक्षा के अन्त एवं विश्वविद्यालय शिक्षा के आरम्भ को अंकित करेगी जो प्रथम उपाधि-पाठचर्या के लिये तीन वर्ष की अवधि के ऊपर विस्तृत होगी।

७—व्यावसायिक-संस्थायें[2]

जबकि अपने प्रवेश अत्यन्त सावधानी से करना विश्वविद्यालय का कर्त्तव्य है जिससे केवल वे विद्यार्थी लिये जा सकें जो विश्वविद्यालय शिक्षा से लाभ उठाने के लिये संभाव्य हैं, उनके लिये उपयुक्त व्यावसायिक-संस्थाओं में अवसरों का उपबन्ध करना राज्य का समान रूप से कर्तव्य है जो एक सच्ची एवं समुचित जीविका का अर्जन करने के लिये अपनी भिन्न क्षमताओं के अनुसार प्रशिक्षित किये जा सकते हैं। ऐसी व्यावसायिक-संस्थाओं के लिये देश में चारों ओर अविलम्ब आवश्यकता है। ये संस्थायें महत्वाकांक्षी युवकों के एक बृहत् एवं वर्धमान निकाय को विभिन्न विद्यमान उद्योगों में प्रविधिज्ञों[3] के रूप में सेवायोजन के लिये अथवा उनके अपने लघु औद्योगिक एकक आरम्भ करने के लिये प्रशिक्षित करेंगी; वे उन अनेक आधुनिक उद्योगों के लिये, जो आरम्भ किये जा रहे हैं, दक्ष कर्मकारियों का एक संतत प्रवाह सुनिश्चित करेंगी और विद्यमान शिल्पकारों को अपनी दक्षता एवं उत्पादन में

---

1 Pattern. 2 Occupational Institutes. 3 Technicians.

सुधार करने के लिये तथा उसके द्वारा अपनी आय बढ़ाने के लिये अग्रिम प्रशिक्षण की व्यवस्था करेंगी। अपने देश में हम प्रविधिज्ञों की एक गम्भीर हीनता सहन करते हैं, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य एक अभियान्त्रिक-स्नातक[1] होने की इच्छा रखता है चाहे वह सामर्थ्य रखता है अथवा नहीं। हम सबल रूप से इस मत के हैं कि प्रत्येक प्रान्त को यथा-शक्य व्यवसायों में प्रशिक्षण देती हुई व्यावसायिक-संस्थाओं की एक बृहत् संख्या रखनी चाहिये, अधिमानतः प्रत्येक जिले में एक।

८—अभिनवन पाठचर्याएँ

उच्च पाठशाला एवं मध्यम महाविद्यालय-अध्यापकों के लिये दीर्घावकाश अभिनवन-पाठचर्याओं[2] का संस्थापन एक अविलम्बनीय सुधार है। हम विश्वास करते हैं कि विश्वविद्यालयों द्वारा दीर्घावकाश-पाठचर्याओं को सर्वोत्तम सङ्गठित किया जाना चाहिये और कि उन्हें प्रत्येक विश्वविद्यालय के प्रसार-कार्यक्रम[3] की एक मुख्य विशेषता का निर्माण करना चाहिये। अभिनवन पाठचर्याएँ परस्पर हितकारी होंगी; वे विश्वविद्यालयों एवं विश्वविद्यालय-अध्यापकों को उनके पूर्व छात्रों एवं अन्य अध्यापकों के साथ निकट सम्बन्ध में लायेंगीं, और उनके द्वारा उनकी कक्षा[4] के भीतर उच्च पाठशालाओं एवं मध्यम महाविद्यालयों के; द्वितीयतः, वे पाठशालाओं एवं मध्यम महाविद्यालयों में अध्यापन एवं परीक्षाओं के स्तर को उठायेंगीं, और फलस्वरूप, विद्योचित रूप से अच्छे प्रशिक्षित विश्वविद्यालय-प्रवेशक आयेंगे। पाठशाला एवं विश्वविद्यालय के बीच एक चेतन एवं सुसूचित सहयोग को वर्तमान पार्थक्य

1 Engineering Graduate. 2 Vacation Refresher Courses.
3 Extension Programme. 4 Orbit.

के दृष्टिकोण को प्रतिस्थापित करना चाहिये। यह अति उपयोगी होगा यदि अध्यापक अपनी अभिनवन पाठचर्या के लिये अन्य प्रान्तों को भेजे जाते हैं जहाँ वे यात्रा, शिक्षा एवं अन्त-प्रान्तीय सम्पर्कों के लाभों को मिला सकते हैं। प्रकारान्तरेण, प्रत्येक पाँच वर्ष की सेवा के पश्चात् अध्यापकों को छः मास का अनुपस्थिति-अवकाश दिया जा सकता है और (उनसे) अपने अथवा किसी अन्य विश्वविद्यालय में उच्च पाठचर्या में उपस्थित होने तथा विश्वविद्यालय के विभागाध्यक्ष से उपस्थिति एवं अच्छे कार्य का प्रमाणपत्र प्राप्त करने के लिये कहा जा सकता है।

९—अध्यापन एवं परीक्षाएँ

(क) विफलों की वृहत् प्रतिशतता

हमारे विश्वविद्यालयों को यह अनुभव करना चाहिये कि वह प्रत्येक विद्यार्थी, जिसे एक विश्वविद्यालय में प्रविष्ट किया गया है, यह मान लेने का अधिकार रखता है कि वह विश्व-विद्यालय उसे पूर्णमार्ग[1] देखने के लिये तत्पर है यदि वह साधारण योग्यता रखता है और अध्यवसाय से कार्य करता है; वह और उसके माता-पिता न्याय्य रूप से यह पूछ सकते हैं, "विफलों की वृहत् प्रतिशतता क्यों है ?" या तो वह आवश्यक योग्यता नहीं रखता और उस विश्वविद्यालय को उसे प्रविष्ट नहीं करना चाहिये था, अथवा वह अपना कार्य सत्यता से नहीं करता, अथवा विश्वविद्यालय-अध्यापन एवं परीक्षाएँ सदोष हैं।

---

1 Through.

(ख) तृतीय संभाग[1] वालों की वृहत् प्रतिशतता

एक सुसंचालित परीक्षा में, जहाँ अध्यापन अच्छा हुआ है और अभ्यर्थियों[2] ने अच्छी तैयारी की है, अभ्यर्थियों की विशाल बहुसंख्या द्वितीय संभाग में उत्तीर्ण होगी। मानव-प्रकृति जाति में, जैसाकि व्यक्ति में, सदैव मध्य में उभरने के लिये प्रवृत्त होती है, और आपवादिक गुण तथा आपवादिक अवगुण की स्थितियाँ अपेक्षया कम होती हैं। हमारी विश्वविद्यालय-परीक्षाओं में उभार मध्य-रेखा से नीचे होना हमको किये गये इस अवलोकन की पुष्टि करता है कि हमारे विद्यार्थी एक उत्तीर्ण प्राप्त करने के लिये न्यूनतम प्रयत्न करते हैं और अधिकांश स्थितियों में एक अच्छी श्रेणी प्राप्त करने के लिये सावधानी नहीं करते।

(ग) एक उत्तीर्ण के लिये अंकों की प्रतिशतता

हम अभिस्ताव करते हैं कि समस्त प्रथम उपाधि-परीक्षा पर उत्तीर्ण-प्रतिशतता ४० प्रतिशत तक बढ़ा दी जानी चाहिये, ५५ प्रतिशत एक द्वितीय संभाग प्राप्त करते हुये और ७० प्रतिशत एक प्रथम संभाग। जैसाकि हमने अन्यत्र अभिस्ताव किया है, उपाधि-पाठचर्या की तीनों ही वर्षों में वर्ग-कार्य के लिये श्रेयस्[3] दिया जाना चाहिये।

१० — विश्वविद्यालयों में छात्रों की संख्या

आवश्यक कर्मचारिवृन्द, वर्ग-कोष्ठ, एवं छात्रावास-स्थान और उपकरण के बिना जनता की माँग के प्रत्युत्तर में विद्यार्थियों की एक वृहत् संख्या के प्रवेश ने अधिकांश महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के लिये अपनी बढ़ाई हुई स्नातक-पूर्व-जन-

1 Division. 2 Candidates. 3 Credit.

संख्या को पूर्ण शिक्षा देना असम्भव बना दिया है। (अतः) एक संबद्धक[1] विश्वविद्यालय में प्रत्येक महाविद्यालय को और प्रत्येक अध्यापन-विश्वविद्यालय को छात्रों की उस संख्या के लिये सोचविचार कर एक अधिकतम सीमा नियत करनी चाहिये जो यह प्रति वर्ष प्रविष्ट करता है। यह अधिकतम सीमा भवन के परिमाण, अध्यापकों की संख्या, प्रयोगशाला-स्थान, छात्रावास-स्थान, इत्यादि, के अनुसार विभिन्न होगी, परन्तु यदि शिक्षा का गुण बढ़ाया जाना है तो सीमा नियत की जानी चाहिये और पालित होनी चाहिये।

११—कार्य-दिवस एवं छुट्टियाँ

हम अभिस्ताव करते हैं कि विश्वविद्यालय-सत्र तीन लगभग समान अवधियों में विभाजित हो, (जिनमें से) प्रत्येक, दो अथवा तीन सप्ताहों के दो लघु अवकाशों और एक दस से तेरह सप्ताह के लम्बे अवकाश द्वारा पृथक्कारित १० से ११ सप्ताह की अवधि का हो। प्रत्येक अवधि के चालू रहते हुये समस्त आकस्मिक-पर्यावकाशों[2] को कठोरता से कम कर दिया जाना चाहिये। प्रत्येक महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय को अपने सात्रिक[3] कार्य का प्रबन्ध इस प्रकार करना चाहिए कि परीक्षा-दिवसों को छोड़ कर, १८० कार्य-दिवसों की एक न्यूनतम संख्या सुनिश्चित हो सके। न केवल कार्य-दिवसों की संख्या में एक वृद्धि होनी चाहिए, परन्तु यह भी आवश्यक है कि प्रत्येक दिवस का इसके अधिकतम तक उपयोग किया जाय। जबकि ऐसे अन्तःकरणानुयायी अध्यापक हैं जो वाचन एवं अन्वेषण द्वारा अपने व्याख्यानों को अद्यावधिक रखते हैं, एक पर्याप्त

---

1 Affiliating.　2 Casual Holidays.　3 Sessional.

संख्या में अन्य (अध्यापक भी) हैं जो प्रति वर्ष वर्षों पूर्व से तैयार किये हुए वैसे ही व्याख्यान देते हैं। ये पिछले (अध्यापक ही) हैं जो एक विश्वविद्यालय-अध्यापक के व्यवसाय को एक बुरा नाम देते हैं और इस आलोचना की ओर ले जाते हैं कि विश्वविद्यालय-अध्यापन एक मृदु कृत्यक[1] होता है।

१२—शिक्षण की रीतियाँ

(क) *व्याख्यान-रीति*

हमारे विश्वविद्यालयों में शिक्षण की सामान्य रीति सामूहिक व्याख्यानों द्वारा है, परन्तु अभाग्यवश अधिकाँश स्थानों पर इसे वैयक्तिक विद्यार्थी द्वारा या तो व्याख्यान के लिये तैयारी अथवा व्याख्यान के पश्चात् पुस्तकालय-कार्य अथवा विमर्शगोष्ठी[2] के रूप में किसी नियमित कार्य द्वारा अनुपूरित नहीं किया जाता है। इसमें सन्देह नहीं है कि कुछ अध्यापक शिक्षण देने के लिये व्याख्यान-रीति का अत्यन्त प्रभावशाली प्रयोग करते हैं और उनके व्याख्यान सुविरचित एवं रुचिकर होते हैं, परन्तु अनेक स्थानों पर व्याख्यानों में केवल आलोक-श्रुतलेख[3] का समावेश होता है। इस पिछली रीति को अत्यधिक सबल रूप से निन्दित नहीं किया जा सकता क्योंकि यह विद्यार्थियों को व्याख्यानों को समझने के लिये प्रयत्न करने, और अध्यवसायी विद्यार्थियों द्वारा (वे) जो कुछ बाद में पढ़ते हैं उसके द्वारा अनुपूरित होने के लिये, उनके अपने आलोक लेने के अभ्यास से भी वञ्चित करती है। आलोक-लेखापक[4] से दूसरी चरम-सीमा पर वह व्याख्याता होता है

---

1 Soft Job. 2 Seminar. 3 Dictation of Notes.
4 Note-Dictator.

जो अपने प्रवाह से वाहित होता है और अपने व्याख्यानों को एक सार्वजनिक सुभाषण बना देता है। यदि व्याख्याता अपने छात्रों को हितपरायण बनाये रखने के लिये अपनी वक्तृत्व-शक्ति पर निर्भर करता है, तो वह दुर्लभ रूप में ही उन्हें अपने प्रवचनों[1] का सर्वोत्तम प्रयोग करता हुआ पायेगा। अतः (i) छात्रों से उन बिन्दुओं पर परिप्रश्न करके जो महत्त्वपूर्ण हैं, और (ii) कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं को कृष्ण-पट्ट पर लिख कर, व्याख्यान को ठीक किया जाना है। मुख्य प्रश्न यह है कि व्याख्यानों को एक विषय के सारभूत भागों की एक द्रुत एवं स्थिर पकड़ प्राप्त करने में छात्रों की सहायता करनी चाहिए।

(ख) लिखित अभ्यास

इस पर बल देना आवश्यक है कि, विश्वविद्यालय-पाठचर्या भर, अध्यापकों को समय-समय पर प्रत्येक विद्यार्थी से लिखित कार्य की प्रत्याशा करनी चाहिये, अधिमानतः एक सप्ताह अथवा पक्ष में एक बार।

(ग) प्रारम्भिक अध्यापन

हम इसे आवश्यक मानते हैं कि अधिक अनुभवी अध्यापकों को, अधिमानतः प्राध्यापक अथवा प्रवाचक, विश्वविद्यालय-अध्ययन के लिये आधारभूत प्रथम वर्ष के प्रवेश के साथ संव्यवहार करना चाहिए जिससे आरम्भ से ही अपने विषय के लिये विद्यार्थी की रुचि एवं उत्साह जागृत हों और (वे) उसके विश्वविद्यालय में ठहरने तक जीवित बने रहें।

(घ) पाठ्य-पुस्तकें

विद्यमान शिक्षण-रीति का एक असद्[2] है कि यह पाठ्य-

---

1 Discourses.　　2 Evil.

पुस्तकों पर अत्यधिक नाभीयित[1] है। पाठ्य-पुस्तक-प्रणाली का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ है कि विद्यार्थी एक विषय में सचमुच हितपरायण नहीं हो सकते और अपना इसका (विषय का) ज्ञान विस्तृत नहीं कर सकते। वे अपनी निर्णय की शक्तियों का विकास करने से रोक दिये जाते हैं क्योंकि उन्हें विचारों के एक उधार लिये स्कन्ध[2] पर निर्भर करना सिखाया जाता है।

(ङ) *अनिवार्य उपस्थिति*

हमारे विश्वविद्यालयों में व्याख्यानों में अनिवार्य उपस्थिति विवाद का एक पद रही है। सर्वोत्तम उपाय उन उत्तर-स्नातक विद्यार्थियों के लिये व्याख्यानों में उपस्थिति को वैकल्पिक बना देना होगा जो उनके अपने हितों को देखने भालने के लिये पर्याप्त परिपक्व हैं और अपने लिये यह निर्णय कर सकते हैं कि क्या हितकारी है और क्या नहीं। आयु में छोटे छात्रों को संभवतः विश्वविद्यालय-अनुशासन के एक भाग के रूप में आने वाले कुछ समय के लिये अनिवार्यता भोगनी होगी।

(च) *वैयक्तिक अभ्यर्थी*[3]

वैयक्तिक अभ्यर्थियों में विफलों की प्रतिशतता नियमित विद्यार्थियों की (प्रतिशतता की) अपेक्षा अधिक उच्च है और यदि वैयक्तिक छात्रों को अधिक अनेक तथा नियमित छात्रों की संख्या के समान होने के लिये अनुमत किया जाना है (जैसा होने के लिये वे संभाव्य हैं, यदि विशेषाधिकारों को विस्तृत रूप से खोल दिया जाना है), तो परीक्षकों को, अभ्यर्थियों की बहुसंख्या की मानसिक सज्जा[4] के अनुसार, अपने प्रमापों[5] को कम कर देना चाहिये।

---

1 Focussed, 2 Stock. 3 Private Candidates.
4 Equipment. 5 Standards.

(छ) सायं-महाविद्यालय[1]

उन कर्मकारियों के लिये एक साधन[2] सुझाया गया है जो अपनी अर्हताओं में सुधार करने के लिये प्रबल हैं। हम अपने देश के बड़े नगरों में पूर्णकालिक कर्मकारियों के लिये कला एवं विज्ञान में इस प्रकार की (लन्दन विश्वविद्यालय का बर्कबैक महाविद्यालय*) संस्थाएँ स्थापित करने की संभाव्यता का विचार कर सकते हैं। ये संस्थाएँ सामान्य महाविद्यालयों के कुछ भवनों को उपयोग में लाने के लिये रख सकती हैं, परन्तु इसे स्पष्टतः समझ लिया जाना चाहिये कि कर्मचारिवृन्द को पृथक् होना है, क्योंकि कोई भी अध्यापक दिवस-वर्गों में अध्यापन के अतिरिक्त संभवतः सन्ध्याओं में कार्य नहीं कर सकता। न केवल अध्यापन-कर्मचारी पृथक् होने चाहिएँ परन्तु सायं-संस्थाओं के समस्त सेवायुक्तों को पूर्णकालिक होना है, और (सायं) महाविद्यालय को दिवस-संस्थाओं से एक सर्वथा पृथक् संघटन रखना चाहिए। अथ च, इन सायं-महाविद्यालयों में किसी विशेष उपाधि के लिये पाठचर्याओं की अवधि को लम्बा करना आवश्यक हो सकता है, क्योंकि विद्यार्थी व्याख्यानों का अनुसरण करने के योग्य न होंगे जैसे एक पूर्णकालिक विद्यार्थी (ऐसा) करने के योग्य होता है। इस प्रकार, यदि सामान्य बी० ए० और बी० एस-सी०-पाठचर्याएँ दिवस-छात्रों के लिये तीन वर्ष की हैं, तो उन्हें सायं-छात्रों के लिये चार वर्ष तक विस्तृत होना चाहिए।

---

1 Evening Colleges.   2 via media.

* यह महाविद्यालय लगभग १२५ वर्ष से कार्य कर रहा है। इसमें कार्य के घण्टे सन्ध्या में लगभग ५·३० से ६ तक होते हैं।

१३—अवबोध[1]

(क) अवबोधकीय शिक्षण का अर्थ

प्रायः अवबोधकीय शिक्षण का अर्थ यह होता है कि एक विद्यार्थी, एक सप्ताह में कम से कम एक बार, आत्मीय अथवा वैयक्तिक मन्त्रणा एवं शिक्षण के लिए एक अध्यापक के पास जाता है। हम नहीं सोचते कि अवबोधों को छः विद्यार्थियों से अधिक के समूह में सफलतापूर्वक लगाया जा सकता है। हम यह विचार करते हैं कि अवबोधकीय वर्गों में उपस्थिति अनिवार्य बना दी जानी चाहिए, व्याख्यानों की अपेक्षा भी अधिक।

(ख) अवबोधों के उद्देश्य

जबकि अवबोधों में किसी भी प्रकार का नैतिक एवं सामाजिक मार्गप्रदर्शन अथवा साहाय्यपूर्ण मन्त्रणा संनिहित हो सकती है, उनका मुख्य कार्य एक प्रकार की बौद्धिक-प्रसाविकी[2] है। एक निकट मार्ग में, अध्यापक उस विचार-विधा को संचालित एवं विकसित करता है, जो सदैव स्वयं विद्यार्थी की एक क्रिया होनी चाहिये। शिक्षार्थी विश्लेषण, निर्णय एवं मूल्यांकन करने का आविष्कार करता है, जबकि अवबोधक[3] आगे बढ़ाता और समालोचना करता है, जैसे ही विद्यार्थी अपने पंखों का यत्न करते हैं और अपनी बौद्धिक उड़ानों का अनुसरण करते हैं। अवबोध का उद्देश्य प्रत्येक विद्यार्थी के कार्य एवं प्रगति का प्रभावशाली पर्यवेक्षण प्राप्त करना है। छात्र को केवल तथ्य-सम्बन्धी सूचना ही प्राप्त नहीं करनी चाहिए, और स्वतन्त्र विचार करने के व्यसन को ही

---

1 Tutorials. 2 Midwifery. 3 Tutor.

विकसित नहीं करना चाहिए, परन्तु अपने विचारों को ठीक-ठीक शुद्ध भाषा में तथा एक क्रमबद्ध रीति से उपस्थित करना भी सीखना चाहिए। एक लघु समूह में एक उद्यमी विद्यार्थी चर्चा से अपने चातुर्यों[1] को तीक्ष्ण करेगा और दूसरों की तथा अपनी भूलों द्वारा लाभ उठाएगा।

(ग) अवबोधों का रूप

अवबोध प्राकृतिक विज्ञानों के लिए जैसे कि भाषा-शास्त्रों[2] एवं सामाजिक विज्ञानों के लिए भली प्रकार अनुकूलित होते हैं। "कला" विषयों में निबन्ध उपस्थापन की सामान्य रीति, चर्चा एवं समालोचना का आधार होता है, जबकि विज्ञानों में, कुछेक प्रश्नों के उत्तर तथा एक विद्यार्थी के जीवन की उच्च अवस्थाओं में एक निबन्ध भी एक अवबोध के लिये अच्छी सामग्री का निर्माण करता है। आदर्श परिस्थितियों में केवल विद्वत्ता में परिपक्व, अवबोधकीय कार्य के लिये स्वभाव से अनुकूलित, और अन्य कर्तव्यों से गुरुतया भारित नहीं, अध्यापकों को ही अवबोधक होना चाहिए। अतः, हम सबल रूप से अनुरोध करते हैं कि समस्त स्नातक-पूर्वों[3] के लिए, दोनों उत्तीर्ण एवं प्रावीण्य[4] पाठचर्याओं में, अवबोध स्थापित किए जाने चाहिएँ। अवबोधक को मस्तिष्क में यह धारण करना है कि वह केवल एक विषय का अध्यापन ही नहीं कर रहा है, परन्तु पुरुषों एवं स्त्रियों को राष्ट्र के बुद्धिमान् नागरिकों के रूप में अपने स्थान लेने के लिए शिक्षा दे रहा है। तथापि, हम यह अनुभव करते हैं कि अध्यापक सामान्यतः अवबोध-संयुक्त अध्यापन के एक सप्ताह में १५ घण्टे से आगे नहीं ले जा सकते

---

1 Wits. 2 Humanities. 3 Undergraduates. 4 Honours.

और इतने पर भी उत्पादक विद्वान हों। जबकि एक अवबोधक के लिये विद्यार्थियों द्वारा लिखित अपने साथ समस्त निबन्धों को पढ़ना सम्भव नहीं हो सकता, यह आवश्यक है कि समस्त निबन्ध पढ़े तथा सावधानी से ठीक किए जाने चाहिएँ, और अशुद्धियों, लोपों[1] इत्यादि की उनके साथ चर्चा की जानी चाहिए। प्रति मास निबन्धों की संख्या एक विषय से दूसरे में विभिन्न हो सकती है, परन्तु अवबोधकीय-कार्य का एक वार्षिक आयव्ययक बनाना, स्वयं अवबोधों की एक दैनंदिनी[2] रखना, और छात्रों से एक वर्ष में पूर्ण होने के लिए अवबोधकीय-कार्य की एक दैनंदिनी रखने के लिये आग्रह करना अवबोधक का कर्तव्य होना चाहिए। वह उनके साथ लिखे जाने से पूर्व निबन्धों की रूपरेखा पर चर्चा कर सकता है अथवा एक पुस्तक के अध्यायों का संक्षेप बनाने के लिये उनसे कह सकता है। यह सुनिश्चित करना कि अवबोधकीय-कार्य उसके सहयोगियों द्वारा समुचित रूप से अधियोजित और पालित किया जाता है, एक विभाग के प्रत्येक प्रमुख का कर्तव्य होना चाहिए।

१४—विमर्शगोष्ठियाँ[3]

उत्तर-स्नातक स्तर पर विमर्शगोष्ठियों को अवबोधों का प्रतिस्थापन करना चाहिए। विमर्शगोष्ठी शब्द कभी-कभी अवबोध के साथ संमिश्रित अथवा अन्तर्निमेय रूप से प्रयुक्त किया जाता है, परन्तु उनमें एक प्रभेद होता है। अवबोधों में हम एक सम्बन्ध रखते हैं जिसमें एक अध्यापक एक नौसिखिया को विकसित कर रहा है, जबकि एक विमर्शगोष्ठी में अधिक परिपक्व मस्तिष्क वाला एक विषय में कार्य करता हुआ एक

---

1 Omissions. 2 Diary. 3 Seminars.

समूह एक संयुक्त चर्चा में लगता है। (विमर्शगोष्ठी की) प्रविधि[1] में एक अन्तःप्रवेशी[2] एवं प्रकोपकारी[3] प्रकार के प्रबन्धों का सूत्र पात करना संनिहित होता है जिन पर एक समूह एक पटल[4] के चारों ओर स्वतन्त्र रूप से अपने को स्पष्ट करने का अवसर रखता है। (विमर्शगोष्ठी के) उद्देश्य सहकारी पहुँच द्वारा चर्चा उद्दीप्त करना, विषयों को स्पष्ट करना, और सत्य पर आना होते हैं। इस अर्थ में विमर्शगोष्ठियाँ स्नातक-पूर्व स्तर पर प्रयोग के लिये अनुकूलित नहीं होती हैं परन्तु (वे) अधि-स्नातक एवं महाविज्ञ-उपाधियों[5] के लिये कार्य का अनुसरण करने वाले उत्तर-स्नातक विद्यार्थियों के विकास के लिये सेवायुक्त की जानी चाहिएँ।

१५—पुस्तकालय

(क) पुस्तकालयों का महत्व

पुस्तकालय विश्वविद्यालय के समस्त कार्य का हृदय होता है; प्रत्यक्षतः ऐसा इसके अन्वेषण कार्य-विषयक, और अप्रत्यक्षतः इसके शिक्षा-कार्य-विषयक, जो अपना जीवन अन्वेषण-कार्य से प्राप्त करता है। यह पर्याप्त रूप से अनुभव नहीं किया गया है कि उच्च वैज्ञानिक कार्य के लिये पुस्तकों की अपेक्षा वैज्ञानिक नियतकालिक पत्रिकाएँ अधिक महत्वपूर्ण होती हैं। जैसाकि वैज्ञानिक पुस्तकें एवं नियतकालिक पत्रिकाएँ अत्यन्त महंगी होती हैं और भारत में विज्ञान-विषयों में एक महान् विनष्ट समय[6] को फिर से बनाया जाना है, हम अभिस्ताव करते हैं कि विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों को सम्पूर्ण आयव्ययक के ६¼% के एक अनुकूलतम[7] तक अथवा अपने पुस्तकालयों के

---

1 Technique. 2 Penetrating. 3 Provocative. 4 Table.
5 Master's and Docto'rs Degrees. 6 Leeway. 7 Optimum.

लिये वार्षिक अनुदान के रूप में ४०) रुपये प्रति विद्यार्थी, प्राप्त करने चाहिएँ।

(ख) *खुली प्रवेश-प्रणाली*[1]

अधिकांश पुस्तकालय खुले प्रवेश की अनुमति नहीं देते। यह स्मरण रखा जाना चाहिए कि स्नातक-पूर्वों को पुस्तकालय के प्रयोग में शिक्षित किया जाना है जैसे अन्य अनेक क्षेत्रों में। वे इच्छानुसार एक चट्टे[2] से दूसरे चट्टे तक जाने और अपने स्वतन्त्र समय में पुस्तकों में अपने हृदय के सन्तोष तक चरने[3] के लिये अनुभव होने चाहिएँ। कुछेक दुर्लभ एवं बहुमूल्य पुस्तकों के अतिरिक्त, समस्त पुस्तकें उनके लिये खुली होनी चाहिएँ। यह आवश्यक है कि केवल एक प्रवेश-द्वार तथा बहिर्गमन-द्वार होना चाहिए और कि एक कनिष्ठ सहायक को पुस्तकालय के बाहर ले जाई गई समस्त पुस्तकों की जाँच करनी चाहिए। प्रत्येक विश्वविद्यालय में एक सावधानी से अधियोजित खुली प्रवेश-प्रणाली होनी चाहिए। हम अभिस्ताव करेंगे कि समस्त विश्वविद्यालय-पुस्तकालय सप्ताह के सात दिनों के लिये एक दिन में १२ घण्टे और दीर्घावकाश भर खुले रहने चाहिएँ, जिससे स्नातक-पूर्व वहाँ अपने वाचन का बड़ा परिमाण कर सकें और कर्मचारी तथा उत्तर-स्नातक विद्यार्थी पुस्तकालय में अपने अन्वेषण-कार्य के लिये समय के लम्बे प्रसार पा सकें। पुस्तकालय-कर्मचारिवृन्द को स्वभावतः पारियों में कार्य करना होगा और वे अपने अवकाशों को बारी-बारी से प्राप्त करेंगे।

---

1 Open Access System. 2 Stack. 3 To browse.

(ग) पुस्तकालय-संघटन

विश्वविद्यालय-पुस्तकालय का यथार्थ संघटन भिन्न स्थानों पर भिन्न होगा, परन्तु लक्ष्यबन्धित होने के लिये आदर्श इसके साथ आंगारिक सम्बन्ध[1] में विभागीय-पुस्तकालयों के साथ एक बृहत् केन्द्रीय पुस्तकालय है।

(घ) कर्मचारिवृन्द

पुस्तकालय को पर्याप्त एवं सु-अर्हताप्राप्त कर्मचारी रखने चाहिएँ। प्रत्येक पुस्तकालय को सेवायुक्तों की अनेक श्रेणियों की आवश्यकता होती है। शिखर पर एक विश्वविद्यालय-प्राध्यापक के व्यास[2] का एक व्यक्ति होगा जो, एक पूर्ण उपाधि-पाठचर्या पूर्ण करने के पश्चात्, पुस्तकालय-विज्ञान के कुछ पक्षों में विशेषित हो चुका है और जो संघटन एवं प्रबन्ध के लिये सामर्थ्य रखता है। द्वितीय श्रेणी में उसके प्रतिनियुक्त[3] होंगे जो पुस्तकालय की भिन्न विभागीय-क्रियाओं को देखेंगे भालेंगे, जैसे सूची बनाना, निर्देश-कार्य, वाचन-कोष्ठ-प्रबन्ध, इत्यादि। तब अन्तशः, पुस्तकों के अवाप्तिकरण[4] से निर्गमन[5] तक समस्त क्रियाओं में सहायता देते हुये अनेक सहायक होने चाहियें।

१६—प्रयोगशालाएँ

यह वाञ्छनीय है कि पाठशाला एवं विश्वविद्यालयों के मार्गप्रदर्शन के लिये भौतिकी[6], रसायन[7], जैविकी[8], भौमिकी[9], एवं अन्य (विषयों) के समान भिन्न विषयों में प्रयोग-शालाओं के सु-अधियोजित प्रमाप-आकल्प[10] प्राप्य होने

1 Organic Connection. 2 Calibre. 3 Deputies.
4 Accessioning. 5 Issuing. 6 Physics. 7 Chemistry.
8 Biology. 9 Geology. 10 Standard Designs.

चाहिएँ। भारत में अभियन्तों[1] को शिक्षा-भवनों; विशेष रूप से प्रयोगशालाओं, को समय एवं विचार देना चाहिए, और उनमें से कुछ पाठशाला, महाविद्यालय, एवं विश्वविद्यालय-प्रयोगशालाओं के भिन्न प्रकारों के आकल्पों एवं अन्वायुक्तियों[2] में उपयोगी रूप से विशेषीकरण कर सकते हैं। हमारे कुछ अभियान्त्रिक[3] महाविद्यालयों के जानपद-अभियान्त्रिकी-विभागों[4] को शिक्षा-भवनों में विशेषीकरण करना चाहिए, और प्रयोगशालाओं एवं व्याख्यान-प्रेक्षागार[5] के भवनों, अन्वायुक्तियों तथा सज्जा के प्रमाप-आकल्प उत्पन्न करने चाहिएँ। वे वार्षिक अनुदान, जो युद्ध-पूर्व वर्षों की आवश्यकताओं के लिये नियत किये थे, साधित्रों[6] के मूल्यों में चढ़ाव के कारण अधिकाधिक अपर्याप्त सिद्ध हो रहे हैं, और इसलिये यह आवश्यक हो गया है कि ये अनुदान उपयुक्त रूप से बर्धित होने चाहिएँ। समस्त प्रयोगशालाओं के समुचित एवं दक्ष कार्यकरण के लिये निर्माणशालाओं की आवश्यकता का पर्याप्त रूप से अनुभव नहीं किया गया है। अच्छे प्रविधिज्ञ[7] वेतनों की पुरानी श्रेणियों पर प्राप्त नहीं किये जा सकते और योग्य प्रविधिज्ञों की सेवाएँ प्राप्त करने एवं रखने के लिये श्रेणियों को संशोधित करना आवश्यक हो गया है।

४—पाठचर्याएँ

१—पाठचर्याओं का महत्व

पाठचर्याएँ औपचारिक[8] शिक्षण की आवश्यक अभ्युपाय[9]

---

1 Engineers. 2 Fittings. 3 Engineering. 4 Civil Engineering Departments. 5 Lecture-Theatres. 6 Apparatus. 7 Technicians. 8 Formal. 9 Expedient.

होती हैं, परन्तु वे एक यथेच्छ यद्यपि उपयोगी उपाय के अतिरिक्त कुछ न के रूप में प्रस्वीकृत की जानी चाहिएँ। जब तक अनुभव की समस्त प्रावस्थाओं[1] के मार्मिक अन्तर्सम्बन्ध मस्तिष्क में नहीं रखे जाते हैं, तब तक पाठचर्याओं की सुविधा-जनक युक्तियाँ अवरोधक हो सकती हैं जो (हमें) हमारे ज्ञान एवं अनुभव की एकता का अनुभव करने से रोकती हैं।

२—शिक्षा के तीन उद्देश्य अथवा प्रावस्थाएँ

(क) सामान्य शिक्षण[2]

इनमें से प्रथम सामान्य शिक्षण है। हम अपनी सूचना एवं अनुभव के आधार पर विचार एवं निर्णय एवं कार्य करते हैं। यदि ये अत्यन्त सीमित हैं, तो हमारा विश्व लघु होगा और हमारे निर्णय सदोष।

(ख) संस्कारी शिक्षण[3]

पाठचर्याओं का द्वितीय उद्देश्य, संस्कारी शिक्षण, विद्यार्थी की स्वतन्त्र विचार के लिये, समालोचनात्मक पूछताछ एवं मूल्यांकन के लिये, और सर्जनात्मक एवं रचनात्मक विचार एवं क्रिया के लिये तैयारी होती है। संस्कारी शिक्षण सदैव पृथक् संस्थाओं के लिये, न सदैव पृथक् अध्यापन-कार्यक्रमों के लिये, मांग करता है। उदार पूछताछ की भावना को समस्त अध्यापन को प्रोत्साहित करना चाहिये। इस अभिधारणा पर सामान्य एवं संस्कारी शिक्षण के बीच भेद करना आवश्यक नहीं है। तथापि, यह समुचित है कि परिपक्व विद्यार्थियों के लिये ऐसी पाठचर्याएँ, विमर्शगोष्ठियाँ एवं अन्वेषण-परियोजनाएँ[4]

---

1 Phases.　2 General Education.　3 Liberal Education.
4 Projects.

होंगी जो कौशलों एवं अनुशासनों के अध्यापन और स्वतन्त्र समालोचनात्मक पूछताछ के दर्शन को एक प्रत्यक्ष उद्देश्य के रूप में रखती हैं।

(ग) व्यावसायिक शिक्षण[1]

पाठचर्याओं का तृतीय उद्देश्य व्यावसायिक शिक्षण है, अर्थात्, विद्यार्थी की उसके जीवन-कार्य के लिये अथवा अन्य विशेषित अभिरुचियों के तैयारी। ऐसी पाठचर्याएँ व्यावसायिक अथवा प्रावैधिक अथवा वृत्तिक[2] कहलाती हैं।

३–सुसंतुलित शिक्षण का महत्व

अपने वास्तविक दिन प्रतिदिन के जीवन में एक सामान्य स्नातक मुख्यतः एक प्राणिविज्ञ[3] अथवा एक रसायनज्ञ[4] अथवा एक अर्थशास्त्री अथवा एक साहित्य का विद्यार्थी नहीं होता है। उसके मुख्य सम्बन्ध नागरिक, पिता, पति, पड़ौसी, रोटी कमाने वाले, और भौतिक विश्व के साथ एवं समाज के साथ अनेक सम्बन्ध रखने वाले एक व्यक्ति के होते हैं। वह अपने विशेष क्षेत्र के बाहर राजनैतिक, सामाजिक, व्यापार, एवं सांस्कृतिक अभिरुचियाँ रखता है। व्यावसायिक अथवा अन्य प्रशिक्षण से अलग, जो प्रत्येक व्यक्ति की शिक्षा का एक भाग होना चाहिए, हमारे विद्यार्थियों की तैयारी केवल एक प्रयोजन के लिये नहीं होनी चाहिए, न जीवन के किसी केवल एक तत्व के लिये, परन्तु जीवन की विभिन्न प्रावस्थाओं[5] के लिये (होनी चाहिये)। शिक्षण के विभिन्न तत्वों का एक दूसरे के मार्मिक सम्बन्ध में अनुसरण किया जाना चाहिये, जिससे किसी भी

---

1 Occupational Education. 2 Professional.
3 Zoologist. 4 Chemist. 5 Phases.

व्यक्ति के लिये परिणाम, उसके अपने क्षेत्र के कार्य के साथ, सर्वोत्तम व्यावहारिक सर्वतोमुखी विकास होगा।

४—सामान्य शिक्षण

(क) उद्देश्य एवं कार्य

सामान्य शिक्षण का कार्य विद्यार्थी को तथ्यों एवं सिद्धान्तों-विषयक बुद्धिमानी से चुनी हुई सूचना प्राप्य बनाना और आधिपत्य प्राप्त करने के लिये उसे प्रोत्साहित करना है, जिससे वह उस प्रतिनिधि-एवं उपयोगी सामग्री को रखेगा जिसके ऊपर अपने विचार, निर्णय एवं क्रिया को आधारित करेगा, और रुचि एवं महत्व के क्षेत्रों से विदित होगा। आधुनिक विश्व में ज्ञान का एक इतना विशाल संचय है कि कोई व्यक्ति समस्त क्षेत्रों में यह चुनने के लिये कि उसके जानने के लिये क्या अत्यन्त महत्वपूर्ण है, समर्थ नहीं है। सामान्य शिक्षण में प्रत्येक क्षेत्र में उस क्षेत्र में ज्ञान के महान् पुञ्ज से अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्धान्तों को तथा उन सिद्धान्तों का निदर्शन[1] करने के लिये उपयुक्त घटनाओं को चुनना, और उनको एक ऐसे उपाय से उपस्थित करना जो उन्हें विद्यार्थी के लिये अत्यन्त प्राप्य बनाएगा, सर्वोत्तम अर्हताप्राप्त[2] व्यक्तियों का कार्य है। एक संकीर्ण रूप से विशेषित शिक्षण युक्त व्यक्ति एक (उस) व्यक्ति के समान होता है जो केवल एक खिड़की वाले गृह में रहता है, जिससे वह केवल एक ही दिशा में बाहर देख सकता है। एक सामान्य शिक्षण को अनेक दिशाओं में खिड़कियाँ खोलनी चाहिएँ, जिससे उसके जीवन के विभिन्न अनुभवों में से अधिकांश, और पर्यावरण[2] के अधिकांश तत्व, उसके लिये अर्थ एवं

1 To illustrate. 2 Qualified. 3 Environment.

अभिरुचि रखेंगे। सामान्य शिक्षण का उद्देश्य मानवीय ज्ञान के विशाल योग में से उन तत्वों को चुनना, जो अत्यन्त महत्व-पूर्ण एवं प्रतिनिधि होते हैं, और उन्हें इस प्रकार से उपस्थित करना होना चाहिए कि (वे) विशिष्ट निदर्शनों एवं घटनाओं युक्त, नियन्त्रक सिद्धान्तों और दृश्य[1] के मुख्य वर्गों की एक समझ की ओर; वैषयिक[2] समालोचनात्मक पूछताछ के व्यसन[3] एवं सामर्थ्य की ओर; सर्जनात्मक विचार की ओर; अपनी समस्याओं के साधन के लिये अपने ज्ञान को प्रयुक्त करने के व्यसन की ओर; अभिरुचि एवं उत्सुकता के एक उस दृष्टिकोण की ओर जो विदितता[4] एवं संतत वृद्धि में व्यक्त होगा; और जीवन के वर्तमान उपभोग ओर बढ़ाएँ।

(ख) सामान्य शिक्षण की विषय सामग्री

वे उपाय जिनके द्वारा एक व्यक्ति अपने विश्व के साथ परिचय प्राप्त कर सकता है पर्याप्त सुविदित हैं। भौतिक पर्यावरण का अवबोध[5] भौतिकी एवं रसायन के विज्ञानों द्वारा, और भूगोल, भौमिकी, ऋतुविज्ञान[6], तथा ज्यौतिष के अध्ययन द्वारा परिवर्धित एवं गहरा होता है। जीवित वस्तुओं के विश्व को जैविकी[7], दैहिकी[8] एवं मनोविज्ञान के अध्ययन द्वारा अधिक स्पष्ट एवं महान् अर्थ दिया जाता है। मानव जाति के कार्य मनुष्य की रचना एवं भूमिका (मानविकी[9]), उसकी कार्यवाहियों के अभिलेखों (इतिहास), उसके सामाजिक व्यवहार एवं अशासकीय सम्बन्धों (सामाजिकी[10]), अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने की उसकी रीतियों

---

1 Phenomena. 2 Objective. 3 Habit. 4 Awareness.
5 Understanding. 6 Meteorology. 7 Biology.
8 Physiology. 9 Anthropology. 10 Sociology.

(अर्थशास्त्र), और मानवीय सम्बन्धों को नियन्त्रित एवं संघटित करने की उसकी रीतियों (राजनीति एवं शासन) के अध्ययन से अधिक बोध्य[1] एवं रुचिकर हो जाते हैं। विचार एवं भावना में मनुष्यों की प्राप्तियाँ[2] साहित्य एवं ललित कला में परिरक्षित एवं प्रकटित होती हैं। वस्तुओं एवं कार्यों के साथ निश्चितता के साथ संव्यवहार और यथार्थता के साथ अवलोकन तथा विचार करने की योग्यता, गणित द्वारा साहाय्यित होती है। अन्ततः, मानवीय प्रयोजन, प्रेरक[3] तथा संचालन में बुद्धिपूर्वक अभिरुचि नीतिशास्त्र, दर्शन एवं धर्म के एक अध्ययन द्वारा साहाय्यित हो सकती है। इन प्रकारों के अनुभवों में से कोई भी एक एक पृथक्कृत विषय क रूप में नहीं समझा जा सकता, परन्तु प्रत्येक को इसके अन्य (विषयों) के सम्बन्ध में समझा जाना चाहिए।

(ग) सामान्य शिक्षण में विज्ञान

जीवन के लिये सामान्य शिक्षण के एक भाग के रूप में, प्राथमिक पाठशाला से स्नातक-पूर्व विश्वविद्यालय-कार्य की पूर्ति तक शिक्षण के प्रत्येक पद को विज्ञान के अध्यापन का समावेश करना चाहिए। सामान्य शिक्षण में विज्ञान का स्थान वैज्ञानिक-रीति को समझने के लिये एवं प्रयोग करने के लिये, और सम्पूर्ण भौतिक एवं जैविक[4] विश्व में एक सक्रिय एवं बुद्धिपूर्वक अभिरुचि रखने के लिये, और उन परिणामों को इतना समय लिये बिना कि अन्य समान रूप से आवश्यक अभिरुचियाँ एकत्र हों प्राप्त करने के लिये विद्यार्थी को सहायता देना होना चाहिए। विद्यार्थी को विज्ञान के मुख्य

---

1 Intelligible. 2 Achievements. 3 Motive. 4 Biological.

क्षेत्रों में से प्रत्येक में उस क्षेत्र के आधारभूत शब्द-संग्रह से, मुख्य संबोधों[1] से, और उन विशिष्ट घटनाओं एवं निदर्शनों से परिचित हो जाना चाहिए जो संबोधों को उसके लिये वास्तविक बनाएँगे। सामान्य शिक्षण में अ-विज्ञान विद्यार्थियों के लिये विज्ञान का उद्देश्य विद्यार्थी को प्रत्येक क्षेत्र में एक अर्हताप्राप्त वैज्ञानिक बनाना नहीं होना चाहिए, परन्तु उसे प्रत्येक (क्षेत्र) की एक ऐसी प्रस्तावना देना (होना चाहिए) कि उस क्षेत्र में उसका सामान्य वाचन एवं अनुभव हितकर एवं बुद्धिपूर्वक होगा, और कि प्रत्येक क्षेत्र में उसकी आत्म-शिक्षा सुकर हो जाएगी।

(घ) सामान्य शिक्षण में भाषा-शास्त्र[2]

भाषा-शास्त्रों का कार्य मानवीय भावना की प्राप्तियों को संरक्षित[3] करना एवं पहुँचाना[4], और आजकल के जीवन में उनके प्रयोगों का आविष्कार करना है। भाषा-शास्त्रों में सामान्य शिक्षण का उद्देश्य प्रत्येक विद्यार्थी को संस्कारी परम्परा में अन्तर्निहित मुख्य अनुशासनों में से प्रत्येक की एक पर्याप्त प्रस्तावना देना होना चाहिये। यह पर्याप्त नहीं है कि विद्यार्थी साहित्य अथवा इतिहास अथवा दर्शन अथवा ललितकलाओं को प्रवेशित हो। प्रत्येक क्षेत्र में उसे अपने सम्बन्ध[5] प्राप्त करने चाहिएँ, आधारभूत शब्द-संग्रह को सीखना चाहिए, केन्द्रीय संबोधों के साथ एवं निदर्शनों अथवा घटनाओं के साथ परिचित होना चाहिए, और प्रत्येक क्षेत्र में आजीवन अभिरुचि एवं आत्म-शिक्षण के मार्ग पर होना चाहिये।

---

1 Concepts. 6 Humanities. 7 To Conserve.
4 To transmit. 5 Bearings.

(ङ) माध्यमिक पाठशालाओं में सामान्य शिक्षण

माध्यमिक प्रक्रम पर सामान्य शिक्षण में व्यक्ति के भौतिक पर्यावरण के साथ एक परिचय; विज्ञान के आधारभूत विचारों, भौतिक एवं जैविक, से एक प्रस्तावना; सम्पर्क के एक साधन के रूप में भाषा के यथार्थ एवं प्रभावशाली प्रयोग; जीवन के उच्च मूल्यों के एक अधिमूल्यन, जैसाकि वह साहित्य में सुरक्षित है; और कार्य करने तथा जीवित रहने में एकत्र संनिहित विधाओं[1] के एक अवबोध का समावेश होना चाहिए।

नवम एवं दशम् श्रेणियों की पाठचर्याओं में (निम्नलिखित विषयों) का समावेश हो सकता है :—

(१) मातृ भाषा (भाषा का शुद्ध एवं प्रभावशाली प्रयोग, प्रवर[2] साहित्य का परिचय एवं अधिमूल्यन)।

(२) संधानीय[3] भाषा (प्रत्येक दिन की सरल स्थितियों में समवबोध[4] एवं प्रयोग)।

अथवा

एक शास्त्रीय[5] अथवा आधुनिक भारतीय भाषा (उनके लिये जिनकी मातृ भाषा संधानीय भाषा है)।

(३) आङ्गल (समवबोध एवं सरल रचना)।

(४) प्रारम्भिक गणित।

(५) सामान्य विज्ञान (भौतिक एवं जैविक[6])।

(६) सामाजिक अध्ययन (भारत के इतिहास एवं भूगोल पर विशेष बल के साथ विश्व-इतिहास की एक संक्षिप्त रूप रेखा)।

---

1 Processes. 2 Select. 3 Federal. 4 Comprehension.
5 Classical. 6 Biological.

(७), (८) निम्नलिखित विषयों में कम से कम दोः—

(i) एक शास्त्रीय भाषा, (ii) एक आधुनिक भाषा, (iii) समधिक[1] गणित, (iv) भौतिकी, (v) रसायन, (vi) जैविकी, (vii) समधिक इतिहास, (viii) सङ्गीत, (ix) चित्रण, (x) शिल्पकार्य, (xi) गृह-विज्ञान, (xii) पुस्त-पालन[2] एवं लेखा[3], (xiii) मुद्रलेखन[4] एवं वाणिज्य-व्यवहार, (xiv) कृषि-विज्ञान, (xv) सामान्य अभियान्त्रिकी[5] विज्ञान।

एकादश एवं द्वादश श्रेणियों में पाठचर्याओं में निम्नलिखित (विषयों) का समावेश होगा :—

(१) मातृ भाषा।

(२) संधानीय भाषा।

अथवा

एक शास्त्रीय अथवा आधुनिक भारतीय भाषा (उनके लिये जिनकी मातृ भाषा संधानीय भाषा होती है)।

(३) आङ्गल।

(४) सामान्य विज्ञान (भौतिक एवं जैविक)

अथवा

सामाजिक अध्ययन (अर्थशास्त्र एवं नागरिक-शास्त्र के अंशकों[6] समेत।

(५)—(७) निम्नलिखित विषयों में से कम से कम दोः—

(i) इतिहास (भारतीय, यूरोपिअन, विश्व), (ii) भूगोल (तथा भौमिकी), (iii) अर्थशास्त्र, (iv) नागरिक-

---

1 Additional. 2 Book-Keeping. 3 Accounts.
4 Typewriting. 5 Engineering. 6 Elements.

शास्त्र, (v) एक शास्त्रीय भाषा (संस्कृत, फ़ारसी, अरबी, लैटिन, ग्रीक), (vi) एक आधुनिक भारतीय भाषा (हिन्दी, उर्दू, बंगाली, मराठी, गुजराती, तामिल, तेलगू, इत्यादि), (vii) एक आधुनिक यूरोपिअन भाषा (आङ्ग्ल, फ्रेंच, जर्मन, इत्यादि), (viii) तर्क-शास्त्र, (ix) मनोविज्ञान, (x) उद्रेखण[1], (xi) गृह-विज्ञान, (xii) दैहिकी एवं स्वास्थ्य विज्ञान, (xiii) गणित, (xiv) भौतिकी, (xv) रसायन, (xvi) जैविकी, (xvii) लेखा-कर्म[2] एवं पुस्त-पालन के अंशक, (xviii) अधिकोषण[3] के अंशक, (xix) व्यापार-पद्धतियाँ, (xx) आर्थिक इतिहास एवं आर्थिक भूगोल, (xxi) आशु-मुद्रण[4], (xxii) औद्योगिक संघटन, (xxiii) व्यापारिक अंकगणित, (xxiv) मृदा-विज्ञान[5] के अंशक।

(च) महाविद्यालयों में सामान्य शिक्षण

सामान्य शिक्षण को विद्यार्थी-जीवन की अधिक परिपक्व वर्षों में चालू रहना चाहिए। इसे (सामान्य शिक्षण को) उसे (विद्यार्थी को) उसके भौतिक एवं सामाजिक पर्यावरण से, और मानवीय संस्थाओं, महत्वाकांक्षाओं तथा आदर्शों से परिचित बनाने को लक्ष्य बनाना चाहिए। उसे अपने चारों ओर प्रकृति-दृश्य[6], दोनों चेतन[7] एवं अचेतन[8], की एक समझ रखनी चाहिए, और उनके अवलोकन एवं मापन में यथार्थता के व्यसन प्राप्त करने चाहिएँ; आधारभूत वैज्ञानिक संबोधों[9] के,

1 Drawing. 2 Accountancy. 4 Banking. 4 Steno-typing. 5 Soil Science. 6 Phenomena of Nature. 7 Animate. 8 Inanimate. 9 Concepts.

एक विज्ञान द्वारा दूसरे के ऊपर-निषेचन[1] के, और वैज्ञानिक प्रगति के सामाजिक महत्व एवं इसके उसके अपने वैयक्तिक स्वास्थ्य, मानसिक तथा शारीरिक, के ऊपर सम्बन्ध के (विषय में) जानना चाहिए। उसे अपनी सामाजिक पैतृक-सम्पत्ति[2] की तथा संघटित समाज की समस्याओं की एक समझ रखनी चाहिए, और सामुदायिक-जीवन में प्रभावशाली भाग-ग्रहण[3] के लिये बुद्धिपूर्वक सामाजिक दृष्टिकोण विकसित करने चाहिएँ। उसे साहित्य, कला, धर्म एवं दर्शन में व्यक्त नैतिक, बौद्धिक, एवं सौन्दर्यात्मक[4] मूल्य विदित होने चाहिएँ। ये उद्देश्य गणित, वैज्ञानिक पद्धति, भौतिक विज्ञान, जैविकी, तथा मनोविज्ञान में, सामाजिक अध्ययन (अर्थशास्त्र, राजनीति, इतिहास, प्रशासन) में, और भाषा-शास्त्रों (साहित्य, दर्शन एवं कला) में पाठचर्याएँ दे कर प्राप्त किये जा सकते हैं। हम महाविद्यालय-वर्षों में से प्रत्येक में धार्मिक मूल्यों के साथ संव्यवहार करने के लिये एक तत्सम पाठचर्या सुझाते हैं।

(छ) प्रथम उपाधि-पाठचर्या : कला एवं विज्ञान

यह तीन वर्ष की अवधि की होगी। सामान्य शिक्षण एवं धर्म पर इन पाठचर्याओं के अतिरिक्त, कला एवं विज्ञान के विद्यार्थियों को, चाहे (वे) उत्तीर्ण पाठचर्याओं के लिये हों अथवा प्रावीण्य-पाठचर्याओं (के लिये), (निम्नलिखित विषयों का) अध्ययन करना होगा—

(१) संधानीय भाषा, अथवा यदि वह (विद्यार्थी की)

---

1 Cross-Fertilization. 2 Heritage. 3 Participation.
4 Aesthetic.

मातृ भाषा होती है तो एक शास्त्रीय अथवा एक आधुनिक भारतीय भाषा।

(२) आङ्गल।

(३) एवं (४)—कला-विद्यार्थियों के लिये, कम से कम दो विशेष विषय, अधिमानतः प्रत्येक (निम्नलिखित) समूह में से एक :

प्रथम समूह : भाषा-शास्त्र

(i) एक शास्त्रीय अथवा एक आधुनिक भारतीय भाषा, (ii) आङ्गल, फ्रेंच, अथवा जर्मन, (iii) दर्शन, (iv) इतिहास, (v) गणित, (vi) ललित कला।

द्वितीय समूह : सामाजिक अध्ययन

(vii) राजनीति, (viii) अर्थशास्त्र, (ix) समाजशास्त्र, (x) मनोविज्ञान, (xi) मानविकी, (xii) भूगोल, (xiii) गृह-अर्थशास्त्र।

(३) एवं (४)—विज्ञान के विद्यार्थियों के लिये, निम्नलिखित सूची में से कम से कम दो विशेष विषय :—

(i) गणित, (ii) भौतिकी, (iii) रसायन, (iv) औद्भिदी[1], (v) प्राणिकी, (vi) भौमिकी।

संधानीय भाषा अथवा वैकल्पिक[2] तथा आङ्गल में पाठचर्या का अन्त, अभ्यर्थी[3] की प्रवीणता[4] की मात्रा के अनुसार, या तो प्रथम, द्वितीय अथवा तृतीय वर्ष के अन्त पर हो सकता है। प्रथम उपाधि-पाठचर्या के लिये अभ्यर्थी माध्यमिक पाठशालाओं में संधानीय भाषा अथवा इसके वैकल्पिक में ६ वर्ष का शिक्षण और चार वर्ष का शिक्षण आङ्गल में ले चुके होंगे।

1 Botany. 2 Alternative. 2 Candidate. 4 Proficiency.

वैकल्पिक विषयों में एक शास्त्रीय भारतीय अथवा आधुनिक भाषा, संधानीय अथवा प्रादेशिक[1] के गहन अध्ययन के लिये, जैसे कि एक यूरोपिअन भाषा, आङ्गल, फ्रेंच, अथवा जर्मन के अध्ययन के लिये प्रबन्ध होगा।

यह अभाग्यपूर्ण है कि हमने अपनी भाषाओं में शास्त्रीय-भाषाओं के अध्ययन के महत्व का पर्याप्त रूप से अनुभव नहीं किया है। संस्कृत भाषा उन पुस्तकों को धारण करती है जो मानवता के मूल्य-रहित धारण[2] हैं और यह मानववादी संस्कृति की एक योजना में सदैव एक स्थान रखेगी।

दर्शन की प्रत्येक पाठचर्या में भारत की इस विषय को देन का समावेश होना चाहिए। यदि हम इस तक वह बौद्धिक अनुशासन लाते हैं जिसकी यह पात्र है तो भारतीय दर्शन का इतिहास यह प्रकट कर देगा कि अरस्तू का अध्यात्मवाद[3] मानवीय प्रज्ञा[4] का आरम्भ नहीं है, न (उसका) तर्कशुद्ध अस्तिवाच[5] इसका आवश्यक अन्त।

हमें अपने तरुण पुरुषों एवं स्त्रियों को अपनी विश्व-राजनीति के ऐतिहासिक कारणों को समझने के लिये शिक्षित करना चाहिए। भारत के इतिहास का एक विस्तृत अध्ययन आवश्यक है, परन्तु हमें अन्य देशों के इतिहास के एक ज्ञान की भी आवश्यकता है।

गणित एक वह विषय है जिसे या तो कला अथवा विज्ञान के विद्यार्थियों द्वारा लिया जा सकता है। गणित के लिये

---

1 Regional. 2 Possessions. 3 Metaphysics.
4 Wisdom. 5 Logical Positivism.

भारत का बहुत अंशदान रहा है।❀ गणित के लिये भारत की प्रतिभा[1] रामानुजन के प्रतिभाशाली कार्य द्वारा पुनः विश्व के ध्यान में आयी।

हमने ललित कला को भाषा-शास्त्रों के नीचे रखा है, क्योंकि सौन्दर्यात्मक आवेग[2] हमें मूल्य के विशद संबोधों[3] के साथ सज्ज करते हैं।

मानविकी, दोनों सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक, पक्ष रखती है। सामाजिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं की वृहत् भिन्नता और यह

---

1 Genius. 2 Aesthetic Emotions. 3 Vivid Apprehensions.

❀ *"The Hindus are the originators of the number system we now use. One particular tendency among them led to what has been generally referred to as the greatest invention in Mathematics. That was their custom of assigning a* **sequence,** *or* **place value** *to each symbol used in number writing...... Among the inscriptions of Asoka are found the so-called Brahmi or Ashoka characters, from which our modern numerals were derived......... the introduction of "O" with place value into the number system is a gift of the Hindus and one of the greatest gifts to mankind of all times. The approximate date of its entry is 500 A. D...... About 625 A. D., the brilliant Brahmagupta of Ujjain, India, gave directions for obtaining a* **positive** *root of the quadratic equation. Translated into the modern symbols, his directions correspond very closely to the modern formula. Rightfully therefore we call it to this day the* **Hindu Formula."**

—F. W. Kokomoor : Mathematics in Human Affairs (1942), PP. 117, 220.

समझने की आवश्यकता कि हमारे उन्हें परिवर्तित करने का यत्न करने से पूर्व वे किस प्रकार चालू रहती हैं, के कारण, मानविक[1] हमारे देश में पूर्ण करने* के लिये एक महत्वपूर्ण कार्य रखता है।

हमने भूगोल को एक सामाजिक अध्ययन के रूप में रखा है, क्योंकि यह मनुष्यों के भौतिक जैसे कि उसके आध्यात्मिक अस्तित्व एवं विकास का नियन्त्रण करता है। ऐसे पर्यावरण एवं घटनाओं का अध्ययन सामाजिक अध्ययनों का विषय होता है।

५—विश्वविद्यालय अध्ययनों की अवधि

सामान्य शिक्षण में इन पाठचर्याओं की प्रस्तावना में स्वभावतः समधिक कार्य का समावेश होगा। विज्ञान एवं कला में स्नातक-उपाधि[2] के लिये पाठचर्या, चाहे उत्तीर्ण के अथवा प्रावीण्य के लिये, तीन वर्ष की अवधि की होने के लिये अभिस्तावित की जाती है; अतः एक नियमित विद्यार्थी अपनी स्नातक-उपाधि पन्द्रह वर्ष की पाठशाला एवं महाविद्यालय-पाठचर्या के पश्चात् लेगा। अधिस्नातक-उपाधि[3], उसकी अपनी स्नातक-उपाधि लेने के पश्चात्, प्रावीण्य-अभ्यर्थी[4] की स्थिति में एक वर्ष, और उत्तीर्ण-अभ्यर्थी[5] की स्थिति में दो वर्ष में ली जायगी।

५—*उत्तर-स्नातक प्रशिक्षण एवं अन्वेषण*

१—महत्व

मानवीय सभ्यता ने उन विशेषज्ञों के यत्नों से बड़े लाभ

---

1 Anthropologist. 2 Batchelor's Degree. 3 Master's Degree. 4 Honours Candidate. 5 Pass Candidate.

प्राप्त किये हैं जिन्होंने प्रकृति के गूढ़ों और मानवीय व्यवहार, वैयक्तिक एवं सामाजिक, के प्रेरकों[1] एवं विधाओं[2] में सदैव अधिक गहराई से अन्तःप्रवेश किया है। एक निरन्तर बढ़ती हुई मात्रा तक आधुनिक जीवन अन्वेषण का ही परिणाम है। वाइटहैड[3] को उद्धृत करते हुये, "एक प्रगतिशील समाज अपने तीन समूहों के समावेश पर निर्भर करता है: विद्वान[4] आविष्कर्ता[5], उपज्ञाता[6]।" जबकि विद्वान अतीत को पुनः प्रकट करते एवं बुद्धि, सौन्दर्य एवं साधुता[7] के आदर्श हमारे सामने रखते हैं, आविष्कर्ता नवीन सत्यों को ढूंढते हैं, और उपज्ञाता उन्हें विद्यमान आवश्यकताओं में लागू करते हैं। विश्व-विद्यालय इन प्रकारों के व्यक्तियों को उत्पन्न करने के लिये मुख्य अभिकरण[8] होते हैं जो प्रगतिशील क्रियाओं का एक प्रभावशाली साधन में एकीकरण करेंगे। विश्वविद्यालय ज्ञान की सीमाओं का विस्तार करने के लिये उतने ही उत्तरदायी होते हैं जितने नागरिकों को प्रशिक्षित करने के लिये; वस्तुतः, ज्ञान की उन्नति उनके अध्यापन की संतत जीवनशक्ति[9] की एक आवश्यक दशा होती है, क्योंकि जब तक एक अध्ययन अन्वेषण में मूलित[10] नहीं है, मर जाएगा। आधारभूत अन्वेषण मुख्यतः विश्वविद्यालयों का विषय है और सामान्यतः इसके (अन्वेषण) मानवीय आवश्यकताओं में प्रयोग से पूर्व होता है। ज्ञान की यथा-शक्य शाखाओं में अन्वेषण लेना और ऐसे प्रशिक्षित अन्वेषण-कर्ताओं की एक सेना उत्पन्न करना, जो, अपने अध्ययनों द्वारा, विद्वत्ता एवं वैज्ञानिक अन्वेषण में न

1 Motives. 2 Processes. 3 Whitehead. 4 Scholars.
5 Discoverers. 6 Inventors. 7 Goodness. 8 Agencies.
9 Continued Vitality. 10 Rooted.

केवल बौद्धिक जीवन के उच्च प्रमाप स्थापित करेंगे, परन्तु हमारे देश की नैतिक एवं भौतिक प्रगति की सक्रिय रूप से उन्नति भी करेंगे, हमारी राष्ट्रिय संस्थाओं के रूप में विश्वविद्यालयों का उद्देश्य होना चाहिए।

(१) उत्तर-स्नातक प्रशिक्षण

२—उत्तर-स्नातक प्रशिक्षण के उद्देश्य

क्योंकि हमारे स्नातक-पूर्व अध्ययन का अधिकांश अभी तक एक प्राथमिक-अध्ययन की प्रकृति[1] का होता है, उत्तीर्ण स्नातकों के लिये गम्भीर विद्योचित कार्य एक पर्याप्त अवधि तक केवल एम० ए० अथवा एम० एस-सी० प्रक्रम पर ही किया जाएगा। इस प्रक्रम पर एक विद्यार्थी को कठोर बौद्धिक प्रयास में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए, जिसे किसी भी नामोपयुक्त अच्छी उच्च शिक्षा की एक आवश्यक विशेषता का निर्माण करना चाहिए। उत्तर-माध्यमिक श्रेणियाँ (निम्नलिखित उद्देश्यों के लिये) अभिप्रेत होती हैं:-

(१) उच्च शिक्षा के समस्त स्तरों के लिये अध्यापकों को प्रशिक्षित करना,

(२) अशैक्षणिक[2] क्षेत्रों में अनेक सेवाओं के लिये विशेषज्ञ प्रशिक्षित करना, यथा शासन, उद्योग, वाणिज्य, कृषि, एवं लोक-कल्याण, और

(३) अन्वेषण-सेवि-वर्ग[3] को प्रशिक्षित करना।

जिस प्रकार हम अपनी प्रथम उपाधि पाठचर्याओं के प्रमापों को उठाने के लिये चिन्तित हैं, उसी प्रकार हम समान

1 Propaedeutic Nature, 2 Non-Academic. 3 Personnel.

रूप से चिन्तित हैं कि हमारी एम० ए० तथा एम० एस-सी० उपाधियों के प्रमाप उठाए जाने चाहिएँ। ज्ञान के सीमाबन्धन एक प्रभावशाली गति से विस्तृत हो रहे हैं, परन्तु विद्यार्थियों के लिये प्राप्य समय सीमित है। हम विश्वास करते हैं कि एक विद्यार्थी, जो एक प्रावीण्य-उपाधि[1] ले चुका है, अभी तक उसकी अपनी एक अन्वेषण-समस्या लेने के लिये पूर्णतः सुसज्ज नहीं है, एक उत्तीर्ण स्नातक तो कहीं अधिक कम होता है। इन स्नातकों को नियमित शिक्षण द्वारा एक अग्रिम प्रक्रम तक अपने अध्ययनों को चालू रखने और अन्वेषण की रीतियों को सीखने की आवश्यकता होती है। प्रावीण्य-पाठचर्याओं में हम विद्यार्थियों को तथ्यों को सीखने और उनके बारे में प्रभावशाली ढङ्ग से विचार करने के लिये अध्यापन करते हैं। एम० ए०, तथा एम० एस-सी० पाठचर्याओं में हमें विद्यार्थियों को छात्र-वृत्तियों एवं अन्वेषण का जीवन लेने के लिये प्रशिक्षित करना चाहिए।

३—विनियमों[3] में एकरूपता

अतः, हम अभिस्ताव करते हैं कि समस्त विश्वविद्यालयों में एम० ए० तथा एम० एस-सी० उपाधियों के लिये विनियमों में एक एकरूपता होनी चाहिए। इन उपाधियों के लिये एक उत्तीर्ण-स्नातक को कम से कम दो वर्ष तथा एक प्रावीण्य-स्नातक को कम से कम एक वर्ष अध्ययन करना चाहिये।

४—अध्यापन

कला-छात्रों के लिये नियमित व्याख्यानों, विमर्शगोष्ठियों[4]

---

1 Honours Degree. 2 Career. 3 Regulations. 4 Seimnars.

एवं पुस्तकालय-कार्य द्वारा और विज्ञान-छात्रों के लिये प्रयोग-शाला के साथ तत्सम पाठचर्या द्वारा अध्यापन को समुचित रूप से संघटित किया जाना चाहिए; इसमें उच्च प्रशिक्षण एवं अध्ययन के विशेष विषय में अन्वेषण की नवीनतम रीतियों का समावेश होना चाहिये जिससे विद्यार्थी स्वतन्त्र अनुसंधान चालू रखने के लिये योग्य होने के लिये सुसज्ज किये जा सकें, परन्तु इसमें वास्तविक अन्वेषण का समावेश नहीं होना चाहिए।

५—अभ्यर्थियों की अर्हताएँ[1]

एम० ए० अथवा एम० एस-सी० उपाधि के लिये एक अभ्यर्थी को अपनी परीक्षा में विद्वत्ता एवं प्राप्ति की एक उच्च मात्रा का प्रदर्शन करना चाहिए, जिसे, विज्ञान विषयों में एक प्रयोगात्मक परीक्षा द्वारा अनुपूरित होने के लिये, प्रश्नपत्रों एवं एक मौखिक[2] द्वारा संचालित होना चाहिए।

६—प्रवेश

एम० ए० तथा एम० एस-सी० श्रेणियों में विद्यार्थियों के प्रवेश में बड़ी सावधानी प्रयोग में लाई जानी चाहिए। इस द्वितीय उपाधि-पाठचर्या में उन्हें प्रविष्ट करने से पूर्व उच्च पाठशाला से बी० ए० तथा बी० एस-सी० तक विद्यार्थियों के सम्पूर्ण अभिलेखों[3] को परिनिरीक्षित[4] किया जाना चाहिए। प्रवेशों में प्रान्तीय-आयन्त्रणों की रीति नहीं होनी चाहिए, और भारत-शासन को इसे एक प्रतिबन्ध बना देना चाहिए

---

1 Qualifications of Candidates. 2 *viva voce.*

3 Records. 6 Scrutinized.

कि जब तक इन श्रेणियों में इनके प्रवेश केवल योग्यता एवं एक अखिल भारतीय आधार पर नहीं किये जाते हैं तब तक कोई विश्वविद्यालय उनसे एक अनुदान प्राप्त न कर सकेगा। विद्यार्थियों की क्षमता एवं गुण पर बल रखा जाना चाहिए, और उनकी संख्या पर नहीं।

७—वर्ग

ये वर्ग अपनी लघु संख्याओं द्वारा एवं उनके अध्ययनों का संचालन करते हुए ज्येष्ठ कर्मचारियों के साथ निकटतम वैयक्तिक सम्पर्क द्वारा विशेषलक्षित[1] होने चाहिएँ। जब तक वह स्वयं अपने विषय में एक सफल अन्वेषक न रहा हो किसी को इन वर्गों में अध्यापन नहीं करना चाहिए।

(२) अन्वेषण

८—अन्वेषण की उत्पत्ति एवं विस्तार

१९१४ में सर आशुतोष मुखर्जी ने कलकत्ता विश्वविद्यालय में प्रथम उत्तर-स्नातक विभागों की संस्थापना की और वहाँ उत्तर-स्नातक प्रशिक्षण एवं अन्वेषण को एक समुचित मर्यादा[2] पर रखा। भाषा-शास्त्रों[3] में, अन्वेषण अपने को मुख्यतः मनुष्य के अतीत इतिहास-उसके विचारों एवं उसके अनुभवों के इतिहास, एक पूर्ण के रूप में मनुष्य के अवबोध[4], और अतीत के वर्तमान के साथ एकीकरण—से संबद्ध होता है; जबकि प्राकृतिक विज्ञानों[5] में अन्वेषण प्रकृति के अप्रकटित गुणों एवं मनुष्यजाति की भौतिक आवश्यकताओं में उनके प्रयोग को

1 Characterized. 2 Footing. 3 Humanities.
4 Understanding. 5 Natural Sciences.

ढूँढने का रूप लेता है। भाषाशास्त्रीय अन्वेषण हमारे मानव-प्रकृति के ज्ञान को बढ़ाता और हमें शुद्ध निर्णय करने के लिये समर्थ बनाता है।

९—विश्वविद्यालय अन्वेषण की वर्तमान स्थिति

अभाग्य से हमारे विश्वविद्यालयों में अन्वेषण के गुण एवं मात्रा में एक स्थिर ह्रास के चिन्ह हैं। इसके अनेक कारण हैं, परन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण यह है कि भिन्न क्षेत्रों में अन्वेषण के नेताओं में से अधिकांश ने या तो विश्वविद्यालयों को छोड़ दिया है अथवा सेवानिवृत्ति के किनारे पर हैं और विश्वविद्यालय इन आविष्कर्ताओं द्वारा उपक्रमित[1] एवं नाभीयित[2] अन्वेषण-परम्परा को चालू रखने के लिये उपयुक्त उत्तराधिकारी प्राप्त करने के योग्य नहीं हुए हैं।

१०—पी-एच० डी०-उपाधि

(क) प्रशिक्षण के लिये प्रबन्ध

क्योंकि विश्वविद्यालयों को, एक वृहत् मात्रा तक, अन्वेषण में उन आरम्भकर्ताओं के साथ संव्यवहार करना होता है जिन्हें सहायता देनी होती है और जो प्रशिक्षित करने होते हैं, ऐसे अध्यापक रखना आवश्यक है जिनका मुख्य कार्य अन्वेषण-विद्यार्थियों को प्रशिक्षित करना होगा। अध्यापन-विश्वविद्यालयों को ज्ञान की इतनी शाखाओं में अन्वेषण-प्रशिक्षण का विकास करना चाहिए जितनी में वे क्षमता के साथ कर सकते हैं, जबकि संबद्धक[3]-विश्वविद्यालयों को (यथा आगरा, राजपूताना, इत्यादि), जो आजकल सर्वथा परीक्षक-

---

1 Initiated. 2 Focussed. 3 Affiliating.

निकाय[1] हैं, इतने विषयों में उत्तर-स्नातक एवं अन्वेषण-विभाग स्थापित करने चाहिएँ जितने में वे विद्वत्ता की उच्च मात्रा के साथ कर सकते हैं।

(ख) विद्यार्थियों का चुनाव

पी-एच० डी० वर्गों के लिये विद्यार्थियों का चुनाव करने में अत्यन्त सावधानी का प्रयोग किया जाना चाहिए। विद्यार्थी ने न केवल अपने विषय के आधारों में एक समुचित भूमिका प्राप्त की हो, परन्तु उसे केवल विद्या से अलग, जो एक अन्वेषणकर्ता के लिये आवश्यक है, मस्तिष्क की निश्चित सहज मौलिकता रखनी चाहिए। यदि एक विद्यार्थी ने अपने एम० ए० तथा एम० एस-सी० वर्गों में न मौलिकता, न प्ररुचि, न समालोचनात्मक योग्यता का प्रदर्शन किया है, तो वह भविष्य में ऐसा करने के लिये संभाव्य नहीं है। न समस्त मनुष्य, न समस्त शिक्षित मनुष्य विद्वत्ता एवं अन्वेषण के एक जीवन के विशिष्ट व्यवसाय के लिये आहूत[2] हैं। यह बौद्धिक जीवन का एक विशेषित रूप है जिसके लिये अन्वेषण की रीतियों एवं सिद्धान्तों में सावधानी से चुने हुए विद्यार्थियों को प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। वे केवल संकलनकतर्त्ता[3], अभिलेखक[4] अथवा प्रविधिज्ञ[5] नहीं होने चाहिएँ, परन्तु ऐसे विद्वान एवं वैज्ञानिक (होने चाहिएँ) जो दृष्टि-विस्तार, कल्पना एवं तथ्यों को आत्मसात् एवं एकीकृत करने और अपनी प्राप्तियों को संसूचित[6] करने की योग्यता धारण करते हैं। जैसाकि एम० ए० तथा एम० एसी-सी० वर्गों की स्थिति में है, समस्त विश्वविद्यालयों में पी-एच० डी०

1 Examining Bodies.   2 Called.   3 Compilers.
4 Chroniclers.   5 Technicians.   6 To Commumicate.

पाठचर्याओं में प्रवेश योग्यता पर तथा एक अखिल भारतीय आधार पर किये जाने चाहिएँ।

(ग) *विषयों का चुनाव*

पी-एच० डी०-पाठचर्या उस विशेषीकरण की होती है जिसमें प्रशिक्षण एवं प्राप्ति ऐसी होनी चाहिए जैसी यह सुनिश्चित करे कि विद्यार्थी अपने अध्ययन के विशेष क्षेत्र का सफलतापूर्वक समन्वेषण कर चुका है और अपने अन्वेषण द्वारा उस विषय के ज्ञान की पर्याप्त रूप से उन्नति कर चुका है। उसे एक अस्पष्ट विषय नहीं लेना चाहिए : यह उसे संकेन्द्रित करने के लिये पर्याप्त निश्चित तथा उसके सामान्य ज्ञान को गहरा करने एवं बढ़ाने के लिये पर्याप्त महत्वपूर्ण होना चाहिए।

(घ) *पर्यवेक्षण*[1]

पर्यवेक्षक को, जिसे उस विषय में एक विशेषज्ञ तथा एक सफल अन्वेषणकर्ता होना चाहिए, कठिन बिन्दुओं की चर्चा और उनके अन्वेषप्रबन्धों[2] के भागों के प्रारम्भिक प्रारूपों[3] की समालोचना के लिये अवधि में एक सप्ताह में लगभग एक बार अपने विद्यार्थियों से मिलना चाहिए।

(ङ) *सुविधाएँ*

उनके लिये छात्रवृत्तियों की एक निश्चित संख्या प्रदान की जानी चाहिए जो पी-एच० डी०-पाठचर्या के लिये चुने गये हैं और वित्त-साहाय्य की आवश्यकता में हैं।

(च) *अवधि*

पी-एच० डी० उपाधि के लिये प्रशिक्षण को कम से कम दो वर्ष की एक अवधि से अधिक विस्तृत होना चाहिये।

---

1 Supervision. 2 Theses. 3 Rough Drafts.

(छ) *अन्वेषप्रबन्ध*

उसे ज्ञान को अपनी मौलिक देन-युक्त एक अन्वेषप्रबन्ध उपस्थित करना चाहिए जो प्रकाशन के लिये समुपयुक्त एवं प्रस्तुत एक रीति में दिया जाना चाहिए। अन्वेषप्रबन्ध साधारणतः तीन परीक्षकों द्वारा, दो बाह्य तथा एक आन्तर, परीक्षित होना चाहिए। सदैव एक मौखिक परीक्षा होनी चाहिए जिसे उस विषय के सम्पूर्ण क्षेत्र के उसके सामान्य ज्ञान की परीक्षा करनी चाहिए जिसके लिये उसका अन्वेषप्रबन्ध निर्देश करता है।

(ज) *प्रकाशन*

उत्तम कार्य उत्पन्न करने के लिये प्रकाशन महानतम उद्दीपक होता है। यदि उसका कार्य ज्ञान के लिये एक निश्चित देन होता है, तो एक अन्वेषप्रबन्ध के लेखक को एक उपाधि का पारितोषिक दिया जाता है, परन्तु एक अन्वेषणप्रबन्ध, जिसे प्रकाशित नहीं किया जाता है, ज्ञान की वृद्धि नहीं करता। हम अभिस्ताव करते है कि विश्वविद्यालय को वित्त-सहायता द्वारा वास्तव में अच्छे कार्य के प्रकाशन में सहायता देनी चाहिए।

११—अन्वेषण-अधिछात्रवृत्तियाँ[1]

हम मान लेते हैं कि उनमें से अनेक, जो पी० एच-डी०-उपाधि लेते हैं, विश्वविद्यालयों के प्राध्यापक-वर्ग में सम्मिलित होंगे। विश्वविद्यालय को, इसके अपने संसाधनों एवं आकर्षणों द्वारा, उनकी विद्वत्ता एवं विज्ञान को अंशदान करने की महत्वाकांक्षा को प्रोद्दीप्त एवं परितुष्ट करने के योग्य होना

1 Research Eellowships. 2. To gratify.

चाहिए। हमें अन्वेषणकर्ताओं को एक (ऐसी) स्थिति में रखना चाहिए जिसमें वे मौलिक कार्य के लिये विपुल अवकाश एवं अवसर रखेंगे। वे अध्यापन से एक उस मात्रा तक भारित नहीं होने चाहिएँ कि यह उन्हें अपने कार्य के लिये पर्याप्त अवकाश से वञ्चित करे। हम विश्वविद्यालयों में प्रस्वीकृत ज्ञान की मुख्य शाखाओं में अन्वेषण-अधिछात्रवृत्तियों की स्थापना का अभिस्ताव करते हैं। वे उच्च विद्वत्ता एवं संभाव्य नेतृत्व के उच्च विद्यार्थियों के लिये खुली होनी चाहिएँ और उन्हें प्रदान की जानी चाहिएँ जो अन्वेषण के लिये क्षमता की एक उच्च मात्रा का प्रदर्शन कर चुके हैं। ये अधिछात्रवृत्तियाँ योग्यता के लिये केवल पारितोषिक नहीं हैं, परन्तु स्वतन्त्र अध्ययन एवं कार्य के लिये अवसर और उच्च विद्योचित स्थितियों के लिये तैयारी (होती हैं)। वे संख्या में अति अनेक एवं मूल्य में अति महान नहीं होनी चाहिएँ।

१२—डी० लिट्० एवं डी० एस-सी०-उपाधियाँ

डी०लिट्० एवं डी० एस-सी०—उपाधियाँ उन व्यक्तियों को प्रदान की जानी चाहिएँ जिनका कार्य विशेष मौलिकता, योग्यता एवं प्रभेद[1] का प्रदर्शन करता है। वे सर्वथा प्रकृष्ट[2] गुण के प्रकाशित कार्य पर प्रदान की जानी चाहिएँ। इन उपाधियों के लिये प्रकाशित कार्य केवल बाह्य परीक्षकों द्वारा अभिनिर्णीत[3] होना चाहिए।

१३—अध्यापकों द्वारा अन्वेषण

हमारे देश में अध्यापकों एवं विश्वविद्यालय-प्रशासकों द्वारा पर्याप्त रूप से इसका अनुभव नहीं किया गया है कि

1 Distinction. 2 Outstanding 5 Adjudged.

अन्वेषण एक विश्वविद्यालय का उतना ही महत्त्वपूर्ण कार्य है जितना अध्यापन। कुछ विश्वविद्यालय-अध्यापक, जो अपने बौद्धिक-स्वास्थ्य को देखने भालने की सावधानी नहीं करते, अपने आलस्य का इस वचन के अभिदान द्वारा समर्थन करते हैं कि अन्वेषण विश्वविद्यालय-कार्य का एक अभिन्न अङ्ग नहीं है—यह केवल एक विलास है, विश्वविद्यालय-अध्यापकों को यह नहीं भूलना चाहिए कि उनका एक विशेषाधिकृत[1] जीवन होता है; वे अवकाश एवं प्रशान्ति का एक जीवन रखते हैं—(जो) अन्वेषण की दो आवश्यकताएँ (हैं); वे एक व्यापार-गृह अथवा उद्योग-संस्था अथवा राजनैतिक जीवन में कहीं न प्राप्त होने वाली एक पदावधि-सुरक्षा[2] रखते हुए, जीवन-संग्राम से बहुत कुछ आश्रयित[3] होते हैं। इन विशेषाधिकारों के लिये कृतज्ञ स्वीकृति में, उन्हें समुदाय को अपने अध्यापन-कार्य के सम्बन्ध में समयनिष्ठता[4], दक्षता, एवं कर्तव्य-परायणता और अपने अन्वेषण-कार्य के सम्बन्ध में नवीन विचारों एवं नवीन रीतियों के जीवाणु देने चाहिएँ। उन्हें न केवल प्रवर्तमान ज्ञान देना चाहिए, परन्तु, एक वास्तविक अर्थ में, नवीन ज्ञान का निर्माता होना चाहिए।

१४–भाषाशास्त्रीय अन्वेषण[5]

यद्यपि हमारे पुस्तकालय-संसाधन अल्प हैं और विश्वविद्यालय सामान्यतः पुस्तकों एवं हस्तलेखों में सुसंचित नहीं हैं और (वे) उदार अनुदानों की आवश्यकता में हैं, फिर भी हमारे देश में भाषाओं एवं साहित्य, शास्त्रीय तथा आधुनिक, दर्शन,

---

1 Privileged. 2 Security of Tenure. 3 Sheltered.
4 Punctuality. 5 Humanistic Research.

इतिहास और ललितकलाओं में अन्वेषण के लिये विपुल संसाधन हैं।

१५—वैज्ञानिक अन्वेषण

एक प्रगतिशील समाज में विज्ञान सभ्यकृत जीवन की एक अपरिहार्य दशा और प्रगति की दिशा का निर्धारण करने में एक मुख्य कारक[1] हो चुका है। हमारे देश को न केवल प्रशिक्षित वैज्ञानिक कार्यकर्ताओं की, परन्तु अन्वेषण की भावना से भरे हुए वैज्ञानिक नेताओं की भी आवश्यकता है। अतः यह अविलम्बनीय रूप से आवश्यक है कि हमें अपनी पाठशालाओं, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में वैज्ञानिक शिक्षण के लिये व्यापक रूप से विस्तृत सुविधाएँ रखनी चाहिएँ, और साथ ही अन्वेषण में प्रशिक्षण के लिये विपुल सुविधाएँ प्रदान करनी चाहिएँ।

१६—"मुख्य[2]" एवं "गौण[3]" कार्यकर्ता

मौलिक कार्यकर्ता दो समूहों में विभाजित किये जा सकते हैं—(१) मुख्य और (२) गौण। गैलिलिओ के समान भी व्यक्ति होते हैं जो केवल मौलिक कार्य ही कर सकते हैं........, परन्तु गौण कार्यकर्ता (भी) होते हैं जो कार्य करेंगे और अच्छा करेंगे यदि उनका मार्गप्रदर्शन किया जाता है और वे प्रोत्साहित किये जाते हैं। हम अपने विश्वविद्यालयों में केवल थोड़े ही मुख्य कार्यकर्ता रखते हैं और अपने से इतने गौण कार्यकर्ता संलग्न करना जितने वे कर सकते हैं उनका कर्तव्य है।

---

1 Factor. 2 Primary. 3 Secondary.

१७—संधारण अनुदानों[1] का व्यय

सामान्यतः एक विश्वविद्यालय के विज्ञान के प्रत्येक विभाग) यथा, भौतिकी[2], रसायन, प्राणिकी[3], औद्भिदी[4], इत्यादि) को इसके लिये निर्धारित एक नियत वार्षिक अनुदान रखना चाहिए और इस राशि को वर्ष के भीतर सावधानी एवं मितव्यय से व्यय करने के लिये विभाग के अध्यक्ष का विश्वास किया जाना चाहिए। प्रणाली अविश्वास पर नहीं; परन्तु विश्वास पर आधारित होनी चाहिए। यह देखना विभागों के प्राचार्यों[5] एवं अध्यक्षों का कर्तव्य होना चाहिये कि वे, किन्हीं भी परिस्थितियों में, वर्ष के लिये उनके निर्धारित अनुदान से अधिक नहीं होते।

१८—सामुद्र जैविक-स्थान[6]

सामुद्र जैविक स्थानों की अनुपस्थिति हमारे जैविक-अध्यापन को अत्यन्त अपूर्ण एवं अदक्ष रखती है, और अन्वेषण के लिये हमारे क्षेत्रों को गम्भीरतापूर्वक आयन्त्रित करती है। यदि हम भारत में सुसंघटित सामुद्र स्थान, प्रत्येक एक प्रदाय[7]-विभाग के साथ, रखें, तो उनके व्ययों के एक भाग की पूर्ति जैविक-सामग्री के विक्रय से प्राप्त आय से हो जाएगी, और देश इस सम्बन्ध में आत्मनिर्भर हो जाएगा। हम यह विचार करते हैं कि प्राणिकी में एक बी० एस-सी० प्रावीण्य-स्नातक[8] अथवा एक एम० एस-सी० का प्रशिक्षण तब तक अपूर्ण है, जब तक वह सामुद्र-प्राणिकी में एक छह से आठ सप्ताह की पाठचर्या न रखे, और कि हमारे जैविक-अध्यापन एवं अन्वेषण में इस

---

1 Maintenance Grants. 2 Physics. 3 Zoology.
4 Botany. 5 Principals. 6 Marine Biological Stations.
7 Supply. 8 Honours Graduate.

अपूर्णता को पूर्ण करने के लिये अविलम्ब पग लेना आवश्यक है। अतः हमें सामुद्र-प्राणिकी में प्रति वर्ष १०० विद्यार्थियों के ६ से ८ सप्ताह के प्रशिक्षण के लिये प्रबन्ध करना चाहिए। जैसाकि इस बृहत् संख्या का एक स्थान पर प्रशिक्षण नहीं हो सकता, हम यह विचार करते हैं कि मन्दापम के केन्द्रीय मत्स्यपालन-स्थान[1] तथा चार सामुद्र विश्वविद्यालयों[2] को अन्तः-स्थल विश्वविद्यालयों[3] के प्राणिकी-विद्यार्थियों को सामुद्र-प्राणिकी में पाठचर्याएँ प्रदान करने के कार्य में अंश लेना चाहिये। इसके अतिरिक्त, बम्बई, मद्रास, आन्ध्र एवं कलकत्ता के चार सामुद्र-विश्वविद्यालयों की प्राणिकीय-प्रयोगशालाओं को इस प्रकार सबल किया जाना चाहिए कि (वे) अन्तःस्थल-विश्व-विद्यालयों के प्रावीण्य एवं एम० एस-सी० प्राणिकी-विद्यार्थियों की आवश्यकताओं के लिये भी आहार प्रदान करने के लिये समर्थ हों।

६—व्यावसायिक[4] शिक्षण

१—व्यवसाय का अर्थ

एक जीवन एवं द्रुतता से उद्विकसित होने वाले समाज में "व्यवसाय" एवं "व्यावसायिक" शब्द ठीक ठीक परिभाषा को टालते हैं। यह हो सकता कि "व्यवसाय" एवं "व्यावसायिक" शब्द विशिष्ट जीविकाओं से संबद्ध होना समाप्त कर देंगे, और उनके स्थान में प्रमापों एवं दृष्टिकोणों से संबद्ध होगें।

२—व्यवसाय-सदस्य

कोई भी पुरुष अथवा स्त्री, जिसने पूर्ण एवं अनुशासित

---

1 Central Fisheries Station at Mandapam. 2 Maritime Universities. 3 Inland Universities. 4 Professional.

विद्वत्ता एवं प्रशिक्षण द्वारा कठोर सेवा के लिये तैयारी की है, और जो व्यावसायिक-प्रमापों की भावना में रहती एवं कार्य करती है, भली प्रकार एक व्यवसाय की एक सदस्या के रूप में प्रस्वीकृत की जा सकती है।

३—व्यावसायिक शिक्षण

व्यावसायिक शिक्षण वह विधा[1] है जिसके द्वारा पुरुष एवं स्त्रियाँ व्यावसायिक भावना में कठोर, उत्तरदायी सेवा के लिये तैयार होती हैं। यह शब्द सुसूचित एवं अनुशासित अन्तर्दृष्टि तथा एक उच्च क्रम की दक्षता की अपेक्षा रखने वाले क्षेत्रों के लिये तैयारी तक आयन्त्रित हो सकता है। कम कठोर तैयारी को व्यावसायिक अथवा प्रावैधिक शिक्षण के रूप में अभिहित किया जा सकता है।

४—व्यावसायिक शिक्षण के उत्तरदायित्व

यदि हमारी संकट-ग्रस्त सभ्यता को उत्तरजीवी[2] होना है, तो हमारे प्रखरतम् एवं अत्यन्त अनुशासित मस्तिष्कों को, और एक अत्यन्त पर्याप्त मात्रा तक इसका अर्थ होता है हमारे व्यावसायिक मनुष्य, अपनी नैतिक अर्जाओं[3] एवं बौद्धिक शक्तियों को वर्तमान एवं दीर्घकालीन समस्याओं का समाधान करने में अर्पित करना चाहिये। विश्व के सभ्य मनुष्य इस उलझन में हैं कि बुद्धि एवं शिक्षा शान्ति एवं व्यवस्था क्यों नहीं लाती, लोकतन्त्रात्मक संविधान लोकतन्त्र क्यों नहीं लाते, धर्म भ्रातृत्व क्यों नहीं लाता। एक कारण यह है कि जबकि आधुनिक समाज में व्यावसायिक व्यक्ति एक बड़ी मात्रा में आधारभूत स्थितियों में हैं, व्यावसायिक शिक्षण उन समस्त सिद्धान्तों एवं दर्शन का

---

1 Process.   2 To Survive.   3 Energies.

विकास करने के अपने एक वृहत् उत्तरदायित्व में विफल हुआ है, जिसके द्वारा व्यावसायिक व्यक्तियों को रहना एवं कार्य करना चाहिये।

५—व्यावसायिक शिक्षण के आधार

व्यावसायिक शिक्षण का आधार केवल प्रावैधिक दक्षता[1] ही नहीं, परन्तु सामाजिक उत्तरदायित्व की एक भावना, सामाजिक एवं मानवीय मूल्यों एवं सम्बन्धों का एक अधिमूल्यन, और पूर्वग्रह[2] अथवा अन्ध-वचन[3] के बिना वास्तविकताओं को देखने के लिये अनुशासित शक्ति भी होना चाहिए। व्यवसायों में सामाजिक उत्तरदायित्व की एक वर्धित समझ मुख्यतः परिपक्व व्यावसायिक व्यक्तियों को पुनः शिक्षित करके नहीं लाई जा सकती। समस्त प्रावैधिक शिक्षण को, एक पृथक्कृत अनुशासन के रूप में नहीं, परन्तु इसके समस्त मानवीय एवं सामाजिक व्यवस्थापन[4] में, प्रावैधिक अवबोध[5], दक्षता एवं रीति पारेषित[6] करनी चाहिए।

६—व्यवसायों की आधारभूत एकता

समस्त विद्वत्ता-सम्बन्धी एवं व्यावसायिक विचार में एक आधारभूत एकता होती है। विद्यार्थियों के लिये इस एकता को प्रस्वीकृत करने के लिये अपनी पाठचर्याओं में प्रभावशाली विचार एवं ज्ञान के सामान्य आधारों की सामान्य अभिव्यक्तियों का साधन एवं प्रयोग करने के लिये मस्तिष्क एवं दृष्टिकोण के विचार वाले अध्यापक रखना आवश्यक है। एक विश्वविद्यालय में विभिन्न व्यावसायिक-सम्प्रदाय[7] इन

---

1 Technical Skill. 2 Prejudice. 3 Blind-Commitment.
4 Setting. 5 Technical Understanding. 6 To transmit.
7 Schools.

आधारों का विकास करने के लिये एक साथ भली प्रकार कार्य कर सकते हैं। ऐसे सामान्य समन्वेषण[1] द्वारा, समस्त व्यावसायिक-अध्यापन का डीलडौल एवं गुण बढ़ाया जा सकता है।

७—कृषि

(क) कृषि-नीति एवं कृषि-शिक्षण

कृषि-शिक्षण राष्ट्रिय कृषि-नीति का परावर्तन[2] करने के लिये प्रवृत्त होगा। हमारा देश कृषि में विशिष्ट लोक-उपाय[3] रखता है, परन्तु एक विशिष्ट राष्ट्रिय कृषि-नीति रखने के लिये नहीं कहा जा सकता। जैसे हम एक स्वतन्त्र राष्ट्रिय-जीवन का पद ग्रहण करते हैं, यह आवश्यक है कि एक सामान्य नीति का उन्मज्जन[4] होना चाहिए। वह रीति, जिसके द्वारा एक कृषि-नीति विकसित की जाती है, बड़े राष्ट्रिय महत्व की होती है। आधुनिक कृषि-रीतियाँ एवं नीतियाँ किसी एक देश की उपज्ञा[5] नहीं हैं, परन्तु (वे) अनेक राष्ट्रों के अंशदान का निरूपण करती हैं। उच्च शिक्षण एवं अन्वेषण को भिन्न देशों में कृषि-नीति एवं प्रयोग के साथ परिचित होना चाहिए, और अध्ययन एवं प्रयोग द्वारा यह आविष्कार करने का प्रयत्न करना चाहिए कि उनके कौनसे अंशक[6] भारतीय कृषि के मूल्य में योग करेंगे।

(ख) कृषिनीतिज्ञता[7] : भारतीय कृषि की एक आवश्यकता

भारतीय कृषि के साथ मूलप्राप्त सम्पर्क से इतने अनुविद्ध[8] व्यक्ति होने चाहिएँ कि वे इसे इसकी अत्यन्त निकट रचना एवं तत्वों में पूर्णतः जानते हों। तब इन्हीं मनुष्यों को किसी

---

1 Exploration. 2 To reflect. 3 Eolk-Ways. 4 To emerge. 5 Invention. 6 Elements. 7 Agricultural Statesmanship 8. Saturated.

एक अथवा दो देशों में नहीं, परन्तु उस प्रत्येक देश में, जो कृषिनीति के लिये मुख्य अंशदान कर चुका है, अथवा जो इसकी अपनी एक विशिष्ट प्रक्षेत्र-संस्कृति[1] विकसित कर चुका है, कृषि-नीतियों एवं उनके कार्य के साथ ऐसा परिचित होना चाहिए कि वे, केवल भिन्न देशों की प्रमुख समस्त कृषि-नीतियों की ही नहीं, परन्तु उनके विस्तृत तत्वों की भी, सापेक्ष अर्हाओं[2] एवं समौचित्य[3] का सुस्थिर निर्णय विकसित करें। ऐसे अध्ययनों से, गृह पर अन्वेषण एवं प्रयोग के साथ, क्रमशः एक राष्ट्रिय कृषि-नीति का उन्मज्जन होना चाहिए। इसे भारत की परम्परागत कृषि-दक्षता एवं प्रज्ञा[4] और उन सर्वोत्तम एवं अत्यन्त उपयुक्त कृषि दक्षताओं, रीतियों एवं नीतियों का, जिन्हें विश्व देने के लिये रखता है, एक संश्लेषण[5] होना चाहिए।

(ग) नेतृत्व के लिये प्रशिक्षण-सुविधाएँ

इस आवश्यकता की पूर्ति करने के लिये कृषि-शिक्षण अधियोजित किया जाना चाहिए। आधारभूत[6] ग्रामीय प्रारम्भिक पाठशालाएँ, ग्रामीय माध्यमिक पाठशालाएँ एवं ग्रामीय विश्वविद्यालय ··· घनिष्ठ ग्रामीय परिचय, तथा आधार-भूत प्रशिक्षण की आवश्यक भूमिका भली प्रकार देंगे। उन्हें तथा अन्य विश्वविद्यालयों को कृषि-नीति, कृषि-अर्थशास्त्र, और कृषि-नीतिज्ञता में, जैसाकि आलोकित किया जा चुका है, विशेषज्ञों के प्रशिक्षण के लिये उत्तर-स्नातक सुविधाएँ विकसित करनी चाहिएँ। कम से कम एक ऐसी संस्था रखना वाञ्छनीय

---

1 Farm Culture. 2 Relative Values. 3 Appropriateness.
4 Wisdom. 5 Synthesis. 6 Basic.

प्रतीत होगा जिसमें इन समस्त कृषि-पक्षों में पूर्ण उच्च प्रशिक्षण दिया जाएगा।

(घ) *अन्वेषण के क्षेत्र*

अन्वेषण के क्षेत्रों में से कुछ निम्नलिखित हैं जो शीघ्रावर्तन[1] दे सकते हैं : (१) उत्पादन-उत्तेजक[2], (२) प्रक्षेत्र-उधार[3], (३) अच्छे प्रक्षेत्र-व्यवहारों का प्रसार, (४) धान्य-क्षय[4]।

(ङ) *भारत में कृषि-शिक्षण के उद्देश्य*

भारत में कृषि-शिक्षण-प्रणाली को तीन निश्चित उद्देश्य दृष्टि में रखने होंगे :

(१) उन कृषक-पुत्रों का प्रशिक्षण जो अपने खेतों को जाएँगे और उन पर अधिक दक्षतापूर्वक कार्य करेंगे।

(२) आधुनिक कृषि-अन्वेषण के परिणामों को कृषकों तक ले जाने के महत्वपूर्ण कार्य के लिये व्यक्तियों की एक विभिन्नता का प्रशिक्षण, ऐसे व्यक्तियों का जो भिन्न रूपों में कृषि-शिक्षण, विस्तार एवं प्रदर्शन के कार्य में रत होंगे, और इस प्रयोजन के लिये राज्य द्वारा अथवा वैयक्तिक अभिकरणों[5] द्वारा लगाये जा सकते हैं।

(३) कृषि एवं पशु-पालन[6] की समस्याओं से संबद्ध, अन्वेषण, विकासात्मक एवं आधारभूत, के कार्य को चालू रखने के महत्वपूर्ण कार्य के लिये व्यक्तियों का प्रशिक्षण।

---

1 Quick Returns. 2 Incentive to Produce. 4 Farm Credit 4 Grain Spoilage. 5 Agencies. 6 Animal Husbandry.

(च) *क्षेत्र-सहायकों[1] का प्रशिक्षण*

क्षेत्र-सहायकों का प्रशिक्षण आदर्श क्षेत्रों पर प्रक्षेत्र-संस्थाओं[2] द्वारा लिया जा सकता है, और (वे) संभवतः ग्रामीय उच्च पाठशालाओं से संबद्ध (हो सकती हैं)। उनकी एक एक वर्ष की पाठचर्या के लिये न्यूनतम अर्हता के रूप में पूरित आधार-भूत शिक्षण[3] आवश्यक होना चाहिए।

(छ) *अस्नातक-सहायकों[4] का प्रशिक्षण*

अस्नातक-सहायक कृषि-पाठशालाओं में, और निवास ग्रामीय उच्च पाठशालाओं (कृषि उच्च विद्यालय) में प्रशिक्षित होने चाहिएँ जो उसकी युद्धोत्तर-शिक्षा-विकास की योजना में शिक्षा के केन्द्रीय मन्त्रणा-मण्डल के प्रस्तावों के अनुसार स्थापित की जा सकती हैं। उनमें बारह वर्ष का एक समस्त शिक्षण संनिहित होना चाहिए जैसा कि हमने समस्त उच्च माध्यमिक पाठशालाओं के लिये अभिस्ताव किया है।

(ज) *स्नातक-सहायकों[5] का प्रशिक्षण*

स्नातक-सहायकों को अपना शिक्षण एवं प्रशिक्षण कृषि महाविद्यालयों और ग्रामीय एवं अन्य विश्वविद्यालयों में प्राप्त करना चाहिए। पाठचर्या, बारह वर्ष के शिक्षण की पूर्ति के पश्चात्, कृषि की स्थिति में तीन वर्ष, और पशु-पालन की स्थिति में चार वर्ष अवधि की होनी चाहिए, और बी० एस-सी० (कृषि)—उपाधि की ओर अग्रसर करना चाहिए।

(झ) *अधिस्नातक[6] एवं महाविज्ञ[7]-उपाधियाँ*

बी० कृषि के पश्चात् इन महाविद्यालयों एवं

---

1 Field Assistants. 2 Farm Institutes. 3 Completed Basic Education. 4 Non-graduate Assistants. 5 Graduate Assistants. 6 Master's. 7 Doctor's.

विश्वविद्यालयों में अधिस्नातक-उपाधि, एवं महाविज्ञ उपाधि जो एम० कृषि के कम से दो वर्ष पश्चात् कार्य के किसी विशेष क्षेत्र में अन्वेषण पर दी जानी चाहिए, के लिये अग्रसर करती हुई एक दो वर्ष की पाठचर्या की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(ञ) *प्रथम उपाधि-पाठचर्या के उद्देश्य*

हमारे मत में, कृषि में प्रथम उपाधि-पाठचर्या का उद्देश्य छात्रों को आधार के रूप में कृषि के साथ एक विस्तृत सामान्य शिक्षण देना, उन्हें वास्तविक प्रक्षेत्र-प्रबन्ध के लिये प्रशिक्षित करना, उन्हें ग्रामीय नेतृत्व के लिये तैयार करना और अन्वेषण अथवा अध्यापन के लिये अपेक्षित पृष्ठभूमि एवं आधार प्रदान करना होना चाहिए।

(ट) *पाठ्यक्रम*

पाठ्यक्रम इन उद्देश्यों को दृष्टि में रख कर बनाया जाना चाहिए और इसे अपने समुचित स्थान में वाञ्छनीय सामग्री देने के लिये बहीरेखित[1] एवं विन्यस्त[2] पाठचर्याओं में संव्यवहृत[3] होना चाहिए। तब इसमें चार मुख्य तत्वों का समावेश होगा :

(१ सामान्य शिक्षण।

(२) आधारभूत विज्ञान।

(३) कृषि एवं पशु-पालन।

(४) प्रयोग कार्य।

(ठ) *प्रयोग कार्य*

कृषि प्रशिक्षण के प्रयोग को कभी गौण होने के लिये अनुमत नहीं किया जाना चाहिए। इस प्रशिक्षण को वास्तविक

---

1 Outlined. 2 Arranged. 3 Dealt with.

बनाने के लिये प्रयोगशाला-कार्य पर्याप्त नहीं है। क्षेत्र-फेरियाँ[1] एवं यात्रा-पाठचर्याएँ प्रबन्धित होनी चाहिएँ जिससे विद्यार्थी देश भर में विभिन्न वाणिज्य-उपक्रमों[2] को देखने के लिये अवसर पा सकें।

(ड) कृषि महाविद्यालय के तीन कार्य

हमारे मत में, कृषि के एक सर्वाङ्ग-पूर्ण महाविद्यालय को केवल शिक्षण एवं व्यावहारिक प्रशिक्षण ही नहीं, परन्तु अन्वेषण एवं विस्तार-कार्य का भी प्रबन्ध करने के योग्य होना होना चाहिए। उसे आस पास के ग्रामक्षेत्र के प्रगतिशील कृषि-व्यवहार में अपने को नेता के रूप में स्थापित करने के लिये प्रयास करना चाहिए। इसे अपने को आसन्न पड़ोस की समस्याओं में प्रयोग करना चाहिए और, इसके अपने विस्तार-कार्य द्वारा, अपने अनुसंधान के परिणामों को चारों ओर कृषक-वर्ग तक ले जाने के लिये यत्न करना चाहिए।

(ढ) शासकीय एवं स्थानीय प्ररुचि[3]

शासन को निधियों से सहायता देनी चाहिए और सामान्य अनुशासन एवं अधिदर्शन[4] प्रदान करना चाहिए, जैसे विश्व-विद्यालय अनुदान आयोग द्वारा। अन्यथा कार्यवाही की स्वतन्त्रता तथा स्थानीय प्ररुचि का आदर होना चाहिए। अन्त में शासकीय प्ररुचि एवं वैयक्तिक समूह-प्ररुचि को अपने बीच में अनभिधृत क्षेत्र[5] नहीं छोड़ना चाहिए। प्रारम्भिक विकास के लिये समय के अतिरिक्त, एक जो कुछ अनकिया छोड़ता है वह दूसरे द्वारा किया जाना चाहिए।

---

1 Field Trips. 2 Commercial Enterprises. 3 Initiative.
4 Oversight. 5 Unoccupied Area.

(ण) कृषि से संबद्ध अन्य कार्यों के लिये शिक्षण

धान्य को बढ़ाना कृषि का केवल एक भाग है। वे संविष्टित[1], नौभृत[2] एवं विक्रीत[3] होने चाहिएँ। प्रक्षेत्र से क्रियाओं की एक विस्तृत अभिसीमा[4] का विकिरण[5] होता है। कृषि शिक्षण की चर्चा में यह माना जाना चाहिए कि ये संबद्ध क्रियाएँ अन्तर्गत होती हैं। आधारभूत पाठशाला से उत्तर-विश्वविद्यालय-अन्वेषण तक, संवेष्टन, विक्रय, परिवहण, श्रेणी-भाजन और वित्तप्रबन्धन की समस्याएँ अन्तर्निहित होनी चाहिएँ। इस प्रकार, कृषि शिक्षण एवं व्यापार शिक्षण में बहुत सामान्य होता है।

(त) मत्स्यग्रहण[6]

सागरवर्णकों[7] द्वारा यह सुझाया गया है कि भारत के लिये अपनी अन्न-न्यूनता की पूर्ति के लिये संभवतः क्षिप्रतम उपाय सागर का विदोहन[8] करना होगा। इस संभाव्यता पर, और सागर-संसाधनों के समन्वेषण के लिये एक विस्तृत अन्वेषण-कार्यक्रम की प्रज्ञा[9] पर सावधानी से विचार किया जाना चाहिए। समुद्रतट के चारों ओर मत्स्य-जातियों में ग्रामीय आधारभूत शिक्षण मत्स्यग्रहण को शिक्षण में समन्वय-मूल[10] के रूप में रख सकता है, जैसे कुछ अन्य आधारभूत पाठ-शालाओं ने कताई एवं बुनाई का प्रयोग किया है। माध्यमिक विद्यालय तत्सम क्षेत्र में विभिन्न क्रियाएँ रखेंगे। एक ग्रामीय विश्वविद्यालय सागर एवं मत्स्यग्रहण के हितों में विशेषीकरण कर सकता है।

---

1 Packed. 2 Shipped. 3 Sold. 4 Range.
5 Radiates. 6 Fisheries. 7 Oceanographers.
8 To exploit. 9 Wisdom. 10 Co-ordinating Theme

(थ) शिक्षण द्वारा कृषि सेवाओं का समन्वय

अन्यथा इन विभिन्न सेवाओं के बीच समन्वय होना चाहिए नहीं तो ग्रामवासी स्पर्धी एवं अतिच्छादी[1] अभिकरणों द्वारा संभ्रमित हो जाएगा। संभवतः इन समस्त उपाधिकारियों[2] एवं क्षेत्र-कर्मचारियों के कार्य एवं प्रशासन को एकीकृत एवं समरूप करने के लिये शिक्षा-मन्त्रालय को समन्वय-अभिकरण होना चाहिए।

८—वाणिज्य

(क) वाणिज्य-पाठचर्याओं का उद्देश्य

इन पाठचर्याओं का उद्देश्य स्पष्ट नहीं है। क्या विश्वविद्यालय लेखा-कर्म[3] अथवा अधिकोषण[4] अथवा आगोप[5] के समान किसी विशेष व्यवसाय के लिये एक प्रशिक्षण देता है, अथवा क्या यह व्यापार-संघटन के सामान्य सिद्धान्तों में प्रवीण स्नातक प्रदान कर रहा है, जो वाणिज्य-संस्थाओं में साचिविक अथवा कनिष्ठ[6] प्रशासनात्मक पदों में अपने स्थान ले सकते हैं? यदि यह पिछला है तो हमें यह देखना है कि वाणिज्य-स्नातक उस कला-स्नातक से किन दूरियों में अधिक अच्छा होता है, जो उस कार्य के लिये जिसे करने के लिये वह आहूत होगा, अर्थशास्त्र, सांख्यिकी[7] और संबद्ध विषयों के साथ एक उपाधि ले चुका है। इन विश्वविद्यालय-स्नातकों की योग्यता पर व्यापार में अन्वायोजन[8] करने के लिये व्यावहारिक व्यापारियों का मत अनुकूल नहीं है। वे विश्वविद्यालयों में प्रशिक्षण की लगभग सर्वथा सैद्धान्तिक के रूप में

---

1 Overlapping. 2 Officials. 3 Accountancy. 4 Banking.
5 Insurance. 6 Junior. 7 Statistics. 8 To Fit.

समालोचना करते हैं और उन्हें प्रतीत होता है कि उन्हें व्यापार के मार्गों में वाणिज्य-स्नातकों को ठीक उसी प्रकार से प्रशिक्षित करना होता है जैसे उन्हें एक कला अथवा एक विज्ञान स्नातक को करना होता है; उनमें से कुछ तो यह भी देखते हैं कि उसकी उत्तम बौद्धिक सज्जा[1] के कारण पिछले को प्रशिक्षित करना प्रायः अधिक सुगम होता है। ये समालोचनाएँ एक मनुष्य को यह जाँच करने के लिये अग्रसर करती हैं कि क्या हमें वाणिज्य-विषयों में सैद्धान्तिक प्रशिक्षण को एक व्यापार-संस्था में व्यावहारिक प्रशिक्षण के साथ अनुपूरित करने के लिये नहीं चाहना चाहिए।

(ख) व्यावहारिक कार्य

इस स्थिति का उपचार करने के लिये एक उपाय बी० कॉम० — उपाधि को एक अधिकोषण[2]-संस्था में अथवा एक आगोप[3]-कार्यालय में एक लेखापाल[4] के अथवा एक ज्येष्ठ सहायक के व्यवसाय के लिये एक प्रारम्भिक अर्हता के रूप में लेना है। वाणिज्य में अपनी उपाधि लेने के पश्चात् विद्यार्थी को व्यावहारिक व्यापार के उपायों को सीखने के लिये या तो एक लेखापाल-सार्थ[5] में अथवा एक अधिकोषण-संस्था में अथवा एक आगोप-समवाय[6] के साथ एक शिशिक्षु[7] के रूप में बांधा जाना चाहिए। यहाँ उसे वैसा ही एक विद्यार्थी होना होगा जैसा वह विश्वविद्यालय में था और उसे इस प्रशिक्षण के लाभ प्राप्त करने के लिये एक पर्याप्त भारी शुल्क देना पड़ सकता है। इस प्रशिक्षण की पूर्ति पर वह व्यावसायिक-कार्य के लिये

---

1 Equipment. 2 Banking. 3 Insurance. 4 Accountant.
5 Firm. 6 Company. 7 Apprentice.

पर्याप्त रूप से सुसज्ज होगा। यदि हमें इस प्रकार के प्रशिक्षण की पर्याप्त सुविधाएँ देनी हैं तो विश्वविद्यालयों एवं वाणिज्य-संस्थाओं के बीच एक निकट सहयोग आवश्यक है। औपचारिक शिक्षण को व्यावहारिक अनुभव के साथ एक करने में एकान्तर[1] कार्य एवं अध्ययन का एक कार्यक्रम, जैसा उपरि-वर्णित है, विशेष रूप से प्रभावशाली होगा।

(ग) *उत्तर-स्नातक-कार्य*

वाणिज्य में अधिस्नातक-उपाधि तक अग्रसर होने के लिये बहुत कम विद्यार्थियों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। तथापि, यह स्पष्ट है कि यदि वाणिज्य-महाविद्यालयों को व्यावसायिक प्रशिक्षण के रूप में माना जाना है, तो वे व्यावहारिक कार्य से वियुत नहीं हो सकते।

६—शिक्षा

(क) *प्रशिक्षण का महत्व*

इस देश में जनता यह प्रस्वीकार करने में मन्द रही है कि शिक्षा एक व्यवसाय है जिसके लिये गहन सज्जा आवश्यक है जैसाकि किसी भी अन्य व्यवसाय में वह (आवश्यक) है। शिक्षा विश्वविद्यालय-स्तर पर एक अध्ययन के रूप में इस दूरी में विशिष्ट होती है, कि एक उच्च स्तर के लिये इसका जिस किसी दिशा में अध्ययन किया जाता है, अध्ययन शिक्षा के अतिरिक्त कुछ अन्य होने के लिये प्रवृत्त होता है, यथा यह दर्शन अथवा मनोविज्ञान अथवा इतिहास अथवा सामाजिकी[2] के एक अध्ययन में मुड़ जाता है। जबकि यह तथ्य पाण्डित्य

---

1 Alternating. 2 Sociology.

रूप मस्तिष्क[1] के लिये यह अनंगीकर करना सुगम बना देता है कि शिक्षा एक वास्तविक विषय है, यह सत्य रहता है कि शिक्षा परिपालन[2]-अध्यापकों के लिये आवश्यक विभिन्न अध्ययनों एवं दक्षताओं के लिये एक आवश्यक नाभि-बिन्दु[3] होती है। यह भी सत्य एवं महत्वपूर्ण है, परन्तु भारतीय प्रशिक्षण विभागों एवं प्रशिक्षण महाविद्यालयों में सदैव किसी भी प्रकार से पकड़ा गया नहीं, कि उन्हें, जो प्रशिक्षण-अध्यापकों के लिये उत्तरदायी हैं, स्वयं समस्त पाठचर्या पर इस नाभि-बिन्दु से दृष्टिपात करना चाहिए, अर्थात्, राष्ट्र के जीवन में पाठशाला का स्थान और पाठशाला में बच्चों का ठीक प्रशिक्षण। एक विश्व-विद्यालय-अध्ययन के रूप में शिक्षा की द्वितीय विशेषता, यद्यपि इसमें यह अनेक अन्य व्यावसायिक-पाठचर्याओं के साथ अंश लेती है, यह है कि यह संभवतः अकेली सैद्धान्तिक-शिक्षण-युक्त नहीं हो सकती। सिद्धान्त एवं अभ्यास[4] को साथ साथ जाना चाहिए और प्रत्येक को दूसरे का पोषण करना चाहिए एवं उस पर प्रकाश फेंकना चाहिए। आदर्श प्रशिक्षण-पाठचर्या में विद्यार्थी के परिणाम का निर्धारण करने में सिद्धान्त एवं अभ्यास को समय की समान राशियों एवं समान भार के समान कुछ दिया जाना चाहिए।

(ख) पाठशाला-अभ्यास

प्रवर्तमान पाठचर्याओं की हमारी मुख्य समालोचना यह है कि पाठशाला-अभ्यास को अत्यन्त कम समय दिया जाता है, विद्यार्थी के पालन[5] का निर्धारण करने में अभ्यास को अत्यन्त कम भार दिया जाता है, और पाठशाला-अभ्यास की दशाएँ

1 Pedanrically Minded. 2 Tending. 3 Focal Point.
4 Practice. 5 Performance.

प्रायः असन्तोषजनक होती हैं, कभी बिल्कुल अति असन्तोष-जनक। कुछ स्थानों में एक विद्यार्थी से उसकी समस्त पाठचर्या में केवल पाँच पाठ देने के लिये अपेक्षा की जाती है! हमारा विचार है कि एक वर्ष की पाठचर्या में विद्यार्थी द्वारा, पर्यवेक्षित[1] पाठशाला-अभ्यास में, कम से कम बारह सप्ताह व्यय किये जाने चाहिएँ। इससे भी आगे। विद्यार्थी केवल तभी अपने पाँव पा सकता है जब उसे, समय-समय पर, उसके अपने असाहाय्यित प्रयत्नों पर छोड़ दिया जाता है। हमें बतलाया गया था कि पाठशाला-अभ्यास की राशि में वृद्धि करना कठिन होगा, क्योंकि इसका अर्थ अधिक पाठशालाओं का प्रयोग करना होगा, और कि पाठशालाएँ अभ्यास के लिये प्रयुक्त किया जाना नहीं चाहतीं। इसने हमें विश्वास नहीं दिलाया। प्रथमतः, एक प्रशिक्षण-विभाग को इससे अधिक विद्यार्थियों की संख्या का प्रवेश करने के लिये अधिकार नहीं है जितनी को समुचित पाठशाला-अभ्यास की सुविधाएें दी जा सकती हैं। द्वितीयतः, यह थोड़ा भी एक कठिन विषय नहीं है, और कुछ भारतीय प्रशिक्षण विभाग पाठशालाओं से यह अनुभव करना पूर्णतः प्राप्त कर चुके हैं कि अभ्यास के लिये आने वाले विद्यार्थी--वस्तुतः प्रचुर संख्याओं में नहीं—एक वास्तविक परिसंपत्[2] होते हैं।

(ग) कर्मचारिवृन्द

हमारी द्वितीय समालोचना यह है। भारत में एक पाठशाला-अध्यापक का जीवन निश्चित रूप से सुशोधित[3] नहीं है। उन्हें अनेक वर्ष के पाठशाला-अनुभव की आवश्यकता नहीं

1 Supervised. 2 Asset. 3 Well-Paid.

होती, और एक प्रशिक्षण-विभाग के कर्मचारिवृन्द में कुछेक ऐसे विशेषज्ञों के लिये स्थान होता है जो पाठशाला-अध्यापक नहीं रहे। परन्तु बलपूर्वक शिक्षा एवं रीतियों के व्याख्याताओं सहित कर्मचारिवृन्द के अधिकांश को पाठशाला-अध्यापन के प्रत्यक्ष अनुभव से बोलने के योग्य होना चाहिए, यदि उन्हें अपने विद्यार्थियों का आदर प्राप्त करना है, और उन्हें यह विश्वास दिलाने का कोई अवसर रखना है कि वे एक अभिजात जीवन में प्रवेश कर रहे हैं। समस्त प्रशिक्षण-विभागों एवं प्रशिक्षण-महाविद्यालयों के लिये मान्यता देने की यह एक शर्त होनी चाहिए कि कर्मचारिवृन्द के कम से कम एक नामांकित अनुपात को पाठशाला-अध्यापन का अनुभव रखना चाहिए; और वह नामांकित अनुपात उच्च होना चाहिए, कम से कम ५० प्रति शत।

(घ) *सिद्धान्त-पाठचर्याएँ*

यदि इसका अपने विद्यार्थियों के लिये कुछ भी वास्तविक अर्थ होना है तो शिक्षा के सिद्धान्त को लचीला एवं स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूलन के योग्य होना चाहिए। यदि यह व्याख्यान-आलोकों[1] एवं पाठ्य-पुस्तकों से हृदय द्वारा सीखी जाने के लिये केवल कुछ अधिक वस्तु ही है, तो सम्पूर्ण पाठचर्या हित की अपेक्षा विद्यार्थी का अहित ही करेगी। आजकल यह एक आधारभूत सिद्धान्त है कि एक वास्तविक शिक्षा अवाप्त[2] एवं कण्ठगत[3] होने के लिये पाठों का उतना एक विषय नहीं है जितना जीवित होने के लिये जीवन और अंशित[5] होने के लिये सप्रयोजन क्रियाओं का। यदि यह एक

1 Lecture-Notes. 2 Learned. 3. Memorised.

पाठशाला के लिये सत्य है तो इसे एक विश्वविद्यालय, और उस प्रशिक्षण-पाठचर्या के लिये, जो एक विश्वविद्यालय देता है, समान रूप से सत्य होना चाहिए।

(ङ) *अभिस्नातक उपाधि*[1]

भारत में आजकल शिक्षा में अधिक क्रमबद्ध अन्वेषण नहीं हो रहा है। इसके अतिरिक्त कि शैक्षणिक-अन्वेषण की प्रविधि[2] में आरम्भकर्ताओं का मार्गप्रदर्शन करने के इस कार्य को रखना प्रत्येक विश्वविद्यालय-प्रशिक्षण-विभाग के लिये एक अच्छी वस्तु है, भले ही परिणाम लघु एवं टुकड़ेमय[3] हों। यह अत्यन्त संदिग्ध है कि एक स्नातक, जो अपनी उपाधि से सीधा अपनी प्रारम्भिक प्रशिक्षण-पाठचर्या तक और वहाँ से, पाठशाला-अनुभव के बिना, सीधा एम० एड० तक जाता है, ठीक-ठीक अर्थ में शिक्षा के क्षेत्र में मूल्य का मौलिक कार्य उत्पन्न कर सकता है, यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि वह प्रविधियों, सांख्यिकीय एवं अन्य, को सीख सकता है जो एक व्यक्ति के रूप में अथवा एक अन्वेषण-समूह के एक अधीन-सदस्य के रूप में उसके लिये उपयोगी होंगी। तथापि, सामान्यतः, एक विद्यार्थी के लिये उसके उस विषय में अधिस्नातक-उपाधि लेने के लिये लौटने से पूर्व कुछेक वर्ष के लिये अध्यापन द्वारा शिक्षा के अभ्यास के बारे में अधिक सीखना अधिक अच्छा होगा।

(च) *मौलिक कार्य*

शिक्षा में प्राध्यापकों एवं व्याख्याताओं द्वारा मौलिक कार्य भी-कभी उच्च गुण का होता है, परन्तु यह, अब तक,

---

1 Master's Degree. 2 Technique. 3 Scrappy.

पृथक्करण एवं अन्तर्विश्वविद्यालय-अधियोजना का अभाव सहता प्रतीत होता है। आजकल भारतीय शिक्षा के संमुख होने वाली समस्याएं अपनी विशुद्ध श्रेणी में इतनी अति विशाल, और अपनी प्रकृति में इतनी जटिल हैं कि तुलना में अत्यन्त प्रतिभाशाली एवं चिरलग्न[1] व्यक्ति के प्रयत्न भी बौने-से प्रतीत होते हैं। इन परिस्थितियों में केन्द्रीय संस्था[2] के ऊपर अत्यधिक उत्तरदायित्व होता है, और इसकी प्रगति को भारत के प्रत्येक शुभचिन्तक द्वारा तीक्ष्ण रूप से देखा जाना चाहिए और तीक्ष्ण रूप से समर्थित किया जाना चाहिए। एक राष्ट्र व्यापक श्रेणी पर एवं भिन्न सामाजिक स्तरों पर प्रयुक्त होने के लिये और भिन्न भौतिक पर्यावरणों के बीच उचित होने के लिये पर्याप्त लचीली क्षमता एवं स्वभाव की परीक्षाएँ बनाने के लिये पर्याप्त आवश्यक प्रयत्न ही एक अत्यन्त कठिन एवं लम्बा कार्य होगा, जो अभी तक प्रारम्भ नहीं कियो गया है। केन्द्रीय संस्था को केवल अपने कर्मचारियों अथवा दिल्ली के अपने विश्वविद्यालय की ही नहीं, परन्तु भारत भर में शिक्षा के समस्त भावी विद्यार्थियों एवं अध्यापकों की सेवाएँ प्राप्त करनी चाहिएँ। हमें भारत के संमुख इसकी अपेक्षा अविलम्बनीय (अन्य) कार्य प्रतीत नहीं होता।

१०—आभियान्त्रिकी[3] एवं प्रौद्योगिकी[4]

(क) *आभियान्त्रिक-शिक्षण का आरम्भ : आभियान्त्रिकी के तीन आधारभूत प्रकार : (१) जानपद[5] (२) यान्त्रिक[6] (३) वैद्युत[7]* आभियान्त्रिक-शिक्षण, व्यावसायिक प्रशिक्षण के अन्य

1 Persistent. 2 The Central Institute. 3 Engineering.
4 Technology. 5 Civil. 6 Mechanical. 7 Electrical.

प्रकारों के विपरीत, एक लम्बा इतिहास नहीं रखता। यद्यपि प्राचीन एवं मध्ययुग के मनुष्य, वृहत् ईंटें एवं प्रस्तर-गृह, दुर्ग, नगर एवं विशाल मन्दिर बना चुके थे, लम्बे राजपथों एवं जल-सेतुओं[1] का निर्माण कर चुके थे, नहरों को खोद चुके थे, जो, जिसे, आजकल जानपद एवं आम्भस[2] आभियान्त्रिकी पुकारा जाता है उसके और भवन-सामग्री के गुणों के पर्याप्त ज्ञान का प्रदर्शन करती हैं, इस ज्ञान को अनुभवतः प्राप्त किया गया होगा। यान्त्रिक आभियान्त्रिकी के आरम्भ, उपकरणों के निर्माण एवं प्रयोग, परिवहण के साधनों, वर्तनी[3] के समान सरल यान्त्र, और अपराध एवं प्रतिरक्षा के शस्त्रों में प्राप्त होने को हैं। परन्तु (उस समय) शिशिक्षुओं[4] को यान्त्रों के प्रयोग अथवा विधाओं के ज्ञान के अध्यापन के लिये संघटित पाठशालाएँ न थीं; ज्ञान शिल्पकारों तथा प्रशिल्पियों[5] की पीढ़ी से पीढ़ी तक, मुख-शब्द द्वारा जाता था, और इस प्रकार जातियों एवं श्रेणियों तक सीमित था। औद्योगिक युग के आगमन के साथ, जो १७८० के लगभग जेम्स वॉट द्वारा बाष्प-गन्त्र[6] के आविष्कार, और बाष्प-गन्त्र की उपज्ञा[7] द्वारा सम्भव की हुई शक्ति की वृहत् राशियों के जनन एवं हस्तन[8] करने की योग्यता द्वारा प्रस्तावित[9] हुआ था, मनुष्य मानवीय श्रम एवं हस्त-साधनों पर पराधीनता से वृहत् एवं जटिल यान्त्र तक गये; पदार्थों का उत्पादन कुटीर-निर्माण-शालाओं से निर्माणियों[10] तक गया। बैलगाड़ियों, अश्व-चालित-वाहनों[11], और वायु अथवा मनुष्य-चालित नौकाओं

---

1 Aqueducts. 2 Hydraulic. 3 Lathes. 4 Apprentices. 5 Artificers. 6 Steam Engine. 7 Invention. 8 To handle. 9 Ushered in. 10 Factories. 11 Carriages.

ने संयान-पथों[1] एवं वाष्पपोतों को मार्ग दे दिया। इस समस्त (परिवर्तन) ने वृहत् यान्त्रों, गन्त्रों, जलयानों, तथा वाहनों का निर्माण आवश्यक बना दिया, और औद्योगिक-वित्तप्रबन्धन एवं श्रम की समस्याओं को चढ़ाव दिया।

शिल्पकारों एवं कारीगरों के सामान्य शिक्षण के लिये, और शिशिक्षुओं को यान्त्रों के प्रयोग का अध्यापन करने के लिये पाठशालाएँ १७९० के लगभग जोन एण्डरसन द्वारा ग्लास्गो में, और १८२३ में डॉ० बर्कबैक द्वारा लण्डन में स्थापित की गई थीं। अन्त में एण्डरसन विश्वविद्यालय "रॉयल टैकनीकल कॉलिज, ग्लास्गो" होगया। विश्वविद्यालयों में, विश्वविद्यालय शिक्षण की श्रेणी तक आभियान्त्रिकी को स्वीकार करने में कैम्ब्रिज ने नेतृत्व लिया। उन्नीसवीं शताब्दी ने प्रतिष्ठित जानपद एवं यान्त्रिक के साथ आभियान्त्रिकी एवं प्रौद्योगिकी की अनेक शाखाओं के जन्म का साक्ष्य दिया है। वैद्युत आभियान्त्रिकी, जो अब इतने, अथवा जानपद अथवा यान्त्रिक की प्राचीन शाखाओं की अपेक्षा अधिक व्यावसायिकों एवं विद्यार्थियों पर अधिकार सिद्ध करती है, वास्तव में १८८२ से आरम्भ हुई है, जब एडिसन ने निर्माणियों को वैद्युत-शक्ति और एक नगर के निवासियों को गृह-प्रयोग के लिये प्रकाश एवं शक्ति का प्रदाय करने के लिये प्रथम केन्द्रीय विद्युत-शक्ति-गृह बनाया। विद्युत-शक्ति-गृहों की संख्या के गुणन[2] के साथ, और शक्ति के लम्बी दूरी के पारेषण[3] के साथ, वैद्युत-यान्त्र के प्रयोग में प्रशिक्षित एवं विज्ञान के आधारों से परिचित मनुष्यों की माँग ने बढ़ना आरम्भ किया; और विश्वविद्यालयों

1 Railroads 2 Multiplication. 3 Transmission.

एवं प्रावैधिक महाविद्यालयों ने वैद्युत आभियान्त्रिकी में पाठचर्याएँ प्रस्तावित करना आरम्भ किया। परन्तु १८८० से पूर्व वैद्युत आभियान्त्रिकी पाठचर्याएँ प्रस्तावित करने के लिये केवल एक अथवा दो महाविद्यालय जाने जाते हैं।

(ख) भारत में आभियान्त्रिक एवं प्रौद्योगिक शिक्षण

प्रावैधिक प्रशिक्षण के केन्द्रों के निर्माण के लिये प्रेरणा भारत के ब्रिटिश शासकों से मिली, और यह सार्वजनिक भवनों, सड़कों, नहरों, तथा पत्तनों[1] के निर्माण एवं संधारण के लिये, और सेना, नौसेना, तथा भूमिति-विभाग[2] के लिये अपेक्षित उपकरणों, एवं सावित्रों[3] के प्रयोग के लिये कारीगरों एवं शिल्पकारों के प्रशिक्षण के लिये आवश्यकता से जागृत हुई। जबकि यह कहा जाता है कि कलकत्ता और बम्बई में १८२५ में ऐसी पाठशालाएँ अस्तित्व में थीं, प्रथम प्राधिकृत लेखा[4], जो हम रखते हैं, १८४२ में गिण्डी, मद्रास में स्थापित, वहाँ "गन कैरिज फैक्टरी" से संलग्न, एक औद्योगिक पाठशाला का है। अधिदर्शकों[5] के प्रशिक्षण के लिये एक पाठशाला १८५४ में पूना में अस्तित्व में होने के लिये जानी जाती थी। जानपद अभियन्ताओं के प्रशिक्षण के लिये प्रथम आभियान्त्रिक महाविद्यालय १८४७ में उत्तर प्रदेश में रुड़की में स्थापित किया गया था, जो वहाँ उन बृहत् कर्मशालाओं एवं सार्वजनिक भवनों का प्रयोग करता था जो उच्च गंगा नहर के लिये खड़े किये गये थे। शासन नीति के अनुसरण में, तीनों महाप्रान्तों[6] में १८५६ के लगभग तीन आभियान्त्रिक महाविद्यालय खोले

---

1 Ports. 2 Survey Department. 3 Apparatus.
4 Authentic Account. 5 Overseers. 6 Presidencies.

गये थे। यान्त्रिक एवं वैद्युत आभियान्त्रिकी तथा धातुकार्मिकी[1] में प्रथम उपाधि-वर्ग आरम्भ करने का श्रेयस् बनारस के विश्वविद्यालय को है, (जिसके लिये) इसके महान् संस्थापक पं० मदन मोहन मालवीय (१९१७) की दूरदर्शिता को धन्यवाद।

(ग) अभियन्तों के लिये प्रशिक्षण के प्रकार : अभियन्तों का वर्गीकरण

ब्रिटिश-समिति ने निम्नलिखित वर्गीकरण स्थापित किया था:—

(१) ज्येष्ठ प्रशासक एवं निष्पादक[2]।

(२) अभियन्ता-वैज्ञानिक, रूपांकन[3] एवं विकास-अभियन्ता।

(३) उत्पादन, चालन, संधारण एवं विक्रय के लिये अपेक्षित अभियन्ता।

(४) प्रावैधिक-सहायक[4] एवं रूपांककार-मानचित्रकार[5]।

(५) मानचित्रकार, कार्यदेशक[6] एवं शिल्पकार।

(घ) श्रेणी (५) मानचित्रकार, कार्यदेशक एवं शिल्पकार

यह वर्षों रूप से स्पष्ट हो रहा है कि इन सेवाओं के लिये प्रशिक्षण की निश्चित योजना वाञ्छनीय है। क्योंकि हमारे देश में ऐसे प्रशिक्षण के लिये अत्यन्त अपर्याप्त प्रबन्ध है, बालकों का यह प्रकार अप्रसन्न परिणामों के साथ साहित्यिक पाठचर्याओं में रहता है। जब यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका सर्वोत्तम वैयक्तिक विकास एवं उपयोगी सेवा प्रावैधिक रेखाओं में होगी तब ऐसे विद्यार्थियों के शिक्षा-कार्यक्रमों में प्रावैधिक शिक्षण के उपयुक्त अंशक प्रस्तावित किये जाने चाहिएँ। हमें

1 Metallurgy. 2 Executives. 3 Design. 4 Technical Assistants. 5 Designer Draftsmen. Foremen.

या तो उनके नियमित पाठशाला शिक्षण में व्यावसायिक पाठचर्याएँ प्रस्तावित करनी चाहिएँ अथवा पृथक् व्यावसायिक अथवा प्रावैधिक विद्यालय स्थापित करने चाहिएँ।

(ङ) संघटन-अध्यक्ष[1]

एक ऐसे संघटन के आदर्श अध्यक्ष को एक निष्पादक[2] होना चाहिए जो एक अभियन्ता[3], वैज्ञानिक अथवा प्रविधिज्ञ[4] भी हो और जो विशेष उपक्रम के विज्ञान तथा प्रविधि का, दोनों सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्ष पर, एक गहन ज्ञान रखता हो; और इसके अतिरिक्त वित्तव्यवस्था एवं व्यापार-प्रशासन का ज्ञान रखता हो, और मनुष्यों के वृहत् निकायों का प्रबन्ध कर सकता हो। व्यावसायिक अभियन्तों अथवा वैज्ञानिकों में ऐसे संयोजन[5] दुर्लभ होते हैं, और अतः ऐसे पद प्रायः विधिविज्ञों[6], वित्त-प्रबन्धकों, और राजनैतिक नेताओं द्वारा भी भरे जाते थे। यद्यपि इनमें से कुछ प्रशासकों ने अपने कृत्यों[7] को अच्छा किया है, अनेक असफलताएँ अथवा अति-कुप्रबन्ध की अनेक घटनाएँ (भी) हुई हैं। यह अधिमान देने योग्य है कि अभियन्तों एवं वैज्ञानिकों को ऐसे कृत्यों का का प्रभारी किया जाए।

(च) सामान्य शिक्षण

सामान्यतः उच्चतम श्रेणियों के अभियन्ता भी सामान्य शिक्षण की अल्प पृष्ठभूमि रखते हैं। सामान्य शिक्षण की पाठचर्याएँ अन्तर्गत करके, और द्वितीयतः ऐसी व्यावहारिक पाठचर्याओं के लिये स्थान बना कर यथा व्यापार-प्रशासन, श्रमिक-सम्बन्ध, एवं औद्योगिक वित्त-प्रबन्ध, आभियान्त्रिक

1 Head of the Organisation. 2 Executive. 3 Engineer.
4 Technician. 5 Combinations. 6 Lawyers.
7 Jobs. 8 In-charge.

शिक्षण के लिये एक नवीन प्रतिरूप का निर्माण करने के लिये यह समय है।

(छ) शाला-प्रशिक्षण[1]

व्यावहारिक प्रशिक्षण प्रदान करने के विभिन्न उपाय (निम्नलिखिति) हैं :—

(१) स्नातकत्व[2] के पश्चात् विद्यार्थी, सामान्यतः किसी आभियान्त्रिक संस्थापन अथवा औद्योगिक सार्थ[3] में, एक वर्ष की अवधि के लिये शिशिक्षु[4] हो सकता है।

(२) विद्यार्थी, साहित्यिक पाठचर्या के क्षेत्र में एक पूर्ण-कालिक वर्ष व्यय करने के पश्चात्, अध्ययन को कार्य से एकान्तरित कर सकता है, और अपने आभियान्त्रिक शिक्षण के लिये चार के स्थान पर पाँच वर्ष ले सकता है। ५० से ७५ अमेरिकन संस्थाओं में इस प्रणाली का अनुसरण किया जा रहा है।

(३) विद्यार्थी अपने लम्बे अवकाश का आभियान्त्रिक संस्थापनों अथवा औद्योगिक सार्थों में उपयोग कर सकता है। कुछ मात्रा तक ब्रिटिश विश्वविद्यालयों में इसे किया जाता है।

हमने अपने देश में आभियान्त्रिकी के विद्यार्थियों में उस मार्मिक कार्य का अनुभव करने के लिये एक पर्याप्त विफलता का अवलोकन किया है जो अभियान्त्रिक-शिक्षण में शाला-प्रशिक्षण करता है।

(ज) प्रथम उपाधि-पाठचर्याओं की लम्बाई

हम सबल रूप से इस विचार के हैं कि, विज्ञान में मध्यमा[5]

---

1 Works Training.   2 Graduation.   3 Firm.
4 Apprentice.   5 Intermediate.

के पश्चात् शाला-प्रशिक्षण के लिये अवधि को छोड़ कर, आभियान्त्रिकी में उपाधि-पाठचर्या को चार वर्ष की अवधि का होना चाहिए, अथवा उस स्थिति में पाँच वर्ष की अवधि का जब शाला-अभ्यास का अध्ययन से एकान्तरण किया जाता है।

(झ) अधिस्नातक[1] एवं महाविज्ञ[2] उपाधियाँ

अधिस्नातक एवं महाविज्ञ उपाधियों की स्थापना के विरुद्ध एक युक्ति यह थी कि एक अभियन्ता का स्नातक-पूर्व शिक्षण पहले ही पर्याप्त रूप से विशेषित होता है, क्योंकि जानपद[3], वैद्युत अथवा यान्त्रिक आभियान्त्रिकी में विशेष पाठचर्याओं द्वारा सामान्य पाठचर्या का अनुसरण किया जाता है। यह स्पष्ट है कि पहले ही निर्दिष्ट आभियान्त्रिक व्यवसाय की निरन्तर वर्धी विभिन्नता की दृष्टि से ऐसा दृष्टिकोण उचित नहीं है, एक विभिन्नता प्रौद्योगिकी की वर्धी जटिलताओं द्वारा आवश्यक हो गई है। अतः हम आभियान्त्रिकी विषयों में उत्तर-स्नातक प्रशिक्षण का संघटन करने के लिये मद्रास एवं कलकत्ता तथा अन्य केन्द्रों पर अभिनव यत्नों को पूर्ण हृदय से पृष्ठांकित[4] करते हैं।

(ञ) उच्च प्रौद्योगिकीय संस्थाएँ[5]

आभियान्त्रिक एवं प्रौद्योगिकीय महाविद्यालयों में उत्तर-स्नातक एवं अन्वेषण कार्य का उपक्रमण देश को इन विशाल उपक्रमों के समुचित अधियोजन, रूपांकन[6], एवं निष्पादन के लिये देशीय मस्तिष्क-विश्वास[7] देगा, और अतः हम उच्च प्रौद्योगिकीय संस्थाओं के संघटन को प्रथम पूर्वता[8] देंगे, जहाँ

1 Master's. 2 Doctor's. 3 Civil. 4 To endorse.
5 Higher Technological Institutes. 6 Design.
7 Mind-Trusts. 8 Priority.

ऐसे मनुष्यों का प्रशिक्षण सोच विचार कर अधियोजित किया जाता है, क्योंकि हम निश्चित नहीं हैं कि ऐसे मनुष्यों के प्रशिक्षण के लिये समुचित वायुमण्डल का विकास करने में प्राचीन आभियान्त्रिक महाविद्यालयों को कितना समय लगेगा, अथवा कि, वे, प्रवर्तमान वायुमण्डल, परम्परा एवम् सेवा तथा भर्ती के नियमों की दृष्टि से, सर्वथा बढ़ेंगे। यह सन्तोषकर है कि उच्च प्रौद्योगिकीय संस्थाओं के साथ कुछ प्रगति की जा चुकी है। यह देश के हितों में है कि वे यथा-शक्य समयपूर्व कार्य करना आरम्भ करें।

आजकल भारत निर्मित-वस्तुओं (उपभोज्य-वस्तुएँ) के अपने प्रदाय का एक वृहत् भाग विदेश से प्राप्त करता है, अथवा उनके बिना रहता है। (हमें) उन मनुष्यों की एक बड़ी संख्या की आवश्यकता है जो आभियान्त्रिक तथा व्यापार-योग्यता को साहस, संसाधनयुक्तता तथा आत्मनिर्भरता की भावना के साथ मिलाते हैं, और जो उन वस्तुओं की वृहत् विभिन्नता का प्रदाय करने के लिये, जिनकी भारत को आवश्यकता है, लघु उद्योगों की एक बड़ी संख्या का आरम्भ करेंगे।

उनके (नवीन प्रकार के आभियान्त्रिक विद्यालय) अध्यापन को वास्तविक बनाने के लिये ऐसे आभियान्त्रिक विद्यालयों के लिये समय-समय पर अपने लघु उद्योगों का उपक्रमण करना उचित हो सकता है।

ऐसे प्रशिक्षण की प्रावैधिक प्रावस्थाएँ[1] सामान्य आभियान्त्रिक विज्ञान की नींव पर यान्त्रिक, वैद्युत अथवा रसायनिक आभियान्त्रिकी हो सकती हैं। व्यापार प्रावस्थाओं

---

1 Phases.

में ऐसे विषयों का समावेश होना चाहिए जैसे लेखांकन[1], औद्योगिक सम्बन्ध, उत्पादन पद्धतियाँ, विपणन[2], और व्यापार-नीतिशास्त्र। अनेक स्थितियों में विद्यार्थी की सम्पूर्ण पाठचर्या को कुछ विशेष प्रकार के उत्पाद के चारों ओर अधियोजित किया जा सकता है, जिसका वह पीछे निर्माण कर सकता है, यथा प्रकाश-स्थायक[3] अथवा मसीपथ[4], नाल-कूप-उदञ्च[6] अथवा ईख-चय से उत्पाद।

एक ऐसा आभियान्त्रिक विद्यालय अपने उन स्नातकों को, जो अपने लिये व्यापार में तथा सामान्यतः लघु उद्योगों का आरम्भ कर चुके हैं, एक आभियान्त्रिक तथा औद्योगिकीय-मन्त्रणा-सेवा का प्रबन्ध करने के लिये भी उपक्रम कर सकता है।

यह अधिक अच्छा है कि ऐसे आभियान्त्रिक विद्यालयों को पृथक्कृत नहीं होना चाहिए, परन्तु विश्वविद्यालयों का विभाग होना चाहिए, जिससे विज्ञान, अर्थशास्त्र, औद्योगिक सम्बन्ध तथा भाषा के अध्यापक प्राप्य होंगे और जिससे आभियान्त्रिकी-छात्र एक सर्वतोमुख सांस्कृतिक वायुमण्डल का लाभ रख सकते हैं।

(ट) आभियान्त्रिक एवं प्रावैधिक महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के बीच निकट सम्पर्क

एक आभियान्त्रिक महाविद्यालय एक उस स्थान में सर्वोत्तम पनपेगा जहाँ विज्ञान में उच्च अध्ययन तथा अन्वेषण का एक वायुमण्डल हो। सौभाग्य से नवीन विश्वविद्यालयों में आभियान्त्रिक महाविद्यालय ऐसे ही स्थित किए जा रहे हैं। एक

1 Accounting. 2 Marketing. 3 Lighting Fixtures.
4 Fountain Pens. 5 Tube Well Pumps.

विश्वविद्यालय के साथ सम्बन्ध का लाभ यह है कि यह आभियान्त्रिकी के कर्मचारिवृन्द को विज्ञान, व्यापार तथा सामान्य शिक्षण के विभाग-सदस्यों द्वारा अनुपूरित होने के योग्य बनाता है।

(ठ) आभियान्त्रिक एवं प्रौद्योगिकीय संस्थाओं का प्रशासन

एक संस्था की दक्षता, एक बड़ी मात्रा तक, इसके प्रशासन पर निर्भर करती है। हमारे आभियान्त्रिक महाविद्यालय निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किये जा सकते हैं :—

(१) शासनों द्वारा प्रशासित, परन्तु विश्वविद्यालयों से संबद्ध महाविद्यालय, यथा, गिण्डी, पूना, शिवपुर।

(२) वे महाविद्यालय जो विश्वविद्यालयों के अभिन्न अङ्ग हैं, यथा, बनारस, अलीगढ़, एन्नामलाइ महाविद्यालय।

(३) वे महाविद्यालय जो प्रत्यक्षतः शासन के अधीन हैं, और किसी विश्वविद्यालय से संबद्ध नहीं, यथा, रुड़की का थामसन महाविद्यालय।

(४) विश्वविद्यालयों एवम् शासनों से स्वतन्त्र तथा समितियों द्वारा सञ्चालित स्वप्रबन्धी[1] महाविद्यालय, यथा, यादवपुर, कलकत्ता का आभियान्त्रिक एवम् प्रौद्योगिकीय महाविद्यालय।

आभियान्त्रिक महाविद्यालय अपने प्रशासन में मन्त्रालयों अथवा अन्य शासन-विभागों द्वारा नियन्त्रित अथवा छाये हुए[2] नहीं होने चाहिएँ। वे विश्वविद्यालयों से निकट रूप से संबद्ध होने चाहिएँ।

---

1 Autonomous. 2 Dominated.

(ङ) *वित्तप्रबन्धन*

हमारे सामान्य अभिस्तावों के अनुसार प्रान्तीय संस्थाओं को, उपाधि पाठचर्या के लिये पूर्ण वित्तीय आधार के लिये, अपने संबद्ध शासनों पर निर्भर करना होगा। परन्तु यदि कुछ चुने हुए महाविद्यालयों में उत्तर-स्नातक प्रशिक्षण एवं अन्वेषण प्रोत्साहित किये जाते हैं, जैसाकि हम अत्यन्त आवश्यक होने के लिये सोचते हैं, तो कम से कम अंशतः वित्त केन्द्र से आना चाहिए। वस्तुतः उच्च प्रावैधिक संस्थाओं, दोनों स्नातक-पूर्व तथा उत्तर-स्नातक पाठचर्याओं के लिये, के परिव्यय[1] केन्द्रीय शासन द्वारा सहे जाने चाहिएँ, क्योंकि वे केन्द्रीय संस्थाएँ होती हैं। शासन-निधियों[2] का वितरण विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग द्वारा किया जाना चाहिए, जो विशेषज्ञों की एक मन्त्रणा-तालिका[3] द्वारा साहाय्यित होगा।

११—विधि[4]

(क) *विधि का महत्व*

स्वतन्त्रता की प्राप्ति तथा अन्ताराष्ट्रिय सम्बन्धों के साथ, (जो) अब इतने महत्वपूर्ण हैं जितने गृह कार्य, हमारा अपना सांवैधानिक शासन विकसित करने के परिणामी उत्तरदायित्व के साथ यह अनिवार्य हो गया है कि हम वास्तविक विद्वानों से युक्त, तथा ऐसे मनुष्यों के उत्पादन के योग्य विधि के उच्च श्रेणी के महाविद्यालय विकसित करें जो अन्ताराष्ट्रिय, सांवैधानिक तथा प्रशासनात्मक समस्याओं का और उन जानपद[5], आपराधिक तथा नैत्यक[6] माँगों का, जो अस्तित्व में हैं, सामना कर सकते हैं।

---

1 Costs. 2 Funds. 3 Panel of Experts. 4 Law.
5 Civil 6 Routine.

(ख) *वर्तमान विधि शिक्षण के दोष*

(१) वर्तमान व्यवहारों में थोड़ी ही एकरूपता है।

(२) विधि पाठचर्याएँ अब उत्तर-मध्यमा एवं उत्तर-स्नातक होती हैं।

(३) अध्यापकों की भर्ती की कोई सुस्थित नीति नहीं है।

(४) पुनः, पूर्ण हृदय से अध्ययन के एक एकल[1] विषय के रूप में विधि का अनुसरण नहीं किया गया है, (वह) सामान्यतः एक सहाय[2] पाठचर्या होता है।

(ग) *विधि महाविद्यालयों का पुनः संघटन*

स्पष्टतः, अब हमें अपने विधि महाविद्यालयों का पुनः संघटन करने और इस विषय को, जो किसी से दूसरा नहीं, बल देने की आवश्यकता है। स्वतन्त्र राष्ट्रों में भारत की प्रमुखता एवम् महत्व और अपने राष्ट्रिय उद्देश्यों का अनुभव एक ऐसे क्रिया-क्रम की माँग करता है।

(घ) *विधि-शिक्षण के उद्देश्य*

(१) समस्त परिस्थितियों में, हम सोचते हैं कि हम एक स्नातक-उपाधि तक अग्रसर करते हुए एक उस एकल उपाधि पाठचर्या पर संकेन्द्रण करके ठीक ही करेंगे, जो, कुछ विभेद के साथ विद्वान तथा विधि-विज्ञ[3] दोनों का उत्पादन करने के द्वैध कार्य का निर्वहण कर सकती है।

(२) उत्तर-स्नातक स्तर पर वर्धी अध्ययन तथा अन्वेषण होना चाहिए। इस प्रयोजन के लिये, हम अधिस्नातक उपाधि तक अग्रसर करती हुई एक द्विवर्षीय उत्तर-

---

1 Single.　　2 Subsidiary.　　3 Lawyers.

स्नातक पाठचर्या और, अन्ततः, जब हम इसका प्रबन्ध करने के योग्य हैं, विधि में एक अर्जित महाविज्ञता का सुझाव देंगे जिसके लिये एक क्षेत्र में गहन अन्वेषण आवश्यक होगा।

(ङ) विधि-स्नातक पाठचर्या के लिये पूर्वापेद्य[1]

हम सोचते हैं कि या तो कला अथवा विज्ञान में एक उपाधि पाठचर्या पूर्वापेद्य होनी चाहिए और कि इसे विधि-स्नातक के लिये अध्ययन के तीन वर्षों द्वारा अनुसरित होना चाहिए, अन्तिम वर्ष ऐसे व्यावहारिक प्रयोग को दी जा कर जैसे अधिवक्ता के सदन में वाचन और न्यायालय-कक्ष-प्रक्रिया के साथ कला एवम् परिचय प्राप्त करना, इत्यादि।

(च) पूर्व-विधि उपाधि पाठचर्या[2] *: सामान्य शिक्षण पाठचर्या*

साक्ष्य की मात्रा एवम् अनुभव सूचित करता है कि वैज्ञानिक वैधिक अध्ययन एवम् प्रविधियों में परिपूर्ण प्रशिक्षण द्वारा अनुसरित एक विस्तृत सामान्य शिक्षण सफलता की सर्वोत्तम आशा प्रदान करता है। विधिविज्ञ के प्रयोजनों के लिये कुछ ऐसे सामान्य अध्ययनों का मूल्य स्पष्ट है, जैसे भाषा, तर्क-शास्त्र, शासन एवम् अर्थशास्त्र, परन्तु अनुभव ने दिखलाया है कि विधि इतना व्यापक होता है कि अध्ययन का लगभग कोई विषय न केवल वाञ्छनीय परन्तु आवश्यक हो सकता है। वैधिक अध्ययन अथवा वादकरण[3] का कोई महत्वपूर्ण विषय ज्ञान के अनेक प्रावैधिक क्षेत्रों को अन्तर्ग्रस्त करने के लिये संभाव्य होता है। कम से कम ज्ञान के मुख्य क्षेत्रों और विधि के प्रावैधिक प्रश्न पर उनके व्यावहारिक भारु से अपरिचित

1 Pre-requisite. 2 The Pre-legal Degree Course.

3 Litigation.

विधिविज्ञ अब सफलता की आशा से लगभग रहित होता है और निश्चित रूप से अत्यन्त बाधित होता है। अतः, हम अनुभव करते हैं कि विधिविज्ञों को यथा शक्य विस्तृत प्रारम्भिक प्रशिक्षण रखना चाहिए, परन्तु अध्ययनों का नियत कार्यक्रम नहीं।

(छ) *विधि में उपाधि-पाठचर्याएँ*

विषय आजकल की अपेक्षा अधिक एकरूप बनाये जा सकते थे, परन्तु उन्हें उन विभिन्नताओं में प्रयोज्य होना चाहिए जो अनेक प्रान्तों में विशेष कृत्यों, रूढ़ियों तथा अन्य कारकों में भेद से उठती हैं। यह महत्वपूर्ण है कि. चाहे जो विषय प्रस्तुत किये जाएँ, विद्यार्थी को स्पष्ट विचार, ठीक-ठीक विश्लेषण और प्रबल अभिव्यक्ति की शक्तियाँ प्राप्त करनी चाहिएँ। इन गुणों के बिना वह एक न्यायवादी[1] के रूप में सफलता के लिये आशा नहीं कर सकता।

(ज) *रीतियाँ*

इस समय पाठचर्याएँ व्याख्यानों तक अत्यधिक संसीमित हैं। हम सोचते हैं कि इन्हें अवबोध्यों[2], विमर्शगोष्ठियों[3], विवाद्य-न्यायालयों[4] और हार्वर्ड में विश्व-प्रसिद्ध बनाई गई वाद-रीति[5] के समान किसी वस्तु से अनुपूरित होना चाहिए।

(झ) *परीक्षाएँ*

हम समय एवं विषय दोनों के अनुसार प्रगति-परीक्षण एवं परीक्षाओं के विभागकरण का सुझाव देते हैं।

---

1 Attorney.　2 Tutorials.　3 Seminars.　4 Moot-Courts.　5 The Case-Method.

(ञ) *अधिस्नातक उपाधि*

अधिस्नातक उपाधि के लिये अभ्यर्थी की विशेष अभिरुचि के क्षेत्रों में उच्च पाठचर्याएँ प्रस्तुत की जा सकती हैं, और सांवैधानिक, अन्ताराष्ट्रिय प्रशासी विधि[1], विधिशास्त्र[2], और दोनों हिन्दू एवं मुस्लिम विधि में सबल कार्यक्रम प्राप्य होने चाहिएँ।

(ट) *अन्वेषण*

अन्वेषण के प्रोत्साहन के लिये, अन्य क्षेत्रों की भाँति विधि में छात्रवृत्तियाँ प्राप्य होनी चाहिएँ। यदि एवं जब प्रस्तुत की जाए, महाविज्ञता[3] के लिये एक महत्वपूर्ण क्षेत्र में गहन एवं मौलिक अन्वेषण अनिवार्य होना चाहिए।

(ठ) *कर्मचारिवृन्द*

कर्मचारिवृन्द पूर्ण-कालिक एवं अंशकालिक होंगे। पूर्णकालिक कर्मचारियों को मुख्यतः आधारभूत विषयों के क्षेत्रों में अध्यापन करना चाहिए और अंश-कालिक कर्मचारियों को अधिक मुख्यतः व्यावहारिक प्रयोग एवं प्रक्रिया के क्षेत्रों में। अंश-कालिक कर्मचारियों को संविदा[4] के आधार पर भर्ती किया जाना चाहिए और केवल तभी शोधित[5] होने चाहिएँ यदि (उनके द्वारा) पूर्ण सेवाएँ पालित की जाती हैं।

(ड) *विधि-वर्ग*

विधि वर्ग अध्यापन के केवल नियमित घण्टों में अनुसूचित हों।

---

1 Administrative Law. 2 Jurisprudence. 3 Doctorate.
4 Contract. 5 Paid.

१२—आयुर्विज्ञान[1]

(क) आधुनिक आयुर्विज्ञान शिक्षण का आरम्भ

आयुर्विज्ञान महाविद्यालय भारत में एक सौ वर्ष से अधिक से अस्तित्व में रहे हैं। वस्तुतः, यह कहा जा सकता है कि १८५७ में विश्वविद्यालयों के संस्थापित होने से भी पहले, उपाधियाँ प्रदान करते हुये आयुर्विज्ञान के महाविद्यालय तीन मुख्य केन्द्रों, कलकत्ता, मद्रास और बम्बई, में अस्तित्व में थे। तथापि, आयुर्विज्ञान में प्रशिक्षित व्यवसायियों का अधिकांश आयुर्विज्ञान विद्यालयों द्वारा जाता था जो देश के भिन्न भागों में स्थापित थे। कुछ विद्यालय राज्य द्वारा संधृत थे, जबकि अन्य वैयक्तिक अभिकरणों, मुख्यतः धर्मप्रचारकों[2] के नियन्त्रण में थे। उपाधि पाठचर्या के सम्बन्ध में भी, भारतीय विश्व-विद्यालयों में से कुछ दो भिन्न श्रेणियाँ रखते थे, एल० एम० एस० और एम० बी० बी० एस०। विद्यालय की पत्रोपाधि[3] एल० एम० पी० और पीछे डी० एम० एस० जानी जाती थी। सामान्य-भैषजिक-परिषद्[4] एवं भारतीय विश्वविद्यालयों के बीच दीर्घावधि प्रतिवाद के कारण अर्हता एवं अध्यापन के लिये न्यूनातिन्यून स्तर निर्धारित करने के उद्देश्य से १९३१ में भारतीय भैषजिक परिषद्[5] स्थापित की गई थी।

(ख) भैषजिक शिक्षण के लिये एकरूप स्तर

यह ठीक दिशा में एक पग है, जिसका आयोग स्वागत करता है, जिसे अधिकांश प्रान्तों ने ले लिया है, अर्थात्, भैषजिक शिक्षण के लिये एक एकरूप स्तर रखना और अनु-

1 Medicine. 2 Missionary. 3 Diploma. 4 General Medical Council. 5 Indian Medical Council.

ज्ञाधारियों[1] की अर्हता का अन्त करना, जो अब तक शासकीय परीक्षक मण्डलों द्वारा दी जाती थी। आयोग अत्यन्त चिन्तित है कि आयुर्विज्ञान के समान एक महत्वपूर्ण विषय में, विश्वविद्यालयों को स्तरों को बनाये रखने के लिये उत्साही होना चाहिए और (आयोग) विश्वविद्यालयों एवं संबद्ध प्रान्तों के शासनों को ऐसे स्तरों को लागू करने के लिये आवश्यकता और दक्षता के न्यूनातिन्यून स्तर तक आने के लिये संबद्ध महाविद्यालयों को पर्याप्त वित्तीय सहायता देने के लिये सेवाबाध्य करेगा।

(ग) *संख्या-वृद्धि*

यदि उन भैषजिक महाविद्यालयों को ऐसे प्रवेशों की अनुमति दी जाती है जो वर्धित संख्याओं का सामना करने के लिये न तो सेवि-वर्ग न शयनिक[2] अथवा प्रयोगशाला सुविधाएँ रखते हैं, तो यह समस्त स्तरों को चोट पहुँचाएगा। आयोग इस सम्बन्ध में इङ्गलैण्ड में गुडएनफ-समिति[3] तथा भारत में सर जौसिफ भोर[4] के सभापतित्व में स्वास्थ्य-समिति के प्रतिवेदनों[5] को निर्दिष्ट करेगा और विश्वविद्यालयों एवं विशेषतः भारतीय भैषजिक परिषद् को सुझाएगा कि जब तक इन प्रतिवेदनों में निर्धारित शर्तें सन्तोषजनक रूप से पूर्ण न की जाएँ तब तक उन्हें किसी भैषजिक महाविद्यालय में प्रवेशों की संख्या अधिकतम १०० तक संसीमित करनी चाहिए। आयोग अनुभव करता है कि यदि इस दिशा में तत्काल उपाय नहीं किये जाते हैं तो भैषजिक शिक्षण को बड़ा भय है।

(घ) *निवासी-नियुक्ति*[6]

आदर्श भैषजिक महाविद्यालय को विद्यार्थी को उसके पाठ-

1 Licentiates. 2 Clinical. 3 Goodenough Committee.
4 Sir Joseph Bhore. 5 Reports. 6 Resident Appointment.

शाला में प्रवेश के समय से उसके अर्हता प्राप्त होने तक उसकी सम्पूर्ण भैषजिक शिक्षा का प्रबन्ध करने के योग्य होना चाहिए, जिसके पश्चात् उसके लिये उसके अभ्यास में जाने से पूर्व या तो उसके अपने महाविद्यालय में अथवा अनुमोदित चिकित्सालयों में एक निवासी पद प्राप्त किया जाना चाहिए। इस समय विशेषज्ञ मत का अधिकाँश इस स्थिति के पक्ष में है कि कम से कम एक वर्ष अथवा १५ मास के लिये निवासी-नियुक्ति को एक स्नातक के लिये, उसके व्यवसाय में प्रवेश और अभ्यास के लिये अनुज्ञात होने से पूर्व, पर्याप्त प्रशिक्षण की एक आवश्यक स्थिति के रूप में विचारा जाना चाहिए।

(ङ) *संभार*[1]

समस्त भैषजिक महाविद्यालयों में वृहत् एवं लघु व्याख्यान-कोष्ठों, प्रशालों[2], प्रयोगशालाओं, सज्जा-कोष्ठों, पुस्तकालय एवं वाचन-कोष्ठों, सामान्य कोष्ठों, और विशेष सुविधाओं से युक्त अन्वेषण के विभागों की एक पर्याप्त संख्या होनी चाहिए। समस्त विद्यार्थियों के लिये एक क्ष-रश्मिक कौतुकालय[3] सहित कौतुकालय सुगमता से प्रवेश्य होने चाहिएँ, और अध्यापन-प्रयोजनों के लिये विशेषतः विन्यस्त[4] विभाग अन्तर्विष्ट होने चाहिएँ। विद्यार्थियों को चलचित्र-पट्टियाँ[5] लेने एवं प्रदर्शित करने के लिये साधन भी उपबन्धित किये जाने चाहिएँ।

(च) *चिकित्सालय सुविधाएँ*

अध्ययन के वे समस्त विभाग, जिनको चिकित्सालय-सुविधाओं की आवश्यकता होती है, एक एकी क्षेत्र में स्थित होने चाहिएँ। विशेषज्ञ मत यह है कि एक महाविद्यालय में प्रवेशित

---

1 Equipment. 2 Halls. 3 Radiological Museum.
4 Arranged. 5 Cinema Films.

प्रत्येक विद्यार्थी के लिये दश शय्याएँ होनी चाहिएँ और कि शय्याओं की इस संख्या के अर्ध को समान अनुपातों में सामान्य भैषजिक[1] एवं शल्य[2] होना चाहिए, द्वितीय अर्ध उन विशेषताओं के लिये जो अध्यापन केन्द्र के क्षेत्र के भीतर उपबन्धित करनी होंगी।

(छ) *कर्मचारिवृन्द*

यहाँ तीन प्रकार के अध्यापक होते हैं जो सेवायुक्त किये जा सकते हैं : (१) एकक के प्रभारी विभागाध्यक्ष, (२) अंश-कालिक शयनिक अध्यापक, (३) अवैतनिक भैषजिक अधिकारी। जहाँ तक अध्यापन-कार्य से सम्बन्ध है अध्यापन में रत समस्त सदस्यों को, चाहे पूर्ण-कालिक हों अथवा अंश-कालिक, उनके लिये अभिभाजित[3] कर्तव्यों के अनुरूप होना चाहिए, संबद्ध विभागाध्यक्षों के और महाविद्यालय के अधिष्ठाता[4] अथवा प्रमुख के सहयोग से कार्य करना चाहिए। हमें यह प्रतीत होता है कि एक पूर्ण-कालिक कृत्य के लिये नियुक्त प्राध्यापक को आगे देखने के लिये कम से कम ५ से १० वर्ष का कार्य (अनुभव) रखना चाहिए। अतः हम अनुभव करते हैं कि ऐसे व्यक्तियों को चुनने के लिये समुचित अवस्था ४० से ४५ के लगभग होगी। हमने अभिस्ताव किया है कि विश्वविद्यालय अध्यापकों के लिये प्रस्थापित वेतन-श्रेणियाँ व्यावसायिक महाविद्यालयों के अध्यापकों के लिये भी अभिस्वीकृत हों जिन्हें उनके अतिरिक्त ५००) प्रति मास तक एक वैयक्तिक भत्ता दिया जा सकता है।

---

1 General Medical. 2 Surgical. 3 Apportioned.
4 Dean.

(ज़) *ग्रामीय भैषजिक सहायता*

हमारी इच्छा है कि भैषजिक सहायता एवं लोक-स्वास्थ्य में ऐसा ग्रामीय प्रशिक्षण दो प्रक्रमों[1] पर दिया जाना चाहिए। (१) स्नातक-पूर्व को, अपने अध्ययन की ज्येष्ठ पाठचर्या में, एक पृथग्रक्षित अवधि के लिये, ग्रामीय स्वास्थ्य समस्याओं में प्रशिक्षण लेना चाहिए, और इस अवधि में लोक-स्वास्थ्य-कर्मचारिवृन्द के एक सदस्य से संबद्ध होना चाहिए। यह अध्ययन के चतुर्थ एवं पञ्चम वर्ष के मध्य, जब उसे चुने हुये ग्रामीय क्षेत्रों में व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया जा सकता है, जहाँ व्यावहारिक प्रशिक्षण को एक समुचित रूप से एकीकृत पाठ-चर्या प्राप्य होगी, ६ सप्ताह से ३ मास की एक अवधि के लिये हो सकता है। (२) साथ ही, नये उत्तीर्ण हुए स्नातक को उनके विस्तृत पक्ष में लोक-स्वास्थ्य-समस्याओं का अध्ययन करने के अवसर रखने चाहिएँ। उस तरुण स्नातक-पूर्व के लिये, जो या तो एक शोधित[2] अथवा एक अवैतनिक क्षमता में शासकीय सेवा में प्रवेश करने की इच्छा रखता है, अन्यत्र प्रविष्ट होने से पूर्व एक निश्चित अवधि के लिये एक ग्रामीय क्षेत्र में सेवा करना आवश्यक होना चाहिए।

(झ) *हम विश्वविद्यालयों, प्रान्तीय शासनों एवं केन्द्रीय शासन की सूचना के लिये निम्नलिखित प्रस्तावों का संस्तवन करते हैं जो इस संमेलन (मद्रास-सम्मेलन, १९४९) में पारित हुए थे:—*

"(१) इस सम्मेलन का मत है कि यह वाञ्छनीय है कि आयुर्विज्ञान-विभाग में उत्तर-स्नातक अर्हताओं के सम्बन्ध में समस्त विश्वविद्यालयों द्वारा कुछ न्यूनातिन्यून प्रमाप पालित होने चाहिएँ"

---

1 Stages.	2 Paid.

"(२) प्रमापों का सहसम्बन्ध करने एवं आयुर्विज्ञान-विभाग में उत्तर-स्नातक अध्ययनों पर संबद्ध विश्वविद्यालयों को मन्त्रणा देने की दृष्टि से, इस सम्मेलन का मत है कि एक अखिल-भारतीय-शिक्षण-परिषद्[1] का निर्माण करना वाञ्छनीय है।"

(ञ) *नवीन विषय*

यह अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण है कि आयुर्विज्ञान-विभाग में शिक्षण के कुछ प्रकार प्रोत्साहित नहीं किये गये हैं, इनमें से मुख्य दन्त-शिक्षण का उल्लेख किया जा सकता है। लोक-स्वास्थ्य-आभियान्त्रिकी[2] उन विषयों में से अन्य है जिसने अपर्याप्त ध्यान प्राप्त किया है। आयोग यह समझता है कि यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय है और विश्वविद्यालयों के तात्कालिक ध्यान का क्रम रखता है।

(ट) *उपचारण*[3]

उपचारण के समान एक व्यावसायिक अध्ययन में, समस्या के विद्योचित पक्ष को विचार प्राप्त करना चाहिए, परन्तु यह अधिक आधारभूत है कि व्यावहारिक पक्ष पर सदैव बल दिया जाना चाहिए।

(ठ) *आयुर्विज्ञान की देशीय प्रणालियाँ*

यह वाञ्छनीय प्रतीत होगा :

(१) देशीय पाठशालाओं में सांतत्य के लिये व्यवस्था करना, जिससे कोई देनें जो वे आधुनिक आयुर्विज्ञान को दे सकते हैं खोई न जा सकें और जिससे जन-

---

1 All India Council of Post-Graduate Medical Education. 2 Public Health Engineering. 3 Nursing.

पुञ्जों से श्रमहँगी भैषजिक अवेक्षा[1] दूर न की जा सके जबकि उनके लिये अन्य (अवेक्षा) प्राप्य नहीं है।

(२) देशीय उपचारों एवं देशीय रीतियों दोनों के अध्ययन के लिये एक अथवा अधिक अन्वेषण-केन्द्र विकसित करना।

(ढ) आयुर्विज्ञान पाठचर्या का इतिहास

हमारे आधुनिक भैषजिक विद्यालय देशीय आयुर्विज्ञान के इतिहास, रीतियों, दर्शन एवं विषयवस्तु पर एक पाठचर्या समाविष्ट करके अच्छा ही करेंगे।

१३—व्यापार-प्रशासन[2]

(क) महत्व

यदि भारत को, सामान्य कर्मकारी के लिये जीवन के उच्च स्तरों के साथ, एक प्रभावशाली औद्योगिक देश होना है, तो व्यापार को एक व्यवसाय के रूप में देखा जाना चाहिए और उसकी उतनी पूर्णतया तैयारी की जानी चाहिए जितनी किसी अन्य की।

(ख) व्यापार-शिक्षण

एक व्यापारी के लिये, जैसे एक अभियन्ता[3] के लिये, प्रथम आवश्यकता यह होगी कि वह एक शिक्षित व्यक्ति एवं नागरिक होगा जिससे अपने व्यापार में वह सूचित, सामाजिक मस्तिष्क-युक्त नीतिज्ञ के रूप में और केवल एक व्यापार-प्रविधिज्ञ के रूप में नहीं, कार्य कर सकता है। व्यावसायिक व्यापार शिक्षण में गणित; सांख्यिकी[4]; संघटन-

1 Medical Care. 2 Business Administration. 3 Engineer. 4 Statistics.

सिद्धान्त; व्यापार-संरचना; परिसंपत्[1] के एवं व्ययों के प्रबन्ध एवं आयव्ययकरण[2] सहित वित्तव्यवस्था; दर्शन, विधि का इतिहास एवं सिद्धान्त; और गति-अर्थव्यवस्था, विधा-विश्लेषण एवं प्रक्रिया, दक्षता-प्रमापण[3], परिव्यय-विश्लेषण, इत्यादि सहित कार्य-संघटन का समावेश होना चाहिए। वितरण की संरचना का भी अध्ययन किया जाना चाहिए। औद्योगिक स्थितियों में विद्यार्थी की मुख्य अभिरुचि के अनुसार यह प्रशिक्षण निर्माणी-अभ्यास, कार्यालय-प्रबन्ध, संस्था-प्रबन्ध, कृषि, अथवा विपणन[4] की ओर तिरछा किया जा सकता है। जबकि व्यापारिक-सम्बन्ध प्रत्येक व्यापार-पाठचर्या में अन्तर्निहित होने चाहिएँ. यह इतना महत्वपूर्ण है जितना स्वयं एक व्यवसाय का निर्माण करना, और इसकी ऐसे ही चर्चा की जाती है। व्यावसायिक व्यापार शिक्षण दोनों एक स्नातक-पूर्व तथा एक उत्तर-स्नातक अध्ययन क्षेत्र के रूप में समझा जाता है।

१४—लोक-प्रशासन[5]

(क) *महत्व*

जहाँ केन्द्रीय, प्रान्तीय अथवा स्थानीय शासन प्रति वर्ष सैकड़ों करोड़ रुपयों का एक योग व्यय कर रहे हैं, वहाँ इतनी विशाल राशियों का दक्ष उपयोग महान् लोक महत्व का एक विषय हो जाता है।

(ख) *लोक-प्रशासन शिक्षण*

स्वतन्त्र भारत को, खोए हुए समय की पूर्ति करने के लिये, अत्यन्त महत्व के लोक प्रश्नों की एक असामान्य संख्या के

---

1 Assets. 2 Budgeting. 3 Standardization of Skills.
4 Marketing. 5 Public Administration.

साथ संव्यवहार करना चाहिए, जबकि साथ ही एक अपर्याप्त प्रशासनात्मक समूह के आधुनिक-करण के लिये यत्न करना चाहिए। उन प्रयोजनों के लिये हमें पूर्ण व्यावसायिक प्रशिक्षण के उच्चतम गुण से युक्त अनेक लोक सेवकों की आवश्यकता है। शिक्षण एवं अन्वेषण के व्ययों का एक कुल आयव्ययक[1] बनाने के लिये, केन्द्रीय शासन लोक-प्रशासन एवं शासन में अन्वेषण के लिये एक संस्था का सुविचार कर सकता है, और विश्वविद्यालयों की एक संख्या में लोक-प्रशासन की पाठचर्याओं अथवा विभागों की स्थापना पर भी अनुग्रहपूर्वक देख सकता है। इनमें कुछ स्थानीय एवं प्रान्तीय-शासन में विशेषीकरण कर सकते हैं, कुछ राष्ट्रिय एवं अन्ताराष्ट्रिय-शासन में, जबकि कुछ ऐसे एक से अधिक क्षेत्र का आच्छादन कर सकते हैं।

१५—औद्योगिक सम्बन्ध[2]

(क) *महत्व*

एक लोकतन्त्र बाध्यता अथवा बलाचरण द्वारा जीवित नहीं रह सकता। जब तक सदस्यों में सामान्य परस्पर विश्वास, आदर और ध्यान नहीं है, तब तक प्रत्याबल एवं प्रतिसंघर्ष[3] प्रमुख होंगे, और उससे अव्यवस्था अथवा एकशास्तृत्व[4] का कोई रूप आएगा। ऐसी अवस्थाएँ बनाने के यत्न में, जिनमें परस्पर विश्वास एवं सद्भाव सम्बन्धों का नियन्त्रण कर सकते हैं, एक नवीन व्यवसाय उग रहा है जो अत्यन्त महान् महत्व का है—

---

1 Budget. 2 Industrial Relations. 3 Stress and Strife. 4 Dictatorship.

अर्थात् औद्योगिक सम्बन्धों में विशेषज्ञ का। सुव्यवस्थित शासन तथा एक स्थायी समाज का सांतत्य इस बात पर निर्भर रहता है कि श्रम एक ओर, और प्रबन्ध एवं पूंजी दूसरी ओर, अपनी समस्याओं को समता एवं परस्पर विश्वास तथा सद्भाव की एक भावना में करने में सफल हो सकते हैं, अथवा कि विषयों से कटु शत्रुताओं द्वारा लड़ा जाना चाहिए। यहाँ औद्योगिक-सम्बन्ध-प्रशासक का नवीन व्यवसाय महानतम सहायता का हो सकता है।

(ख) औद्योगिक-सम्बन्ध-शिक्षण

जैसा किसी भी व्यवसाय में होता है, कोई एक मनुष्य केवल उसके अपने विचार एवं यत्न द्वारा सक्षम नहीं हो सकता। एक व्यवसाय का अति सार यह है कि यह अपने क्षेत्र में संचित प्रज्ञा, ज्ञान, प्रमापों एवं कौशलों का संघटन करने के लिये उपक्रमण करता है। ऐसी तैयारी, यदि कोई हो तो थोड़े-से अपवादों के साथ, संघटित व्यावसायिक शिक्षण के लिये आह्वान करती है। यह औद्योगिक सम्बन्धों के क्षेत्र में (भी) सत्य होने के लिये सिद्ध कर रहा है।

७—*धार्मिक-शिक्षण*

१–धर्म का महत्व

जहाँ चेतन प्रयोजन का अभाव है, वहाँ वैयक्तिक सत्यसन्धता[1] एवं संगत व्यवहार सम्भव नहीं होते। एक सन्तोषजनक एवं सफल जीवन के लिये, एक व्यक्ति को केवल बौद्धिक रूप से ही सतर्क नहीं होना चाहिए परन्तु आवेगतः स्थायी, उन संघर्षों एवं आततियों[2] को सहन करने के

1 Personal Integrity. 2 Tensions.

लिये योग्य होना चाहिए जिन्हें लाने के लिए जीवन लगभग निश्चित है। हम तरुण व्यक्ति के आवेगात्मक एवं नैतिक विकास को दैवयोग पर नहीं छोड़ सकते। सम्पूर्ण व्यक्ति का विकास शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यों में से एक होना चाहिए।

२—भारत का संविधान एवं धार्मिक शिक्षण

जबकि राज्य स्वयं धार्मिक शिक्षण देने से प्रतिवारित[1] है, यह उन संस्थाओं को प्रस्वीकृत करने एवं सहायता देने से प्रतिवारित नहीं है जो तब तक इस प्रकार का शिक्षण दे सकती हैं जब तक जनक[2] की एवं विद्यार्थियों की, जब वयस् के हों, धार्मिक स्वतन्त्रता एक अन्तःकरण-खण्ड द्वारा रक्षित है। संविधान यह अपेक्षा करता है कि धार्मिक शिक्षण उन सबको दिया जा सकता है जो इसमें भाग लेने की इच्छा करते हैं। यह नकारात्मक रूप से यह नहीं कहता कि धार्मिक संशिक्षण उनके अतिरिक्त जो आपत्ति करते हैं, नियमतः सबको दिया जा सकता है। यह कहता है कि धार्मिक शिक्षण उनके अतिरिक्त जो स्पष्टतः इसे लेना चाहते हैं, (अन्य किसी को) नहीं दिया जाएगा। संविधान प्रमाणित करता है कि राज्य को धर्म के किसी विशेष रूप के प्रोत्साहन के साथ मिश्रित नहीं होना चाहिए। यह समस्त धर्मों के लिये समान अवसर देता है। किसी धर्म के लिये विशेषाधिकार अथवा विशेष निर्योग्यताएँ नहीं हैं। वह सिद्धान्त लोकतन्त्र की भावना की संमति में है।

३—धार्मिक शिक्षण एवं असाम्प्रदायिक राज्य[3]

उन कठिनाइयों ने, जिनमें होकर भारत ने अभी के वर्षों

1 Precluded. 2 Parents. 3 Secular State.

में पारण किया था, (हमें) इन सिद्धान्तों (भारत के संविधान में धार्मिक शिक्षण-सम्बन्धी सिद्धान्त) के निर्माण की ओर अग्रसर किया। समस्त धार्मिक शिक्षण पर रोक लगाने का विचार नहीं है, परन्तु राज्य-पाठशालाओं में मतीय[1] अथवा पन्थसीमित[2] धार्मिक-शिक्षण पर रोक लगाने (का विचार है)। हमें भावनाओं द्वारा वाहित नहीं होना चाहिए। साम्प्रदायिक अतियों के लिये जो उत्तरदायी है वह स्वयं धर्म नहीं है परन्तु वह अज्ञान, धर्मान्धता. एवं स्वार्थ जिसके साथ धर्म मिश्रित हो जाता है। स्वार्थी व्यक्ति, कुण्ठित-बुद्धि-अवसरचारिता के एक दृष्टिकोण से, धर्म का उनके अपने पापपूर्ण उद्देश्यों के लिये उपयोग करते हैं। धर्म के दुरुपयोग ने राज्य की असाम्प्रदायिक अभिधारणा[3] तक अग्रसर किया है। इसका अर्थ यह नहीं है कि कुछ भी पुण्य अथवा पूजा-गुण-सम्पन्न नहीं है। यह यह नहीं कहता है कि हमारी समस्त क्रियाएँ धर्मभ्रष्ट एवं स्वार्थपूर्ण उन्नति के अधम आदर्शों में रत हैं। राज्य के दर्शन के रूप में हम सर्वथा वैज्ञानिक भौतिकवाद को स्वीकार नहीं करते। वह तो अपनी प्रकृति, अपने "*स्वभाव*", अपनी विशिष्ट प्रतिभा, अपने '*स्वधर्म*" का अतिक्रमण करना होगा। यद्यपि हम राज्य-धर्म नहीं रखते, हम यह नहीं भूल सकते कि एक गहरी धार्मिक प्रवृत्ति एक स्वर्ण-सूत्र के समान हमारे इतिहास भर में दौड़ती रही है।

४—लोकतन्त्र एवं धर्म

इसके अतिरिक्त, अपने संविधान की प्रस्तावना में, हम एक उस राष्ट्रिय श्रद्धा, जीवन के एक उस राष्ट्रिय मार्ग के

---

1 Dogmatic. 2 Sectarian. 3 Conception.

निर्माण रखते हैं जो सारतः लोकतन्त्रीय एवं धार्मिक है। जब कभी एक मनुष्य बोध, साधुता, एवं अन्य के लिये सम्बन्ध की ओर ऊर्ध्वमुख प्रयास करता है, धर्म की भावना सक्रिय होती है। यदि हम मस्तिष्क में यह धारण करते हैं कि हमारे लोकतन्त्र का सम्पूर्ण भविष्य अन्तःकरण की स्वतन्त्रता, जाँच की स्वतन्त्रता, नैतिक एकता पर निर्भर करता है, तो हमारी असाम्प्रदायिकता सर्वोच्च साहस एवं हमारी राष्ट्रिय श्रद्धा के लिये उत्सादित[1] भक्ति का एक कार्य है।

५—धर्म के भारतीय विचार की केन्द्रीय विशेषताएँ

धर्म पर भारतीय दृष्टिकोण का अभिस्वीकरण हमारे संविधान के सिद्धान्तों के साथ असंगत नहीं है। हम धर्म के भारतीय विचार की केन्द्रीय विशेषताओं का संक्षिप्ततः नाम-निर्देश कर सकते हैं।

(क) *प्राप्ति[2] के रूप में धर्म*

धर्म विश्वास किया जाने के लिये एक मत, अथवा अनुभूत होने के लिये एक संवेग, अथवा पालित होने के लिये एक समारोह से अभिज्ञात[3] होने के लिये नहीं है। यह एक परिवर्तित जीवन होता है। हम एक मनुष्य के धर्म का विवेचन उसके बौद्धिक विश्वासों द्वारा नहीं, परन्तु उसके चरित्र एवं स्वभाव द्वारा करते हैं। हम उन्हें उनके फलों द्वारा जानते हैं, और उनके विश्वासों द्वारा नहीं।

(ख) *आध्यात्मिक प्रशिक्षण*

यदि धर्म प्राप्ति का एक विषय है, तो इस तक मतों के एक केवल ज्ञान द्वारा नहीं पहुँचा जा सकता। इसे अनुशासन,

---

1 Sublime.　2 Realisation.　3 Identified.

प्रशिक्षण, *साधना* द्वारा प्राप्त किया जाता है। हमें जिसकी आवश्यकता है वह औपचारिक धार्मिक शिक्षण नहीं, परन्तु आध्यात्मिक प्रशिक्षण है।

(ग) आत्म-यत्न[1]

यह प्रकृति का एक नियम है कि प्रत्येक मनुष्य को उसका अपना भोजन पचाना चाहिए। इसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य को उसके अपने नेत्रों से देखना भी चाहिए। उसकी अपनी इच्छा एवं हेतु के प्रयोग द्वारा एक मनुष्य को आध्यात्मिक बोध प्राप्त करना होता है।

(घ, जांच की स्वतन्त्रता

जबकि मतीय धर्म ने विचार की स्वतन्त्रता को सदैव निरुत्साहित किया है और जब कभी एवं जहाँ कहीं यह ऐसा करने की शक्ति रखता था, स्वतन्त्र जांच को रोका है, भारत ने आग्रह किया है कि हम किसी व्यक्ति अथवा संस्था के अन्धानुसरण द्वारा भावना में बढ़ नहीं सकते। जब तक मनुष्य अन्धतः अनुसरण करने के लिये तत्पर हैं, तब तक अवसर का लाभ लेने और उनका अन्धतः नेतृत्व करने के लिये मनुष्य होंगे। परन्तु हमने सदैव तर्कशुद्ध विचार (*मनन*), (*परिप्रश्न*), जाँच (*जिज्ञासा*) का आग्रह किया है। सत्य के अन्वेषण के लिये स्वाधीनता प्रथम प्रतिबन्ध है। विश्व-विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में हमें स्वतन्त्र समालोचनात्मक जांच के व्यसन[2] का विकास करना चाहिए और वैषयिक[3] समालोचना की रीति को उन मनुष्यों के विचारों एवं दृष्टिकोणों में प्रयोग करना चाहिए जो हमसे भिन्न होते हैं, परन्तु हमारे अपने विचारों एवं दृष्टिकोणों में भी (प्रयोग करना चाहिए)।

1 Self-Effort. 2 Habit. 3 Objective.

६—सामाजिक आचरणों में स्वतन्त्रता

अनेक धार्मिक संस्थाएँ वैयक्तिक एवं सामाजिक वृद्धि के लिये साधन होने के स्थान में, समय की अभिवृद्धियों द्वारा सशक्त बनायी हुई रूढ़ियों एवं व्यसनों की कठोर आकोश[1] हो गई हैं। वे एकाकी व्यक्ति का संमुखीकरण करती हैं और उसे डसती हैं। हमें इन रूपों की समालोचना करने के लिये और जहाँ आवश्यक हो वहाँ खुरचने के लिये स्वतन्त्र होना चाहिए। एक उस विश्व में जो द्रुत परिवर्तित हो रहा है, हम निकम्मे रूपों द्वारा जीवित नहीं रह सकते। हमें यह अनुभव करना चाहिए कि मिथ्या धर्मों ने अपने रक्तरञ्जित संस्कारों एवं अन्धविश्वास के सिकोड़ने वाले आतंकों द्वारा मनुष्यों का क्रूरकरण किया है।

वस्तुतः धार्मिक व्यक्ति स्थापित व्यवस्था का शत्रु होता है, उसका अधिवक्ता नहीं। वह अन्यदेशीय दृष्टि का व्यक्ति होता है। वह प्रवर्तमान वस्तुओं को संभ्रम में फेंकता है। वह एक क्रान्तिकारी होता है जो वृद्धिरोध[2] एवं कठोरातु[3] का विरोधी होता है। वह उस वाणी का अधिवक्ता होता है जिसे समाज गला घोंटने के लिये ढूंढ़ता है, उस आदर्श का जिसके लिये विश्व बधिर होता है।

७—अन्य धर्मों के लिये आदर

अन्य धर्मों के लिये आदर की भावना सत्य विनय का एक चिन्ह होती है। सत्य चित्र को अकेला ईश्वर ही जानता है। हमारे वैयक्तिक मानवीय मानचित्र तो अंधेरे की गोलिकाएँ होते हैं। मत-विभिन्नता विचार, जांच एवं अनुसंधान उद्दीप्त

---

1 Shells.　2 Stagnation.　3 Hardening.

करती है। यह केवल तब पाप हो जाती है जब असहिष्णुता प्रवेश कर जाती है, जब हम अपने आदर्शों को दूसरों पर लगाने के लिये यत्न करते हैं। ऐक्य तब तक सम्भव नहीं है जब तक स्पर्धी धर्म सनातन सत्य के एकमात्र धारक होने के अनन्य दावों का प्रस्ताव करते हैं।

८—विश्वव्यापी धर्म

महान् धर्म हमें उन भिन्न बोलियों[1] को देते हैं जिनमें मनुष्य ने अदृष्टपूर्व[2] के विषय में बोलने के लिये यत्न किया है। मानवता के जीवित विश्वास उसी यत्नोद्देश[3] तक भिन्न मार्ग हैं, उस सर्वोच्च पर्वत के ऊपर भिन्न मार्ग जिसका शिखर दिव्य-सत्यता है। यदि समस्त मनुष्य ईश्वर की सन्तान हैं, तो उसके प्रेम को उन तक सीमित करना अगुण-सम्पन्न है जो एक विशेष मत को मानते हैं। समस्त को अन्तर्निहित करने वाले ईश्वर के गुण-सम्पन्न धर्म को समस्त विश्वासों को एक विश्व-व्यापी संश्लेषण में समरूप करना चाहिए।

९—भारत का भाग

भारत विश्व के महान् धर्मों का मिलन-स्थान है और मानवता के धार्मिक-जीवन में एक वर्धी रूप से प्रमुख भाग लेगा और भारतीय विद्यार्थियों को विश्व में भारत के भाग का एक विचार रखना चाहिए।

१०—धार्मिक-शिक्षा : व्यावहारिक उपाय

(क) मूक ध्यान[4]

प्रत्येक प्रातः को श्रेणी-कार्य आरम्भ होने से पूर्व, मूक

---

1 Dialects. 2 Unseen. 3 Goal. 4 Silent Meditation.

उपासना अथवा ध्यान की एक लघु अवधि महाविद्यालय-जीवन का एक अभिन्न अङ्ग हो सकती है। कुछेक क्षणों के लिये हम मस्तिष्क को दैनिक जीवन के व्याकर्षणों[1] से मुक्त कर सकते हैं और उन शक्तियों पर ध्यान दे सकते हैं जो जीवन के अर्थ एवं मूल्य को निर्धारित करती हैं। हम सर्वोच्च को, केवल सर्वोच्च को, जिसे जानना हमारे लिये सम्भव है, तभी प्राप्त करेंगे, जब हमें भीतर देखने के लिये सिखाया जाता है।

(ख) महान् पुस्तकों का अध्ययन : प्रथम उपाधि पाठचर्या

पूर्व प्रक्रमों[2] में, इन पुस्तकों को नैतिक पाठ नहीं, परन्तु सर्वोच्च मानवीय अभिरुचि की वस्तुओं के रूप में दी गई महान् पुरुषों की जीवनियाँ धारण करनी चाहिए—वे जीवनियाँ जो महान् विचारों एवं अभिजात संवेगों के जीवन को प्रमाणित करती हैं। इन पुस्तकों को गरिमा, शोभा एवं सुकुमारता के साथ लिखा जाना चाहिए। जबकि माध्यमिक पाठशालाओं में वे कहानियाँ प्रयुक्त की जाती हैं जो महान् नैतिक एवं धार्मिक सिद्धान्तों का निदर्शन करती हैं, महाविद्यालय-श्रेणियों में धार्मिक आन्दोलनों से संबद्ध विचारों, घटनाओं एवं प्रमुख व्यक्तियों का अध्ययन किया जाना चाहिए। उपाधि-पाठचर्या के प्रथम वर्ष में गौतम बुद्ध, कनफ्यूसिअस, जौरोस्टर, सौक्रेटीज, जैसस, शङ्कर, रामानुज, माधव मुहम्मद, कबीर, नानक, गान्धी के समान महान् धार्मिक नेताओं की जीवनियाँ सिखायी जानी चाहिएँ।

(ग) धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन : द्वितीय उपाधि पाठचर्या

समस्त धर्मों के सारभूतों[3] का एक आदरपूर्ण अध्ययन चिर-विभाजित धर्मों के बीच एकरूपता की ओर एक पग के रूप में

1 Distractions. 2 Stages. 3 Essentials.

अनन्य रूप से पारितोषिकद[1] होगा। उपाधि-पाठचर्या में भगवद्‌गीता, धम्मपद, ज़ेण्ड एवैस्टा, ओल्ड टैस्टामैण्ट, सैण्ट जौन के अनुसार गोस्पल, क़ुरान, एवं गुरु ग्रन्थ साहब के समान पुस्तकों से प्रवरण[2] पढ़ना हमारे लिये सम्भव हो सकता है। हमें ऐसी पुस्तकें विहित नहीं करनी चाहिएँ जो यह सिद्ध करने के लिये एक दायित्व का अनुभव करती हैं कि उनका धर्म सत्य है और प्रायः यह कि अकेला यही सत्य है। द्वितीय वर्ष में विश्व के धर्मग्रन्थों से एक विश्वव्यापी स्वरूप के प्रवरणों का अध्ययन किया जाएगा।

(घ) *धर्म-दर्शन : तृतीय उपाधि पाठचर्या*

जब विद्यार्थी महान् आत्माओं के महान् विचारों से परिचित हो जाते हैं, तब उन्हें धर्म-दर्शन की समस्याओं से प्रस्तावित किया जाना चाहिए। नवीन विश्व के लिये दर्शन का सन्देश क्या है ? हम आधुनिक विज्ञान एवं विचार में प्रशिक्षित किये जाते हैं और हमारे विचारों को विचारपूर्ण एवं जांच करने वाले मस्तिष्कों को सन्तुष्ट करने के योग्य होना चाहिए। हमें अपनी पीढ़ी के लिये वही करना चाहिए जो अतीत के महान् विचारकों ने अपनी पीढ़ियों के लिये किया। हमें उन बौद्धिक सन्देहों को गिनना चाहिए जिनके लिये आधुनिक विश्व अधोमुख है और विश्व के अर्थ एवं स्वभाव के सम्बन्ध में विचारों का निर्माण करना चाहिए। तृतीय वर्ष में, धर्म के दर्शन की केन्द्रीय समस्याओं का विचार किया जाना चाहिए।

८—*शिक्षा का माध्यम*

१—शिक्षा के माध्यम की समस्या

हमने विश्वविद्यालयों तथा उच्च अध्ययनों की समस्याओं

---

1 Rewarding. 2 Selections.

में शिक्षा के माध्यम की समस्या को पर्याप्त चिन्तित विचार दिया है। शिक्षण-विज्ञों में किसी अन्य समस्या ने इससे अधिक प्रतिवाद[1] नहीं करवाया और हमारे साक्ष्यों[2] से अधिक परस्परविरोधी विचार नहीं बुलवाये। इसके अतिरिक्त, यह प्रश्न भावना में ऐसा वेष्टित[3] है कि इस पर एक शान्त एवं पृथक्कृत रीति से विचार करना कठिन है। इस समस्या की कठिनाई भारत के परिमाण एवं उसकी जनसंख्या की प्रकृति में अन्तर्निहित है।

२—भारत की मुख्य भाषाएँ

आजकल भारत में यद्यपि सैकड़ों बोलियाँ हैं, वे मुख्य भाषाएँ एक द्वादशक से अधिक नहीं हैं जो उनके अपने साहित्य धारण करती हैं और अतः शिक्षा के उचित माध्यम होने के लिये दावा कर सकती हैं। (उनके नाम ये हैं) : (१) आसामी, (२) बंगाली, (३) उड़िया, (४) गुजराती, (५) मराठी, (६) पंजाबी (७) काश्मीरी, (८) हिन्दी (पूर्वीय, पश्चिम, बिहारी, राजस्थानी), (९) कनारी, (१०) मलयालम, (११) तामिल, (१२) तेलगू।

३—हिन्दी

(क) संधान-भाषा के रूप में हिन्दी की संभावना

पद ८ के अधीन हम चार भाषा-समूह लाये हैं। पूर्वीय हिन्दी, जिसकी मुख्य साहित्यिक बोली अवधी है, और बिहार की तीन बोलियों—मैथिली, मागधी एवं भोजपुरी से बनी बिहारी निकटतः संबद्ध हैं; इसी प्रकार पश्चिम हिन्दी तथा

1 Controversy. 2 Witnesses. 3 Wrapped.
4 Federal Languagees.

राजस्थानी हैं। पुनः ये दो समूह एक दूसरे से निकटतः सम्बन्धित हैं। पूर्वीय हिन्दी एवं बिहारी की बोलियाँ, नामतः, क्रमशः अवधी तथा मैथिली समृद्ध साहित्य धारण करती हैं, इसी प्रकार पश्चिम हिन्दी तथा राजस्थानी की बोलियाँ भी। पश्चिम हिन्दी की शाखाओं में उर्दू, व्रजभाषा एवं उच्च हिन्दी हैं. जिनमें से प्रत्येक ने प्रतिभा के अनेक लेखक उत्पन्न किये हैं। उनकी पुस्तकें एक मूल्यवान राष्ट्रिय कोष हैं। उन मनुष्यों के बारे में, जो इन चार समूहों का अङ्ग हैं, विलक्षण बात यह है कि उनकी उस विशेष प्रदेश में, जिसमें वे रहते हैं, बोली जाने वाली बोली चाहे जो हो, वे सब अपनी साहित्यिक भाषा के रूप में पश्चिम हिन्दी को अपना रहे हैं। पश्चिम हिन्दी अपने साहित्यिक रूपों में, मुख्यतः उन बृहत् संख्याओं की गमता[1] के कारण जो उनका समर्थन करती हैं, स्वतन्त्र भारत द्वारा राज्य की भाषा के रूप में प्रस्वीकृति की सर्वोत्तम संभावना रखती है।

(ख) विकास की आवश्यकता

भारतीय-संधान[2] की राज-भाषा के रूप में अन्ततः पश्चिम हिन्दी का चाहे जो रूप चुना जाए, इसे विचार के विस्तृततम परिसर[3] की अभिव्यक्ति के योग्य उपरि-प्रवचन[4] का एक उचित साधन बनाने के लिये इसके विकास से सम्बन्धित प्रश्नों का साधन किया जाना होगा, क्योंकि अन्ततः यह भाषा संधानीय विधान मण्डलों तथा न्याय के उच्चतम न्यायाधिकरणों में और समस्त संधानीय प्रशासनात्मक कार्य में प्रयुक्त होगी। यह व्यापार की, दर्शन एवं विज्ञान की, उच्चतम अध्यापन एवं

---

1 Momentum. 2 Indian Federation. 3 Range.
4 Elevated Discourse.

अन्वेषण की भाषा हो जाएगी। आजकल इसके तीन रूपों में से कोई इन प्रयोजनों के लिये सर्वथा सज्ज[1] नहीं है।

(ग) पारिभाषिक शब्द

समस्त अपेक्षित सेवा देने के योग्य इसे एक गुण-सम्पन्न साधन बनाने के लिये, इसे समृद्ध एवं विकसित किया जाना होगा। इस सम्बन्ध में हम कुछ प्रश्नों के विचार का अनुरोध करते हैं।

(१) आत्मसात्करण का सिद्धान्त—प्रथम उस सिद्धान्त के सम्बन्ध में है जिसे शब्दों के आवश्यक उधार-ग्रहण का शासन करना चाहिए।

(२) समावेश का सिद्धान्त—विचार के लिये द्वितीय प्रश्न उन शब्दों के प्रतिधारण[2] की वाञ्छनीयता है जो पहले ही भिन्न स्रोतों से भारतीय भाषाओं में प्रवेश कर चुके हैं।

४—अन्ताराष्ट्रिय शब्द

यदि भारत की शिक्षा को, विशेषतः विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में, द्रुत उन्नति करनी है, तो हमें अन्य समस्त विचारों को अलग रख देना चाहिए और एक ऐसी नीति स्वीकार करनी चाहिए जो हमें वेगपूर्ण परिणाम देगी। अमेरिका एवं यूरोप हमसे अत्यन्त आगे हैं और प्रशिक्षित सेवि-वर्ग तथा धन में उनके संसाधन इतनी विशालता से बृहत् हैं कि भारतीय विद्यार्थियों एवं अध्यापकों को प्रेरणा एवं सहायता के लिये वर्षों उनकी ओर देखना होगा। तब पुनः यह स्मरण रहना चाहिए कि विज्ञान स्थानीय अथवा राष्ट्रिय नहीं होता है। यह विश्वव्यापी होता है।

1. Ready. 2 Retaining.

इस विश्वव्यापकता के आग्रह के अधीन वैज्ञानिक शब्द-भण्डार शीघ्रता से अन्ताराष्ट्रिय होता जा रहा है। दो तथ्यों का विरोध नहीं किया जा सकता : प्रथम, कि विज्ञानों की एक संख्या में, अर्थात्, रसायन, औद्भिदी[1] एव प्राणिकी, पारिभाषिक शब्दावली मुख्यतः अन्ताराष्ट्रिय है, और द्वितीय, कि आङ्गल में प्रयुक्त शब्द आङ्गल की अन्ताराष्ट्रिय स्थिति के कारण समस्त व्यावहारिक प्रयोजनों के लिये अन्ताराष्ट्रिय समझे जा सकते हैं। पश्चिम में विज्ञानों के लिये अनेक संघ हैं और वे वैज्ञानिक नामपद्धति, वर्णविन्यास[2] तथा उच्चारण से संव्यवहार करने के लिये समितियाँ रखते हैं। यह स्पष्ट है कि यदि भारत अपने को एक राष्ट्रिय एवं स्वतन्त्र नामावलि की नीति के लिये वचनबद्ध करता है, तो उसे तत्सम रेखाओं पर एक संघटन का निर्माण करना होगा। परन्तु यह समान रूप से स्पष्ट है कि हम इस कार्य का उपक्रमण करने के लिये न तो मनुष्य रखते हैं न साधन। इस समस्या का व्यावहारिक समाधान अन्ताराष्ट्रिय अथवा आङ्गल प्रावैधिक एवं वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली स्वीकार करने में है।

सर्वोपरि यह आवश्यक है कि उधार लिये शब्द समुचित रूप से आत्मसात् होने चाहिएँ, उनके उच्चारण भारतीय भाषाओं की ध्वनि-प्रणाली के अनुकूलित होने चाहिएँ और उनके वर्णविन्यास भारतीय लिपियों के ध्वनि-प्रतीकों के अनुसार नियत।

५—संधान-भाषा[3] के उपयोग

हमारा मत है कि वह भाषा जिसकी मुख्य विशेषताओं की

---

1 Botany. 2 Spelling 3 Federal Language.

हमने पूर्वगत कण्डिकाओं[1] में चर्चा की है चाहे यह किसी नाम से पुकारी जाती है, भारतीय-संधान की राज-भाषा के रूप में अभिस्वीकृत होनी चाहिए। इसे भारतीय-विधान-मण्डल की, संधानीय न्यायपालिका की, तथा भारतीय कूटनीति की राज-भाषा होना चाहिए। यह एक सुविधा होगी यदि यह भाषा प्रादेशिक एवं प्रान्तीय भाषा अथवा भाषाओं के साथ प्रान्तीय उच्च न्यायालयों में प्रयुक्त की जाती है। हम आशा करते हैं कि यह अन्तर्प्रान्तीय प्रवचनों[2] की अखिल-भारतीय प्रकृति के समस्त संघों एवं संस्थाओं की तथा व्यापार एवं वाणिज्य की भाषा होगी।

६—विकल्प के रूप में आङ्गल

कुछ लोग भारत की राज-भाषा के रूप में और उच्च-शिक्षण की भाषा के रूप में आङ्गल के सांतत्य[3] का समर्थन करते हैं। अब यह सत्य है कि आङ्गल भाषा देश में एकता के विकास में शक्तिशाली कारकों[4] में से एक ही है। वस्तुतः, भारत को राष्ट्रियता की अभिधारणा एवं राष्ट्रवाद की भावना मुख्यतः आङ्गल भाषा एवं साहित्य की ही देन हैं। परन्तु इसके अतिरिक्त आङ्गल ने हमें आधुनिक सभ्यता के आधारभूत विचारों की, आधुनिक विज्ञान एवं दर्शन की कुञ्जी दी है और इन सबसे भी अधिक महत्वपूर्ण, समस्त व्यावहारिक प्रयोजनों के लिये आङ्गल बाह्य विश्व के साथ सम्पर्क बनाये रखने का हमारा मुख्य साधन होने के लिये चालू रहेगी। इसके अतिरिक्त, आङ्गल एक अन्ताराष्ट्रिय भाषा है और यदि अनर्थकारी घटनाएँ विश्व-शक्तियों का वर्तमान आसनों से परिवर्तन

1 Paragraphs. 2 Discourses. 3 Continuance. 4 Factors.

नहीं करतीं तो यह शीघ्र विश्व-भाषा होगी। आङ्गल हमारे राष्ट्रिय व्यसन[1] का इतना एक भाग हो चुकी है कि एक सर्वथा भिन्न प्रणाली में एक पात[2] असामान्य जोखिमों द्वारा आकृष्ट प्रतीत होता है। तथापि हमें यह प्रतीत होता है कि पात अपरिहार्य है। आङ्गल अतीत की भांति राज-भाषा के स्थान को अभिधृत करने के लिये चालू नहीं रह सकती। आङ्गल का प्रयोग जनता को दो राष्ट्रों में विभाजित करता है, वे कतिपय जो शासन करते हैं और वे अनेक जो शासित होते हैं, एक दूसरे की भाषा बोलने में असमर्थ, एवं परस्पर न समझते हुए। यह लोकतन्त्र का निषेध है। आङ्गल के उपयोग एवं नवीन भाषा तक एक परिवर्तन में तात्कालिक जोखिम चाहे जो हों, इस विषय के एक दीर्घावधि दृष्टिकोण से उपयोग का सन्तुलन परिवर्तन में ही है। आङ्गल को तब तक संधानीय-व्यापार के लिये माध्यम के रूप में चालू रहना होगा जब तक प्रान्त परिवर्तन के लिये तत्पर होते हैं और प्रान्तीय शैक्षणिक संस्थाएँ संधान-भाषा को पर्याप्त रूप से फैला चुकती हैं। तथापि, अन्ततः, आङ्गल राज-भाषा के रूप में दृष्टि से लुप्त हो जाएगी।

तथापि, आङ्गल को अध्ययन के लिये चालू रहना चाहिए। हमारे विद्यार्थियों को, जो उन पाठशालाओं में शिक्षण ले रहे हैं जो उन्हें या तो एक विश्वविद्यालय अथवा एक व्यवसाय में प्रवेशित करेंगे, अपने को ज्ञान के कोषों तक प्रवेश देने के लिये आङ्गल पर पर्याप्त आधिपत्य प्राप्त करना चाहिए, और विश्व-विद्यालयों में ऐसा कोई विद्यार्थी एक उपाधि लेने के लिये अनुमत

1 Habit. 2 Plunge.

नहीं होना चाहिए जो आङ्गल लेखकों की पुस्तकों को सुविधा-पूर्वक पढ़ने एवं समझने की योग्यता प्राप्त नहीं करता

७—विकल्प के रूप में संस्कृत

अन्य मनुष्य संस्कृत के दावों की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं। संस्कृत के दावे और भी अधिक साग्रह[1] हैं तथा हमारे हृदयों से एक अत्यन्त सबल अभ्याह्वान[2] करते हैं। परन्तु जबकि संस्कृत की महानता कभी विवाद में नहीं होनी चाहिए और भारत की विशेष भक्ति के लिये इसका अधिकारपूर्ण स्वत्व सन्देह में नहीं होना चाहिए, हम यह अनुभव किये बिना नहीं रह सकते कि संस्कृत को राज-भाषा बनाने के लिये प्रस्ताव पर्याप्ततः याथार्थिक नहीं हैं। (इसके कारण निम्नलिखित हैं)-

(१) संस्कृत उसके इतिहास के किन्हीं कालों में भारत की राज-भाषा थी, परन्तु वे समय वह थे जब राज्य एक सर्वथा राजतन्त्र था।

(२) संस्कृत अपने परिष्कार एवं चरम जटिलता के कारण कभी जनभाषा नहीं हो सकी।

(३) इसके अध्ययन एवं प्राप्ति को निरत परिश्रम के अनेक वर्षों की आवश्यकता होती है।

(४) यदि संस्कृत को उच्च शिक्षण की भाषा होना है तो शिक्षार्थी के समय का एक अत्यन्त पर्याप्त अनुपात वाचन[3] एवं भाषण की सुविधा प्राप्त करने में व्यय किया जाना होगा, और पाठशाला एवं महाविद्यालय की अवधि-पर्याप्त बढ़ी हुई होगी।

(५) और यदि उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों के प्रशिक्षण में संस्कृत—आङ्गल की अपेक्षा एक कहीं अधिक कठिन

---

1 Insistent.   2 Appeal.   3 Reading.

भाषा--का प्रयोग करने के लिये सफलता प्राप्त भी की जाती है, यह तथ्य बना रहता है कि आङ्गल के प्रयोग के परिणाम की भांति, संस्कृत में शिक्षित तथा उन बृहत्तर संख्याओं के बीच एक खाड़ी नियत हो जाएगी जो विश्वविद्यालयों तक जाने के लिये कभी समर्थ न होंगे।

(६) यदि संस्कृत को उच्च शिक्षण के माध्यम के रूप में स्वीकार किया जाता है, तो जहाँ तक वैज्ञानिक शब्द-भण्डार से सम्बन्ध है कोई लाभ नहीं होगा, क्योंकि इस सम्बन्ध में संस्कृत आधुनिक भारतीय भाषाओं की अपेक्षा अधिक अच्छी नहीं है।

(७) एक नई जटिलता यह होगी कि संस्कृत पद[1], शब्द एवं धातुएँ, जो आधुनिक भारतीय भाषाओं में अपने सर्वथा पारिभाषिक अर्थ को बनाये रख सकती हैं क्योंकि वे उनके लिये नवीन शब्द होते हैं, संस्कृत भाषा में ऐसा नहीं कर सकतीं क्योंकि उनमें अधिकांश सामान्य शब्द होंगे अथवा एक अपारिभाषिक महत्व रखने वाले शब्द। उन्हें पारिभाषिक अर्थों के साथ प्रयुक्त करना एक समधिक[2] कठिनाई होगी।

(८) इससे भी अधिक गम्भीर उच्च अध्ययनों के लिये पुस्तकें तैयार करने की समस्या है। स्पष्टतः ऐसी पुस्तकें केवल विज्ञान की विभिन्न शाखाओं के विशेषज्ञों द्वारा लिखी जा सकती हैं। अभाग्यवश ऐसे उच्च श्रेणी के वैज्ञानिक एवं विशेषज्ञ पाना असम्भव है जो संस्कृत भाषा के स्वामी हैं और जो संस्कृत में विशेषित निबन्ध उत्पन्न करने के योग्य हैं। आङ्गल द्वारा पढ़ाये हुए वैज्ञानिक पर्याप्त संस्कृत नहीं जानते

1 Vocables. 2 Additional.

यद्यपि वे इसका अपने विद्योचित जीवन[1] में किसी अवस्था पर अध्ययन किये हो सकते हैं, और ऐसे संस्कृत के पण्डित दुर्लभ हैं जो विज्ञान की किसी शाखा का पर्याप्त ज्ञान रखते हैं।

८—संधान[2] एवं प्रादेशिक[3] भाषाएँ : द्वैभाषिकवाद[4] संधानीय एकता एवं स्थानीय विभिन्नता : भारतीय भाषा-नीति

संधान-भाषा समस्त संधानीय क्रियाओं—सांस्कृतिक, शैक्षणिक एवं प्रशासनात्मक—के लिये प्रयुक्त होगी। प्रादेशिक भाषाएँ प्रान्तों में तथा संधान के एककों में तत्सम स्थिति अभिधृत करेंगी। परन्तु भारत के प्रत्येक प्रदेश एवं एकक को संधानीय क्रियाओं में अपना समुचित भाग लेने के लिये तथा अन्तर्प्रान्तीय समझ एवं एकता बढ़ाने के लिये समर्थ बनाने के लिये, शिक्षित भारत को द्वैभाषिक होने के लिये विचार करना है, और उच्चतर माध्यमिक एवं विश्वविद्यालय प्रक्रमों पर विद्यार्थियों को तीन भाषाएँ जाननी होंगी। स्पष्टतः प्रत्येक लड़के एवं लड़की को प्रादेशिक भाषा जाननी चाहिए, साथ ही उसे संधान-भाषा से परिचित होना चाहिए, और आङ्गल में पुस्तकें पढ़ने की योग्यता प्राप्त करनी चाहिए। यदि द्वैभाषिकवाद को समुचित रूप से बढ़ाया जाता है, तो वे समस्याएँ जो आङ्गल के प्रतिस्थापन से उठती हैं, क्रमशः साधित हो जाएँगीं।

शिक्षण एवं एक लोकतन्त्रात्मक समुदाय के कल्याण दोनों की दृष्टि से यह आवश्यक है कि उनका (तरुण युवकों का) अध्ययन उनकी प्रादेशिक भाषा के माध्यम से होना चाहिए।

---

1 Academic Career. 2 Federal. 3 Regional. 4 Bilingualism.

यद्यपि हम यह प्रस्वीकार करते हैं कि निकट भविष्य में प्रादेशिक भाषाएँ समस्त प्रान्तों में समस्त प्रक्रमों[1] पर शिक्षा का मुख्य माध्यमिक होंगी; हम इसे वाञ्छनीय समझते हैं कि विश्व-विद्यालयों को संधान-भाषा को या तो कुछ विषयों के लिये अथवा समस्त विषयों के लिये शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रयुक्त करने के लिये विकल्प[2] रखना चाहिए। उन महा-विद्यालयों के मार्ग में बाधाएँ नहीं डाली जानी चाहिएँ जो ऐसा प्रयोग करने की इच्छा करते हैं।

९—लिपि : देवनागरी

लिपि का प्रश्न भाषाओं के प्रश्न से ग्रथित है। सुविधा, मितव्ययिता एवं दक्षता के विचार स्पष्टतः सूचित करते हैं कि संधान-भाषा के लिये, जो राज्य द्वारा समस्त प्रशासनात्मक प्रयोजनों के लिये प्रयुक्त होगी, एक लिपि प्रयुक्त की जानी चाहिए। देवनागरी, जो भारत में जनता की बृहत्तम संख्या द्वारा प्रयुक्त की जाती है, समुचित वरण[3] होने के लिये प्रतीत होती है। इन युक्तियों पर (जो देवनागरी के स्थान पर रोमन लिपि के पक्ष में दी जाती हैं) विचार न करना सुगम नहीं है क्योंकि एक विश्व-लिपि स्वीकार करने के पर्याप्त लाभ होते हैं, फिर भी भारत में प्रवर्तमान परिस्थितियों की समग्रता में, हमारा मत यह है कि संधान-भाषा नागरी लिपि में लिखी जानी चाहिए। हमें विदित है कि इसमें सुधार करने के लिये यत्न किये जा रहे हैं, और हम आशा करते हैं कि वे तब तक चालू रहेंगे जब तक इसके स्पष्ट दोष हटाये जाते हैं, परन्तु इसे एक सर्वथा भिन्न लिपि से प्रतिस्थापित करना वाञ्छनीय

1 Stages. 2 Option. 3 Choice.

नहीं है। इसका अर्थ यह नहीं है कि राज्य को अपने कृतों को यथोचित प्रकाशना[1] देने के लिये अन्य लिपियों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। जबकि नागरी को मुख्य लिपि बना रहना चाहिए, शासकीय नियम, उद्घोषणाएँ, आज्ञप्तियाँ[2], संकल्प इत्यादि अन्य लिपियों में भी प्रकाशित किये जाने चाहिएँ। इसे (उर्दू को) एक द्वितीय लिपि के रूप में प्रयोग करना एक पृथक् लाभ होगा।

१०—भाषाओं के विकास के लिये उपाय

(क) एक मण्डल की स्थापना

प्रथमतः उन शब्दों का एक वैज्ञानिक शब्द-भण्डार तैयार करने के लिये जो समस्त भारतीय भाषाओं में सामान्य हैं वैज्ञानिकों एवं भाषा-विज्ञों सहित एक मण्डल नियुक्त किया जाना चाहिए। इस मण्डल को उनके द्वारा निर्धारित नीतियों को कार्यान्वित करने के लिये शोधित[3] विद्वानों की सहायता लेनी चाहिए। मण्डल को भिन्न विज्ञानों में पुस्तकों की तैयारी के लिये भी प्रबन्ध करना चाहिए, जो समस्त भारतीय भाषाओं में की जानी चाहिए। शासन को इन प्रयोजनों के लिये पर्याप्त निधियाँ देनी चाहिए।

(ख) संधान-भाषा का शिक्षण

द्वितीयतः, प्रान्तीय शासनों को उच्चतर माध्यमिक पाठशालाओं, उपाधि महाविद्यालयों में, एवं विद्यालयों में समस्त श्रेणियों में संधान-भाषा का अध्ययन प्रस्तावित करने के लिये पग लेने चाहिए।

---

1 Publicity.　2 Decrees.　3 Paid.

६—*परीक्षाएँ*

१—समस्या का चिरकालिक स्वरूप एवं परिमाण

लगभग अर्द्ध शताब्दी से, परीक्षाएँ, जैसे वे कार्य करती रहीं हैं, भारतीय शिक्षा की सबसे बुरी विशेषताओं में से एक के रूप में प्रस्वीकृत की गई हैं। आयोगों एवं समितियों ने भारत में सम्पूर्ण शिक्षा-प्रणाली के ऊपर उनके प्रणाशी अधिरोहण[1] पर अपनी भीति[2] अभिव्यक्त की है। विश्वविद्यालयों के अपने निरीक्षण में हमने अध्यापकों एवं विद्यार्थियों से समानतया, उस अन्तहीन कहानी को सुना कि परीक्षाएँ किस प्रकार शिक्षण का उद्देश्य एवं अन्त हो चुकी हैं, किस प्रकार समस्त शिक्षण को उनके अधीन कर दिया गया है, वे किस प्रकार अध्यापक एवं विद्यार्थी में समस्त प्ररुचि[3] को मारती हैं, वे कितनी अनियमित अवैध, अविश्वसनीय एवं अपर्याप्त होती हैं, और वे किस प्रकार विश्वविद्यालय-जीवन के नैतिक स्तरों को भ्रष्ट करने के लिये प्रवृत्त होती हैं। हम विश्वस्त हैं कि यदि हमें विश्वविद्यालय-शिक्षण में एक एकल सुधार सुझाना है तो इसे परीक्षाओं का सुधार होना चाहिए।

२—वैषयिक परीक्षाएँ[4]

(क) *एक अच्छी परीक्षा की विशेषताएँ*

(१) प्रथमतः इसे मान्यता[5] रखनी चाहिए।

(२) इसे जो कुछ यह मापना-चाहती है उसे मापने के लिये समर्थ होना चाहिए।

(३) परीक्षा का उद्देश्य स्पष्ट एवं सुव्यक्त होना चाहिए।

---

1 Pernicious Domination. 2 Alarm. 3 Initiative.
4 Objective Tests. 5 Validity.

(४) इसे विश्वसनीय होना चाहिए।
(५) इसे पर्याप्त होना चाहिए।
(६) इसे वैषयिक होना चाहिए।
(७) इसे प्रबन्धन के लिये सुगम, अङ्कन के लिये सुगम, निर्वचन[1] के लिये सुगम होना चाहिए।

हम यथासम्भव शीघ्र समय पर भारत के विश्वविद्यालयों में ऐसी मान्य, विश्वसनीय, पर्याप्त वैषयिक परीक्षाओं की प्रस्तावना सुझाते हैं। इसके बिना यह भय है कि भारतीय उच्च शिक्षण अव्यवस्था में गिर जाएगा।

(ख) परीक्षाओं के प्रयोजन

वर्तमान परीक्षाओं का मुख्य प्रयोजन शिक्षण की वास्तविक विधा[2] से प्राङ्गारतः[3] संबद्ध नहीं है। हम यह अनुभव करते हैं कि परीक्षाएँ मुख्यतः शैक्षणिक उद्देश्य की दृष्टि से बनाई जानी चाहिएँ। उन्हें विद्यार्थियों के वरण[4] में, विद्यार्थियों के समुपदेशन[5] एवं मार्गप्रदर्शन में, उनकी प्रगति के मापन में, वर्तमान दशाओं के निदान में एवं प्रत्युपायों[6] के प्रकल्पन[7] में तथा अन्ततः शैक्षणिक प्राप्ति के निर्धारण में सहायता करनी चाहिए। विद्यार्थियों के प्रवरण एवं समुपदेशन में सहायता करने के अतिरिक्त, परीक्षाएँ अध्यापक के लिये एक महान् सहायता हो सकती हैं। फलपूर्ण एवं दक्ष अध्यापन अत्यन्त मुख्यतः विद्यार्थी के निष्पादन[8] के तथ्यों को जानने पर निर्भर करता है। तथ्यों को जानने के लिये एक मनुष्य को वैषयिक रूप से मापने के योग्य होना चाहिए।

---

1 To interpret.　2 Process.　3 Organically.　4 Choice.
5 Counselling.　6 Remedial Measures.　7 Devising.
8 Accomplishment.

(ग) परीक्षाओं के प्रकार

ये हैं (१) बुद्धि अथवा मनोवैज्ञानिक परीक्षाएँ। (२) निष्पन्न[1]-परीक्षाएँ। विभिन्न प्रयोजनों के लिये ये विभिन्न प्रकार की वैषयिक परीक्षाएँ विशेष लाभ रखती हैं जो भारत में उनके विस्तृत प्रयोग को उचित सिद्ध करती हैं।

३—परीक्षा-निर्माण के लिये एक यान्त्र[2]

हम यह विचार करते हैं कि यदि भारतीय शिक्षा-मन्त्रालय, भिन्न प्रान्तों में महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में प्रयोग के लिये अपेक्षित प्रादेशिक प्रमापित परीक्षाओं के बनाने के कार्य को लेने के लिये, उसके अपने एक यान्त्र की व्यवस्था करे, साथ ही भारत के विश्वविद्यालयों एवं अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालयों की सहायता एवं प्रोत्साहन करे, तो भारतीय शिक्षा की एक महान् सेवा की जा सकती है। वैषयिक परीक्षण की अभिधारणाओं[3] एवं प्रविधियों[4] से परिचित होने के लिये और प्रत्येक विश्व-विद्यालय में प्राप्य बनाई हुई क्षम प्रावैधिक मन्त्रणा के अधीन उनकी अपनी परीक्षाएँ बनाने के लिये, अपने अध्यापकों को सुविधाएँ प्रदान करने के लिये उसे विश्वविद्यालयों को प्रोत्साहित भी करना चाहिए।

४—निबन्ध-प्ररूप-परीक्षा[5]

(क) निबन्ध-प्ररूप एवं वैषयिक परीक्षाएँ

परन्तु हमारी यह बोध कराने की अभिलाषा नहीं है कि वैषयिक परीक्षण को आवश्यक रूप से परीक्षा के निबन्ध-

1 Achievement. 2 Machinery. 3 Conceptions.
4 Techniques. 5 Essay Type of Examinations.

प्ररूप को सर्वथा निकाल देना चाहिए। हम इसके दोषों के प्रति जीवित हैं, परन्तु यह कुछ उपयोग भी रखता है। इसके अतिरिक्त, आजकल केवल यही प्रचलित रीति है और शिक्षण के क्षेत्र में सबको पूर्णतया ज्ञात है। वैषयिक परीक्षण, मापन एवं मूल्यन की नवीन रीति की प्रस्तावना समय लेगी। प्रस्तावित होने पर भी, यह, हम यह अनुभव करते हैं, परीक्षा के निबन्ध-प्ररूप द्वारा अनुपूरित की जानी होगी। अतः, यह देखना आवश्यक है कि इस प्ररूप के स्पष्ट दोष यथा-शक्य शीघ्रता से कम किये जाएँ।

(ख) निबन्ध प्ररूप-परीक्षा के दोष

(१) सामान्यतः यह स्पष्टतः निर्धारित प्रयोजन नहीं रखती; अतः, यह अमान्य है।

(२) इसका न्यादर्शन[1] अत्यन्त स्वेच्छ एवं संसीमित होता है; यह अपर्याप्त होती है।

(३) इसका गणन प्रातीतिक[2] होता है और अतः अविश्वसनीय।

(ग) निबन्ध प्ररूप-परीक्षा के गुण

तथापि, परीक्षा के इस प्ररूप के अधिवक्ताओं द्वारा यह बनाए रखा जाता है कि :

(१) निबन्ध-प्ररूप परीक्षाएँ तैयार करने एवं देने में सुगम होती हैं,

(२) व्यवहारतः उन्हें पाठ्यक्रम के समस्त विषयों के लिये प्रयोग करना सम्भव होता है,

(३) और कि जहाँ तक वे तुलना के लिये, तथ्यों के निर्वचन[3] के लिये, समालोचना के लिये, तथा उच्च

1 Sampling. 2 Subjective. 3 Interpretation.

मानसिक क्रिया के अन्य रूपों के लिये आह्वान करते हैं, वहाँ तक वे वैषयिक परीक्षा द्वारा आधारित मूल्य रखती हैं।

अतः इस प्ररूप में सुधार करना भी समस्त शिक्षा-सङ्गठनों का सम्बन्ध होना चाहिए। हम यह सुझाते हैं कि यह सुधार परीक्षण-विषयवस्तु के चुनाव में, प्रश्नों के निर्माण में, और परिणामों के न्यादर्शन में लाया जा सकता है। परीक्षा का ठीक-ठीक प्रयोजन परीक्षक एवं विद्यार्थियों दोनों द्वारा समझा जाना चाहिए। परीक्षा के इस प्ररूप में बल स्पष्टतः विचार, तीक्ष्ण तर्क, समालोचनात्मक विवरण, रचनात्मक निर्वचन तथा पाठचर्या की सामग्री के सम्बन्ध में मानसिक क्रिया के अन्य प्रकारों पर होना चाहिए। इसका मुख्य सम्बन्ध सम्बन्धों एवं समस्याओं में संनिहित विषयों से होना चाहिए।

५—परीक्षण एवं मूल्यन की वैज्ञानिक रीतियों का अध्ययन

हम यह अभिस्ताव करते हैं कि शिक्षा-मन्त्रालय द्वारा, और भारतीय शिक्षा व्यवहार में इस अध्ययन के परिणामों को लागू करने की दृष्टि से विश्वविद्यालयों में शैक्षणिक परीक्षण एवं मूल्यन की वैज्ञानिक रीतियों के एक गहन अध्ययन का उपक्रमण हो।

६—वैषयिक परीक्षाओं की सज्जा एवं प्रयोग

शिक्षा-मन्त्रालय को ऐसे एक अथवा दो विशेषज्ञ रखने चाहिए जो वैषयिक परीक्षाओं की सज्जा एवं प्रयोग में दक्ष हों और जो अन्तर्निहित प्रक्रियाओं एवं सिद्धान्तों को समझते हों, अधिमानतः[1] ऐसे व्यक्ति जो इस क्षेत्र में महाविज्ञ उपाधि[2] रखते हों।

---

1 Preferably. 2 Doctors Degree.

७–परीक्षक मण्डल

प्रत्येक विश्वविद्यालय को सहायकों के ऐसे एक लघु कर्मचारिवृन्द के साथ एक स्थायी पूर्णकालिक परीक्षक-मण्डल रखना चाहिए जो लिपिक[1] एवं नैत्यक[2] कार्य कर सकता है। मण्डल के समस्त सदस्यों को, जिनकी संख्या में तीन से अधिक होने की आवश्यकता नहीं, न्यूनातिन्यून पाँच वर्ष का अध्ययन-अनुभव रखना चाहिए और कम से कम एक व्यक्ति को परीक्षण एवं सांख्यिकी[3] के क्षेत्र में एक उच्च विशेषज्ञ व्यक्ति होना चाहिए। परीक्षक-मण्डल के दो मुख्य कार्य (निम्नलिखित) होंगे :

(१) अपनी श्रेणी-परीक्षाओं के लिये वैषयिक परीक्षाओं की प्रकल्पना[4] एवं रचना करने और पाठ्यक्रम की नियतकालिक पुनरावृत्ति के लिये मानदण्ड एवं सामग्री की व्यवस्था करने में प्रविधियों[5] से सम्बन्धित विश्वविद्यालय अथवा महाविद्यालय शिक्षण-कर्मचारिवृन्द को मन्त्रणा देना।

(२) संबद्ध महाविद्यालयों में प्रगति-परीक्षाओं[6] के प्रयोग द्वारा नियतकातिक एवं साद्यन्त[7] निरीक्षण करना।

८–मनोवैज्ञानिक एवं निष्पन्न-परीक्षाओं[8] की समूहा[9]

हम यह अभिस्ताव करेंगे कि बारह वर्ष के शिक्षण के अन्त पर अन्तिम परीक्षा के लिये उच्चतर माध्यमिक विद्यालय-छात्रों में प्रयोग के लिये मनोवैज्ञानिक एवं निष्पन्न-परीक्षाओं की एक समूहा विकसित हो। यह, अन्य संबद्ध सूचना के साथ,

---

1 Clerical. 2 Routine. 3 Statistics. 4 Devising. 5 Techniques. 6 Progress Tests. 7. Thorough. 8 Achievement Tests. 9 Battery.

विश्वविद्यालय में प्रथम उपाधि-पाठचर्या के लिये एक प्रवेश-परीक्षा के प्रयोजन का निर्वहण करेगी।

९—प्रगति-परीक्षाएँ

हम यह अभिस्ताव करते हैं कि श्रेणी-कोष्ठ-प्रगति[1] के मार्ग-प्रदर्शन के लिये एवं मूल्याङ्कन के लिये वैषयिक प्रगति-परीक्षाओं का एक कुलक[2] भी तत्काल विकसित किया जाना चाहिए।

१०—महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय में प्रवेश

महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय में प्रवेश के प्रयोजनों के लिये, परीक्षाओं को पर्याप्त समधिक सूचना के साथ और जब स्थितियाँ इसे बनाएँ तब विद्यार्थियों के समक्ष-कारों[3] के साथ सहगत होना चाहिए। महाविद्यालय में उसके अभिलेख एवं सफलता की शक्यता से सङ्गत समस्त सूचना के संग्रह द्वारा प्रत्येक विद्यार्थी का एक शिक्षा-पार्श्वचित्र[4] प्राप्त करना वाञ्छनीय है।

११—प्रवर्तमान परीक्षा-प्रणाली में दोष-शोधन के लिये अभिस्ताव

(क) विशेष राज्य परीक्षाएँ

शासन एवं प्रशासनात्मक सेवाओं के लिये एक विश्वविद्यालय-उपाधि अपेक्षित नहीं होनी चाहिए। विभिन्न सेवाओं में भर्ती के लिये विशेष राज्य परीक्षाएँ संघटित की जानी चाहिएँ और जो कोई उन्हें लेने की अवेक्षा[5] करे उसके लिये खुली होनी चाहिएँ। परीक्षा लेने के विशेषाधिकार के

---

1 Class Room Progress. 2 Set. 3 Interviews.
4 Educational Profile. 5 Care.

लिये एक लघु निक्षेप[1] विहित की जा सकती है, और प्राप्ति के एक निश्चित न्यूनतम स्तर से सन्तुष्ट करने वाले अभ्यर्थी[2] एक प्रत्यर्पण[3] के लिये अधिकारी हो सकते हैं, जिससे यह (राज्य-परीक्षा) सेवा-आयोगों के कार्य में अनावश्यक रूप में परिवर्धन न कर सके।

(ख) श्रेणीकार्य के लिये श्रेयस्[4]

अतः, हम यह अभिस्ताव करते हैं कि प्रत्येक विषय के लिये आरक्षित अङ्कों में से $\frac{1}{3}$ शिक्षण-क्रम में किये गये कार्य के लिये आरक्षित हों और कि यह अबसे बी० ए० तथा बी० एस-सी०, एम० ए० तथा एम० एस-सी०-परीक्षाओं के लिये अध्यापन-विश्वविद्यालयों में अभिस्वीकृत हों। संबद्धक[5] विश्व-विद्यालयों को भी संबद्ध महाविद्यालयों में इस आन्तरिक निर्णय के लिये न्यूनाधिक एकरूप अङ्कन की एक रीति का उद्विकास करने के लिये तत्काल पग उठाने चाहिएँ। स्तरों की एकरूपता आरोपित[6] करने के लिये संबद्ध महाविद्यालयों के पर्यवेक्षण[7] एवं निरीक्षण[8] के लिये एक प्रभावशाली यान्त्र[9] बनाया जाना चाहिए। उत्तर-स्नातक पाठचर्याओं में, इस पाठचर्या-श्रेयस् के एक भाग के रूप में अवधि-प्रश्नपत्र अपेक्षित हो सकते हैं।

(ग) नियतकालिक परीक्षाएँ

प्रथम उपाधि के लिये तीन वर्षें अन्तर्ग्रस्त होंगी। यह वाञ्छनीय नहीं है कि समस्त कार्य अवधि के अन्त पर एक परीक्षा के अधीन होना चाहिए। उसमें अनावश्यक मानसिक

1 Deposit. 2 Candidate. 3 Refund. 4 Credit.
5 Affiliating. 6 To insure. 7 Supervision. 8 Inspection.
9 Machinery.

आयास[1] का समावेश होगा। पाठचर्या के अनुभाग[2], जो न्यूनाधिक स्वयंपूर्ण हों, तीन वर्ष की अवधि पर विस्तरित नियतकालिक परीक्षाओं के अधीन किये जा सकते हैं। कार्य के ऐसे स्वयंपूर्ण एककों की एक योजना प्रत्येक विश्वविद्यालय द्वारा तैयार की जानी चाहिए और विद्यार्थी के लिये उपाधि प्राप्त करने से पूर्व समस्त एककों में उत्तीर्ण होना आवश्यक होना चाहिए। परीक्षा, यथा-शक्य, संविभागों में विषयानुसार, तथा समयानुसार दी जानी चाहिए।

(घ) परीक्षक

परीक्षक बड़ी सावधानी से चुने जाने चाहिएँ। किसी भी मनुष्य को एक उस विषय में एक परीक्षक के रूप में सेवा नहीं करनी चाहिए जिसे वह कम से कम पाँच वर्ष तक न पढ़ा चुका हो। प्रथम उपाधि परीक्षा के लिये तीन वर्ष एक बाह्य परीक्षक के रूप में संतत सेवा की सीमा होनी चाहिएँ। तीन वर्ष के एक अन्तराय[3] के पश्चात् सेवा पुनः अनुज्ञात[4] हो सकती है।

(ङ) सफलता के स्तर

परीक्षाओं में सफलता के स्तर यथा-शक्य एकरूप होने चाहिएँ और उठाये जाने चाहिएँ। हम यह सुझाते हैं कि एक अभ्यर्थी को एक प्रथम श्रेणी प्राप्त करने के लिये ७०% अथवा अधिक अङ्क एक द्वितीय (श्रेणी) के लिये ५५ से ६९% और एक तृतीय (श्रेणी) के लिये कम से कम ४०% प्राप्त करने चाहिएँ। विद्यार्थी तीन वर्गों में से प्रत्येक में वर्ण-क्रम में क्रमबद्ध होंगे।

(च) अनुग्रहाङ्क-प्रणाली[5]

हम यह अभिस्ताव करते हैं कि प्रथम उपाधि तथा समस्त

---

1 Strain. 2 Sections. 3 Break. 4 Permitted.
5 System of Grace Marks.

उच्च परीक्षाओं लिये अनुग्रहाङ्क प्रदान करने की प्रणाली उत्सन्न[1] हो।

(छ) *मौखिक परीक्षाएँ*[2]

मौखिक परीक्षाएँ केवल उत्तर-स्नातक एवं व्यावसायिक उपाधियों के लिये प्रयुक्त होनी चाहिएँ। तथापि, वे अध्ययन के उस क्षेत्र के आधारों में अभ्यर्थियों की क्षमता की परीक्षा करने के लिये आकल्पित होनी चाहिएँ जिसका अङ्ग उसके अन्वेषण की समस्या हो।

१०—छात्र

१—छात्रों का महत्व : विश्वविद्यालयों के कार्य

युवक का शिक्षण और नवीन सत्य का आविष्कार विश्वविद्यालयों के मुख्य कार्य होते हैं। आज के लड़के और लड़कियाँ कल के परिपक्व नागरिक होते हैं। विश्वविद्यालय मानवीय एवं भौतिक अंशकों[3] के सपिण्ड[4] होते हैं परन्तु छात्र इनमें से अत्यंत मूल्यवान् होता है। भवन एवं उपकरण आवश्यक हैं, एक क्षम कर्मचारिवृन्द और अधिक जीवनावश्यक, परन्तु ये साधन होते हैं, जीवित रहने तथा एक लोकतन्त्रात्मक समाज में अपना स्थान लेने के लिये समुचित रूप से सज्ज विद्यार्थी अत्यन्त भक्तिनिष्ठ रूप से इच्छित होने के लिये साध्य होता है। युवक मस्तिष्कों का मोक्षण, वैयक्तिक गरिमा को चेतनता का जागरण, और मानव प्रगति एवं सेवा के हेतु नवसैनिकों का धर्मार्पण[5],—यह विश्वविद्यालयों का महानतम् कार्य होता है। मानवीय आत्मा के शिक्षण एवं विकास की अपेक्षा अधिक

1 Abolished. 2 *Viva Voce.* 3 Elements. 4 Conglomerations. 5 Consecration.

गम्भीर कर्तव्य धरती पर नहीं है। छात्र विश्वविद्यालय के लिये नहीं बनाया गया है, परन्तु विश्वविद्यालय का अस्तित्व छात्र के लिये होता है और, अतः, इसे ऐसे किसी यत्न को टालना और ऐसी किन्हीं युक्तियों को चूकना नहीं चाहिए जो समस्त समतलों, शारीरिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक, पर छात्र की शक्यताओं की पूर्णतम एवं अत्यन्त पूर्ण प्राप्ति की उन्नति कर सकती हैं। एक छात्र के लिये एक विश्वविद्यालय में शिक्षा अभिरुचि एवं उपभोग का एक स्रोत होनी चाहिए, उसकी विशेषता चाहे जो हो; प्रत्येक छात्र को एक बौद्धिक व्यसन, मस्तिष्क का एक दृष्टिकोण, सामाजिक व्यवहार का एक स्वभाव विकसित करना चाहिए।

२—छात्रों का चुनाव

स्थूल रूप रेखा में, चुनाव की नीति उस प्रत्येक लड़के एवं लड़की को, जो बौद्धिक एवं शारीरिक शक्तियाँ रखती है, चरित्र एवं व्यसन एवं इन्हें सुधारने के उद्योग उसकी अन्य महत्त्वाकांक्षाओं को प्राप्त करने के लिये प्रत्येक शक्य अवसर देने की वाञ्छनीयता पर आधारित होनी चाहिए। इसकी केवल वैयक्तिक सफलता एवं प्रसन्नता के लिये ही आवश्यकता नहीं होती है, परन्तु एक लोकतन्त्रात्मक समाज में समाज-कल्याण भी अन्य प्रकार से अभिरक्षित नहीं किया जा सकता। इसे अत्यधिक सबल नहीं बनाया जा सकता कि हम यह विचार करते हैं कि समस्त विश्वविद्यालयों को स्वतन्त्र तथा उनके लाभों को योग्य (व्यक्तियों) के लिये समान रूप से प्राप्य होना चाहिए, और साम्प्रदायिकता की वियोजक प्रवृत्तियों[1] एवम्

1. Disintegrating Tendencies.

पक्षपात के समस्त रूपों का देशनिकाला किया जाना चाहिए। प्रथम उपाधि पाठचर्या में, पाठचर्याओं की एक यथा-शक्य विविधता प्रदान करने के लिये प्रत्येक विश्वविद्यालय को अपना अधिकतम करना चाहिए। निर्वाह-व्यय ऐसा हो गया है कि अनेक छात्र अपने गृहों के सामीप्य में स्थित संस्थाओं के अतिरिक्त (अन्यत्र) शिक्षा-समर्थ नहीं हो सकते, और प्रत्येक विश्वविद्यालय को इनमें से इतने तरुण व्यक्तियों की सेवा करने के लिये प्रयास करना चाहिए जितनों के लिये इसके संसाधन अनुज्ञा दें। अन्यत्र जाने के लिये सु-अर्हताप्राप्त[1] छात्रों को जन्म अथवा स्थिति के दैवयोग के कारण शिक्षा से वञ्चित नहीं किया जाना चाहिए। उत्तर-स्नातक, व्यावसायिक, एवम् उच्च अन्वेषण स्तरों पर, जहाँ व्यय उच्चतम हो जाता है और छात्र अपेक्षया कम होते हैं, भिन्न संस्थाओं के बीच विशेषीकरण एवम् परस्पर सम्बन्ध की आवश्यकता होती है। इन स्तरों पर विश्वविद्यालयों एवम् महाविद्यालयों में सेवा का विभाजन होना चाहिए और पाठचर्याओं के द्विगुणन[2] को टाला जाना चाहिए।

३—छात्रवृत्ति-परीक्षाएँ

केवल निर्धनता के आधारों पर, किसी वस्तुतः प्रतिभाशाली छात्र को अपने विद्योचित जीवन का अनुसरण करने से नहीं रोका जाना चाहिए, और मध्यमा महाविद्यालय में एवम् विश्वविद्यालय में, उसके शिक्षण एवम् संधारण के लिये प्रबन्ध करना राज्य का कर्तव्य होना चाहिए। समुदाय के मेधावी सदस्यों का आविष्कार करना और अवसर देना विश्वविद्यालयों का

1 Well-Qualified.   2 Duplication.

कार्य होना चाहिए। इस प्रयोजन के लिये हम छात्रवृत्ति-परीक्षाओं की संस्थापना का अभिस्ताव करते हैं जिनमें निर्धन परन्तु दीप्त छात्रों को छात्रवृत्तियों के लिये स्पर्धा करनी चाहिए। प्रज्ञावान छात्रों को पाठशाला से अपने विश्वविद्यालय-जीवन के अन्त तक अपना मार्गारोहण करने में समर्थ बनाने के लिये एक प्रकार की "छात्रवृत्ति-सीढ़ी[1]" की व्यवस्था की जानी चाहिए। छात्रवृत्ति-परीक्षाओं का उद्देश्य, अर्जित सामग्री की अपेक्षा योग्यता के साक्ष्य[2] को अधिक महत्व देते हुए, मुख्यतः भावी विकास एवम् प्राप्ति-प्रतिज्ञा की दृष्टि से अभ्यर्थियों का चुनाव करना होना चाहिए। इन छात्रवृत्तियों को, आजकल की भाँति १६) अथवा २०) के मूल्य का नहीं होना चाहिए, परन्तु विश्वविद्यालय में छात्र के शुल्क एवम् उसके निर्वाह-व्यय का आच्छादन करना चाहिए; एक मध्यमा महाविद्यालय में उनका मूल्य लगभग ६०) और विश्वविद्यालय में ८०) होना चाहिए। इन छात्रवृत्तियों के निर्णय के लिये अकेली योग्यता ही कसौटी होनी चाहिए। एक "साधन-परीक्षा[3]" केवल परीक्षा के परिणामों के प्रकाशित होने के पश्चात् ही प्रयुक्त की जानी चाहिए। उन व्यक्तियों को, जो अपनी सामाजिक-स्थिति अथवा आय द्वारा अब तक अपवर्जित[4] रहे हैं, विश्वविद्यालयों के लाभों के लिये प्रवेशों से वञ्चित नहीं रखा जाना चाहिए।

४—स्वास्थ्य

अच्छा स्वास्थ्य कारकों[5] के एक समूह पर आश्रित होता है, परन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण (कारक ये) हैं : (क) भैषजिक

---

1 Scholarship Ladder. 2 Evidence. 3 Means Test.
4 Excluded. 5 Factors.

अवेक्षा[1], निवारक[2] एवं प्रत्युपाय[3] दोनों, (ख) ठीक प्रकारों का पर्याप्त भोजन, (ग) विनोद, (घ) वैयक्तिक व्यसन[4]। एक महाविद्यालय अथवा एक विश्वविद्यालय के स्वास्थ्य-कार्यक्रमों को इन कारकों पर बल देना चाहिए।

(क) भैषजिक अवेक्षा

समस्त विद्यार्थियों, पुरुषों एवं स्त्रियों दोनों, को प्रवेशिका[5]-समय पर, और इसके पश्चात् कम से कम एक वर्ष में एक बार, एक पूर्ण स्वतन्त्र शारीरिक परीक्षण दिया जाना चाहिए। उन आवास विश्वविद्यालयों में, जो आयुर्विज्ञान-महाविद्यालय[6] रखते हैं, छात्रों के लिये शारीरिक परीक्षण के प्रबन्ध सहित स्वास्थ्य-कार्यक्रम कठिन न होगा। प्रशासनात्मक एवं प्रावैधिक योग्यता सहित एक पूर्ण-कालिक चिकित्सक को विश्वविद्यालय-चिकित्सक के रूप में मनोनीत किया जाना चाहिए और चिकित्सालय-संसाधनों का भाग छात्र की अवेक्षा एवं सेवा के लिये प्राप्य बनाया जाना चाहिए। विश्वविद्यालय-चिकित्सक शारीरिक परीक्षण के प्रबन्ध के लिये उत्तरदायी होगा। किसी उस विश्वविद्यालय में, जो एक आयुर्विज्ञान-महाविद्यालय नहीं रखता, एक मुख्य चिकित्सक के अधीन चिकित्सकों, प्रविधिज्ञों[7] तथा उपचारिकाओं के दक्ष कर्मचारिवृन्द के साथ एक चिकित्सालय अथवा रुग्णालय[8] स्थापित करना आवश्यक है। जिला-नगरों में स्थित महाविद्यालय जिला स्वास्थ्य-केन्द्र से लाभ उठा सकते हैं, जो

1 Medical Care. 2 Preventive. 3 Remedial. 4 Personal Habits. 5 Matriculation. 6 Medical Colleges. 7 Technicians. 8 Infirmary.

छात्र-स्वास्थ्य-अवेक्षा में शारीरिक परीक्षण एवं कुछ अन्य सहायता देने में सहयोग देगा। शारीरिक परीक्षण से पूर्व प्रत्येक छात्र से उसके भैषजिक इतिवृत्तिका[1] विवरण अपेक्षित होना चाहिए, और प्रवेशिका के लिये शारीरिक परीक्षण द्वारा स्वच्छकरण एक अपेक्षा होनी चाहिए। सांक्रामिक[2], चिर-कालिक[3], अथवा स्थानिक[4] रोगों को सहन करने वाले छात्रों को प्रवेशिका से तब तक वञ्चित रखा जाना चाहिए, जब तक विश्वविद्यालय उनके पृथक्करण एवं उपचार के लिये सुविधाएँ प्राप्य नहीं रखता, जो उपचार करने योग्य रोग रखते हैं। हम यह अभिस्ताव करते हैं कि समस्त छात्रों के लिये चेचक के लिये मसूरित[5] एवं विषूची[6], आन्त्रज्वर[7], तथा महामारी के लिये अन्तःक्रामित[8] होना आवश्यक होना चाहिए। समस्त कर्मचारिवृन्द एवं विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों के सेवायुक्त, विशेषतः वे जो भोजन का हस्तन[9] करते हैं उस समय परीक्षित होने चाहिएँ जब प्रथम बार लगाये जाते हैं और इसके पश्चात् पीछे कम से कम एक वर्ष में एक बार। छात्र विश्वविद्यालय-चिकित्सक को अथवा रुग्णालय को अस्वस्थता की सूचना देने के लिये अनुदेशित[10] होने चाहिएँ। सह-शिक्षणा-त्मक संस्थाओं में एक महिला चिकित्सक होना चाहिए जो लड़कियों के लिये अवेक्षा कर सके। समस्त छात्रों का भैषजिक-इतिवृत्त एवं अभिलेख पत्रकों[11] पर रखा जाना चाहिए और चिकित्सालय तथा पञ्जीकार[12] अथवा प्राचार्य, जैसी स्थिति हो

1 Medical History. 2 Infectious. 3 Chronic.
4 Endemic. 5 Vaccinated. 6 Cholera. 7 Typhoid.
8 Inoculated. 9 Handling. 10 Instructed. 11 Cards.
12 Registrar.

सके, के कार्यालय में भी नस्तीयित[1]। स्वास्थ्य-विभाग का एक कर्तव्य अस्वस्थता अथवा शारीरिक निर्योग्यता के कारण अनुपस्थिति के क्षमादान देना होना चाहिए। शरीरतः अयोग्य छात्रों के लिये शारीरिक शिक्षण लेना और योग्या[2] करना आवश्यक नहीं होना चाहिए। गम्भीर आपातिक[3] स्थितियों के अतिरिक्त, जनक एवं संरक्षकों के अनुमोदन बिना महाशल्यकर्म[4] नहीं किये जाने जाहिएँ। परीक्षा के पश्चात्, यदि छात्र गम्भीर दोष, या तो शारीरिक अथवा मानसिक प्रकार के, रखने के लिये पाये जाते हैं, तो उनके लिये प्रवेशिका अस्वीकृत कर दी जानी चाहिए, अथवा अभिलेख बनाये जाने चाहिएँ और शोधक उपायों का उपक्रमण किया जाना चाहिए। आँखों, कानों, भाषण, प्रसनीवाताम[5], गलवाताम[6], इत्यादि मानसिक बाधाओं के दोष लिखे जाने चाहिएँ और जब सम्भव हो तब चिकित्सा लागू की जानी चाहिए। छात्र की अवेक्षा में मनःस्वास्थ्य[7] को एक महत्वपूर्ण स्थान लेना चाहिए। निवारक सेवा औषध में स्वच्छता एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। स्वास्थ्य-सेवा में मैदान, भवनों, छात्रावासों, जल-प्रदाय[8] तथा संस्था-स्थल-पृथक्[9] निवास-स्थानों के निरीक्षण का समावेश होना चाहिए। मच्छरों के जनन-स्थान एवं अन्य रोग-वाहक कीट और परजीव[10] समझे जाने चाहिएँ। रिक्त पात्र एवं अन्य मलबा हटा दिया जाना चाहिए और भूमि स्वच्छ रखी जानी चाहिए। फेरी वाले तथा भोजन-विक्रेता अनुज्ञप्त[12] होने चाहिएँ और

---

1 Filed. 2 Drill. 3 Emergencies. 4 Major Operations. 5 Adenoids. 6 Tonsils. 7 Mental Hygiene. 8 Supply. 9 Off-Campus. 10 Parasites. 11 Licensed.

उनकी वस्तुएँ निरीक्षित। समस्त परिकरों पर निरीक्षण एवं स्वच्छता के कार्य कठोरता से लागू किये जाने चाहिएँ, और स्वास्थ्य-विभाग को (उनकी) दशाओं पर नियमित प्रतिवेदन देने चाहिएँ।

(ख) आहारपोषण अथवा समुचित भोजन

इस अध्याय में अन्यत्र हम छात्रों के लिये भोजन-सुविधाओं की चर्चा करते हैं और भोजन-प्रशालों[1] तथा प्राशन-स्थापनों[2] में प्रशिक्षित आहार-विज्ञों[3] को रखने का समर्थन करते हैं। हम इसे यहाँ इस अवलोकन के साथ फिर से दुहराते हैं कि अनेक छात्र अधःपोषण[4] एवं कुपोषण[5] भोग रहे हैं जिसे शोधित किया जाना चाहिए, यदि मानसिक एवं शारीरिक दक्षता बढ़ाई जाने को है। निवासी छात्रों के शरीरों को बनाना सुगमता से सम्भव है। संस्था-स्थल-पृथक् संवासों में रहने वाले छात्रों की स्थिति में, जब तक समुचित भोजन का प्रबन्ध नहीं किया जाता है, तब तक ऐसे स्थानों को अनुमोदित सूची से छोड़ दिया जाना चाहिए। यह नियमित नियतकालिक निरीक्षण के लिये आह्वान करता है। इस सम्बन्ध में, भोजन, छात्रावासों एवं संस्था-स्थल-पृथक् भोजन-प्रशालों दोनों में, का हस्तन करने वाले समस्त व्यक्ति शारीरिक परीक्षण के अधीन कर दिये जाने चाहिएँ, और सांक्रामिक रोग-युक्त कोई व्यक्ति सेवायुक्त नहीं किया जाना चाहिए, अथवा यदि वे रोगसंक्रान्त हो जाते हैं तो चालू रहने के लिये अनुज्ञात नहीं होने चाहिएँ। संवास, भोजन-कोष्ठ तथा रसोईघर यदा कदा ही स्वच्छ होते

---

1 Dining Halls. 2 Feeding Establishments. 3 Dieticians.
4 Under-nourishment. 5 Malnutrition.

हैं जब तक नियमित एवं कठोर निरीक्षण न हों। उप-कुल-पतियों एवं प्राचार्यों को इस प्रकार के विषयों पर साप्ताहिक प्रतिवेदन आवश्यक बना देने चाहिएँ और जब अवसर माँग करे तब सत्वर प्रत्युपाय[1] कार्यवाही करनी चाहिए। अनेक छात्र कभी कभी एक चरम निर्धनता भोगते हैं। वे घर पर पर्याप्त भोजन प्राप्त नहीं करते अथवा वे उनके अपने अपर्याप्त साधनों पर एक शिक्षा के लिये संघर्ष कर रहे होते हैं। हम सुझाव देंगे कि उन महाविद्यालयों में, जहाँ छात्रों का एक पर्याप्त अनुपातन निर्धन है अथवा तनु संसाधनों[2] पर रह रहा है, उन छात्रों को जो अ-निवासी हैं मध्याह्न-भोजन दिया जा सकता है। यह भोजन आहार की आवश्यकताओं के उपयुक्त एक प्रकृति का होगा और एक अत्यन्त युक्तियुक्त मूल्य पर दिया जाएगा।

(ग) विनोद एवं शारीरिक-शिक्षण

केवल ऐसी क्रीड़ाओं जैसे मुष्टियुद्ध[3] एवं मल्लयुद्ध से संबद्ध, भूमितलकार्य[4], लघुव्यायामिकी[5], प्रेंखण-गोष्ठियाँ[6], भार-उद्वहन[7] द्वारा पेशी-विकास के लिये अभ्यासके रूपमें शारीरिक शिक्षण की अवधारणा[8] खेल एवं आखेट के एक विस्तृत कार्यक्रम से संबद्ध होनी चाहिए। शारीरिक शिक्षण-सेवि-वर्ग की व्यावसायिक स्थिति एवं वेतन विद्योचित शिक्षण के साथ सम के रूप में प्रस्वीकृत किया जाना चाहिए। हम यह अभिस्ताव करते हैं कि कुछ विश्वविद्यालयों में शारीरिक शिक्षण में उपाधि-पाठचर्याएँ

---

1 Remedial. 2 Slender Resources. 3 Boxing.
4 Ground Work. 5 Calisthenics. 6 Swinging Clubs.
7 Weight Lifting. 8 Conception.

स्थापित की जानी चाहिएँ। प्रत्येक प्रान्त में ऐसी कम से कम एक उपाधि-पाठचर्या होनी चाहिए। अतः, हम सबल रूप से अनुरोध करते हैं कि शारीरिक शिक्षण के सञ्चालक औषध के आधारभूत विज्ञानों के समावेश के साथ औषध अथवा शारीरिक शिक्षण में, महाविज्ञता-उपाधि[1] रखें और कि ज्यों ही सुविधाएँ अर्जित हो सकें त्यों ही उपाधि पाठचर्याएँ प्रदान करने वाले विश्वविद्यालय महाविद्यालय महाविज्ञता प्रदान करें। उच्च उपाधि के लिये पाठचर्याएँ बनाने के लिये विशेष समितियाँ नियुक्त की जानी चाहिएँ।

कुछ समयों पर लड़कियाँ खेलने के लिये सर्वथा अनुज्ञात[2] नहीं होनी चाहिएँ।

शारीरिक दृष्टि से अयोग्य के तथा उनके अतिरिक्त, जो नौछात्र-निकाय[3] में हैं, शारीरिक शिक्षण के दो वर्ष समस्त विश्वविद्यालय-छात्रों के लिये आवश्यक होने चाहिएँ। इसके लिये यह आवश्यक होगा कि शारीरिक शिक्षण के लिये समय-सारणी पर कुछ स्थान दिया जाए।

एक शारीरिक शिक्षण-विभाग का एक सुझाया गया संघटन (निम्नलिखित) है:—

शारीरिक शिक्षण-सञ्चालक			
(१)	(२)	(३)	(४)
शारीरिक शिक्षण-पाठचर्याएँ	व्यायाम, मुष्टियुद्ध एवं मल्लयुद्ध। भारतीय-अभ्यास।	अन्तर्विश्वविद्यालय एवं सामूहिक खेल	अभ्यन्तर-आखेट[4]

1 Doctorate Degree 2 Permitted. 3Cadet Corps.
4 Intra-mural Games.

अभ्यन्तर (आखेटों) में छात्रों, छात्रावासों, महाविद्यालयों, विभागों एवं निवास-समूहों के बीच स्पर्धा के उद्दीपन द्वारा, अभिरुचि की एक भीम मात्रा अन्तःक्षेपित[1] की जा सकती है। यदि पारितोषिक-पात्र[2] एवं अन्य पुरस्कार प्रदान किये जाते हैं, तो अभिरुचि में वृद्धि की जा सकती है। औलिम्पिक-नियमों के अधीन, पुरस्कार व्यक्तियों को नहीं दिये जाने चाहिएँ। विजयोपहार[3], पारितोषिक-पात्र तथा पुरस्कार एक दानी अथवा शारीरिक शिक्षण-विभाग अथवा अन्य प्रकार से प्रस्तुत किये जा सकते हैं। जेता उन्हें एक वर्ष के लिये रखेंगे और नाम तथा तिथियाँ उन पर अन्तर्लिखित[4] की जा सकती हैं।

(घ) वैयक्तिक व्यसन

अच्छे स्वास्थ्य का परिरक्षण व्यसनों में गहराई से बद्धमूल होता है। यदि हमारे तरुण व्यक्तियों एवम् स्त्रियों को वह शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य रखना है जो वैयक्तिक एवम् राष्ट्रिय शक्ति एवम् सुख के लिये आवश्यक है, तो पाठशाला-बच्चों में स्वास्थ्य-व्यसन सूत्ररञ्जित[5] होने चाहिएँ और महाविद्यालय प्रक्रम पर क्रमबद्ध रूप से अन्तर्निविष्ट।

५—राष्ट्रिय नौछात्र-निकाय

(क) महत्व

एक जनता के रूप में, हम एक स्वतन्त्र राष्ट्र का निर्माण करने के लिये शान्ति एवं अवसर की इच्छा करते हैं। हम पर प्रायः आक्रमण किया गया है और अपने परिरक्षण के लिये युद्ध करने के लिये विवश किये गये हैं। परम्परा अथवा निसर्ग[6]

---

1 Injected. 2 Cups. 7 Trophies. 4 Inscribed.
5 Ingrained. 6 Instrict.

द्वारा हम अग्राक्रामक[1] नहीं रहे हैं। यह विश्व परिनिष्पत्ति का स्वाभाविक गृह नहीं है। यह संयोग एवं विभ्रम का राज्य प्रतीत होता है। चित्त-चाञ्चल्य प्रत्यक्षतः वस्तुओं, महान् एवं लघु, में दया के बिना शासन करते हैं, आदर्श प्राप्ति[2] के लिये यत्न एवं कठिनता द्वारा संघर्ष करते हैं। जब अपने सम्मुख आदर्श रहे हों और इसकी ओर यत्न कर रहे हों, तब हमें उन नियमों एवं संस्थाओं के सापेक्ष औचित्य-समर्थन को अस्वीकार करना चाहिए जो सेनाओं, आरक्षी[3] एवं कारागारों का प्रयोग करते हैं। एक (ऐसे) विश्व में जहाँ समस्त मनुष्य सन्त नहीं होते, शक्ति अपना स्थान रखती है। प्रक्षुब्ध को रोकना, असहाय की रक्षा करना और मनुष्य एवं मनुष्य तथा समूह एवं समूह के बीच व्यवस्था रखना आवश्यक होता है।

(ख) नौछात्र-निकाय की स्थापना एवं उद्देश्य

राष्ट्रिय नौछात्र-निकाय भारत शासन के अधिनियम (१९४८) द्वारा स्थापित किया गया है और आयोग के समक्ष साक्ष्यों की एक संख्या से अनुग्रह एवं समर्थन प्राप्त किया है। राष्ट्रिय नौछात्र-निकाय के उद्देश्य, जैसाकि निकाय-संचालकालय[4] द्वारा दिये गये हैं, (निम्नलिखित) हैं:—

"(१) नेतृत्व, चरित्र, मित्रता एवं सेवा के आदर्श का विकास;

(२) विस्तृततम सम्भव सीमा तक देश की प्रतिरक्षा में अभिरुचि का उद्दीपन।"

यह एक प्रभावशाली प्रकार से अनुशासन अन्तर्निविष्ट करता है क्योंकि यह आत्म-नियन्त्रण एवं ढङ्ग, सहयोग-भावना,

---

1 Aggressors. 2 Realisation. 3 Police. 4 Directorate.

आदेश देने एवं लेने की योग्यता, और सर्वोपरि उत्तरदायित्व की एक भावना एवं चरित्र का निर्माण सिखलाता है। अनेक उपसृष्टियाँ[1] हैं, जिनमें से शारीरिक स्वास्थ्य के व्यसनों का सूत्ररञ्जन एवं स्वच्छता के स्तर हैं।

(ग) नौछात्र-निकाय का संघटन

नौछात्र-निकाय तीन संभागों[2] में भर्ती किये जा रहे हैं: (१) ज्येष्ठ-संभाग, (२) कनिष्ठ-संभाग, (३) बालिका-संभाग। अधिकारी होने के लिये चुने गये शिक्षण-वर्ग को निम्नलिखित अर्हताएँ धारण करनी चाहिएँ: (१) २५ वर्ष से कम और ३८ वर्ष से अधिक आयु का नहीं होना चाहिए, (२) अच्छे स्वास्थ्य का; तथा स्वास्थ्य दृष्टि से योग्य होना चाहिए, (३) यदि सम्भव हो, तो अपने स्नातक-पूर्व दिनों में यू० ओ० टी० सी० का एक सदस्य रहा होना चाहिए, (४) सैनिक विषयों पर कुशाग्र होना चाहिए और राष्ट्रिय नौछात्र-निकाय के विषय में उत्साही होना चाहिए, (५) यदि सम्भव हो, तो एक खिलाड़ी होना चाहिए, (६) उन्हें, जो शातघ्न[3] एवं संकेत-एककों में अधिकारी होने के लिये हैं, अधिमानतः गणित एवं विज्ञान के प्राध्यापक होना चाहिए। शिक्षक-वर्ग को, शिक्षण के एक उपायोज[4] पर अग्रसर होने से पूर्व, अधिनियम द्वारा निर्धारित नियमों एवं विनियमों का पालन करना स्वीकार करना चाहिए। एक स्थायी सेना एकक के साथ पदाति-सेना[5] एवं भैषजिक एककों के लिये तीन मास तथा समस्त अन्य एककों के लिये चार मास का प्रशिक्षण आवश्यक होगा। ज्येष्ठ-संभाग के समस्त अधिकारी, निम्नलिखित पदोन्नतियों के साथ, उप-

---

1 By-products.   2 Divisions.   3 Artillery.
4 Attachment.   5 Infantry.

बलपति[1] के रूप में आयुक्त[2] होंगे : तीन वर्ष पश्चात्, बलपति[3], आठ वर्ष पश्चात्, महाबलपति[4], पन्द्रह वर्ष पश्चात्, उप-बलाधिपति[5]। वे पैंतालीस की आयु पर सेवा-निवृत्त होंगे। आयोग यह सुझाता है कि वे संस्थाएँ जिन्हें पहले ही उप-एककों के एकक नहीं सौंपे जा चुके हैं और जिन्होंने आवेदन नहीं किया है, तुरन्त राष्ट्रिय नौसेना-निकाय, संचालकालय, प्रतिरक्षा-मन्त्रालय, नई दिल्ली[6], अथवा प्रान्तीय शासनों के सम्पर्क में आयें।

(घ) *नौछात्र-निकायों को प्रभावशाली बनाने के लिये सुझाव*

(१) केन्द्र को प्रान्तों एवं राज्यों से राष्ट्रिय नौछात्र-निकायों के प्रशासन के लिये, उत्तरदायित्व ले लेना चाहिए। अब आरम्भ होने वाले नव युग में राज्य अथवा प्रान्तीय सेनाओं के लिये आवश्यकता नहीं होनी चाहिए।

(२) केन्द्र को नियमित अधिकारियों एवं विश्वविद्यालयों में संशिक्षण के लिये व्यक्तियों का ब्यौरा देना चाहिए। अधिकारियों एवं व्यक्तियों की प्रकृति एवं संख्या एककों के परिमाण एवं प्रकृति पर निर्भर करेगी।

(३) केन्द्र को गणवेष[7] सहित समस्त उपकरण प्रदान करने चाहिए। यह ग्रीष्म प्रशिक्षण शिविरों का व्यय देगा और प्रत्येक नौछात्र को एक ऐसी लघु संराशि[8] अथवा

---

1 Second Lieutenants. 2 Commissioned. 3 Lieutenant.
4 Captain. 5 Major. 6 The National Cadet Corps Directorate, Ministry of Defence, New Delhi.
7 Uniform. 8 Commutation.

भत्ता अनुमत करना बुद्धिपूर्ण होगा जो प्रतिदिन एक भोजन की लागत के समान होगा।

(४) जहाँ एककों में अधिक उपकरण संनिहित हों अथवा यह एक ऐसी भारी प्रकृति की हो जैसे विमान, दुर्गयान[1], शातघ्न[2], इत्यादि, वहाँ केन्द्र को, जब आवश्यकता हो तब, उपकरण के समुचित गृह एवं अभिरक्षण के लिये, आयुधागारों[3] एवं विमान-शालाओं[4] के निर्माण के लिये अनुदान देने चाहिएँ। आयुधागारों एवं विमानशालाओं के चारों ओर दिन एवं रात दोनों में रक्षक रखे जाने चाहिएँ।

(५) उन नियमित अधिकारियों द्वारा, जो एककों से संबद्ध नहीं हैं, समस्त एककों का एक वर्ष में कम से कम एक बार एक पूर्ण निरीक्षण होना चाहिए। कार्यक्रम की प्रत्येक प्रावस्था एवं समस्त उपकरण जांचे जाने चाहिएँ और पालन पर ऐसे वर्ग-क्रम दिये जाने चाहिएँ जैसे श्रेष्ठ, अच्छा, सन्तोषजनक एवम् असन्तोषजनक।

(६) ग्रीष्म-शिविरों में, युद्धाभिनय[5] होने चाहिएँ जिनमें सेना एवं वायु (सेना)-एकक समन्वित होंगे। नाविक-एककों को ग्रीष्म-समुद्रपर्यटन लेने चाहिएँ।

(७) आजकल नौछात्र-निकायों, में नामाङ्कन[6] एक द्वि-वर्षी स्वैच्छिक आधार पर होता है। हम सोचते हैं कि वर्तमान नीति सुस्थित है।

---

1 Tanks. 2 Artillery. 3 Armouries. 4 Hangars.
5 Manoeuvres. 6 Enrolment.

६—समाज-सेवा

हम यह विश्वास करते हैं कि यह समस्त कार्य एक स्वैच्छिक आधार पर रहना चाहिए। जब तक हमारे लड़के एवं लड़कियाँ गाँवों में नहीं जाते क्योंकि वे समाज-सेवा की इच्छा रखते और आनन्द करते हैं, तब तक गाँवों और उनके लिये परिणाम सन्तोषजनक नहीं होंगे। प्रत्येक मनुष्य देश की ग्रामीय समस्याओं के महत्व को अस्वीकार करता है। वे प्रभावशाली एवं द्रुत समाधान के लिये पुकार करती हैं, परन्तु संघटित एवं लोकतन्त्रात्मक शासन के मार्गों द्वारा उन्मुक्त होने के लिये समस्त जनता के उत्तरदायित्व हैं। चाहे वे कितने ही त्यागी एवं देशभक्त हों, वे (उत्तरदायित्व) सर्वथा हमारे युवकों को स्थानान्तरित नहीं होने चाहिएँ। यदि हमारे छात्र उत्तरदायित्व की एक भावना अर्जित करते हैं, तो हम भी उन्हें अपने विश्वविद्यालय के कार्यालय, पुस्तकालयों, प्रयोग-शालाओं एवं निर्माणशालाओं में कार्य सौंप सकते हैं। एक सप्ताह में एक बार कार्य के घण्टों की एक युक्तियुक्त संख्या को एक छात्र को विश्वविद्यालय में निःशुल्क शिक्षण का अधिकार अर्जित करने में समर्थ बनाना चाहिए।

७-छात्रावास एवं निवास-स्थान

एक महाविद्यालय अथवा एक विश्वविद्यालय के वायु-मण्डल एवं नैतिक स्तर पर उन प्रवर्तमान दशाओं की अपेक्षा, जिनके अधीन छात्र रहते हैं, कोई अकेला कारक अधिक जीवनावश्यक प्रभाव नहीं डालता। विश्वविद्यालय-कार्य में अच्छी भावना एवं सर्वोत्तम प्रगति के लिये अध्ययन एवं शयन

के लिये सुविधाजनक एवं सुखकर वासगृह[1] एवं अल्प लागत पर पर्याप्त तथा स्वास्थ्यप्रद भोजन आवश्यक होते हैं। महिला-छात्राओं को, जब तक वे माता-पिता के साथ, सम्बन्धियों अथवा वास्तविक संरक्षकों के साथ न रहें, तब तक प्रत्यक्षतः महाविद्यालय-अधिकारियों के अधीन होना चाहिए। कुछ अध्यापकों के लिये समस्त दशाओं में छात्रावासों में रहना वाञ्छनीय है। हम सबल रूप से यह अभिस्ताव करते हैं कि विश्वविद्यालय सम्बन्धन[2] के सांतत्य की एक शर्त के रूप में यह आग्रह करें कि महाविद्यालय एक निश्चित एवं युक्तियुक्त समय में अपने छात्रों के एक पर्याप्त भाग के लिये छात्रावासों एवं समामेलित[3] क्रियाओं की व्यवस्था करें, और कि भविष्य में ऐसे कोई महाविद्यालय संबद्ध स्थिति में स्वीकृत न हों जो छात्रों में स्वास्थ्यप्रद जीवन के लिये व्यवस्था अथवा पर्याप्त व्यवस्था नहीं करते। अनुभव ने स्पष्टतः यह प्रदर्शित कर दिया है कि एक लघु परिमाण के छात्रावास अथवा निवास-एकक, सांस्कृतिक एवं शारीरिक दोनों पक्षों पर, बृहत् संरचनाओं की अपेक्षा अधिक कल्याण की वृद्धि करते हैं, जब तक कि पिछले (बृहत् संरचनाएँ) पृथक्कृत एककों में खण्डित न हों। संभाग इस प्रकार निर्मित होने चाहिएँ कि अभिधारी[4] एककों के बीच अन्तर्मिश्रित न हों। एक एकल संभाग अथवा एकक में पचास छात्रों का पुञ्ज वह अधिकतम परिमाण है जिसका हम अभिस्ताव करते हैं। एक एकल कोष्ठ[5] में एक अथवा दो छात्र, यदि दो हों तो अध्ययन के लिये एक सामान्य स्थान के साथ, आदर्श व्यवस्था

---

1 Quarters. 2 Affiliation. 3 Corporate. 4 Occupants.
5 Single Room.

है। छात्रों को सुखद जीवन के लिये समस्त सामान्य उपस्करण[1] प्रदत्त होने चाहिएँ। इनमें प्रत्येक छात्र के लिये शय्याओं अथवा खाटों, कुरसियों, पटलों[2], वस्त्र-मञ्जूषाओं[3], तथा पुस्तक-निधायों[4] का समावेश होना चाहिए। प्रति दश अथवा बारह छात्रों के लिये स्नानागार, प्रसाधन[5] तथा शौचालय प्राप्य होने चाहिएँ। समस्त भोजन-स्थान एक प्रशिक्षित आहारविज्ञ के सञ्चालन में होने चाहिएँ जो उष्मों[6], प्रोभूजिनों[7], मण्डों[8], वसों[9], इत्यादि के शब्दों में भोजन के मूल्यों एवं भोजन के समुचित सन्तुलन को समझता हो। प्रत्येक छात्रावास अथवा एक सुविधाजनक अन्तर पर, निरामिष एवं सामिष नामतः भोजन-सेवाओं के दो प्रकार होने चाहिएँ एवं अन्य प्रबन्ध अनुज्ञात नहीं होने चाहिएँ। समस्त भोजन-कोष्ठ स्वरूप में सर्वथा सार्वभौम[10] होने चाहिएँ। साम्प्रदायिक छात्रावास, जो कुछ विश्वविद्यालयों में आजकल चालू हैं, उत्सन्न[11] कर दिये जाने चाहिएँ। छात्र छात्रावासों में सर्वथा एक पूर्वता[12] के आधार पर अथवा अन्य वाञ्छनीय अवैयक्तिक आधारों पर प्रवेशित किये जाने चाहिएँ। जाति, धर्म, प्रदेशवाद, भाषा अथवा राजनीति के कारण विभेद नहीं किया जाना चाहिए। सामान्यतः, यह आयोग छात्रावासों में छात्रों में यथा-शक्य अन्तर्मिश्रण का अनुग्रह करता है और एक उस वाञ्छनीय सिद्धान्त के रूप में, जिस पर नियोजन[13] किया जा सकता है, चार वर्ष की एक आयु-सीमा सुझाता है। अपने प्रयोग में इसे लचीला होना

---

1 Furnishings. 2 Tables. 3 Cabinets. 4 Book-Shelves.
5 Toilets. 6 Calories 7 Proteins. 8 Starches.
9 Fats. 10 Cosmopolitan. 11 Abolished. 12 Priority.
13 Assignment.

चाहिए; भिन्न विभागों के कनिष्ठ छात्र, अर्थात् १८ से २२ तक, एक साथ रहें; उत्तर-स्नातक एवं व्यावसायिक छात्र, अर्थात् २२ से ऊपर, एक साथ रहें, इत्यादि। यदि समुचित सामाजिक संव्यवहार, विनोद एवं अन्य पाठ्य-बाह्य क्रियाएँ प्रस्तुत होनी हैं जैसी वे होनी चाहिएँ, तो एक छात्रावास के उपासङ्ग[1] में एक सर्व-कोष्ठ आवश्यक है। छात्रों के कोष्ठों में, विशेषतः सर्व-कोष्ठ में, कर्मचारि-सदस्यों द्वारा भेंट एक अत्यन्त मूल्यवान् सम्पर्क होती है। कर्मचारि-सदस्यों के स्थान में, संभागों अथवा लघु एककों में वेदार[2] के रूप में अच्छे चरित्र एवं स्वीकृत विद्वत्ता के छात्र रखना एक वाञ्छनीय विकास है। अध्ययन के घण्टों एवं शयन के लिये समुचित विनियम होना चाहिए। उच्छृंखल आचरण एवं कोलाहल नियन्त्रित किया जाना चाहिए। महिला-छात्राओं की स्थिति में, महाविद्यालय में दर्शकों के लिये एवं संस्था-स्थान[3]-पृथक् अनुपस्थिति एवं अन्य ब्यौरों के लिये समुचित प्रबन्ध किया जाना चाहिए। आयोग यह अभिस्ताव करता है कि छात्रावास यथाशक्य संस्था-स्थल पर निर्मित हों। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि छात्रावासों में एक सुविधाजनक स्थान पर क्रीड़ा-क्षेत्रों के लिये कुछ स्थान प्रदत्त हों। हम यह सुझाते हैं कि समस्त अनुज्ञप्त संवास एवं वासगृह, जो उन छात्रों द्वारा प्रयुक्त होते हैं जो छात्रवासों में व्यवस्थापित नहीं हैं, स्वच्छता एवं सामाजिक दशाओं, दरों, स्थिति एवं तरुण व्यक्तियों के लिये अच्छे जीवन के अन्य पक्षों के लिये कठोरतापूर्वक निरीक्षित हों।

८—विश्वविद्यालय-संघ[4]

एक विश्वविद्यालय-संघ का मुख्य कार्य दैनन्दिन विवादा-

---

1 Adjunct. 2 Monitor. 3 Campus. 4 Union.

स्पद राजनीति पर चर्चा करना नहीं है, न विश्वविद्यालय की प्रशासनात्मक समस्याओं का विचार करना, परन्तु विश्व-विद्यालय-छात्रों की समामेलित क्रियाओं में मुख्य कड़ी होना है। प्रत्येक विश्वविद्यालय अपने छात्रावासों एवं विभागों से सम्बन्धित गोष्ठीगृहों[1] एवं पार्षदों[2] की एक संख्या रखता है। विश्वविद्यालय-संघ इन समस्त सहाय पार्षदों का एक संधान[3] हो सकता है, जहाँ छात्र अनुभागीय हितों की चर्चा के लिये नहीं परन्तु अत्यन्त विस्तृत महत्व के विषयों (की चर्चा के लिये) इकट्ठे होते हैं। यदि एक विश्वविद्यालय का उद्देश्य वर्धी प्रौढ़[4] का सर्वाङ्गीण विकास सुनिश्चित करना है, तो संघ का कार्य बौद्धिक विकास के लिये वही कार्य करना है जो व्यायामिक पार्षद् शारीरिक विकास के लिये करता है। संघ के संविधान के ब्यौरे महत्वपूर्ण नहीं होते हैं, परन्तु यह सारवत् है कि प्रत्येक सदस्य को इसे विश्वविद्यालय के अत्यन्त महत्वपूर्ण पार्षद् के रूप में समझना चाहिए और सबल करना चाहिए। यह दयनीय है कि कुछ विश्वविद्यालयों में संघों को सदस्यता एवं वित्त में पर्याप्त सबल बनाने के लिये बाध्यता का प्रयोग करना होता है। संघ का सार यह होना चाहिए कि (वह) विश्व-विद्यालय के अधिकारियों के किसी हस्तक्षेप बिना छात्रों का और छात्रोंके लिये हो।

६—अनुशासन

(क) *अननुशासन के कारण*

(१) महाविद्यालय-समूहों में कुछ अशान्ति अब विश्व-दशाओं से आरम्भ होती प्रतीत होती है।

---

1 Clubs. 2 Associations. 3 Federation.
4 Growing Adult.

(२) अन्य साक्ष्यों ने, वर्तमान तक अग्रेनीत[1] अननुशासन के एक सामान्य कारण के रूप में, राष्ट्रिय स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष के युग का उद्धरण दिया, जिसमें राजनैतिक नेताओं द्वारा आन्दोलन में रत होने के लिये छात्रों एवं कर्मचारियों का आह्वान किया गया था।

(३) अभाग्यवश, कुछ राजनैतिक गुटबन्दियाँ एवं अराजकतावादी तत्व भी अपने प्रयोजनों के लिये महाविद्यालय-छात्रों का शोषण करना चालू रख रहे हैं।

(४) स्वल्प वित्तसाधन एवं स्वस्थ महाविद्यालय-जीवन के लिये अपेक्षित सुखसुविधाओं का परिणामी अभाव।

(५) कुछ संस्थाओं की आर्थिक आपदा, जिनमें छात्रों के लिये अपर्याप्त छात्रावासों एवं सुखदायक जीवन-दशाओं, क्रीड़ा-क्षेत्रों एवं वाञ्छनीय समामेलित क्रियाओं की व्यवस्था करने के लिये साधनों का अभाव रहता है।

(६) छात्रों का जनपुञ्ज[2]।

(७) समय पर माता-पिता की महाविद्यालय अधिकारियों को सहारा देने में विफलता।

(८) अनियमित विचार को पूरा करने के लिये अध्यापकों की समर्थता।

(९) सफल अध्ययन के लिये अपेक्षित बुद्धि अथवा उद्योग रहित छात्रों का प्रवेश।

---

1 Carried over.　　2 Masses.

(१०) परीक्षाओं पर आततियाँ[1], जो अभाग्यवश शिक्षा-प्रणाली पर छायी हुई हैं।

(११) विश्वविद्यालय-शिक्षण की लागत से निर्धन छात्रों में हुई चिन्ता।

(ख) अनुशासनात्मक समस्याओं के समाधान के लिये सुझाव

(१) दलीय राजनीति से पृथक्करण—छात्र दलीय राजनीति में रत होने के लिये प्रोत्साहित नहीं किये जाने चाहिएँ, यद्यपि हम इसे वाञ्छनीय समझते हैं कि वे निर्वाचन एवं अच्छे शासन में एक स्वस्थ एवं समुचित अभिरुचि लें।

(२) सामाजिक अन्तःकरण का विकास—अनुशासन का सत्य सम्मोदन[2] दाण्डिक[3] उपायों अथवा पूर्वाधायी[4] सतर्कता की अपेक्षा सम्पूर्णतः स्नातक पूर्व के सामाजिक अन्तःकरण के विकास में होता है।

(३) छात्र-शासन[5]— साक्ष्यों के पर्याप्त मौखिक साक्ष्य द्वारा समर्थित इस आयोग की यह सबल भावना है कि प्रतिहस्तकीय प्रणाली[6] वर्तमान दशाओं में छात्रों का हस्तन करने के लिये पर्याप्त नहीं है। हम यह अभिस्ताव करते हैं कि छात्रों को संशय एवं भय के एक वायुमण्डल में रहने की अपेक्षा विश्वास के एक दृष्टिकोण द्वारा आत्म-सम्मान एवं आत्म-विश्वास विकसित करने के लिये अवसर दिया जाए। आयोग ने, भारत में, कुछ महाविद्यालयों में छात्र-शासन एवं मान प्रणालियों को स्पष्टतः श्रेष्ठ परिणामों के साथ संचालित होते पाया।

---

1 Tensions. 2 Sanction. 3 Punitive. 4 Precautionary.
5 Student Government. 6 The Proctorial System.

समुचित दशाओं में इसे पूरा किया जा सकता है। अच्छा छात्र-शासन महाविद्यालय-समुदाय को एकीकृत करता है, एक स्वस्थ सामाजिक वायुमण्डल प्रदान करता है, एक संस्था में सामान्य आदर्श एवं भक्तिपूर्ण मर्यादा बढ़ाता है परन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण, अच्छी नागरिकता एवं सामाजिक उत्तरदायित्व के लिये प्रशिक्षण देता है। यह ठीक प्रकार की छात्र-राजनीति-क्रिया के लिये क्षेत्र देता है, जो शासन के एक गणराज्य-रूप एवं लोकतन्त्रात्मक समाज में नागरिकों के कार्य को करने के लिये क्षमता का विकास करने में सहायता करती है। यह संस्थापित प्राधिकार[1] के लिये आदर को दुर्बल बनाने एवं तरुण को विवादग्रस्त विचारधाराओं के प्रचार का एक भक्ष्य छोड़ने की ओर अवाञ्छनीय प्रवृत्तियों को प्रतिस्थापित करता है।

(४) राष्ट्रिय नौछात्र-निकाय[2]—राष्ट्रिय नौछात्र-निकाय छात्रों में अनुशासन एवं सुव्यवस्थित व्यसन विकसित करने का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण रूप है।

(५) विनोद आदि के अवसर—विनोद के अवसर, व्यायाम-क्रीड़ाएँ, सामाजिक जीवन की सुखसुविधाएँ, विशेषतः छात्रावासों से बाहर रहने वाले छात्रों के लिये (जिनकी प्रायः उपेक्षा की जाती है), समस्त अच्छे अनुशासन में अपना कार्य करते हैं।

(६) छात्रों को कार्य-रत रखना—अनुशासन बनाये रखने में एक प्रधान सिद्धान्त में छात्रों को लाभदायक एवं रचनात्मक रेखाओं पर सक्रिय एवं रत रखने का समावेश होता है।

---

1 Authority. 2 Narional Cadet Corps.

(७) अध्यापकों एवं छात्रों में निकट सम्बन्ध—कर्मचारि-वृन्द एवं छात्रों के बीच निकट सम्बन्ध छात्रों में अच्छा व्यवहार, चरित्र एवं उपयुक्त आदर्शों के प्रोत्साहन का अत्यन्त मूल्यवान माध्यम होता है।

(८) अनुशासन की अभिधारणा—यह महत्वपूर्ण है कि अनुशासन को आचरण के स्वेच्छ स्तरों से छात्र-समनुरूपता के रूप में न देखा जाए, परन्तु व्यवहार के लिये वैयक्तिक उत्तरदायित्व के रूप में।

(ग) सहकारी प्रयत्न

परन्तु प्रशासक एवं अध्यापक संस्था-स्थलों पर अच्छा जीवन एवं उच्च नैतिक स्तर बढ़ाने की समस्याओं का सन्तोषजनक रूप से समाधान नहीं कर सकते। उन्हें मातापिता, राजनैतिक नेताओं, जनता एवं मुद्रणालय का सहयोग प्राप्त करना चाहिए। यह एक सहकारी कार्य है जो समस्त अच्छे नागरिकों के समर्थन का पात्र है।

१०—छात्र-कल्याण

(क) छात्र-अधिष्ठाता-कार्यालय[1] की स्थापना

हम यह सोचते हैं कि आज के जटिल विश्वविद्यालय संघटन का कम से कम कुछ खण्ड (ऐसा) होना चाहिए जो छात्रों में वास्तविक, सत्य जीवन के स्नायु[2] अधियोजित करने, समृद्ध बनाने एवं प्रदान करने से सम्बन्धित हो। विश्व-विद्यालयों में, एक पुरुष-अधिष्ठाता एवं एक महिला-अधिष्ठाता के लिये आवश्यकता होगी। पुरुषों के महाविद्यालय केवल

1 Office of Dean of Students. 2 Sinews.

एक पुरुष-अधिष्ठाता रखेंगे और महिलाओं के महाविद्यालय केवल एक महिला-अधिष्ठाता। प्रत्येक कार्यालय को एक लघु लिपिक[1] कर्मचारिवृन्द की आवश्यकता होगी। छात्र-अधिष्ठाताओं की नियुक्ति उप-कुलपति द्वारा अथवा प्राचार्यों द्वारा निष्पादन-परिषद् को अभिस्तावित होनी चाहिए, और उन्हें प्रत्यक्षतः इन उपाधिकारियों के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए। छात्र-अधिष्ठाता सावधानी से चुने जाने चाहिएँ। ऐसा कोई व्यक्ति नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए जो एक अध्यापक के रूप में, और विशेषतः शिक्षा देने, मार्गप्रदर्शन करने तथा मन्त्रणा देने की रेखाओं के साथ पर्याप्त अनुभव न रखता हो।

(ख) छात्र-कल्याण का मन्त्रणा मण्डल[2]

हम यह सोचते हैं कि छात्र-कल्याण का एक लघु मन्त्रणा मण्डल, एक द्वादशक से अधिक व्यक्तियों का नहीं, स्थानीय व्यक्तियों से मिल कर बना हुआ, वांछनीय हो सकता है। एक ऐसा (मण्डल) अपेक्षया सुगमतापूर्वक आयोजित हो सकता है और छात्र-समस्याओं का समाधान करने तथा छात्र-कल्याण बढ़ाने में वास्तविक सहायता दे सकता है। हम यह सोचते हैं कि स्वयं छात्रों द्वारा मनोनीत अनेक छात्र छात्र-कल्याण-मण्डल के लिये एक अत्यन्त सहायक योग होंगे।

१२—स्त्री-शिक्षण

१—स्त्री-शिक्षण का महत्व

पुरुषों एवं स्त्रियों में अन्तर्निहित व्यसन[3] मुख्यतः पूर्व वर्षों

---

1 Clerical.　2 Advisory Board of Student Welfare.
3 Underlying Habits.

में स्थिर होते हैं, और ये वर्षे मुख्यतः माता के साथ व्यय की जाती हैं। यदि वह निष्पक्ष मन, जांच करने वाली एवं सतर्क, तथ्यों को प्राप्त करने के लिये किंवदन्ती एवं परम्परा के पीछे देखने वाली, घटनाओं के क्रम से सम्बन्धित, अपने चारों ओर विश्व की प्रकृति के बारे में सूचित एवं इसमें हित-परायण और इतिहास तथा साहित्य से परिचित एवं उनका उपभोग करने वाली है, तो उसके बच्चे इन अभिरुचियों एवं दृष्टिकोणों को उससे सीखेंगे। वह शिक्षित, चेतन माता, जो घर में अपने बच्चों के साथ रहती और कार्य करती है, चरित्र एवं बुद्धि दोनों के विश्व में सर्वोत्तम अध्यापक होती है। जो कुछ उसने पाठशाला में सीखा था उसके बच्चे उसका अधिकांश उसकी मण्डली में रह कर द्वितीय स्वभाव के रूप में अचेतन रूप से प्राप्त कर लेते हैं। शिक्षित महिलाओं के बिना शिक्षित व्यक्ति नहीं हो सकते। यदि सामान्य शिक्षण पुरुषों अथवा स्त्रियों तक संसीमित करना हो, तो वह अवसर स्त्रियों को दिया जाना चाहिए, क्योंकि तब यह अत्यन्त निश्चित रूप से आगामी पीढ़ी तक बढ़ा दिया जाएगा।

२—महिलाओं का शिक्षण महिलाओं के रूप में

रुचिपूर्ण एवं बुद्धिपूर्ण जीवन के लिये एवं नागरिकता के लिये सामान्य-शिक्षण बृहत् भाग में पुरुषों एवं स्त्रियों के लिये समान हो सकता है। समयों के जीवन एवं विचार एवं अभिरुचियों में स्त्रियों को पुरुषों के साथ अंश[1] लेना चाहिए। वे मनुष्यों के समान वैसा ही विद्योचित[2] कार्य करने के लिये समुपयुक्त होती हैं, कम परिपूर्णता एवं गुण के साथ नहीं। तथापि, विद्योचित कार्य

1 To share. 2 Academic.

में पुरुष एवं स्त्रियाँ समान रूप से दक्ष होती हैं, और यद्यपि अनेक विषय समान रूप से रुचिपूर्ण एवं उपयुक्त होते हैं, इसका अर्थ यह नहीं है कि पुरुषों एवं स्त्रियों का शिक्षण समस्त वस्तुओं में एकरूप होना चाहिए। प्रत्येक देश में, भले ही स्त्रियों का "विमोचन[1]" कितनी दूर तक क्यों न जा चुका हो, पति एवं पत्नियाँ प्रायः भिन्न कार्य करती हैं। सामान्यतः पुरुष आय का प्रबन्ध करता है और स्त्री गृह को बनाये रखती है। उन अनेक स्त्रियों के लिये, जो श्रेष्ठता के उच्च स्तर प्राप्त करने के लिये लालसा करती हैं, गृह एक श्रेष्ठ स्थापना[2] प्रदान करता है। एक स्त्री के लिये, स्वयं गृह-धारण[3] का एक दास हुए बिना और बच्चों की गतिविधियों की स्वतन्त्रता पर दुर्वह प्रतिषेध एवं आयन्त्रण आरोपित किये बिना, घर को रूपाङ्ग[4], सौन्दर्य, व्यवस्था एवं स्वरूप देना एक उच्च कला होती है। यह संयोग द्वारा अर्जित नहीं होगी, और अनेक स्त्रियों के लिये इसकी प्राप्ति केवल शिक्षा बिना असम्भव होगी।

३—स्त्री-शिक्षा का स्वरूप

एक स्त्री के लिये बुद्धिपूर्ण शिक्षा उसकी गृह एवं परिवार के लिये तैयारी को अनुभव की कटु एवं हानिकर पाठशाला में नहीं छोड़ेगी। एक स्त्री के रूप में उसकी शिक्षा में एक गृह एवं परिवार की अवेक्षा[5] में व्यावहारिक "प्रयोगशाला"-अनुभव का समावेश होना चाहिए। एक लड़की की शिक्षा के लिये उपकरण में (निम्नलिखित का) भली भांति समावेश हो सकता है :

---

1 Liberation.　2 Setting.　3 Home-Keeping.
4 Design.　5 Care.

(१) एक शिशु-गृह।

(२) एक शिशु-शाला[1], जो संयोग से दिवस के समय में निकटस्थ माताओं को सहायता देगी।

(३) पाठशाला बालिकाओं एवं प्रौढ़ाओं के लिये एक गोष्ठीगृह[2]।

(४) एक लघु स्वास्थ्यलाभ-गृह[3]।

(५) वृद्ध व्यक्तियों के लिये एक छोटा घर।

(६) एक गृह-स्थापना जहाँ छात्राएँ गृह-संधारण एवं सञ्चालन में अनुभव प्राप्त कर सकें और जहाँ वे आतिथेयों के रूप में कार्य कर सकें।

एक स्त्री को उन समस्याओं के बारे में कुछ सीखना चाहिए जो समस्त विवाहों एवं माता-पिता तथा बच्चों के सम्बन्धों में आने के लिये निश्चित हैं, और किस प्रकार उनका सामना किया जा सकता है। उसकी शिक्षा को उसे गृह-प्रबन्ध की समस्याओं से परिचित एवं उनका सामना करने में दक्ष बनाना चाहिए, जिससे वह एक घर में उसी अभिरुचि एवं क्षमता की उसी भावना के साथ अपना स्थान ले सके, जिसके साथ एक सुशिक्षित पुरुष कार्य करने में अपनी आजीविका पर (लेता है)।

४—स्त्री-शिक्षा के उद्देश्य

स्त्री का महानतम व्यवसाय, और संभवतः ऐसा होने के लिये चालू रहेगा, गृह-निर्मात्री का है। तथापि उसका विश्व एक उस सम्बन्ध तक सीमित नहीं होना चाहिए। ऐसो

1 Nursery School. 2 Club. 3 Convalescents.

विभिन्न स्थितियाँ होती हैं जो एक स्त्री को अन्य क्षेत्रों में अपने जीवन की पूर्ति ढूँढने के लिये अग्रसर कर सकती हैं। मानव-कल्याण के महान् अंशदाताओं[1] में कुछ ऐसे पुरुष हुए हैं जिन्होंने अपने जीवन के चुने हुए कार्य के लिये अपने को पूर्णतः सौंपने के लिये गृह एवं परिवार को छोड़ने का निश्चय किया। स्त्रियों को यह वैसा ही अवसर प्राप्त होना चाहिए।

पुरुषों एवं स्त्रियों दोनों के लिये, भारतीय जीवन एवं शिक्षण के वाञ्छनीय विकासों में से एक उनके लिये खुले हुए कार्य के प्रकारों में एक महान वृद्धि है। शिक्षा-प्रणाली को समस्त स्तरों पर ऐसी विभिन्न आजीविकाओं के लिये पुरुषों एवं स्त्रियों को तैयार करना चाहिए।

५–विशेष पाठचर्याएँ

(क) गृह-अर्थशास्त्र

गृह अर्थशात्र का क्षेत्र प्रायः सर्वथा स्त्रियों के लिये (क्षेत्र) के रूप में देखा जाता है। गृह-अर्थशास्त्र पाठ्यक्रम का अन्तिम उद्देश्य स्त्रियों एवं पुरुषों को गृह-निर्माण की सत्य गरिमा को देखने के लिये सहायता करना, और इसे एक आदर्श मूल्य देना होता है। यह जैसे स्त्रियों वैसे ही पुरुषों की आवश्यकता है।

(ख) उपचारण[2]

व्यावसायिक उपचारिकाएँ होने के लिये, छात्राओं को प्रशिक्षण उच्च पाठशाला के पश्चात् आरम्भ करना चाहिए, बी० एस-सी० उपाधि के लिये अपेक्षित कार्य के समान कार्य करना चाहिए, और उपचारण में बी० एस-सी० उपाधि प्राप्त

1 Contributors.　2 Nursing.

करनी चाहिए। उनके अध्ययनों में, उपचारण-शिक्षण की विशेषित पाठचर्याओं के लिये तैयारी के रूप में भौतिक एवं जीव-विज्ञान में पाठचर्याओं के साथ सामान्य शिक्षण का, जैसाकि अध्ययन पाठचर्याओं के अध्याय में वर्णित है, समावेश होना चाहिए। पाठचर्या की अवधि वैसी ही होनी चाहिए जैसी बी० एस-सी० उपाधि के लिये अपेक्षित (होती है)।

(ग) *अध्यापन*

शिक्षण के पूर्व वर्षों के लिये, स्त्रियाँ स्वाभाविक अध्यापक होती हैं, और शिक्षण के पिछले प्रक्रमों के लिये वे अपना स्थान रखती हैं।

(घ) *ललित कला*

अपना सामान्य शिक्षण पूर्ण करने से पूर्व प्रत्येक छात्र अथवा छात्रा ललित कला के अधिमूल्यन के कुछ माप अर्जित करने के लिये अपेक्षित है। स्त्रियाँ, पुरुषों के साथ, नाट्यकला, चित्रण, निदर्शन[1], मृच्छिल्प[2] में. एवं थान-रूपाङ्कन[3] तथा शिल्पकारिता में अतिशयन[4] करेंगी।

६—स्त्री-शिक्षा की वर्तमान दशाएँ

(१) सामान्यतः, भारतीय विश्वविद्यालय एक पुरुष के विश्व की सज्जा के स्थान होते हैं। स्त्रियों के रूप में स्त्रियों की शिक्षा को अल्प विचार दिया गया है।

(२) हमारे देश में केवल थोड़े-से सह-शिक्षात्मक महाविद्यालय हैं। वस्तुतः, यहाँ तो पुरुषों के महाविद्यालय हैं,

1 Illustration. 2 Ceramics. 3 Textile Design.
4 To excel.

जिनमें स्त्रियाँ छात्राओं के रूप में प्रवेशित कर ली गई हैं, जो एक भिन्न विषय है।

(३) प्रायः, स्त्रियों के लिये स्वच्छता-सुविधाएँ सर्वथा अपर्याप्त होती हैं, और कभी कभी उनका पूर्ण अभाव होता है। इसी प्रकार स्त्रियों के लिये विनोद-स्थान एवं सुविधाएँ अपर्याप्त होती हैं अथवा उनका अभाव होता है।

(४) अनेक सह-शिक्षात्मक महाविद्यालयों में स्त्रियाँ महाविद्यालय-जीवन में थोड़ा ही अंश रखती हैं अथवा सर्वथा नहीं।

(५) वहाँ अत्यन्त थोड़ी महिला अध्यापिकाएँ होती हैं।

(६) स्त्रियों के लिये परीक्षाएँ एक कठोर चैत-आयास[1] होती हैं।

७—सुधार के लिये सुझाव

(१) कि उनकी वास्तविक शिक्षा अभिरुचियों का एक स्पष्ट दृश्य[2] प्राप्त करने में सहायता करने के लिये इस उद्देश्य के लिये कि वे पुरुषों का अनुकरण करने का प्रयत्न नहीं करेंगी, परन्तु स्त्रियों के रूप में उतनी अच्छी शिक्षा की उसी प्रकार इच्छा करेंगी जिस प्रकार पुरुष पुरुषों के रूप में प्राप्त करते हैं, प्रशिक्षित पुरुषों एवं स्त्रियों द्वारा, बुद्धिपूर्ण शिक्षा-मार्गप्रदर्शन होना चाहिए।

(२) कि सामान्यतः महिला छात्राओं की, नागरिकों एवं स्त्रियों दोनों के रूप में, एक सामान्य समाज में अपने सामान्य स्थान देखने एवं इसके लिये तैयारी करने में सहायता की जानी

---

1 Nervous Strain. 2 View.

चाहिए, और महाविद्यालय-कार्यक्रम इस प्रकार आकल्पित किये जाने चाहिएँ कि उनके लिये ऐसा करना सम्भव होगा।

(३) कि मिश्रित महाविद्यालयों में पुरुषों के लिये शिष्टाचार एवं सामाजिक उत्तरदायित्व के स्तरों पर बल दिया जाना चाहिए।

(४) कि जहाँ पुरुषों एवं स्त्रियों दोनों छात्रों की सेवा करने के लिये नये महाविद्यालय स्थापित किये जाते हैं, वहाँ उन्हें, स्त्रियों के जीवन की आवश्यकताओं को दिये गये उतने ही विचार-विमर्श के साथ जितना पुरुषों के जीवन की आवश्यकताओं को, वस्तुतः सह-शिक्षात्मक संस्थाएँ होना चाहिए।

(५) कि महिला-अध्यापिकाओं को समान कार्य के लिये वही वेतन दिये जाने चाहिएँ जो पुरुष अध्यापकों को (दिये जाते हैं)।

८—सह-शिक्षा

हमारे अभिस्ताव के अनुसार, जैसाकि उपाधि महाविद्यालयों में प्रवेश की अवस्था लगभग अठारह होगी, महाविद्यालय-शिक्षा सह-शिक्षात्मक हो सकती है, जैसाकि यह आजकल अनेक आयुर्विज्ञान-महाविद्यालयों[1] में है। इस स्तर पर पृथक् संस्थाएँ व्यय में अनुचित वृद्धि की माँग करेंगी। उपाधि स्तर पर सह-शिक्षात्मक संस्थाओं को यथा-शक्य प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

१३ – संघटन एवं नियन्त्रण

१—समाधिकारत्व[2]

भारत के समान एक विशाल देश में, अच्छा शासन केवल

1 Medical Colleges. 2 Concurrency.

तभी सम्भव है यदि संविधान द्वारा प्रान्तीय शासनों को विस्तृत शक्तियाँ दी जाती हैं। हम यह विचार करते हैं कि समाधिकारत्व द्वारा आवश्यक परित्राण प्राप्त किये जा सकते हैं।

२—केन्द्रीय शासन से सम्बन्धित विशेष प्रश्न

वे विशेष प्रश्न, जिन पर केन्द्रीय शासन को विश्वविद्यालयों से अपने को सम्बन्धित रखना चाहिए, ये हैं : (क) वित्तप्रबन्ध, (ख) विशेष विषयों में सुविधाओं का समन्वय, (ग) विश्वविद्यालयों एवं राष्ट्रिय अन्वेषण प्रयोगशालाओं, वैज्ञानिक आपरीक्षणों[1], इत्यादि, के बीच सम्पर्क, (घ) राष्ट्रिय नीतियों का स्वीकरण, (ङ) दक्ष प्रशासन के लिये न्यूनतम स्तर।

३—विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग

(क) संघटन

तीन केन्द्रीय विश्वविद्यालयों, अलीगढ़, बनारस एवं दिल्ली, के साथ संव्यवहार करने के लिये १९४५ में विश्वविद्यालय अनुदान-समिति बनायी गई थी, और (उसमें) चार सदस्य सम्मिलित थे। १९४६ में और पुनः १९४७ में इसकी सदस्यता बढ़ादी गई थी और इसे समस्त विश्वविद्यालयों के साथ संव्यवहार करने के लिये शक्ति दे दी गई थी। हमारा प्रस्ताव यह है कि स्वयं आयोग को तो लघु होना चाहिए, परन्तु इसे प्रत्येक विषय, अथवा सजातीय[2] विषयों के समूह में उन विशेषज्ञों की तालिकाओं, का निर्माण करना चाहिए, जो आयोग की प्रार्थना पर विश्वविद्यालयों को देखने एवं समय समय पर प्रतिवेदन देने के लिये प्राप्य होंगी। तालिकाओं के सदस्य, अपने केवल उन व्ययों के लिये शोधित[4] होकर जब

1 Surveys. 2 Cognate. 3 Panels. 4 Paid.

उन्होंने एक विश्वविद्यालय को देखा अथवा बैठकों में उपस्थित हुए, एक अवैतनिक के रूप में सेवा करेंगे। कोई कारण नहीं है कि विश्वविद्यालय-प्राध्यापकों को, जब तक उनसे उनके अपने विश्वविद्यालय पर प्रतिवेदन देने के लिये नहीं कहा जाता है, तब तक इन तालिकाओं में सेवा क्यों नहीं करनी चाहिए; और कुछ विषयों में तो प्राध्यापकों को खींचे बिना एक तालिका का संकलन करना ही कठिन होगा। जहाँ सम्भव हो, वहाँ एक तालिका के कम से कम आधे सदस्य विश्वविद्यालय कर्मचारिवृन्द के सदस्य नहीं होने चाहिएँ। प्रत्येक तालिका को एक नियत समय के लिये विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग द्वारा नियुक्त एक सभापति रखना चाहिए। अनुदानों का आवण्टन[1] सर्वथा आयोग द्वारा किया जाना चाहिए। हम यह अभिस्ताव करते हैं कि आयोग का निर्माण पाँच सदस्यों द्वारा होना चाहिए, अर्थात्, भारत सरकार द्वारा नियुक्त तीन पूर्णकालिक सदस्य, जिसे, वित्त-मन्त्रालय के सचिव एवं शिक्षा-मन्त्रालय के सचिव के साथ, तीन में से एक व्यक्ति को सभापति नियुक्त भी करना चाहिए। आयोग को समय समय पर अत्यन्त अलोकप्रिय निर्णय करने होंगे, ऐसे निर्णय जो विशेष विश्वविद्यालयों एवं प्रान्तों को निराश करने के लिये परिबद्ध होंगे। यह जीवनावश्यक रूप से आवश्यक है कि नियुक्त सदस्य उपरि-वर्णित गुणों के कारण चुने जाने चाहिएँ और राजनैतिक, प्रादेशिक अथवा साम्प्रदायिक कारणों से नहीं, वे चाहे जो हों। यह समान रूप से महत्वपूर्ण है कि उनकी स्थिति उतनी सुरक्षित होगी जितनी सांवैधानिकतः[2] सम्भव हो। वे छः वर्ष के

---

1 Allocation. 2 Constitutionally.

लिये नियुक्त किये जाने चाहिएँ परन्तु नियुक्त होने के लिये प्रथम तीन (सदस्यों) में से एक को दो के पश्चात् और अन्य को चार वर्ष पश्चात् सेवानिवृत्त हो जाना चाहिए जिससे अनुवर्ती नियुक्तियाँ "विह्वरित[1]" होंगी। वे पुनःनियुक्ति के लिये योग्य होंगे। कहने की आवश्यकता नहीं कि पूर्ण-कालिक सदस्यों सहित एक आयोग को केवल एक सचिव की ही नहीं परन्तु अपने कार्य के लिये एक कार्यालय एवं एक कार्यालय-कर्मचारिवृन्द की भी आवश्यकता होगी।

(ख) आयोग के कर्तव्य

(१) अनुदानों का आवरटन करना।

(२) परामर्श एवं मन्त्रणा देना।

४—विश्वविद्यालयों के प्ररूप

(क) एकीय[2] अध्यापन विश्वविद्यालय

एकीय एवं संधान[3] दोनों प्ररूपों के लिये क्षेत्र होता है। परन्तु परिमाण की एक सीमा होती है जिसके बाहर एकीय प्ररूप उन लाभों का प्रतिधारण करने में विफल रहता है, जिन्हें धारण करने के लिये यह अपेक्षित होता है, अर्थात्, एक समनुगत[4] निगम[5] जीवन के लाभ, जिनमें कर्मचारि-सदस्य एवं छात्र-निकाय दोनों एक एकल एकक[6] के रूप में परस्पर चेतन अनुभव करते हैं। हम यह सुझाते हैं कि जब छात्रों की संख्या २,५०० तक पहुँच ले, तब विश्वविद्यालय या तो उसे अपनी सीमा के रूप में स्थिर करेगा; अथवा, यदि अग्रिम

---

1 Staggered. 2 Unitary. 3 Federative. 4 Coherent.
5 Corporate. 6 Single Unit.

विस्तारण वाञ्छनीय है तो (उसे) एक एकक से एक संधान तक परिवर्तित होने के लिये अग्रसर होना चाहिए।

(ख) संधान अध्यापन विश्वविद्यालय

जिसका एकमात्र उदाहरण दिल्ली है। हमारी योजना, जबकि व्यावसायिक विषयों के लिये इन निकाय-महाविद्यालयों[1] को बाहर नहीं निकाल देगी, अधिक निकटता से ऑक्सफोर्ड अथवा कैम्ब्रिज-योजना का अनुसरण करेगी, जिसके द्वारा अनेक विषयों के छात्र उसी महाविद्यालय के सदस्य होते हैं, और महाविद्यालय स्वयं, स्वयं विश्वविद्यालय के साथ इस कार्य में अंश देकर, अनेक विषयों को पढ़ाता है। संधान-योजना की सफलता के लिये आवश्यक वस्तु यह है कि महाविद्यालय-अध्यापकों को एक अधीन वर्ग नहीं होना चाहिए। जैसा ऑक्सफोर्ड एवं कैम्ब्रिज में होता है, उन्हें स्वयं विश्वविद्यालय के अपने प्राध्यापक-वर्ग के प्रपुञ्ज[2] का निर्माण करना चाहिए। अतः, एक विश्वविद्यालय-विभाग का विशिष्ट कर्म-चारिवृन्द (इस प्रकार) होगा : (१) अपने को विश्वविद्यालय श्रेणियों तक संसीमित करते हुए एक प्राध्यापक[3] एवं संभवतः एक प्रवाचक[4]; (२) व्याख्याता, जो विश्वविद्यालय-व्याख्याता एवं महाविद्यालय-अध्यापक दोनों होंगे। ऐसे "अंशकालिक विश्वविद्यालय-व्याख्याताओं एवं अंशकालिक महाविद्यालय-अध्यापकों" के वेतन, दोनों कार्यों में से प्रत्येक को दिये गये समय की राशि के अनुपातन में, अंशतः विश्वविद्यालय द्वारा और अंशतः महाविद्यालय द्वारा शोधित होंगे।

---

1 Faculty Colleges. 2 Bulk. 3 Professor. 4 Reader.

(ग) अध्यापक एवं सम्बन्धक[1] विश्वविद्यालय

हम पूर्णतः यह प्रस्वीकार करते हैं कि भारत के भूगोल का यह अर्थ है कि आने वाले एक अनिश्चित समय के लिये यहाँ अनेक मुख्येतर[2] महाविद्यालय होने चाहिएँ, (जो) स्वप्रबन्धी होने के लिये पर्याप्त बृहत् अथवा प्रबल न होंगे, और अतः एक विश्वविद्यालय-केन्द्र से ग्रथित होने की आवश्यकता रखेंगे। साथ ही, हम विश्वस्त हैं कि प्रवर्तमान "अध्यापन एवं सम्बन्धक" विश्वविद्यालयों के लिये ठीक नीति यथा-शक्य शीघ्रता से अपने अध्यापन पार्श्व[3] को तब तक सबल करना है, जब तक प्रत्येक अवस्था में यह भूयिष्ठ भाग[4] न हो।

(घ) सर्वथा सम्बन्धक विश्वविद्यालय

सर्वथा सम्बन्धक विश्वविद्यालय एक सफलता नहीं रहे हैं। एक ऐसा विश्वविद्यालय परीक्षाओं का सञ्चालन करने के लिये एक यान्त्र से संभव ही अधिक हो। आजकल सर्वथा सम्बन्धक विश्वविद्यालय किसी अन्य एकल कारक की अपेक्षा समस्त भारतीय विश्वविद्यालयों की अच्छी ख्याति का अत्यन्त अपकार कर रहा है, और हम यह अनुरोध करते हैं कि यह प्ररूप भारतीय भू-दृश्य से यथा-शक्य संभव क्षण पर लुप्त हो जाएगा।

५—महाविद्यालयों का वर्गीकरण

(क) शासकीय महाविद्यालय

अनेक विश्वविद्यालयों में, अध्यापन-प्रयोजनों के लिये मूल न्यष्टि[5] एक शासकीय महाविद्यालय था; और प्रायः ये शासकीय

---

1 Affiliating. 2 Mufassil. 3 Teaching Side.
4 Preponderant Part. 5 Original Nucleus.

महाविद्यालय अभी तक अपने विश्वविद्यालय के सबलतम् एकल अध्यापन एकक होते हैं। दोनों संस्थाओं (शासकीय एवं अशासकीय महाविद्यालय) को, पृथक् संविभागों में, पृथक् रखने के लिये सम्भव कारण, और उन्हें एक प्रशासन में एक करने के लिये शैक्षणिक कारणों में सबलतम (कारण) नहीं है। उन्हें (शासकीय महाविद्यालयों को) अपने विश्वविद्यालयों के संघटन महाविद्यालय हो जाना चाहिए।

(ख) अशासकीय महाविद्यालय

ये विभिन्न प्ररूपों एवं परिमाणों एवं स्थितियों के होते हैं। वे कलकत्ता के "भीमगज[1]" महाविद्यालयों से लेकर लघु मुख्येतर नगरों में वैयक्तिक धर्मदानियों द्वारा स्थापित अत्यन्त छोटे महाविद्यालयों तक विस्तृत हैं। यह देखना दुखद है कि किस प्रकार सर्वोत्तम प्रेरकों[2] से विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा स्थापित कुछ महाविद्यालय तब से उन पुञ्ज-उत्पादन-स्थापनों[3] में अवह्रसित[4] हो गये हैं, जहाँ शुल्क-आय मुख्य विचार होता है।

(ग) संघटक[5] महाविद्यालय

"संघटक महाविद्यालय" उस विश्वविद्यालय का एक अभिन्न अङ्ग होता है जिसका यह विषय होता है। ऑक्सफोर्ड एवं कैम्ब्रिज में प्रत्येक महाविद्यालय एक स्वतन्त्र निकाय[6] होता है, परन्तु सामूहिक रूप से महाविद्यालय समस्त छात्रों एवं विश्वविद्यालय के लगभग समस्त कर्मचारियों का उपबन्ध

---

1 Mammoth. 2 Motives. 3 Mass-Production Establishments. 4 Deteriorated. 5 Constituent. 6 Body.

करते हैं। महाविद्यालयों के बिना वहाँ विश्वविद्यालय ही नहीं होगा। अध्यापन, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय के बीच विभाजित होता है। विश्वविद्यालय व्याख्यान एवं प्रयोगशाला-पाठचर्याओं के अधिकांश का उपबन्ध करता है, महाविद्यालय (उसमें) वैयक्तिक शिक्षण को जोड़ता है। सामान्य अध्यापक एक विश्वविद्यालय-व्याख्याता एवं एक महाविद्यालय-शिक्षक दोनों होता है। हम संघटक महाविद्यालयों की संख्या में, चाहे नवीन नेम[1] द्वारा, अथवा वर्तमान संबद्ध महाविद्यालयों के रूपान्तरण द्वारा, अथवा एक अतिवर्धित एकीय विश्वविद्यालय के एक संधान समूह में परिवर्तन द्वारा, एक बृहद् वृद्धि को देखने के लिये अभिलाषा करते हैं।

६—सम्बन्धन[2] की दशाएँ

तथापि, हम इसे आवश्यक समझते हैं कि भविष्य में विश्वविद्यालयों को एक अशासकीय महाविद्यालय के पूर्ण सम्बन्धन प्राप्त करने से पूर्व दो नवीन प्रतिबन्ध जोड़ने चाहिएँ : (क) किसी महाविद्यालय को तब तक पूर्णतः संबद्ध नहीं होना चाहिए, जब तक यह सहायक अनुदान[3] के लिये योग्य न हो। विश्वविद्यालय को स्तरों एवं शासन को अनुदानों के स्रोत के रूप में अपने सम्बन्ध के लिये संयुक्त रूप से इस पर सन्तुष्ट होना चाहिए कि एक महाविद्यालय सम्बन्धन का पात्र है, (ख) कोई महाविद्यालय तब तक संबद्ध नहीं होना चाहिए, जब तक यह उनकी उपाधि-पाठचर्याओं में, हमारे परीक्षाओं पर अध्याय में सुझाये गये प्रकार से, इसके अपने छात्रों के कार्य के आन्तरिक निर्धारण का उपक्रमण करने के लिये योग्य न हो।

1 Foundation.　2 Affiliation.　3 Grant-in-Aid.

७—महाविद्यालय शासी-निकाय[1]

१२ से १५ सदस्यों के एक महाविद्यालय शासी-निकाय में (निम्नलिखित) का समावेश होना चाहिए :

(१) उस निकाय के प्रतिनिधि, जिससे यह स्थायी निधियाँ[2] प्राप्त करता है;

(२) प्राचार्य एवं प्राध्यापक-वर्ग के अन्य प्रतिनिधि

(३) महाविद्यालय के पूर्व छात्रों के प्रतिनिधि;

(४) विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि;

(५) (यदि महाविद्यालय एक प्रत्यक्ष शासकीय अनुदान प्राप्त करता है तो) शासन के प्रतिनिधि;

(६) अन्य द्वारा सहवृत्त[3] होने के लिये ज्ञानोद्दीप्त लोकमत के प्रतिनिधि।

८—महाविद्यालयों की संख्या-सीमा

सर्वोत्तम परिस्थितियों में भी, कोई विश्वविद्यालय ५० अथवा अधिक संख्या वाले महाविद्यालयों के एक समूह में दशाओं का समुचित रूप से नियन्त्रण नहीं कर सकता; फिर भी आजकल कुछ विश्वविद्यालय ऐसा करने का यत्न कर रहे हैं। केवल प्रत्युपाय[4], और यह वह एक है जिसका हम इसके अपने गुणों के आधार पर, साथ ही एक साथ वर्गित महाविद्यालयों की अत्यधिक संख्या के लिये एक प्रत्युपाय होने के कारण, संस्तवन[5] करते हैं, या तो एक विश्वविद्यालय के रूप में इसके अपने पाँवों पर खड़े होने के लिये पर्याप्त शक्ति के एक महाविद्यालय, अथवा ऐसे महाविद्यालयों के एक समूह को धारण

---

1 College Governing Body. 2 Endowments. 3 Co-opted.
4 Remedy. 5 To commend.

करने वाले नगरों में स्थापित होने के लिये नवीन विश्वविद्यालय के लिये होन चाहिए, जो संधान प्ररूप[1] का एक अध्यापन विश्वविद्यालय बना सकें। ऐसे प्रत्येक विश्वविद्यालय को अपने अध्यापन केन्द्र के अतिरिक्त इसके अपने पड़ौस के महाविद्यालयों का सम्बन्धन करना चाहिए, इस प्रकार (उसे) आजकल प्राचीनतर विश्वविद्यालयों द्वारा वाहित संबद्ध महाविद्यालयों के भार को कम करना चाहिए। हमें अपने को इस विचार से मुक्त करना चाहिए कि जब एक महाविद्यालय एक विश्वविद्यालय होता है, तब आवश्यक रूप से इसका अर्थ परिमाण एवं व्यय में एक बृहद् वृद्धि होता है।

६—उच्च शिक्षण-संस्थाओं के विकास के प्रक्रम[2]

(१) प्रथम प्रक्रम एक संबद्ध महाविद्यालय के अपने प्रादेशिक विश्वविद्यालय का होगा।

(२) द्वितीय प्रक्रम महाविद्यालय की भौगोलिक स्थिति पर निर्भर करेगा। यदि महाविद्यालय एक संधान विश्वविद्यालय के निकट है, तो इसे एक संघटक महाविद्यालय हो जाना चाहिए और ऐसा करके अपनी अन्तिम अवस्था तक पहुँच जाना चाहिए। यदि महाविद्यालय एकलित[3] और फिर भी वर्धी शैक्षणिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, तो इसे यथासमय एक लघु एकीय विश्वविद्यालय हो जाना चाहिए।

(३) तृतीय प्रक्रम पर उस समय पहुँचा जाता है जब एकीय विश्वविद्यालय २,५०० छात्रों के एक योग तक पहुँच जाता है। तब इसे अपने अध्यापन एवं निवास-एककों को

1 Federative Type.   2 Stages.   3 Isolated.

विभाजित करने और एक संधान होने के लिये आवश्यक योजनाएँ बनानी चाहिए।

१०—विश्वविद्यालयों की संरचना[1] : संघटन : अधिकारी

(क) दर्शक[2]

महाशासक[3] को (अथवा राष्ट्रपति यदि राज्य का अध्यक्ष उस नाम से जाना जाने को है) भारत के समस्त विश्वविद्यालयों का दर्शक होना चाहिए, जैसाकि वह १९३७ तक था।

(ख) *कुलपति*

वर्तमान व्यवहार विभिन्न होता है, परन्तु अधिकांश प्रान्तीय विश्वविद्यालयों में प्रान्त का राज्यपाल पदेन[4] कुलपति होता है।

(ग) *उप-कुलपति*

अतः यह आश्चर्यजनक नहीं है कि हमको प्रस्तुत मत का प्रचुर पुञ्ज यह अभिस्ताव करता है कि भविष्य में समस्त विश्वविद्यालयों को पूर्णकालिक, शोधित[5] उप-कुलपति रखने चाहिएँ। हम उस मत के साथ सहमत हैं। निष्पादन-परिषद् के अभिस्ताव पर कुलपति को उप-कुलपति को नियुक्त करना चाहिए। अतः हम सर्वसम्मति से यह अभिस्ताव करते हैं कि समस्त उप-कुलपति छः वर्ष के लिये नियुक्त किये जाने चाहिएँ और पुनर्निर्वाचन के लिये योग्य नहीं होने चाहिएँ।

११—अन्य प्राधिकारों का संघटन

(i) एकीय विश्वविद्यालयों में

(क) *अधिसभा[6] अथवा अधिकरण[7]*

समस्त संख्या १०० से अधिक न होगी। अधिसभा को

1 Structure. 2 Visitor 3 Governor General.
4 *ex-officio.* 5 Paid. 6 Senate. 7 Court.

न्यूनाधिक समान रूप से आन्तरिक एवं बाह्य सदस्यों के बीच विभाजित होना चाहिए।

(ख) निष्पादन परिषद्[1] अथवा अभिषद्[2]

हम यह अभिस्ताव करते हैं कि इसे समस्त सदस्यता में १५ से कम और २० से अधिक नहीं होना चाहिए। हम यह भी अभिस्ताव करते हैं कि निष्पादन परिषद् आन्तरिक एवं बाह्य सदस्यों के बीच लगभग सम रूप से विभाजित होनी चाहिए, परन्तु सन्तुलन आन्तरिक पक्ष की ओर अभिनत हो। निष्पादन परिषद् के पदेन सदस्यों के अतिरिक्त (अन्य) समस्त (सदस्यों को) तीन वर्ष के लिये पद ग्रहण करना चाहिए। निर्वाचित सदस्य दो समयों के लिये पद ग्रहण करने के लिये योग्य होने चाहिएँ।

(ग) आधिविद्य परिषद्[3]

परिषद् को अपनी सदस्यता में पूर्णतः आधिविद्य होना चाहिए। परिमाण में इसे ४० से अधिक नहीं होना चाहिए।

(घ) निकाय[4] : निकायाधिष्ठाता[5]

प्रत्येक निकाय (i) आधिविद्य परिषद् द्वारा उस निकाय को नियोजित[6] विषयों के प्राध्यापकों एवं प्रवाचकों (ii) निकाय-विषयों के अध्यापकों एवं (iii) विशेषित ज्ञान के कारण से सहवृत[7] अधिकाधिक तीन व्यक्तियों द्वारा बना होना चाहिए। निकाय का अधिष्ठाता उस निकाय के उन प्राध्यापकों द्वारा उनकी अपनी संख्या में से निर्वाचित किया जाना चाहिए जो

---

1 Executive Council. 2 Syndicate. 3 Academic Council. 4 Faculties. 5 Dean of the Faculty. 6 Assigned. 7 Co-opted.

विभागों के अध्यक्ष हों। उसे दो वर्ष के लिये पद ग्रहण करना चाहिए और दो वर्ष की एक द्वितीय अवधि के लिये पुनर्निर्वाचन के लिये योग्य होना चाहिए।

(ङ) अध्ययन-मण्डल[1]

प्रत्येक विभाग के लिये एक अध्ययन-मण्डल होना चाहिए। इसे एक आन्तरिक निकाय होना चाहिए, परन्तु विश्वविद्यालय के बाहर से एक सदस्य सहवृत करने की शक्ति के साथ। विभागाध्यक्ष को मण्डल का सभापति होना चाहिए, जो विभाग के प्राध्यापकों एवं प्रवाचकों और प्राध्यापक-वर्ग के पाँच वर्ष के सेवाकाल के पूर्ण-कालिक सदस्यों का बना होना चाहिए।

(ii) संघान विश्वविद्यालयों में

(क) अधिसभा अथवा अधिकरण

(एकीय विश्वविद्यालयों की भांति)

(ख) निष्पादन परिषद् अथवा अभिषद्

निष्पादन परिषद् के परिमाण को, लगभग सम रूप से आन्तरिक एवं बाह्य सदस्यों में विभाजित, १५ से कम और २० से अधिक नहीं होना चाहिए। प्राध्यापक स्थानों[2] के लिये योग्य होने चाहिएँ। (शेष एकीय विश्वविद्यालयों की भांति)

(ग) आधिविद्य परिषद्

आधिविद्य परिषद् को सदस्यता में ४५ से अधिक नहीं होना चाहिए। निर्वाचित एवं सहवृत सदस्यों को तीन वर्ष के लिये पदग्रहण करना चाहिए ……।

(घ, ङ) निकाय : निकायाधिष्ठाता एवं अध्ययन-मण्डल

(एकीय विश्वविद्यालयों की भांति)

---

1 Boards of Studies. 2 Seats.

(च) *प्राचार्य-समिति*[1]

विश्वविद्यालय के संधान प्ररूप को उप-कुलपति के सभापतित्व के अधीन संघटक महाविद्यालयों के प्राचार्यों की एक स्थायी समिति[2] नामतः एक समिति विशेष की आवश्यकता होगी।

(iii) अध्यापन एवं सम्बन्धक विश्वविद्यालयों में

(क) *अधिसभा अथवा अधिकरण*

एकीय एवं संधान विश्वविद्यालयों की अपेक्षा समस्त संख्या को कुछ अधिक होने की आवश्यकता हो सकती है। हम १२० का एक अधिकतम सुझाते हैं। वहाँ सन्तुलन का एक द्विगुण प्रकार होना चाहिए, (i) आधिविद्य[3] एवं अनाधिविद्य[4] सदस्यों के बीच, (ii) विश्वविद्यालय-प्रतिनिधियों, संबद्ध महाविद्यालय-प्रतिनिधियों एवं बाह्य सदस्यों के बीच। विश्वविद्यालय-प्रतिनिधियों के $\frac{1}{3}$ संघटक महाविद्यालयों के सदस्य हों।

(ख) *निष्पादन परिषद् अथवा अभिषद्*

तथापि, हम यह अभिस्ताव करते हैं कि २५ की एक सदस्यता अधिकाधिकतम होनी चाहिए। आधिविद्य एवं अनाधिविद्य के बीच सन्तुलन लगभग सम होना चाहिए; प्राध्यापक निष्पादन-परिषद् के स्थानों के लिये योग्य होने चाहिएँ। (शेष एकीय विश्वविद्यालयों की भांति)

(ग) *अधिनियम परिषद्*

(संधान विश्वविद्यालयों की भांति)

(घ) *निकाय : निकायाधिष्ठाता*

प्रत्येक निकाय (i) आधिविद्य परिषद् द्वारा उस निकाय को नियोजित[5] विषयों के प्राध्यापकों, (ii) उनकी अपनी संख्याओं

---

1 Principal's Committee.　　2 Standing Committee.
3 Academic.　4 Non-Academic.　5. Assigned.

में से निर्वाचित निकाय-विषयों के अधिकाधिक दश अन्य विश्वविद्यालय अध्यापकों, (iii) उस प्रत्येक संबद्ध महाविद्यालय से एक अध्यापक, जो संबद्ध निकाय के विषयों में अध्यापन प्रदान करता है, (iv) उनके विशेषित ज्ञान के कारण सहवृत अधिकाधिक तीन व्यक्तियों द्वारा बना होगा।

(ङ) *अध्ययन-मण्डल*

प्रत्येक विभाग के लिये एक अध्ययन-मण्डल होना चाहिए। प्रत्येक विषय में विश्वविद्यालय-विभाग का अध्यक्ष मण्डल का पदेन् सभापति होना चाहिए, जो (i) विषय के चार-विश्वविद्यालय-अध्यापकों, एवं (ii) संबद्ध महाविद्यालयों से विषय के पाँच अध्यापकों द्वारा बना हो। सभापति के अतिरिक्त समस्त सदस्य निकाय द्वारा तीन वर्ष के लिये नियुक्त किये जाने चाहिएँ और जब तक एक वर्ष व्यतीत न हो, जब तक पुनः नियुक्ति के लिये योग्य नहीं होने चाहिएँ। मण्डल एक बाह्य सदस्य सहवृत करने की शक्ति रखेगा।

१२—अनुदान-आवण्टन-समिति[1]

अध्यापन-एवं-सम्बन्धक विश्वविद्यालय (एक अथवा अधिक) सहित प्रत्येक प्रान्त को विश्वविद्यालय के अध्यापन अनुभाग को एवं संबद्ध महाविद्यालयों को अनुदानों के आवण्टन के लिये एक विशेष समिति की आवश्यकता होगी। यह अनुदान-आवण्टन-समिति, एक पूर्ण-कालिक सभापति, दो अन्य अशासनिक सदस्यों एवं शिक्षा एवं वित्त के मन्त्रालयों में से प्रत्येक के एक प्रतिनिधि द्वारा, केन्द्रीय-अनुदान-आयोग की रेखाओं पर संघटित

1 Grants Allocation Committee.

होगी। समिति को एक पूर्ण-कालिक सचिव एवं पर्याप्त कर्म-चारियों की आवश्यकता होगी।

१३—अन्य समितियाँ

एक विश्वविद्यालय अनेक स्थायी समितियां रख सकता है, परन्तु दो ऐसे महत्व को हैं कि हम उनके सम्बन्ध में अपने अभिस्ताव अभिलेखबद्ध करना चाहते हैं।

(क) वित्त-समिति

इसे निष्पादन परिषद् की एक स्थायी समिति होना चाहिए, यद्यपि इसे निष्पादन परिषद् के सदस्यों तक सीमित होने की आवश्यकता नहीं है।

(ख) प्रवरण-समिति[1] अथवा समितियाँ

ये या तो एक स्थायी समिति हो सकती हैं जिसकी सदस्यता विचाराधीन रिक्त स्थान के अनुसार विभिन्न होती है, अथवा प्रत्येक रिक्त-स्थान के लिये एतदर्थ[2] समितियों की एक माला। परन्तु यह अत्यन्त महत्व का है कि स्थायी शिक्षक-वर्ग के समस्त रिक्त-स्थानों के साथ समुचित रूप से संघटित एक समिति द्वारा संव्यवहार किया जाना चाहिए। इसे निष्पादन परिषद् की एक समिति होना चाहिए; उप-कुलपति को इसका सभापति होना चाहिए....।

१४—वित्तव्यवस्था[3]

१—विश्वविद्यालयों की असन्तोषजनक वित्त-स्थिति के कारण

(१) व्यय में वृद्धि उन कारणों से है जिन पर विश्व-विद्यालयों का नियन्त्रण नहीं था। संक्षिप्तः वर्णित, युद्धकालीन

---

1 Selection Committee 2 *ad hoc*. 3 Finance.

एवं युद्धोत्तरकाल की दशाओं ने उन शीर्षों में व्यय में कुछ असामान्य वृद्धियों को उपस्थित कर दिया है, जिनका अनुमान युद्ध से पूर्व विश्वविद्यालय नहीं कर सकते थे।

(२) उन विश्वविद्यालयों में, जो पर्याप्त स्थायी निधियाँ रखते थे अथवा जो पुञ्जीकृत[1] निधियाँ रखते थे, ब्याज-दरों के प्रह्रास का परिणाम संस्थाओं की एक संख्या के सामान्य स्थायी-निधि-आय के अन्तर्गत गम्भीर हानि की यातना में हुआ है।

(३) जबकि वहाँ इस प्रकार संबद्ध विश्वविद्यालयों की वार्षिक आय में एक बड़ा ह्रास हुआ है, वहाँ दूसरी ओर, जैसा कि ऊपर वर्णन किया जा चुका है, व्यय-पार्श्व में एक अत्यन्त बृहत् वृद्धि हो चुकी है। वर्धित व्यय का मुख्य पद, जीवन के उच्च परिव्ययों द्वारा आवश्यक बनाये हुए, अध्यापकों के एवं प्रशासनात्मक कर्मचारिवृन्द के वेतनों पर रहा है।

(४) व्यय में इन सामान्य वृद्धियों के अतिरिक्त, यह लिखित होने को है कि पर्याप्त वृद्धि एक विश्वविद्यालय में व्यय में समस्त पदों (विश्वविद्यालय-प्रकाशन, प्रयोगशाला-उपकरण, भवनों एवं छात्रावासों का निर्माण, परीक्षा-व्यय) के अधीन वर्धी लागत के कारण भी अपरिहार्य है।

(५) विश्वविद्यालय-शिक्षा के विस्तार की एक विशेषता, जिसने वित्तव्यवस्था को गम्भीरता से प्रभावित किया है, एक अत्यन्त लघु समय के भीतर नवीन विश्वविद्यालयों की एक संख्या का आरम्भण तथा प्रवर्तमान विश्वविद्यालयों का परिणामी पुनःसंरूपण[2] है।

---

1 Capitalised. 2 Reshaping.

(६) ये कठिनाइयाँ प्रवर्धित होंगी जब विश्वविद्यालयों से उच्च पाठशाला एवं मध्यमा श्रेणियों के स्थानान्तरण के लिये हमारे प्रस्ताव कार्यान्वित किये जाएँगे और जब प्रथम उपाधि के लिये विश्वविद्यालय-पाठचर्या दो वर्ष से तीन वर्ष तक लम्बी की जाएगी।

(७) अथापि, प्रत्येक नवीन विश्वविद्यालय में उत्तर-स्नातक श्रेणियों का आरम्भण किया जाना होता है और उनमें से प्रत्येक में आने वाली लघु संख्या को महँगा शिक्षण दिया जाना।

(८) इसके अतिरिक्त, अन्वेषण कार्य में, जिसे इन विश्व-विद्यालयों में से प्रत्येक में प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, पर्याप्त व्यय का समावेश होता है।

२—संबद्ध महाविद्यालयों के वित्तीय स्रोत

(क) *अनुदान*[1]

संबद्ध महाविद्यालयों को दिया जाने वाला वित्त-साहाय्य प्रान्त से प्रान्त तक विभिन्न होता है; कुछ में यह सम्मोदित[2] स्थानों के वेतनों के ५०% के समान होता है, परन्तु कुछ प्रान्तों में शासनों द्वारा अशासकीय महाविद्यालयों को कोई अनु-दान नहीं किये जाते हैं। अतः, संबद्ध महाविद्यालयों की स्थिति प्रबन्धकों एवं संबद्ध विश्वविद्यालयों दोनों को पर्याप्त चिन्ता करवा रही है, क्योंकि किया जाने वाला व्यय उन्हीं कारणों से बढ़ चुका है जिनसे विश्वविद्यालय-वित्त के भिन्न पदों के अधीन व्यय बढ़ा है।

---

1 Grants. 2 Sanctioned.

(ख) स्थायी निधियाँ

न यह कहा जा सकता है कि महाविद्यालय आश्रय लेने के लिये पर्याप्त स्थायी निधियाँ रखते हैं। सु-स्थापित-महाविद्यालयों के सम्बन्ध में भी, स्थायी निधियों से आय घट गई है और अन्य स्रोतों से आय क्षीण हो गई है। तथापि, यह कहा जाना चाहिए कि इन स्थायी निधियों के होने पर भी, न तो नये महाविद्यालय, न पुराने महाविद्यालय वेतनों एवं दक्ष शिक्षण की अन्य दशाओं के सम्बन्ध में वर्धी माँगों की पूर्ति करने के लिये एक थिति में हैं।

३—विश्वविद्यालयों की स्थायी निधियाँ

यह कहा जा चुका है कि विश्वविद्यालय अपनी आय अपने द्वारा आरोपित परीक्षा-शुल्कों एवं शिक्षण-शुल्कों से अलग या तो स्थायी निधियों से अथवा शासकीय अनुदानों से प्राप्त करते हैं। यद्यपि कुछेक विश्वविद्यालय बृहत् प्रदत्त स्थायी निधियाँ रखते हैं, यह कहा जा सकता है कि सामान्यतः स्थायी निधियों से प्राप्त आय आधुनिक विश्वविद्यालयों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये किसी प्रकार से भी पर्याप्त नही है।

४—आयकर से छूट

कुछ के द्वारा यह सुझाया गया है कि यदि हम शिक्षा-प्रयोजनों के लिये परिदानों[1] के लिये अनुदत्त[2] होने के लिये करों से मुक्ति के सम्बन्ध में अपने आयकर-नियमों में एक खण्ड[3] रखें तो विश्वविद्यालयों के लिये दान प्रोत्साहित होंगे।

५—विश्वविद्यालयों के लिये शासकीय अनुदान

वह समय आ गया है जब शासन एवं लोक-मत के नेताओं

1 Gifts. 2 Granted. 3 Clause.

को परिस्थिति का स्कन्ध-मूल्यन[1] करना चाहिए और विश्व-विद्यालयों को कार्य करने के लिये समर्थ बनाना चाहिए जिससे वे सामान्यत: बौद्धिक अनुसरण के समस्त क्रमों में स्वावलम्बी एवं आत्मनिर्भर हो सकें। तथापि, भय इस दिखावटी तर्क में रहता है कि जब तक ऐसी (विस्तृत) प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा समस्त देश में फैले, तब तक विश्वविद्यालय शिक्षा को वित्त-साहाय्य नहीं दिया जाना चाहिए जो इसकी दक्षता एवं पर्याप्तता के लिये अत्यन्त आवश्यक है। हम इस प्राथमिक तथ्य की ओर जनता एवं शासन का ध्यान खींचने के लिये (अपने को) बाध्य अनुभव करते हैं कि ये दोनों (प्राथमिक, माध्यमिक शिक्षा एवं विश्वविद्यालय शिक्षा) परस्परविरोधी नहीं, परन्तु संपूरक हैं, और वित्त की उस किसी योजना में, जो प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के विस्तार को बढ़ाएगी, विश्वविद्यालय शिक्षा के लिये भी वित्त-सहायता उपलक्षित होगी। इस एवं पूर्वगत अध्यायों में जो कुछ कहा गया है उससे यह स्पष्ट हो जाएगा कि जब तक केन्द्र एवं प्रान्तों दोनों से विश्वविद्यालयों के लिये पर्याप्त अनुदान प्राप्त नहीं बनाये जाते हैं, तब तक विश्वविद्यालयों का कार्य गम्भीरता से अवबाधित होगा।

६–अनुदान के भिन्न पद

इन प्रयोजनों में, अन्य के साथ, निम्नलिखित का समावेश होता है:—

(१) अध्ययन के महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय-विभागों के लिये भवन-अनुदान;

(२) उपकरण अनुदान;

---

1 To take stock of.

(३) पुस्तकालय अनुदान;

(४) निवास-स्थान के प्रशालों[1] के लिये अनुदान;

(५) भविष्य-निधि[2], निवृत्तिवेतन[3], इत्यादि, सहित प्राध्यापकीय एवं अन्य प्राध्यापक-वर्ग के वेतन;

(६) छात्रवृत्तियाँ एवं अधिछात्रवृत्तियाँ[4];

(७) यात्रा-छात्रवृत्तियाँ एवं अध्ययन-अवकाश;

(८) अन्वेषण एवं उत्तर-स्नातक कार्य, विशेषतः प्रावैधिक एवं व्यावसायिक शिक्षण के प्रोत्साहन के लिये अनुदान।

७—विश्वविद्यालयों के लिये केन्द्रीय उत्तरदायित्व

जबकि उन अनुदानों का स्वागत एवं अधिमूल्यन (करता है), जो अब तक दिये गये हैं, आयोग यह सुझाएगा कि यद्यपि अन्य विश्वविद्यालयों (बनारस, अलीगढ़ एवं दिल्ली के अतिरिक्त) के अनुदान मुख्यतः प्रान्तीय उत्तरदायित्व होते हैं, वे, कम से कम, जहाँ तक उत्तर-स्नातक शिक्षण एवं अन्वेषण का सम्बन्ध है वहाँ तक केन्द्रीय शासन का विषय भी होने चाहिएँ।

८—समूह अनुदान-प्रणाली[5]

हम यह विश्वास करते हैं कि प्रान्तीय शासनों द्वारा समूह अनुदान की उस प्रणाली ने, जो विश्वविद्यालयों में से कुछ में प्राप्य है, इतनी सफलतापूर्वक कार्य किया है कि हमें इस प्रणाली को केन्द्रीय शासन को एवं अन्य प्रान्तीय शासनों को भी संस्तवित करने में हिचकिचाहट नहीं है। तथापि, इसे समझा जाना होगा कि समूह अनुदान मुख्यतः सन्धारण[6] प्रयोजनों के

---

1 Halls. 2 Provident Funds. 3 Pensions.
4 Fellowships. 5 System of Block Grants. 6 Maintenance.

लिये अभिप्रेत होते हैं जब कि समधिक[1] अनुदान उन विकास-योजनाओं के लिये प्राप्य होंगे जो वर्ष से वर्ष तक विश्व-विद्यालय-अनुदान-आयोग द्वारा अनुमोदित होते हैं।

१५—ग्रामीय विश्वविद्यालय[2]※

१—ग्रामीय शिक्षण का महत्व : प्रस्तावना

नवीन संस्थाओं की समस्या पर देखते समय यह तथ्य दृष्टि में रखा जाना चाहिए कि, जैसाकि १९४१ की जनगणना द्वारा सूचित किया गया है, भारत की जन संख्या का लगभग ८५% गाँवों में रहता है। यह विशाल जनसंख्या, उन योग्य तरुण व्यक्तियों के ग्रामीय जीवन से स्थायी प्रत्याहरण[3] के अतिरिक्त, जो विश्वविद्यालयों के लिये गाँवों को छोड़ चुके हैं, माध्यमिक अथवा उच्च शिक्षण द्वारा सम्भव ही स्पृष्ट[4] रही है। इस जनसंख्या की चरम निर्धनता एवं सांस्कृतिक अवसर का अभाव सामान्य ज्ञान (की बात) है। प्रज्ञा का पथ[5] इस स्पष्ट अभाव को अनङ्गीकार करना अथवा उसकी उपेक्षा करना नहीं, परन्तु शैक्षणिक अवसर के ऐसे प्ररूप उत्पन्न करना है जो भारतीय ग्रामीय जीवन के उपयुक्त हों, और उस जीवन को एक ऐसा गुण एवं परिसर[6] देना है जो उस असमता को हटा देगा जो इस समय एक वास्तवता है।

---

1 Additional. 2 Rural Universities. 3 Withdrawl.
4 Touched. 5 Course of Wisdom. 6 Range.

※ राधाकृष्णन आयोग के अध्याय १५, १६, १७ में क्रमशः "बनारस, अलीगढ़ एवं दिल्ली विश्वविद्यालय", अन्य विश्वविद्यालय", तथा "नवीन विश्वविद्यालय" के सम्बन्ध में अभिस्ताव किये गये हैं। एकैक विश्वविद्यालय की विशेष स्थितियों से सम्बन्धित होने के कारण इन्हें यहाँ प्रस्तुत नहीं किया जा रहा है।

२—भारतीय ग्राम का महत्व

भारत के गाँव मानवीय ऊर्जा[1], बुद्धि एवं महत्त्वाकाँक्षा का एक विशाल जलाशय[2] हैं, इस समय जिसका अधिकाँश व्यर्थता में नष्ट हो रहा है। भारतीय लड़के एवं लड़कियाँ जीवन में सतर्क, जिज्ञासु, जीवित रहने एवं सीखने के लिये उत्सुक (होकर) आरम्भण करती हैं। उनके पर्यावरण की मन्द निराशा अनेक में भावना को मार देती है, जिससे पुरुष एवं स्त्रियों के रूप में वे गतानुतिक[3] एवं अक्रिय हो जाते हैं। एक ग्रामवासी को स्वास्थ्य, स्वच्छता, उपजीविका-विभिन्नता, विनोद के लिये स्थान एवं समय और एक भावना, कि उसकी आशाएँ पूरी हो सकती हैं, के साथ एक अच्छे जीवन का एक चित्र दो, तो जनता की ऊर्जाएँ एक नवीन ग्रामीय भारत बना देंगी, एक महान् जनता के लिये एक उपयुक्त एवं सुन्दर निवास-स्थान।

३—आधारभूत शिक्षण[4] की शक्यताएँ

इस आन्दोलन को विकुञ्चित[5] एवं अशुद्ध अभिव्यक्ति के विरुद्ध आगोप[6] करने, तथा प्रभावशाली दक्षताओं एवं रीतियों का विकास करने के लिये वर्षों का समय एवं विशाल यत्न अपेक्षित होगा; तथापि स्वाभाविक रूप से यह अवधारणा शिक्षा के लिये संसार की महान् देनों में से एक है। इस दर्शन का सार यह है कि शिक्षण को जीवित रहने एवं कार्य करने की दिन प्रति दिन की विधाओं[7] में अभ्यास को,

1 Energy. 2 Reservoir. 3 Conservative. 4 Basic Education. 5 Warped. 6 To insure. 7 Processes.

अधिक औपचारिक शिक्षण के साथ संयोजित करना चाहिए। आधारभूत शिक्षण को बच्चों को जीवन के समस्त विषयों एवं अभिरुचियों से परिचित कराना चाहिए। इसे अपनी मुख्य पदावलियों में कताई एवं बुनाई के साथ एक नैत्यक[1] नहीं हो जाना चाहिए।

४–ग्रामीय माध्यमिक विद्यालय ("उत्तर-आधारभूत शिक्षण")

(क) *उद्देश्य*

जहाँ तक शैक्षणिक संसाधन तय्यारी का समर्थन करें, वहाँ तक विद्यालय का उद्देश्य अत्यन्त प्रभावशाली जीवन के लिये छात्र की सहायता करना होना चाहिए।

(ख) *अवधि*

ग्रामीय उत्तर-आधारभूत अथवा माध्यमिक विद्यालय की अवधि को शिक्षा की सम्पूर्ण वितस्ति[2] से संबद्ध होना चाहिए। इस वितस्ति का एक उपयुक्त वितरण (निम्नलिखित) होगा :

(१) ८ वर्ष आधारभूत शिक्षण के लिये,

(२) ३ अथवा ४ वर्ष उत्तर-आधारभूत अथवा माध्यमिक शिक्षण के लिये,

(३) ३ वर्ष महाविद्यालय के लिये,

(४) २ वर्ष अधिस्नातक-उपाधि[3] के लिये उत्तर-स्नातक विश्वविद्यालय कार्य।

समय का एक वैकल्पिक वितरण होगा : आधारभूत ७, उत्तर-आधारभूत ४, और महाविद्यालय के लिये ३।

1 Routine.   2 Span.   3 Master's Degree.

(ग) संघटनात्मक विशेषताएँ ।

वहाँ के अतिरिक्त, जहाँ प्रतिकूल के लिये अच्छे कारण हों, ग्रामीय माध्यमिक विद्यालय को, छात्रावासों में, अथवा यदि साध्य हो तो, ऐसे गृहों में जैसे अच्छे ग्रामीय जीवन के लिये उपयुक्त होंगे, रहने वाले छात्रों के साथ एक निवास-विद्यालय होना चाहिए। स्थल एवं गलियाँ योजनाबद्ध तथा भवन योजनाबद्ध एवं संरचित होने चाहिएँ, एक सुयोजनाबद्ध आधुनिक गाँव के यथा-शक्य लगभग। तथापि इसे (माध्यमिक शिक्षा को) उन्हें (लड़कों एवं लड़कियों को), प्राप्य युक्तियुक्त वित्तीय एवं सामाजिक संसाधनों के भीतर, नये गाँव बनाने के व्यावहारिक उपायों से परिचित बनाना चाहिए। विद्यालय-ग्राम ग्राम-योजना, निर्माण एवं संकार्य[1] में जो कुछ वाञ्छनीय एवं व्यावहारिक है उसमें एक उदाहरण होना चाहिए। निवास-विद्यालय मातापिता के लिये अथवा शासन के लिये कल्पित मितव्ययिता के कारण मुरझाने के लिये अनुमत नहीं होने चाहिएँ। अनेक शत समूह विद्यालयों की अपेक्षा १५० से २०० छात्रों के लघु एकक अत्यन्त उत्तम होंगे। १५० छात्रों के लिये एक विद्यालय को, परिस्थितियों पर निर्भर रहते हुए, संभवतः ३० से ६० एकड़ भूमि रखनी चाहिए। यथा-शक्य, विद्यालय-ग्राम, ग्राम एवं विद्यालय-योजना में प्रशिक्षित एक व्यक्ति की सहायता से, एक साथ काम करते हुए छात्रों एवं उनके अध्यापकों द्वारा बनाया जाना चाहिए।

(घ) जीवन द्वारा सीखना[2]

विद्यालय के जीवन को, इसके अतिरिक्त कि लगभग आधा

---

1 Operation. 2 Learning by Living.

कार्य-समय अध्ययन को दिया जाएगा और लगभग आधा व्यावहारिक कार्य को, एक अच्छे गाँव की जीवन-चर्या का अनुसरण करना चाहिए। कुछ कार्य जैसे विद्यालय-ग्राम की स्वच्छता, संभवतः प्रत्येक व्यक्ति, एक साथ कार्य करते हुए अध्यापकों एवं छात्रों, द्वारा किया जाना चाहिए। कार्य के कुछ ऐसे प्रकार हैं जिनसे लगभग प्रत्येक छात्र को परिचित हो जाना चाहिए, जैसे शिशु-अवेक्षा[1], रसोई, तथा गृह-धारण लड़कियों के लिये, और कृषि एवं गृह्य उपकरणों का प्रयोग लड़कों एवं लड़कियों के लिये। विद्यालय को अपने भोजन का अधिकांश उत्पन्न करना चाहिए और भूमि से यथा-शक्य सम्भव उत्पन्न कराना लड़कों एवं लड़कियों को सिखलाना चाहिए। प्रयोगात्मक कार्य में कृषिकरण, भवन, तक्षण[2] एवं मञ्जूषा-निर्माण[3], गृहपालन, बुनाई, वीथि-स्वच्छता और अन्य उपयोगी ग्राम-कार्य का समावेश होना चाहिए। इसमें विक्रय के लिये निर्माण करने वाले एक अथवा अधिक उद्योगों का भी समावेश होना चाहिए।

(ङ) *ग्रामीय माध्यमिक विद्यालय का कार्यक्रम : पाठ्यक्रम*

अपने अध्ययन के घण्टों में छात्रों को सर्वतोमुख एवं अनुपातित शिक्षा प्राप्त करते रहना चाहिए। उन्हें भूगोल, भौमिकी[4] एवं ज्यौतिष द्वारा प्रकटित भौतिक पर्यावरण से; भौतिकी[5] एवं रसायन में भौतिक विज्ञानों से; और जैविकी में जीवित वस्तुओं के विश्व से परिचित हो जाना चाहिए। उन्हें उनके अपने स्थान के, भारत के एवं विश्व के इतिहास का एक

1 Child Care. 2 Carpentry. 3 Cabinet Making.
4 Geology. 5 Physics.

सामान्य ज्ञान प्राप्त करना चाहिए और वे कुछ अच्छे साहित्य में प्रवेशित किये जाने चाहिएँ। उन्हें अपनी व्यावहारिक आवश्यकताओं का निर्वहण करने के लिये पर्याप्त गणित, और स्थानीय एवं राष्ट्रिय शासन का एक सामान्य ज्ञान रखना चाहिए। उनके अध्ययनों को अपने कार्य के सिद्धान्त को समझने के लिये उनकी सहायता भी करनी चाहिये। शारीरिक शिक्षण सार्वत्रिक होना चाहिए। शिक्षा देने से भी अधिक महत्त्वपूर्ण मस्तिष्क एवं भावना के व्यसनों एवं दृष्टिकोणों का विकास करना है। ग्रामीय माध्यमिक विद्यालय को अपने औद्योगिक कार्य में एक नवीन औद्योगिक परम्परा उत्पन्न करनी चाहिए। इस परम्परा का विकास होना चाहिए कि ग्रामीय उद्योगपति युक्तियुक्त एवं समुचित जीवन एवं आर्थिक सुरक्षा के पात्र होते हैं, परन्तु कि इन स्तरों के बाहर समस्त अर्जनों[1] को उद्योग को सबल करने, विस्तार के लिये अथवा मन्दी के विरुद्ध आरक्ष[2] संचित करने, नवीन माध्यमिक विद्यालयों के लिये नवीन उद्योग स्थापित करने, गुण सुधारने, मूल्य गिराने. अथवा भृतियाँ[3] उठाने और कार्य करने की दशाओं को सुधारने के लिये जाना चाहिए। संभवतः अल्पावधि प्रावैधिक पाठचर्याओं के लिये व्यवस्था माध्यमिक-विद्यालय-ग्रामों से संबद्ध होनी चाहिए।

(च) आत्म-निर्भरता

आधारभूत शिक्षण माध्यमिक विद्यालय को तरुण व्यक्ति के लिये इस सत्य का एक उदाहरण होना चाहिए कि सरल, सस्ता जीवन स्वच्छ, सुविधाजनक एवं आकर्षक जीवन हो

1. Earnings 2 Reserves. 3 Wages.

सकता है। आत्म-निर्भरता अंशतः अभावों को अत्यन्त सरल जीवन तक आयन्त्रित करके, और अंशतः आय को बढ़ा कर आनी चाहिए।

(छ) ग्राम-औद्योगीकरण

भारत अवश्य ही उद्योग का विकास करेगा। औद्योगीकरण मानव जीवन में महान् आधारभूत परिवर्तनों में से एक है, उतना आधारभूत जितना आखेट से व्यवस्थापित कृषि में परिवर्तन। इसे रोका नहीं जा सकता परन्तु स्वस्थ मार्गों में ले जाया जा सकता है। गाँव की जनता पुस्तकें, वितन्तु[1], घड़ियाँ, द्विचक्र[2], धातु-वस्तुएँ, विद्युत-शक्ति, तथा संयान-यात्रा[3] चाहती है, जो प्रत्येक गाँव द्वारा स्वयं उत्पन्न नहीं की जा सकती। माध्यमिक ग्रामीय शिक्षा को विकेन्द्रीयित, सु-सन्तुलित, प्रगतिशील औद्योगीकरण को धारणा करना चाहिए।

५—भारतीय गाँवों के पुनर्निर्माण के लिये एक कार्यक्रम

भारतीय गाँव का भविष्य क्या हो सकता है, इसके कुछ चित्र के बिना ग्रामीय शिक्षा का भविष्य स्पष्ट नहीं हो सकता। एक ग्रामवासी का एक अच्छा गाँव क्या हो सकता है। इसके किसी स्पष्ट, पूर्ण चित्र का अभाव, भारतीय गाँव की महानतम बाधाओं में से है। ग्राम-जीवन की प्रत्येक प्रावस्था विषयक, वाञ्छनीय एवं व्यावहारिक जीवन-दशाएँ क्या होती हैं इसका स्पष्ट चित्र विकसित करना, और ऐसी दशाओं के उदाहरण प्रदान करना, ग्रामीय शिक्षा का कार्य होना चाहिए। जिनका अभाव है वे प्राकृतिक संसाधन अथवा मानवीय उर्जा[4] नहीं है, परन्तु वाञ्छनीय एवं शक्य क्या है इसका एक स्पष्ट मान-

1 Radio. 2 Bicycle. 3 Railway Travel. 4 Energy.

सिक चित्र, और ऐसी शक्यताओं को प्राप्त करने के लिये चरित्र, दक्षता, अनुभव एवं संस्कृति। इन गुणों को प्रदान करना ग्रामीय शिक्षण का मुख्य कार्य होता है। भारत भर में नवीन तथा सुन्दर गाँवों का निर्माण एक राष्ट्रिय आन्दोलन हो सकता है। केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय शासन ऐसे स्थानीय लोकतन्त्रात्मक सूत्रपात के लिये आवश्यक नियम प्रदान कर सकते हैं, जिससे गाँव अथवा ग्राम-समूह उनकी अपनी योजनाएँ बना सकें। भारतीय प्रान्तीय शासनों को भूमि-करों से प्राप्त निधियों के एक पर्याप्त भाग को गाँवों की दशा सुधारने के लिये प्रयोग करना चाहिए। केन्द्रीय शासन सु-विकास के नमूने प्रदान कर सकता है, जिससे जनता यह देख सकती है कि शक्य क्या है। गाँवों की अधियोजना एवं पुनर्निर्माण की विधा[1] ही सम्पूर्ण ग्राम-जनसंख्या के लिये आधारभूत शिक्षण का एक कार्यक्रम बनायी जा सकती है। यहाँ ग्रामीय विश्वविद्यालयों के और केन्द्रीय एवं प्रान्तीय शासनों के समुपदेश[2] वाञ्छनीय होंगे। ग्राम-योजनाओं पर चर्चा करने के लिये अनेक अधिवेशन आवश्यक होंगे। स्वच्छता की आवश्यकताएँ समझी जानी चाहिएँ। गृहों के सर्वोत्तम रूपाङ्कन[3] बनाये जाने चाहिएँ। वीथियों की चौड़ाई विनिश्चित की जानी चाहिए। एक आधारभूत पाठशाला के लिये अपेक्षित स्थान पर वार्ता होनी चाहिए। ग्रामोद्योगों के लिये स्थितियाँ प्रदान की जानी चाहिएँ। ग्रामवासियों पर बल-प्रयोग अथवा अधिदेशन[4] नहीं होना चाहिए, परन्तु क्षम विशेषज्ञों द्वारा उनकी सहायता जानी चाहिए। यथा-शक्य ये विशेषज्ञ गाँवों के वे पुरुष एवं स्त्रियाँ के होने चाहिएँ जो

1 Process. 2 Counsel. 3 Design. 3 Dictaion.

ग्रामीय माध्यमिक विद्यालय, ग्रामीय महाविद्यालयों एवं ग्रामीय विश्वविद्यालयों में प्रशिक्षित किये गये हैं। केन्द्रीय शासन एवं प्रत्येक प्रान्तीय शासन को अपने विभागों में से एक में ऐसी समस्त स्थितियों (पुनःस्थिति एवं पुनर्निर्माण) से सम्पर्क रखने तथा योजनाओं एवं पुनःस्थिति पर मन्त्रणा देने के लिये एक व्यक्ति अथवा एक लघु कर्मचारिवृन्द का उपबन्ध करना चाहिए। केन्द्रीय शासन के कर्मचारिवृन्द में समुदाय-योजना, निर्माण की रीतियों एवं पुनःस्थिति तथा पुनर्निर्माण के प्रशासन की रीतियों के लिये एक अन्वेषण-केन्द्र का समावेश होना चाहिए।

६—ग्रामीय महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय[1]

(क) उद्देश्य

ग्रामीय भारत की सामान्य उन्नति दक्षता एवं प्रशिक्षण की सदा वर्धमान सीमा एवं गुण का आह्वान करेगी। इन्हें प्रदान करने के लिये तथा एक शिक्षित नागरिकता की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये, ग्रामीय महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों की एक प्रणाली आवश्यक है।

(ख) संघटन

प्रबन्ध के एक सामान्य प्ररूप के रूप में, यह सुझाया जाता है कि एक ग्रामीय विश्वविद्यालय में, केन्द्र में विशेषित तथा विश्वविद्यालय-सुविधाओं के साथ, लघु निवास, स्नातक-पूर्व महाविद्यालयों के एक वलय[2] का समावेश होना चाहिए। स्नातक-पूर्व, निवास महाविद्यालयों में से प्रत्येक के लिये छात्रों की सुझायी गई संख्या लगभग तीन सौ है, और महाविद्यालयों

---

1 Rural Colleges and Universities.   2 Ring.

एवं विश्वविद्यालय संयुक्त के लिये अधिकतम समस्त नामाङ्कन[1] लगभग २,५०० । इसके अतिरिक्त कि स्नातक-पूर्व पुस्तकालय, प्रयोगशाला, व्यायामशाला, तथा चिकित्सालय-सुविधाएँ इतने महाविद्यालयों द्वारा भाजित हो सकती हैं जितने वाञ्छनीय सिद्ध हों, लगभग तीन सौ छात्रों का प्रत्येक महाविद्यालय, जहाँ तक इसकी आधारभूत पाठचर्याओं का सम्बन्ध है, पृथक् प्राध्यापक-वर्ग तथा सुविधाएँ रखेगा।

(ग) पाठ्यक्रम

प्रत्येक महाविद्यालय का उद्देश्य छात्रों को एक सामान्य शैक्षणिक नेम[2] से सज्ज करना, तथा ज्यों ही वे उपस्थित हों, त्यों ही वैयक्तिक अभियोग्यताओं तथा अभिरुचियों के विकास को प्रोत्साहित करना होगा। कुछ स्थितियों में, स्नातक-पूर्व छात्र किन्हीं विशेष क्षेत्रों में व्यावसायिक अथवा अन्य विशेषित अध्ययन लेने के लिये योग्य होंगे। प्रत्येक छात्र को, समान्य शिक्षण के आन्तरक[3] का त्याग किये बिना, किसी भी उस समय पर जब वह इसके लिये तय्यार है, इस संशय पर भी कि पीछे वह व्यावसायिक अभिरुचि के अपने क्षेत्र को परिवर्तित कर सकता है, विशेषीकरण आरम्भ करने का अवसर प्राप्त होना चाहिए। समरूपतः, स्नातक-पूर्व तथा उत्तर-स्नातक अध्ययन के बीच कठोर रेखाएँ नहीं होनी चाहिएँ। ग्रामीय महाविद्यालयों में, जैसाकि ग्रामीय माध्यमिक विद्यालयों में, सामान्य शिक्षण प्रयोगात्मक पाठचर्याओं से संयुक्त होने चाहिएँ, जिससे वे, जो महाविद्यालय में उपस्थित होते हैं, संस्कृत, शिक्षित पुरुष तथा स्त्रियाँ, और किसी क्षेत्र में प्रशिक्षित

---

1 Enrolment. 2 Foundation. 3 Core.

तथा दक्ष अथवा अग्रिम उच्च प्रशिक्षण के लिये तय्यार व्यक्ति भी हो जाएँगे। जैसा कि ग्रामीय माध्यमिक छात्रों के साथ (होता है), ग्रामीय-महाविद्यालय-छात्र भी अपने समय का लगभग आधा समय अध्ययन पर तथा आधा प्रयोगात्मक कार्य पर व्यय कर सकते हैं। महाविद्यालय अथवा महाविद्यालयों के एक समूह के कर्मचारिवृन्द का एक भाग कार्य के उपयुक्त अवसर प्राप्त करने में, तथा उनके कार्य के घण्टों में छात्रों का पर्यवेक्षण करने में लगा होना चाहिए। सामान्यतः, महाविद्यालय उनके अपने उद्योग तथा अन्य आर्थिक क्रिया विकसित कर सकते हैं जो ग्रामीय माध्यमिक विद्यालयों की अपेक्षा अधिक विशेषित तथा अधिक कठोर हो सकती है।

(१) सामान्य कार्यक्रम—महान् सांस्कृतिक मूल्य विशिष्टतः ग्रामीय अथवा नगरीय नहीं होते हैं, परन्तु समस्त मानवता के लिये सामान्य होते हैं। जैसाकि इस प्रतिवेदन में सामान्य शिक्षण के अन्तर्गत वर्णित है, संस्कारी शिक्षण का एक सामान्य आन्तरक ग्रामीय विश्वविद्यालय के लिये, जैसाकि किसी अन्य के लिये, कल्पित किया जा सकता है, यद्यपि अध्यापन में एवं सीखने में प्रयुक्त रीतियाँ भिन्न हो सकती हैं। इस सामान्य आन्तरक में गणित, रसायन, भौतिकी[1], भौमिकी[2], ज्यौतिष, जैविकी[3], शारीरिक शिक्षण, मनोविज्ञान, समाज विज्ञान, दर्शन एवं भाषा तथा साहित्य का समावेश होगा।

(२) अध्ययन-संयोजन[4]—जिस समय छात्र महाविद्यालय में पहुँचते हैं, उस समय, यदि वे सु-प्रज्ञापित[5] रहे हैं और अन्यत्र वर्णित प्रयोगात्मक-कार्यानुभव प्राप्त कर चुके हैं, तो

1 Physics. 2 Geology. 3 Biology. 4 Combination of Studies. 5 Well advised.

उनमें से अनेक उस कार्य के निश्चित विचार रखेंगे जिसे वे करना चाहते हैं। अपने अध्यापकों की सहायता से वे अपनी वैयक्तिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अनेक क्षेत्रों से पाठ-चर्याएँ संयोजित कर सकते हैं। उदाहरण के लिये, लोक-जल-नियन्त्रण-परियोजनाओं[1] का संचालन करने के लिये योजना करने वाला एक व्यक्ति आभियान्त्रिकी[2], विधि, व्यापार, तथा लोक-प्रशासन का संयोजन कर सकता है।

शिक्षा में ग्रामीय-विश्वविद्यालय-छात्र प्रशासन तथा प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च ग्रामीय शिक्षण में नेतृत्व के लिये तय्यारी कर सकता है। कृषि में वह उत्पादन, विपणन[3], अभिजनन[4] एवं कृषि-सहकारिता में नेतृत्व के लिये तय्यारी कर सकता है। उद्योग में बद्धहित छात्र को यन्त्रों एवं विधाओं[5] के रूपाङ्क[6] एवं सुधार का अध्ययन करना चाहिए। ग्रामीय महाविद्यालय अथवा विश्वविद्यालय के छात्र को अपने समय के जीवन से पृथक्कृत नहीं होना चाहिए। ग्रामीय जीवन इतना रुचिकर एवं उत्पादक, अवसरों एवं साहस से इतना पूर्ण बनाया जाना चाहिए कि यह अधिमत[7] होगा। ग्रामीय शिक्षण का उद्देश्य इसे ऐसा बनाना होना चाहिए।

जल-नियन्त्रण-आभियान्त्रिकी, मृदा[8]-सुधार-आभियान्त्रिकी, ताप-नियन्त्रण-आभियान्त्रिकी, भोजन-विधायन-प्रौद्योगिकी[9], "कृषि-रसायन-आभियान्त्रिकी", समुद्रोत्पाद प्रौद्योगिकी, खनिज-विधायन, ग्रामीय औद्योगिक समुपदेशन[10], ग्रामीय लोक-प्रशासन, ग्रामीय समाज-कल्याण, ग्रामीय भूमि एवं ग्राम-अधियोजना,

---

1 Projects. 2 Engineering. 3 Marketing. 4 Breeding.
5 Processes. 6 Design. 7 Preferred. 8 Soil.
9 Food Pocessing Technology. 10 Counselling.

सामाजिक आभियान्त्रिकी, ग्रामीय समाजविज्ञान एवं मानविकी[1], ग्रामीय कलाओं, और ग्रामीय भैषजिक सेवा[2] की विभिन्न प्रावस्थाएँ[3] उन व्यवसायों अथवा व्यवसायों की शाखाओं में से हैं जिनके विकास में ग्रामीय विद्यालय भली प्रकार भाग ले सकते हैं।

(घ) *रीतियाँ*

आद्य[4]-समुदायों में बालक मुख्यत: देखने से, सुन कर, एवं अपने माता-पिता, अपने पड़ौसियों, तथा अपने से बड़े बालकों को अनुकरण करके, और उनके अपने अनुभव द्वारा सीखते थे। धीरे-धीरे मनुष्यों ने यह सीखा कि कुछ विशेष दक्षताएँ अथवा ज्ञान औपचारिक, संघटित शिक्षण द्वारा सर्वोत्तम अध्यापित किया जा सकता है। इस प्रकार विद्यालय एवं विश्वविद्यालय अस्तित्व में आये। समस्त शिक्षण की भाँति, ग्रामीय शिक्षण को अपने को पाठशाला-कोष्ठ की विधाओं[5] तक ही सीमित नहीं करना चाहिए, परन्तु प्राथमिक पाठशाला से विश्वविद्यालय तक प्रत्येक प्रक्रम पर यह आग्रह करना चाहिए कि शिष्यों एवं विद्यार्थियों को सामान्य जीवन की महान् परम्पराओं से भी सीखना चाहिए। ये महान् परम्पराएँ मानवात के अत्यन्त अमूल्य कोषों में होती हैं, (और) हमारे भौतिक धारणों[6] की अपेक्षा अधिक मूल्य की (होती हैं)। आधारभूत शिक्षण की रीति, प्रारम्भिक पाठशाला से विश्वविद्यालय तक, विद्यार्थी के भाग पर उस जीवन में घनिष्ठ भाग-ग्रहण के लिये आह्वान करती है जिसके द्वारा ये महान् परम्पराएँ अभिव्यक्त एवं शाश्वत की जाती हैं। ऐसे भाग-

---

1 Athropology.	2 Medical Service.	3 Phases.
4 Primitive.	5 Processes.	6 Possessions.

ग्रहण द्वारा और औपचारिक सीखने द्वारा, वह उन परम्पराओं का पूर्णतः दाय[1] प्राप्त करता है। इस भाग-ग्रहण में विद्यार्थियों के साथ अंश लेना और इसे इस प्रकार मार्गप्रदर्शित तथा सूचित करना अध्यापन तथा नेतृत्व का भाग है कि महान् परम्पराएँ, दायागत होने की विधा में, शोधित, ज्ञानोद्दीप्त, परिवर्धित तथा अवबोध के लिये, न्याय, स्वतन्त्रता, समता तथा बन्धुता के लिये, और अपने पर्यावरण के प्रभावशाली आधिपत्य के लिये मनुष्यों की आधारभूत महत्वाकांक्षाओं को अभिव्यक्त करने के लिये निर्मित होंगी।

(ङ) अन्वेषण

अबाध जाँच की भावना का विकास आधारभूत शिक्षण का, और माध्यमिक तथा उच्च शिक्षण का, जो इससे उगता है, एक मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। प्रत्येक क्षेत्र में अबाध जाँच की भावना का प्रोत्साहन किसी विशेष विषय के अध्यापन की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण होता है।

७—ग्रामीय महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों का शासन

क्योंकि ग्रामीय शिक्षण को इसका अपना विशिष्ट प्रतिरूप[2] उद्विकसित करना चाहिए, अतः (इसे) शिक्षा-प्रशासन के परम्परागत रूपों का अनुसरण करने की आवश्यकता नहीं है। एक सामान्य नीति पालित होनी चाहिए, अर्थात्, कि ग्रामीय शिक्षण मुख्यतः उन व्यक्तियों द्वारा प्रशासित होना चाहिए जो ग्रामीय जीवन से तथा आधारभूत शिक्षण आन्दोलन द्वारा प्रस्वीकृत रूप में आधुनिक प्ररूप के ग्रामीय शिक्षण से प्रत्यक्षतः संबद्ध रहे हैं।

---

1 To in herit. 2 Pattern.

(क) ग्रामीय शिक्षा-परिषद्[1]

प्रत्येक प्रान्त में, अथवा लघु प्रान्तों के एक समूह में, एक ग्रामीय शिक्षा-परिषद् होनी चाहिए। प्रथमतः यह ग्रामीय शिक्षण के नेताओं की बनी होनी चाहिए जिन्हें सदस्यता के आधार को निर्धारित करना चाहिए। तदनन्तर, परिषद् को एक लोकतन्त्रात्मक शासन प्राप्त करना चाहिए। प्रथमतः, यह एक अभेदित संघटन हो सकती है। समय के बीच में, सदस्यता संभवतः अनुभागों[2] की एक संख्या में संघटित हो जाएगी, एक पूर्व-आधारभूत शिक्षण से संबद्ध, एक आधारभूत शिक्षण से, एक उत्तर-आधारभूत शिक्षण से, एक महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय स्तर से और संभवतः एक अन्वेषण से संबद्ध।

(ख) अखिल भारतीय ग्रामीय शिक्षा परिषद्

एक अखिल भारतीय ग्रामीय शिक्षा परिषद् भी होनी चाहिए। आजकल हिन्दुस्तानी तालीमी संघ उस प्रयोजन की पूर्ति करता है, और परिवर्धित किया जा सकता है। समय पर यह शिक्षण के भिन्न स्तरों से संबद्ध अनुभाग प्राप्त करेगा, और निस्सन्देह अन्य विशेष अनुभाग विकसित करेगा जैसे सामान्य शिक्षण पर, व्यावसायिक एवं वृत्तिक[3] शिक्षण पर, शिक्षा में कार्य-कार्यक्रमों पर, तथा छात्र-मन्त्रण पर। संभवतः आधारभूत शिक्षण मुख्यतः प्रान्तीय परिषदों द्वारा मार्गप्रदर्शित होगा, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय शिक्षण राष्ट्रिय परिषद् द्वारा, और उत्तर-आधारभूत (माध्यमिक) शिक्षण दोनों के द्वारा। ये समितियाँ, अथवा उनके समुचित अनुभाग ग्रामीय

---

1 Rural Education Councils. 2 Sections. 3 Professional.
4. Student Counselling.

शिक्षण के लिये मूल्याङ्कन एवं अधिस्वीकार[1] करने वाले अभिकरण[2] स्वीकृत होंगी। ये शैक्षणिक अन्वेषण करेंगी और ग्रामीय शिक्षण का गुण उठाने के लिये प्रयास करेंगी।

(ग) मूल्याङ्कन-समितियाँ[3]

शिक्षण के उच्च स्तर प्रोत्साहित करने के लिये, ग्रामीय-शिक्षा-कार्यक्रम के प्रत्येक स्तर, प्राथमिक, माध्यमिक, स्नातक-पूर्व महाविद्यालय, तथा स्नातक विश्वविद्यालय, के लिये एक ग्रामीय शिक्षा परिषद् के समुचित अनुभाग द्वारा नियुक्त एवं उसे प्रतिवेदन देती हुई एक अथवा अधिक मूल्याङ्कन समितियाँ रखना, इसकी श्रेणी में प्रत्येक संस्था की नियतकालिक परीक्षाएँ एवं मूल्याङ्कन करना, और ग्रामीय शिक्षा परिषद् द्वारा प्रत्येक में होने वाले कार्य के गुण का वर्णन करते हुए एक प्रतिवेदन प्रकाशित करना वाञ्छनीय होगा। केवल अधिस्वीकृत संस्थाएँ ही परिषद् पर सदस्यता के योग्य होनी चाहिएँ।

(घ) *ग्रामीय विश्वविद्यालय-प्रशासन : आधिविद्य परिषद्*[4], *निष्पादन-परिषद्*[5]

ग्रामीय विश्वविद्यालय दो प्रशासक निकाय भली प्रकार रख सकता है। प्रथम, समुचित साधनों द्वारा चुने हुए कर्मचारिवृन्द के संभवतः एक द्वादशक सदस्यों की बनी एक लघु *आधिविद्य परिषद्* को, कभी-कभी उपयुक्त समितियों द्वारा कार्य करते हुए, संस्था के आधिविद्य एवं सम्बन्धित कार्यों के लिये नीतियों एवं कार्यक्रम का संविन्यसन करना चाहिए। यह

---

1 Accrediting. 2 Agencies. 3 Appraisal Committees.
4 Academie Council. 5 Executive Council.

शिक्षण-नीतियों, पाठ्यक्रम, क्षेत्रों एवं विभागों के अन्तर्सम्बन्धों, छात्र-मन्त्रणा, इत्यादि से सम्बन्ध रखेगी, परन्तु संस्था के दैनंदिन व्यापार एवं प्रशासनात्मक प्रबन्ध को नहीं लेगी। द्वितीय प्रशासक निकाय को *निष्पादन-परिषद्* पुकारा जा सकता है। यह विश्वविद्यालय-नीति का सञ्चालन करने के लिये और आधिविद्य परिषद् तथा प्रशासनात्मक कर्मचारिवृन्द के मुख्य कार्यों एवं प्रस्तावों को आगे बढ़ाने के लिये समस्त प्राधिकार होगी। यह शिक्षा अथवा व्यापार-प्रशासन के ब्यौरों का हस्तन नहीं करेगी, परन्तु सामान्य नीति एवं कार्यक्रम का नियन्त्रण करेगी। इसे संभवतः एक वर्ष में तीन से छः बार मिलना चाहिए.... ।

विश्वविद्यालय का वर्तमान प्रशासन कुछेक ऐसे मुख्य आधिविद्य एवं व्यापार-सहायकों के साथ उपकुलपति के हाथों में होगा जैसे आधिविद्य अधिष्ठाता[1], प्रयोगात्मक कार्य का अधिष्ठाता अथवा सञ्चालक, और कोषाध्यक्ष अथवा बर्सर। उन्हें योजनाओं एवं कार्यक्रम का स्पष्टीकरण करने के लिये नियतकालिक रूप से मिलना चाहिए।

८—ग्रामीय संस्थाओं एवं प्रवर्तमान विश्वविद्यालयों के बीच सम्बन्ध

यह महत्वपूर्ण है कि प्रवर्तमान एवं संस्थाओं के नवीन प्ररूप के बीच अनावश्यक अवरोध न हों। उन छात्रों को, जो ऐसा करने को समर्थ हैं, एक प्ररूप से दूसरे तक जाने के योग्य होना चाहिए।

---

1 Academic Dean.

६—शासन के अन्य अभिकरणों का सहयोग

स्वतन्त्र भारत के शासन तथा विभिन्न राज्यों एवं प्रान्तों के (शासन) ग्रामीय दशाओं में रुचि का प्रदर्शन कर रहे हैं, और ग्रामीय जीवन को सुधारने के लिये अनेक योजनाओं पर विचार कर रहे हैं। इन योजनाओं में ग्रामीय स्वास्थ्य सेवा, कृषि विस्तार कार्य, बालक एवं बालिका कृषि गोष्ठी कार्य, ग्रामीय पुस्तकालय सेवा, और ग्रामीय उद्योगों की उन्नति का समावेश होता है। यदि इनमें से प्रत्येक अन्य से स्वतन्त्र विकसित होती है तो वहाँ व्यय का अत्यन्त द्विगुणन[1], संघर्ष एवं ईर्ष्या की एक प्रवृत्ति तथा मूल्य की अत्यन्त हानि होगी। यदि ये समस्त अभिकरण ग्रामीय शिक्षण संस्थाओं के द्वारा कार्य करें तो अत्यन्त महान् लाभ होगा। माध्यमिक-विद्यालय-ग्राम इन समस्त सेवाओं के लिये भली प्रकार स्थानीय केन्द्र हो सकता है। इसी प्रकार, ग्रामीय विश्वविद्यालय ऐसे समस्त ग्रामीय सेवा अभिकरणों के लिये प्रादेशिक केन्द्र हो सकता है।

ग—समीक्षा

राधाकृष्णन आयोग के अभिस्तावों की समीक्षा करने से पूर्व समीक्षक को यह भली भाँति समझ लेना चाहिए कि इस प्रतिवेदन में अभिस्तावात्मक एवं समीक्षात्मक गुण पहले से ही विद्यमान हैं। प्रतिवेदकों ने स्वयं अपने अभिस्तावों पर इतने विस्तार से अपने विचार व्यक्त किये हैं कि वे विचार उन अभिस्तावों की एक अद्वितीय समीक्षा बन गये हैं। भाषा, शैली,

---

1 Duplication.

भाव एवं व्यावहारिकता की दृष्टि से राधाकृष्णन आयोग के अभिस्ताव उतने ही महान् हैं जितने स्वयं सर्वपल्ली डॉ० राधाकृष्णन। कहने की आवश्यकता नहीं कि आयोग ने भारत के विश्वविद्यालयों की प्राप्तियों पर अत्यन्त गम्भीरता से विचार किया है और उनके दोषों को दूर करने के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण सुझाव दिये हैं।卐 राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद जी के विचारानुसार राधाकृष्णन प्रतिवेदन का महत्व प्रतिवेदकों के द्वारा किये गये प्रवर्तमान शिक्षा प्रणाली में एक आधारभूत परिवर्तन की आवश्यकता के प्रस्वीकरण तथा अतीत के सर्वोत्तम गुणों के संरक्षण को दिये गये महत्व में संनिहित है।❀ वस्तुतः, यदि राधाकृष्णन प्रतिवेदन के प्रत्येक अभिस्ताव की विस्तारपूर्वक समीक्षा की जाए तो एक विशालकाय स्वतन्त्र ग्रन्थ की आव-

---

卐 *"The Commission has submitted a very valuable report containing a review of the achievements of our University education and also suggestions and recommendations which are of a far-reaching character."*

—Speeches Of President Rajendra Prasad, The Publication Division, 1955, P. 5.

❀ *"The value of the University Commission Report lies, very largely, in the fact that it recognizes the necessity for a fundamental change in the set-up of things in this country and proceeds to deal with its educational problems on that basis. It has therefore had to recommend many revolutionary changes. It has, further, the merit of not cantemplating a complete break with the past but of conserving the best that is available."*

—Ibid P. 5.

श्यकता होगी। परन्तु ऐसा करना प्रस्तुत पुस्तक का उद्देश्य नहीं है। अतः हम यहाँ भारत की प्रवर्तमान विश्वविद्यालय शिक्षा-प्रणाली का एक संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करके यह समझने का प्रयत्न करेंगे कि हमने राधाकृष्णन प्रतिवेदन के अभिस्तावों को किस मात्रा तक व्यावहारिक रूप प्रदान किया है। अन्य शब्दों में, राधाकृष्णन प्रतिवेदन की दृष्टि से भारत की विश्वविद्यालय शिक्षा की प्रगति किस मात्रा तक हुई है।

(क) विश्वविद्यालय शिक्षा के उद्देश्य

राधाकृष्णन आयोग के इस मत से किसी को मतभेद नहीं होना चाहिए कि हमारी शिक्षा-प्रणाली के उद्देश्यों का निर्धारण हमारी सामाजिक व्यवस्था अथवा सामाजिक दर्शन एवं सभ्यता की प्रकृति के अनुसार होना चाहिए। भारत की प्रवर्तमान विश्वविद्यालय शिक्षा के उद्देश्यों की समालोचना करते समय इस दृष्टि से हमें तीन महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार करना होगा : (१) परतन्त्र भारत के सामाजिक आदर्श क्या थे ?, (२) स्वतन्त्र भारत के सामाजिक आदर्श क्या हैं ?, और (३) इन उद्देश्यों की प्राप्ति में हमारे विश्वविद्यालयों ने किस सीमा तक सफलता प्राप्त की है ?

प्रथम प्रश्न पर राजनैतिक दृष्टि से विचार करते समय हम इस निष्कर्ष तक पहुँचते हैं कि परतन्त्र भारत में भारतीय शासन एवं भारतीय सामाजिक व्यवस्था के दो पृथक् अस्तित्व थे। भारतीय शासन भारतीय सामाजिक व्यवस्था का अङ्ग नहीं था। पूर्वोक्त विदेशीय था; उत्तरोक्त स्वदेशीय। दोनों के समक्ष दो पृथक् आदर्श थे। एक का आदर्श था भारत पर शासन करना; दूसरे का आदर्श था भारत को स्वतन्त्र करना।

फलतः तत्कालीन भारतीय विश्वविद्यालयों के समक्ष भी दो पृथक् आदर्श थे : (१) शासन की दृष्टि से, लिपिक एवं अधरिक कर्मचारी उत्पन्न करना; (२) सामाजिक व्यवस्था की दृष्टि से, ऐसे युवक तैयार करना जो भारत में राजनैतिक चेतना ला सकते थे और स्वतन्त्रता-संग्राम के सेनानी बन सकते थे। निष्पक्ष दृष्टि से विचार करने पर हम इसी निष्कर्ष तक पहुँचेंगे कि तत्कालीन विश्वविद्यालयों ने इन दोनों आदर्शों की प्राप्ति में अपूर्व सफलता प्राप्ति की थी। किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि तत्कालीन विश्वविद्यालय शिक्षा सर्वथा दोषरहित थी। नहीं, इसके विपरीत उसमें अनेक दोष भी थे। हम तो यह कहना चाहते हैं कि अनेक दोषों के होते हुए भी भारत के तत्कालीन विश्वविद्यालयों ने इन दो आदर्शों की प्राप्ति में सफलता प्राप्त की थी।❀

द्वितीय प्रश्न पर विचार करते समय राजनैतिक दृष्टि से हम निष्कर्ष तक भी पहुँचते हैं कि स्वतन्त्र भारत में भारतीय शासन एवं भारतीय सामाजिक व्यवस्था दो पृथक् वस्तुएँ नहीं हैं; पूर्वोक्त उत्तरोक्त का ही एक अङ्ग है। फलतः भारतीय शासन एवं सामाजिक व्यवस्था के समक्ष एक ही सामान्य आदर्श है जिसे स्वतन्त्र भारत के संविधान की प्रस्तावना में "लोकतन्त्रात्मक

❀ *"Notwithstanding all their failings and defects, one thing cannot however be gainsaid. Indian universities have made a definite and valuable contribution towards the awakening of a new national consciousness. With all their defects, they can claim to be one of the chief architects of our freedom....."*

—Humayun Kabir, Education in New India, George Allen and Unwin, 1956, P. 99.

गणराज्य" नाम से सम्बोधित किया गया है। इस लोकतन्त्रात्मक गणराज्य के चार आधारभूत आदर्श हैं, न्याय, स्वतन्त्रता, समता एवं बन्धुता। अर्थात् हम भारत में एक ऐसे लोकतन्त्रात्मक गणराज्य की स्थापना करना चाहते हैं जो न्याय, स्वतन्त्रता समता एवं बन्धुता के आदर्शों पर आधारित हो। यही हमारे सामाजिक दर्शन का स्वरूप है और यही हमारे सामाजिक जीवन का उद्देश्य। स्पष्ट है कि हम अपने विश्वविद्यालयों में शिक्षा का पुनः संघटन इस प्रकार से करना चाहते हैं कि वह हमारे युवकों में न्याय, स्वतन्त्रता, समता, बन्धुता एवं लोकतन्त्र की भावना का विकास करे।

अब यह प्रश्न उठता है कि क्या हमारी प्रवर्तमान विश्वविद्यालय-शिक्षा इन महान् आदर्शों की प्राप्त करने की क्षमता रखती है? और यह एक अत्यन्त गम्भीर प्रश्न है, क्योंकि हमारी विश्वविद्यालय शिक्षा का भविष्य इसके उत्तर पर ही निर्भर करता है। परतन्त्र भारत के आदर्श स्वतन्त्र भारत में चालू नहीं रह सकते। हमारा विश्वास है कि भारत के प्रवर्तमान विश्वविद्यालय इन महान् आदर्शों की प्राप्ति नहीं कर सकते, अतः हमें विश्वविद्यालय शिक्षा-प्रणाली में परिवर्तन करने के प्रश्न पर विचार करना चाहिए। लगता है जैसे हमारे प्रवर्तमान विश्वविद्यालयों का एकमात्र उद्देश्य हमारे युवकों को उपाधियाँ देना हो! यही कारण है कि आज हमारे उपाधिधारी युवक अपने तथा अपने समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्वों को नहीं समझते, मनुष्य तथा पशु के जीवन में भेद नहीं कर पाते और सत्यं शिवं सुन्दरम् को अपने जीवन का ध्येय नहीं बना पाते। हमारे विश्वविद्यालय न तो ज्ञान

एवं व्यवसाय की दृष्टि से हमारे युवकों को योग्य बना रहे हैं और न नैतिकता एवं सामाजिकता की दृष्टि से। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अनुशासन, घूस, दलबन्दी, बेकारी इत्यादि सामाजिक कोढ़ केवल हमारे शिक्षित समाज की समस्याएँ हैं, समस्त समाज की समस्याएँ नहीं! समस्त समाज को तो दुर्भाग्यवश इन तथाकथित शिक्षितों के पापों का प्रायश्चित करना पड़ रहा है!! इस सम्बन्ध में राष्ट्रपति श्री राजेन्द्रप्रसाद के विचारों पर तो विचार कीजिए :—

"हमारी शिक्षा-पद्धति की बड़ी त्रुटि यह रही है कि जो लोग यूनीवर्सिटी से पढ़ कर निकलते हैं वह उनको न तो किसी विशेष धन्धे के योग्य बनाती है और न उन्हें ऐसी व्यापक विद्या ही देती है कि आधुनिक दुनिया के शिक्षित समाज में उनको कोई अच्छा स्थान मिल सके। इस तरह वह विद्या न तो अर्थकारी होती है और न ज्ञानदायी। एक बुरा नतीजा यह भी होता है कि जो शिक्षा पा लेते हैं वह हाथ से काम करने और शरीर-श्रम को हेच निगाह से देखने लगते हैं।"*

(ख) अध्यापक-वर्ग

अध्यापक-वर्ग की समस्याओं में मुख्यतः उनके वैयक्तिक गुणों, शैक्षणिक योग्यताओं, वेतन-श्रेणियों और सेवा, नियुक्ति एवं वियुक्ति की दशाओं का समावेश होता है। हम राधाकृष्णन आयोग के इस कथन से पूर्णतः सहमत हैं कि विश्वविद्यालय-अध्यापकों की वेतन-श्रेणियाँ अन्य क्षेत्रों में समान योग्यता के आधार पर सेवा करने वाले व्यक्तियों की

---

* २ मार्च, १९५० को पटना विश्वविद्यालय के समावर्तन समारोह के अवसर पर दिये गये भाषण से उद्धृत।

वेतन-श्रेणियों की अपेक्षा कम होती हैं, जिससे योग्य व्यक्ति शिक्षा-क्षेत्र की ओर या तो आना ही नहीं चाहते अथवा आने के पश्चात् अवसर प्राप्त करते ही अन्य क्षेत्रों को चले जाते हैं। ऐसी स्थिति का होना किसी भी शासन एवं समाज के लिये लज्जा की बात है। किन्तु, विश्वविद्यालयों में योग्य अध्यापकों के अभाव का एक और भी कारण है जो निम्न वेतन-श्रेणियों से अधिक प्रभावशाली है, अर्थात्, विश्वविद्यालयों में अध्यापकों को नियुक्त करने की प्रणाली। हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि आज विश्वविद्यालयों में अध्यापकों की नियुक्तियाँ प्रायः नियुक्तकों की स्वार्थ-पूर्ति के आधार पर की जाती हैं। इस कथन के समर्थन में ऐसे सैकड़ों उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं कि एक योग्य एवं अनुभवी अभ्यर्थी की अपेक्षा एक साधारण अभ्यर्थी को अधिमान दिया जाता है। इस प्रकार पक्षपात के भय से योग्य व्यक्ति विश्वविद्यालयों में सेवा करने का साहस ही नहीं करते। अन्य शब्दों में, अयोग्य व्यक्ति केवल आते ही नहीं हैं, अपितु उन्हें जान बूझ कर बुलाया जाता है, नियुक्त किया जाता है! कहने की आवश्यकता नहीं है कि आज एक ओर तो "सोर्स" और "तिकड़म" के बिना हमारे योग्य युवकों का भटकते फिरना और दूसरी ओर उन्हीं के कारण अयोग्य व्यक्तियों का उच्च से उच्च पद तक पहुँच जाना देश और समाज को पतन की ओर ही ले जा रहा है। यह कोई साधारण-सी बात नहीं है जिसकी यूँ ही उपेक्षा की जा सके। यही नहीं, आप उन छात्रों से मिलिए जिनके लिये हम विश्वविद्यालयों का सञ्चालन करते और अध्यापकों को नियुक्त करते हैं। शत प्रति शत छात्र आपसे यही कहेंगे कि उन्हें पढ़ाने वाले

अध्यापकों में से अधिकांश अध्यापक अपने विषयों को भली भाँति नहीं समझते, सन्तोषजनक रूप से अध्यापन नहीं कर पाते ! बस "दिन काटते" हैं !! जब छात्रों के हृदय में अपने अधिकांश अध्यापकों के प्रति ऐसी अश्रद्धा उत्पन्न हो रही हो तब हमें अध्यापकों की नियुक्ति के प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना ही होगा। विश्वविद्यालय ज्ञान के मन्दिर हैं। वे युवकों के विकास-स्थल होते हैं, अयोग्य व्यक्तियों की "दाल-रोटी" का उपबन्ध करने वाले कारखाने नहीं! हम राधाकृष्णन आयोग के "अध्यापक राजनीतिज्ञ"-सम्बन्धी विचारों का भी हृदय से स्वागत करते हैं। कौन नहीं जानता कि आज हमारे विश्वविद्यालय इन्हीं अध्यापक राजनीतिज्ञों के कारण "राजनीति" के अखाड़े बने हुए हैं ! सोर्स और तिकड़म के आधार पर नियुक्त अयोग्य अध्यापक "अध्यापन" की अपेक्षा "राजनीति" में ही अधिक व्यस्त रहते हैं !! उन्होंने विश्वविद्यालयों को 'दलबन्दी के अखाड़ों" में परिवर्तित कर दिया है !!! वे योग्य अध्यापकों को अपने बीच में टिकने नहीं देते, उन्हें सताते हैं, उन्हें अपने षड़यन्त्रों का शिकार बनाते हैं। लोकतन्त्र, न्याय, स्वतन्त्रता, समता और बन्धुता के महान् आदर्शों की प्राप्ति के लिये हमें ऐसे अध्यापक राजनीतिज्ञों से अपने विश्वविद्यालयों की रक्षा करनी होगी और समुचित व्यक्तियों को अपनाना होगा। साथ ही, हमारा विचार है कि विश्वविद्यालयों की सहशिक्षात्मक श्रेणियों में अध्यापन करने के लिये अविवाहित युवकों को अनुमत नहीं किया जाना चाहिए। यद्यपि राधाकृष्णन प्रतिवेदन में इस प्रश्न पर विचार नहीं किया गया है, परन्तु हमारा विश्वास है कि यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न है जिस पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाना चाहिए।

(ग) *अध्यापन के स्तर*

आज देश के कोने-कोने से यह ध्वनि उठ रही है कि हमारी शिक्षा के स्तर गिर रहे हैं। यह असत्य नहीं है। परन्तु क्यों? विश्वविद्यालयों में अध्यापन के स्तरों का उत्तरदायित्व किसके ऊपर होता है? शासन के ऊपर? हाँ, परन्तु बहुत कम। समाज के ऊपर? हाँ, परन्तु बहुत कम। स्वयं विश्वविद्यालयों के ऊपर? हाँ, अत्यधिक मात्रा तक। शासन एवं समाज में अनेक दोषों के होने पर भी पहले हमारे विश्वविद्यालयों में अध्यापन के स्तर आज के अध्यापन-स्तरों के समान गिरे हुए नहीं थे। क्यों? इसलिये कि उस समय विश्वविद्यालयों में अध्यापन करने वाले अधिकाँश व्यक्तियों में शासन एवं समाज के दोषों से टकरा कर आगे बढ़ने की, अपना कर्तव्य-पालन करने की क्षमता होती थी; आज विश्वविद्यालयों में अध्यापन करने वाले व्यक्तियों को "संघ" बनाने और अपनी "माँगों" के लिये संघर्ष करने से ही अवकाश नहीं है। आज राजनीति ने, भौतिकता ने शिक्षा की पवित्रता को. आध्यात्मिकता को भङ्ग कर दिया है। यदि अध्यापक अपने संघों और अपनी माँगों में व्यस्त हैं तो छात्र अपने संघों और अपनी माँगों में! समाज के निर्माता गुरु वस्तुओं के निर्माता मजदूरों की श्रेणी तक पहुँचने के लिये पागल हो रहे हैं!! "उस्ताद" अपने ही उन "शागिर्दों" से, जो उन्हीं का अनुकरण करके, उन्हीं के द्वारा अपनाये मार्ग पर चल कर सोर्स और तिकड़म के बल से प्रशासक अथवा मन्त्री-पद तक जा पहुँचे हैं, भीख माँगने पर तुले हुए हैं!!! उन शागिर्दों से जो अपने उस्तादों की वास्तविकता को खूब समझते है और उस्तादी में उनसे कहीं

आगे निकल चुके हैं! स्वामी सेवक होने की धुनि में हैं!! भला ऐसी भयावह स्थिति में अध्ययन के स्तरों की चिन्ता कौन करे? ऐसे वातावरण में अध्यापन के स्तरों को उठाने के लिये, अपने अध्यापन को रुचिकर बनाने के लिये कितने अध्यापक शिक्षण की रीतियों की ओर ध्यान देंगे, लिखित कार्य, अवबोधों एवं विमर्शगोष्ठियों के महत्व पर विचार करेंगे, और पुस्तकालयों एवं प्रयोगशालाओं को अपने अध्यापन का एक भाग बनाने का प्रयत्न करेंगे, यह विचार करने की बात है। आज हमारे विश्वविद्यालयों के अध्यापक या तो व्याख्यान-रीति का प्रयोग करते हैं अथवा फिर वे कोई अध्यापन-रीति ही नहीं जानते। इस स्थिति में तभी वाञ्छनीय परिवर्तन होगा जब राधाकृष्णन आयोग के अध्यापन-स्तर-सम्बन्धी अभिस्तावों को कठोरता से लागू कर दिया जाएगा। हमारा विश्वास है कि एक दूसरे पर दोषारोपण करने से, विवाद करने से, शोर मचाने से अध्यापन के स्तरों का उन्नयन कदापि न होगा। क्या हम अपने से यह पूछ सकते हैं कि हमारे कितने विश्वविद्यालयों ने अपने अध्यापन के स्तरों को उठाने के लिये गत १० वर्ष की अवधि में राधाकृष्णन-प्रतिवेदन के अभिस्तावों को व्यावहारिक रूप देने का प्रयत्न किया है? और हमारे विश्वविद्यालयों के कितने अध्यापकों ने इस प्रतिवेदन को पढ़ने का कष्ट उठाया है?

(घ) पाठचर्याएँ

पाठचर्याओं के सम्बन्ध में हम यही कहना चाहते हैं कि आज हमारे विश्वविद्यालयों में सामान्य शिक्षण, संस्कारी शिक्षण तथा व्यावसायिक शिक्षण के बीच सुसन्तुलन का

अत्यन्त अभाव है। जब तक इस दृष्टि से हम विश्वविद्यालय-पाठचर्याओं का पुनःसंघटन नहीं करेंगे, तब तक हम अपने विश्वविद्यालयों से वाञ्छनीय लाभ प्राप्त नहीं कर सकेंगे।

(ङ) उत्तर-स्नातक प्रशिक्षण एवं अन्वेषण

उत्तर-स्नातक प्रशिक्षण एवं अन्वेषण का मुख्य उद्देश्य जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में नेतृत्व करने के लिये विशेषित व्यक्तियों का उपबन्ध करना है। इस दृष्टि से विचार करने पर हम इसी निष्कर्ष तक पहुँचते हैं कि भारतीय विश्वविद्यालयों में उत्तर-स्नातक प्रशिक्षण एवं अन्वेषण की दशा सन्तोषजनक नहीं है। शिक्षा-जगत् में "डॉक्टर्स" की जैसे बाढ़ आ रही हो! हम तो यह भी अनुभव करते हैं कि आज हमारे विश्वविद्यालयों में "डॉक्टर" की उपाधि प्राप्त करने का अधिकार प्रायः उन्हीं व्यक्तियों को मिल पाता है जो तिकड़मी होते हैं अथवा जिनके सोर्स ऊँचे होते हैं। यदि "भारतीय विश्वविद्यालयों में रिसर्च-स्कॉलर्स" समस्या पर अन्वेषण किया जाए तो हमें आश्चर्य में डाल देने वाले परिणाम प्राप्त होंगे। अन्वेषक इस परिणाम तक पहुँचने के पश्चात् चकित रह जाएगा कि "डिवीजन", "पोजीशन" और "डॉक्टरेट" केवल प्रयास से ही नहीं, किसी की कृपा से भी मिल सकती है! कभी-कभी तो प्रयास की हार और कृपा की जीत भी हो जाती है!! यही नहीं, हमारे विश्वविद्यालयों में अन्वेषण-अधिछात्रवृत्तियों को एक ऐसा पुरस्कार समझा जाता है जो केवल कुछ कृपानिधानों के कृपा-पात्रों को ही प्राप्त हो सकता है। थीसिसों के परीक्षकों की कहानी तो एक बहुत लम्बी कहानी है जो यहाँ नहीं कही जा सकती। यही कारण है कि राधाकृष्णन प्रतिवेदन के अभिस्तावों द्वारा बल दिये जाने पर भी हमारे अधिकांश विश्वविद्यालय

अन्वेषप्रबन्धों के प्रकाशन की निरन्तर उपेक्षा करते जा रहे हैं।

(च) *व्यावसायिक शिक्षण*

व्यावसायिक शिक्षण में मुख्यतः कृषि, वाणिज्य, शिक्षा, आभियान्त्रिकी एवं प्रौद्योगिकी, विधि, आयुर्विज्ञान, व्यापार-प्रशासन, लोक-प्रशासन, और औद्योगिक सम्बन्ध इत्यादि विषयों का समावेश होता है। सामाजिक जीवन का एक अभिन्न अङ्ग होने के कारण, प्रत्येक व्यवसाय अपने स्थान पर अपना महत्व रखता है। किसी भी व्यवसाय की उपेक्षा करने का तात्पर्य है सामाजिक जीवन के एक अङ्ग की उपेक्षा करना और अन्ततः एक दृष्टि से देश को दुर्बल बनाना। हमें व्यावसायिक शिक्षण की दृष्टि से अपने प्रवर्तमान विश्वविद्यालयों में मुख्यतः चार दोष प्रतीत होते हैं, (१) हमारे विश्वविद्यालयों में व्यावसायिक विषयों की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया जाता है, (२) विभिन्न व्यावसायिक विषयों के बीच वाञ्छनीय सम्बन्ध का अभाव पाया जाता है, (३) व्यावसायिक एवं अव्यावसायिक विषयों के बीच पर्याप्त सम्बन्ध नहीं होता, और (४) कुछ व्यवसायों को अन्य की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण, गौरवपूर्ण एवं श्रेष्ठ समझा जाता है। हमारा विश्वास है कि जीवन तथा ज्ञान को खण्ड-खण्ड करके नहीं समझा जा सकता। उनका पूर्ण लाभ तो उनकी पूर्णता एवं अखण्डता की स्थिति में ही उठाया जा सकता है। अतः सफलतापूर्वक जीवित रहने के लिये प्रत्येक व्यक्ति को एक मात्रा तक सामान्य, वैज्ञानिक एवं व्यावसायिक शिक्षण प्राप्त करना चाहिए और अपने वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन का विकास करने के लिये अपनी अभिरुचियों

एवं अभियोग्यताओं के अनुसार ज्ञान के किसी एक क्षेत्र में विशेषीकरण करना चाहिए। यह हमारी सामाजिक व्यवस्था का दोष है कि हमारे युवक एक व्यवसाय को दूसरे से श्रेष्ठ समझते हैं। वस्तुतः हमारे विश्वविद्यालयों का एक कर्तव्य यह भी है कि वे ऐसे भेदकरण का अन्त करें। इस भेदकरण का आधार वैयक्तिक स्वार्थ की भावना ही होती है, समाज-सेवा की भावना नहीं। समाज-सेवा के स्थान पर वैयक्तिक स्वार्थ की भावना से ज्ञान प्राप्त करना ज्ञान का अपमान करना है। हमारे विश्वविद्यालयों को इसी दृष्टि से व्यावसायिक शिक्षण का पुनःसंघटन करना चाहिए।

(छ) *धार्मिक शिक्षण*

हम राधाकृष्णन आयोग के धार्मिक-शिक्षण-सम्बन्धी अभिस्तावों की मुक्त कण्ठ से सराहना करते हैं। भारत जैसे देश में, जो विभिन्न मतों एवं धर्मों का तीर्थ स्थान है, मिलन-बिन्दु है, धार्मिक-शिक्षण के प्रश्न पर विचार करते समय हमें अन्य देशों का अन्धानुकरण नहीं करना चाहिए। यहाँ ऐसा करते समय हमें चार बातों का ध्यान रखना होगा, (१) धार्मिक दृष्टि से भारत की स्थिति अन्य देशों की स्थिति से सर्वथा भिन्न है, (२) धर्म तथा मत में भेद होता है, (३) जीवन के दो पक्ष होते हैं, आध्यात्मिक एवं भौतिक, और (४) नैतिक गुणों के कारण ही मनुष्य-जीवन पशु-जीवन से श्रेष्ठ होता है। भारत में धार्मिक-शिक्षण के प्रश्न पर विचार करते समय हमें यह महान् तथ्य भी ध्यान में रखना होगा कि हमारा प्रत्येक छात्र एक विशेष मत से सम्बन्ध रखता है जिसे वह अपना धर्म समझता है। अन्य मतों से अपरिचित होने के कारण वह अपने

मत अथवा धर्म को अन्य मतों अथवा धर्मों से श्रेष्ठ मानता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस भावना के कारण अतीत में विश्व के रङ्गमञ्च पर अनेक बार रक्त-रङ्ग से होलियाँ खेली गई हैं। अतः ऐसी स्थिति में हमारे सम्मुख दो ही मार्ग बचते हैं, (१) या तो हम सारे धर्मों का अस्तित्व समाप्त करके समस्त देशवासियों को धर्मरहित बना दें, अथवा (२) जब तक हमारे छात्र समाज में रहते हुये विभिन्न धर्मों का अनुसरण करते हैं जब तक हमारे विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में धार्मिक शिक्षण का स्थान एक अनिवार्य विषय के रूप में रहे। धार्मिक शिक्षण का उद्देश्य छात्रों से विभिन्न धर्मों के व्यवहारों का पालन कराना न हो, अपितु उनके ज्ञान के द्वारा छात्रों में धार्मिक अवबोध एवं नैतिक आदर्शों का विकास करना हो। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि व्यापक एवं सत्य धर्म का आधार मतीय व्यवहार नहीं, अपितु नैतिक गुण एवं मूल्य ही होते हैं।

(ज) *शिक्षा का माध्यम*

शिक्षा के माध्यम के प्रश्न पर, भारत के अन्य सच्चे देश-भक्तों की भाँति राधाकृष्णन आयोग के सदस्य भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि भारत में आङ्गल के स्थान पर हिन्दी ही शिक्षा का माध्यम हो सकती है। दुर्भाग्यवश आज हमारे कुछ प्रान्तीयतावादी राजनीतिज्ञों ने (भाषा-वैज्ञानिकों ने नहीं) शिक्षा के माध्यम के रूप में हिन्दी के प्रश्न को एक अत्यन्त विवादग्रस्त प्रश्न बना दिया है। परन्तु, हमें यह न भूलना चाहिए कि यह हमारे जीवन-मरण का, हमारी नैतिकता का, और हमारी भावना का प्रश्न है। भारत के संविधान में एक बार हिन्दी को आङ्गल का स्थान देकर पीछे

हटना अनैतिकता है। हम यह कैसे भूल सकते हैं कि आङ्गल भाषा हमारी दासता की प्रतीक है ? यदि हिन्दी के विरोधी आङ्गल के स्थान पर किसी अन्य भारतीय भाषा को स्थापित करने की बात करते तो संभव था कि हिन्दी के समर्थक इस अन्याय को चुपचाप सह लेते, परन्तु जब वे राष्ट्रभाषा हिन्दी एवं अपनी मातृभाषा दोनों की उपेक्षा करके आङ्गल के पक्ष में बातें करते हैं तो हमें ऐसा आभास होने लगता है जैसे किसी विदेशीय संस्था के कुछ "एजेण्ट" अपना प्रचार कर रहे हों ! हम हिन्दी को आङ्गल का स्थान देने के लिये समय-सीमा के पक्ष में नहीं हैं। हमारा विचार यह है कि यह परिवर्तन सबके हित एवं सुविधा की दृष्टि से हो। साथ ही, हम यह भी सहन नहीं कर सकते कि एक पहले ही किये गये निर्णय को इस प्रकार विवादग्रस्त बनाने का प्रयत्न किया जाए अथवा उसे व्यावहारिक रूप प्रदान करने का प्रयत्न ही न किया जाए ! इससे भी अधिक दुख की बात तो यह है कि हमारे कुछ विश्वविद्यालय भी ऐसे प्रान्तीयतावादी राजनीतिज्ञों के हाथों की कठपुतली बन गये हैं और वे राधाकृष्णन आयोग के भाषा-सम्बन्धी अभिस्तावों को व्यावहारिक रूप देने का प्रयत्न नहीं कर रहे। इस सम्बन्ध में दो मत नहीं हो सकते कि अन्ततः इस समस्या का व्यावहारिक समाधान विश्वविद्यालयों के प्राङ्गण में ही होगा, राजनीतिज्ञों के विवादग्रस्त मस्तिष्कों में नहीं।

(ञ) परीक्षाएँ

हम पहले ही कह चुके हैं कि परीक्षाएँ एवं उपाधियाँ हमारी विश्वविद्यालय-शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य बन चुकी हैं। वर्तमान परीक्षा-प्रणाली भारतीय शिक्षा-प्रणाली के लिये एक

अभिशाप बन चुकी है। वह हमारी शिक्षा-प्रणाली के सर्वाधिक हानिकर दोषों में से एक है। हमें आश्चर्य एवं दुःख तो इस बात से है कि हमारे समस्त शिक्षाविद्, हमारे समस्त नेता, हमारे समस्त विचारक वर्तमान परीक्षा-प्रणाली का विरोध तो करते हैं, परन्तु उसके दोषों को दूर करने के लिये व्यावहारिक दृष्टि से कोई प्रयत्न नहीं करते। फलतः उसकी काली छाया आधारभूत स्तर से विश्वविद्यालय स्तर तक शिक्षा के समस्त क्षेत्र के ऊपर पड़ रही है। हमारे युवकों पर शैक्षणिक, शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, एवं नैतिक दृष्टि से उसका अत्यन्त अवाञ्छनीय प्रभाव पड़ रहा है। अतः हमारे विश्वविद्यालयों का यह सर्व प्रथम कर्तव्य है कि वे यथा शीघ्र परीक्षा-प्रणाली को दोष-मुक्त करने का प्रयत्न करें। हमारा विश्वास है कि राधाकृष्णन आयोग ने वर्तमान परीक्षा-प्रणाली को दोष-मुक्त करने के लिये परीक्षण एवं मूल्यन की वैज्ञानिक रीतियों, वैषयिक परीक्षाओं की सज्जा एवं प्रयोग, परीक्षक-मण्डल, मनोवैज्ञानिक एवं निष्पन्न परीक्षाओं की समूहा, प्रगति परीक्षाओं, विशेष राज्य परीक्षाओं, श्रेणी-कार्य के लिये श्रेयस्, नियतकालिक परीक्षाओं, परीक्षकों, सफलता के स्तरों, अनुग्रहाङ्क-प्रणाली तथा मौखिक परीक्षाओं के सम्बन्ध में जो सुझाव दिये हैं, वे व्यवहार में लाने पर अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होंगे। हमारे विश्वविद्यालयों को इन सुझावों को व्यावहारिक रूप देने में विलम्ब नहीं करना चाहिए।

(ञ) छात्र

वस्तुतः छात्र ही शिक्षा-व्यवस्था के केन्द्र होते हैं। अध्यापकों, भवनों, उपकरणों आदि का उपबन्ध छात्रों के लिये

ही किया जाता है। यदि किसी शिक्षा-संघटन से छात्रों का हित, कल्याण एवं विकास न हो तो उसे समाप्त कर देना चाहिए। शिक्षा-संस्थाओं का अस्तित्व छात्रों के लिये होता है, छात्रों का अस्तित्व शिक्षा-संस्थाओं के लिये नहीं। परन्तु हमारे विश्वविद्यालयों में अभी तक इस आधारभूत तथ्य की उपेक्षा की जाती है। उनमें छात्रों के हित, कल्याण एवं विकास की ओर उतना ध्यान नहीं दिया जाता है, जितना अध्यापकों की वेतन-श्रेणियों, भवन-निर्माण, विभागों के विस्तार अथवा परीक्षाओं एवं उपाधियों की ओर। हमारे विश्वविद्यालयों में छात्रों के साथ जो व्यवहार किया जाता है, उनकी जो उपेक्षा की जाती है उससे उनके हृदय में उन्हीं शिक्षा-संस्थाओं के प्रति घृणा उत्पन्न हो जाती है जिनमें वे शिक्षा प्राप्त करते हैं, उन्हीं अध्यापकों के प्रति अविश्वास उत्पन्न हो जाता है जिनसे वे ज्ञान प्राप्त करते हैं! प्रवेश, छात्रवृत्तियाँ, परीक्षाफल देते समय छात्रों के साथ जो पक्षपात किया जाता है उससे उनके हृदय में विश्वविद्यालयों के विरुद्ध विद्रोह भड़क उठता है! यह एक अत्यन्त दुखद स्थिति है। इसका अन्त होना ही चाहिए। हमें यह न भूलना चाहिए कि हमारे विश्वविद्यालय न तो फैक्ट्रियाँ हैं, न हमारे छात्र उनमें काम करने वाले मजदूर, और न ही हमारे अध्यापक उनके स्वामी! अतः हमारे विश्वविद्यालयों को छात्रों के हित, कल्याण एवं विकास के लिये वह सब करना चाहिए जो कुछ वे यथाशक्य कर सकते हैं।

(ट) *स्त्री-शिक्षण*

सचमुच वह देश बड़ा अभागा है जहाँ स्त्रियों के साथ मानवोचित व्यवहार नहीं किया जाता, जहाँ उन्हें उनके

विकास के लिये आवश्यक सुविधाएँ प्रदान नहीं की जातीं, और जहाँ उनका समुचित सम्मान नहीं किया जाता। वास्तव में, इस दृष्टि से भारत एक अत्यन्त भाग्यवान देश है। भारत के अतीत का इतिहास हमारे इस कथन का साक्षी है कि यहाँ नारी को माँ, सती, अर्द्धाङ्गिनी आदि-आदि नामों से पुकारा गया है। विदेशियों के शासन-काल में, जब हमारा धर्म, हमारी संस्कृति और हमारा अस्तित्व सङ्कट में था और पुरुष युद्धभूमि में मर-मिट कर भी स्त्री की रक्षा नहीं कर पा रहा था, भारतीय नारी ने अपने जीवन का मूल्य दे कर भी अपने नारीत्व, अपने देवीत्व, अपने सतीत्व, अपने मातृत्व की रक्षा की थी। हमारा विश्वास है कि इस बलिदान को अत्याचार की संज्ञा प्रदान करना एक अपराध ही समझा जाएगा। भारत में नारी की महानता और पवित्रता में पुरुष का जितना विश्वास रहा है उतना संसार के किसी अन्य देश में नहीं—नारी का भारतीय रूप महान् भारत की अपनी विशेषता है; वैसा रूप संसार के किसी अन्य देश में देखने को नहीं मिल सकता। हमें भारतीय नारी के इस रूप पर गर्व है। परन्तु आज पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से भारतीय नारी के इस रूप में परिवर्तन होने लगा है। आज हमारा नारी-समाज दो भागों में विभाजित है, (१) शिक्षित नारियाँ, और (२) अशिक्षित नारियाँ। शिक्षित नारियों के भी दो भाग हो गये हैं, (क) वे शिक्षित नारियाँ जो अपने जीवन की योजना प्राचीन, भारतीय आदर्शों के आधार पर करना चाहती हैं, शिक्षा का उद्देश्य नारी को एक सफल माँ, एक सफल गृहिणी बनाना मानती हैं, और अपने नारीत्व का दुरुपयोग करने के लिये "स्वतन्त्रता" "समानता"

आदि की माँग नहीं करतीं, और (ख) वे शिक्षित युवतियाँ, जो अपने जीवन की योजना पाश्चात्य सभ्यता के घोर भौतिक-वादी आधारों पर करना चाहती हैं, जो पारिवारिक जीवन में विश्वास नहीं रखतीं, और जो शिक्षा का उद्देश्य एक स्त्री को आजीवन कुमारी रहने की शक्ति दे कर किसी पाठशाला की अध्यापिका अथवा किसी ऑफिस की क्लर्क अथवा किसी शॉप की सेल्सगर्ल अथवा किसी ऑफीसर की स्टैनोटाइपिस्ट बनाना मानती हैं! हमारा विचार है कि यदि हमारे देश में एक भी स्त्री अशिक्षित रहती है तो यह हमारे शासन एवं समाज के लिये बड़ी लज्जा की बात होगी। साथ ही, हमारा विश्वास यह भी है कि यदि हमारी नारियाँ पुरुषों की होड़ करके, पाश्चात्य सभ्यता के मधुर भुलावे में आकर पथ-भ्रष्ट हुई तो हमारा देश विनाश की ओर चला जाएगा। हमारे नारी-समाज को यह न भूलना चाहिए कि पाश्चात्य सभ्यता ने पश्चिमी देशों में नारियों को "पुरुषों की विनोद-वस्तुओं" में परिवर्तित कर दिया है। वे भोग की कामना तो करतीं हैं, परन्तु सन्तान से घृणा करती हैं! फलतः अनेक पाश्चात्य समाज-शास्त्रियों के कथनानुसार आज पश्चिमी देशों में मानव-समाज का सांतत्य एक भयङ्कर सामाजिक समस्या का रूप ग्रहण करता जा रहा है। हम भारत की नारियों से आग्रह करते हैं कि वे एक वैश्या एवं पत्नी के, भोग तथा योग के, आडम्बर तथा वास्तविकता के और स्वामिनी एवं सेविका के बीच जो भेद होता है उसे समझें। हमारे विश्वविद्यालयों को इसी दृष्टि से स्त्री-शिक्षण का संघटन करना चाहिए। हमें यह देख कर बड़ा दुख होता है कि आज हमारे विश्वविद्यालयों

में पुरुष-शिक्षण एवं स्त्री-शिक्षण के बीच कोई भेद नहीं किया जाता। आज उनके समक्ष युवकों के शिक्षण की भांति युवतियों के शिक्षण के भी कोई निश्चित उद्देश्य नहीं हैं और वे हमारे युवकों की भाँति हमारी युवतियों को भी अन्धकार की ओर ढकेल रहे है। हमारे विश्वविद्यालयों का एक कर्तव्य यह समझना भी है कि ईश्वर अथवा प्रकृति के द्वारा एक पुरुष को पुरुष और एक स्त्री को स्त्री बनाया जाना रहस्य-रहित नहीं है! हमारा दृढ़ विश्वास है कि सेवा के बल पर सतियाँ ही भारत का आदर्श बन सकती हैं, शक्ति के बल पर नर्तकियाँ अथवा नोकरानियाँ नहीं! सेवा का आसन शक्ति से ऊँचा रहना ही चाहिए।

(ठ) संघटन एवं नियन्त्रण तथा वित्त-व्यवस्था

संघटन, नियन्त्रण एवं वित्त-व्यवस्था की दृष्टि से हमारा विचार है कि देश के कुछ विश्वविद्यालयों का केन्द्रीय शासन के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में होना और कुछ का प्रान्तीय शासनों के विषय के रूप में अशासकीय संस्थाएँ होना उचित नहीं है क्योंकि इस प्रकार के भेदकरण से विभिन्न विश्वविद्यालयों की स्थिति एवं महत्व में अनावश्यक अन्तर उत्पन्न होता है। हम राधाकृष्णन आयोग के इस मत से पूर्णतः सहमत हैं कि महाविद्यालयों के सम्बन्धन से पूर्व एक विश्वविद्यालय को एक महाविद्यालय की उपयुक्तता, उपयोगिता एवं क्षमता पर पूर्णतः विचार कर लेना चाहिए। वित्त-व्यवस्था की दृष्टि से शासन का एक कर्तव्य यह भी होना चाहिए कि हमारे विश्वविद्यालयों के समक्ष आर्थिक बाधाओं का प्रश्न उपस्थित न होने पाए। साथ ही, यह देखना भी शासन का कर्तव्य होगा कि विश्व-

विद्यालयों में शासकीय अनुदानों अथवा स्थायी निधियों का दुरुपयोग न हो।

(ङ) ग्रामीय विश्वविद्यालय

भारत गाँवों का देश है। उसकी अधिकांश जनसंख्या गाँवों में रहती है। अतः स्पष्ट है कि जब तक भारतीय शिक्षा-प्रणाली का स्वरूप ग्रामीय न होगा तब तक वास्तविक भारत की प्रगति न होगी। भारत की प्रवर्तमान शिक्षा-प्रणाली का भारत के गाँवों से कोई सम्बन्ध नहीं है। उसका स्वरूप सर्वथा नगरीय है। इस दृष्टि से हमारी विश्वविद्यालय-शिक्षा का एक दोष यह भी है कि वह हमारे ग्रामवासियों तक नहीं जाती; हमारे ग्रामवासियों को उस तक आना पड़ता है। इसका फल यह होता है कि हमारे जो युवक गाँवों से नगरों में शिक्षा प्राप्त करने आते हैं वे नगरीय बन जाते हैं और अपने गाँवों से उनका वाञ्छनीय सम्बन्ध नहीं रह पाता। इस प्रकार आज हमारे नगरों का विकास हमारे गाँवों के मूल्य पर हो रहा है और हमारे गाँव निरन्तर पतन की ओर बढ़ते जाते हैं! इस स्थिति का सामना करने के लिये हमें भारत में दो शिक्षा-प्रणालियों का विकास करना होगा, (१) नगरीय शिक्षा-प्रणाली, और (२) ग्रामीय शिक्षा-प्रणाली। पूर्वोक्त प्रणाली का उद्देश्य भारत को आधुनिक सभ्यता की दृष्टि से विकसित करना होगा और उत्तरोक्त का भारत के प्राचीन आदर्शों की दृष्टि से। भारत की प्राचीन संस्कृति, सभ्यता एवं प्राप्तियों के केन्द्र भारत के गाँव ही हैं। अतः भारत में एक सुस्थित ग्रामीय शिक्षा-प्रणाली का विकास करके हमें उनकी रक्षा एवं विकास का प्रयत्न करना चाहिए। नगरीय एवं ग्रामीय शिक्षा-प्रणालियाँ परस्पर-

चतुर्थ अध्याय

माध्यमिक-शिक्षा-प्रतिवेदन

अथवा

मुदालिअर-प्रतिवेदन, १९५३

क—प्रस्तावना

१—आयोग की स्थापना

परतन्त्र भारत में भारतीय शासन का अस्तित्व भारतीय सामाजिक व्यवस्था से सर्वथा पृथक् था। भारत का शासन विदेशीय था; भारत की सामाजिक व्यवस्था देशीय। फलतः उस समय, विश्वविद्यालय-शिक्षा की भाँति, माध्यमिक शिक्षा की व्यवस्था भी विदेशीय शासन के स्वार्थों की पूर्ति के उद्देश्य से की जाती थी। विदेशीय शासन ने भारत में एक सु-सन्धि-योजित एवं सु-समन्वित शिक्षा-प्रणाली का विकास करने की ओर कभी ध्यान नहीं दिया। अतः तत्कालीन प्राथमिक, माध्यमिक एवं विश्वविद्यालय-शिक्षा-प्रक्रमों में सदा अतिक्रमण बना रहता था। भारत में प्राथमिक, माध्यमिक तथा विश्व-विद्यालय-शिक्षा-प्रक्रमों का परस्पर स्वतन्त्र रूप में विकसित होना भी भारतीय शिक्षा-प्रणाली के असन्धियोजन, असमन्वय एवं अतिक्रमण का एक प्रभावशाली कारण था। इसके अतिरिक्त हमारी माध्यमिक शिक्षा एक स्वतन्त्र शिक्षा-प्रक्रम के

रूप में हमारे युवकों को जीवन के लिये तय्यार नहीं करती थी। यह एक अत्यन्त विषम स्थिति थी। स्वतन्त्र भारत में शासन का ध्यान माध्यमिक शिक्षा की इस विषमता की ओर गया। फलतः अक्टूबर, १९५२ में डॉ० ए० लक्ष्मणस्वामी मुदालिअर के सभापतित्व में एक आयोग की नियुक्ति की गई, जिसे *माध्यमिक शिक्षा-आयोग*, *मुदालिअर-आयोग*, अथवा *लक्ष्मण-स्वामी-आयोग* के नाम से पुकारा जाता है। मुदालियर-आयोग ने अपना प्रतिवेदन जून, १९५३ में प्रस्तुत किया।

२—आयोग की नियुक्ति के उद्देश्य

मुदालिअर-आयोग की नियुक्ति के दो उद्देश्य थे, (१) देश में माध्यमिक शिक्षा की प्रवर्तमान प्रणाली की परीक्षा करना तथा इसके पुनःसंघटन एवं सुधार के लिये उपाय सुझाना, और (२) माध्यमिक शिक्षा की प्रवर्तमान प्रणाली से, जो एक-पक्षीय तथा प्रकृति में प्रधानतः साहित्यिक है, एक (ऐसी प्रणाली) में परिवर्तन की वाञ्छनीयता, जो माध्यमिक प्रक्रम पर भिन्न अभियोग्यताओं एवं अभिरुचियों के लिये आहारप्रदान करेगी।

३—आयोग के सदस्य

मुदालिअर-आयोग के सदस्यों की संख्या ९ थी। सदस्यों के नाम इस प्रकार हैं: (१) डा० ए० लक्ष्मणस्वामी मुदालिअर (सभापति), (२) जॉन क्राइस्टी (इङ्गलैण्ड), (३) डॉ० कैनिथ रस्ट विलिअम्स (अमेरिका), (४) श्रीमती हंसा महता, (५) श्री जे० ए० तारापुरवाला, (६) डॉ० के० एल० श्रीमाली, (७) श्री एम० टी० व्यास, (८) श्री के० जी० सईदैन, तथा (९) श्री ए० एन० बसु। शिक्षा-मन्त्रालय के शिक्षा-अधिकारी डॉ० एस०एम०एस०

चारी ने आयोग के सहायक सचिव के रूप में कार्य किया। आयोग में इन नियुक्त सदस्यों के अतिरिक्त सत्रह सहवृत[1] सदस्य भी सम्मिलित थे।

३–आयोग का क्षेत्र : निर्देश-पद[2]

समस्त भारत के लिये, भारत की आवश्यकताओं एवं संसाधनों के उपयुक्त माध्यमिक शिक्षा की एक सुस्थित एवं एकरूप प्रणाली का उपबन्ध करने के लिये निर्देश-पदों के अनुसार मुदालिअर-आयोग से माध्यमिक शिक्षा की निम्नलिखित समस्याओं के सम्बन्ध में प्रतिवेदन करने लिये कहा गया था:—

(१) भारत में माध्यमिक शिक्षा की, इसके समस्त पक्षों में, वर्तमान स्थिति की जाँच तथा उस पर प्रतिवेदन करना; और

(२) (निम्नलिखित) के विशेष सम्बन्ध में इसके पुनः-संघटन तथा सुधार के लिये उपाय सुझाना:—

(i) माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य, संघटन तथा विषयवस्तु;

(ii) इसका प्राथमिक, आधारभूत[3] तथा उच्च शिक्षा से सम्बन्ध;

(iii) भिन्न प्ररूपों के माध्यमिक विद्यालयों का अन्तर्सम्बन्ध; और

(iv) अन्य संबद्ध समस्याएँ।

मुदालिअर-आयोग ने भारत की माध्यमिक शिक्षा के विभिन्न पक्षों के सम्बन्ध में दो प्रकार के अभिस्ताव किये हैं, (१) अल्पावधि अभिस्ताव, तथा (२) दीर्घावधि अभिस्ताव। दोनों प्रकार के अभिस्ताव सर्वथा व्यावहारिक एवं अत्यन्त महत्वपूर्ण

---

1 Co-opted. 2 Terms of Reference. 3 Basic.

हैं। आगामी पृष्ठों में इन्हीं अभिस्तावों का उल्लेख किया जाएगा।

ख—मुदालिअर-आयोग के अभिस्ताव

(१) लक्ष्य और उद्देश्यों का पुनरनुस्थापन[1]

१—प्रवर्तमान प्रणाली के दोष

(१) प्रथमतः, हमारे विद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा जीवन से पृथक्कृत होती है—अध्यापन की परम्परागत रीतियों द्वारा संविन्यस्त[2] एवं उपस्थित पाठ्यक्रम छात्रों को दिन प्रति दिन के उस विश्व में अन्तर्दृष्टि नहीं देता जिसमें वे रह रहे हैं।

(२) द्वितीयतः, यह सङ्कीर्ण तथा एकपक्षीय होता है और छात्र के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को शिक्षित करने में विफल रहता है।

(३) तृतीयतः, अपेक्षया अभिनव (समय) तक, आङ्गल (भाषा) शिक्षा का माध्यम तथा अध्ययन का एक अनिवार्य विषय दोनों थी। अतः वे छात्र, जो विशेष भाषा-योग्यता धारण नहीं करते थे, अपने अध्ययन में अत्यन्त बाधित होते थे।

(४) चतुर्थतः, सामान्यतः प्रयुक्त अध्यापन-रीतियाँ छात्रों में या तो विचार की स्वतन्त्रता अथवा क्रिया की प्ररुचि का विकास करने में विफल रहती थीं। वे सहकारी प्राप्ति के हर्ष की अपेक्षा स्पर्धी सफलता पर बल देती थीं।

(५) पञ्चमतः, श्रेणियों के परिमाण में वृद्धि ने अध्यापकों एवं छात्रों के बीच वैयक्तिक सम्पर्क को पर्याप्त रूप से कम कर

---

1 Re-orientation. 2 Formulated.

दिया है। इस प्रकार चरित्र का प्रशिक्षण और समुचित अनुशासन का अन्तर्निवेश[1] गम्भीरतया अधःक्षरित[2] किया गया है।

(६) अन्ततः, परीक्षा का मृत भार अध्यापकों की प्ररुचि को रोकने, पाठ्यक्रम को रूढ़िबद्ध करने, अध्यापन की यान्त्रिक एवं निर्जीव रीतियों को प्रोत्साहन देने, संपरीक्षण की समस्त भावना को निरुत्साहित करने और शिक्षा में सदोष अथवा अमहत्वपूर्ण वस्तुओं पर बल रखने के लिये प्रवृत्त हुआ है।

२–उद्देश्य-निर्धारण के आधार : लोकतन्त्रात्मक भारत की शैक्षणिक आवश्यकताएँ :

(क) व्यसनों, दृष्टिकोणों एवं चरित्र के गुणों का विकास

भारत ने अभिनव अपनी राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त की है, और, ध्यानपूर्वक विचार के पश्चात्, इसको एक लौकिक लोकतन्त्रात्मक गणराज्य में रूपान्तरित करने का निर्णय किया है। इसका अर्थ होता है कि शिक्षा-प्रणाली को व्यसनों, दृष्टिकोणों तथा चरित्र के गुणों के उस विकास को अपना अंशदान करना चाहिए, जो इसके नागरिकों को लोकतन्त्रात्मक नागरिकता के उत्तरदायित्वों को उचित रूप से वहन करने, और उन समस्त विखण्डक[3] प्रवृत्तियों का प्रतिकार करने के योग्य बनायेगा, जो एक विस्तृत, राष्ट्रिय एवं असाम्प्रदायिक दृष्टिकोण के उन्मज्जन[4] में अड़चन डालती हैं।

(ख) जनता के जीवन-स्तर का उन्नयन

द्वितीयतः, सम्भाव्य संसाधनों में समृद्ध होने पर भी, भारत आजकल वस्तुतः एक निर्धन देश है; इसकी जनता की एक बृहत् बहुसंख्या को एक आर्थिक दृष्टि से अधःमानवीय स्तर पर

1 Inculcation. 2 Undermined. 3 Fissiparous.
4 Emergence.

रहना होता है। इसकी अत्यन्त अतिपाती समस्याओं में से एक—यदि अत्यन्त अतिपाती समस्या नहीं तो—उत्पादी दक्षता को सुधारना, राष्ट्रिय-धन को बढ़ाना और उसके द्वारा जनता के जीवन-स्तर को पर्याप्त रूप से उठाना है।

(ग) एक सांस्कृतिक नवयुग का उद्दीपन

तृतीयतः, अंशतः इस असह्य एवं दूरविस्तृत निर्धनता के एक परिणाम के रूप में, यहाँ शिक्षा-सुविधाओं का एक गम्भीर अभाव है और जनता के अधिकांश भाग किसी प्रकार के एक जीवन को बनाने की समस्या से ऐसे मनोग्रस्त हैं कि वे सांस्कृतिक अनुसरणों एवं क्रियाओं की ओर पर्याप्त ध्यान देने के योग्य नहीं हुए हैं। अतः यहाँ की शिक्षा-प्रणाली को एक ऐसे मार्ग में पुनरनुस्थापित करने की आवश्यकता है कि यह एक सांस्कृतिक नवयुग जाग्रत करेगी।

३—माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य

(क) लोकतन्त्रात्मक नागरिकता का विकास : आदर्श नागरिक के गुण

नागरिकता एक लोकतन्त्र में एक अत्यन्त कठोर तथा चुनौती देने वाला उत्तरदायित्व होती है जिसके लिये प्रत्येक नागरिक को सावधानी से शिक्षित किया जाना होता है। इसमें उन अनेक बौद्धिक, सामाजिक तथा नैतिक गुणों का समावेश होता है जिनकी स्वेच्छा से बढ़ने के लिये प्रत्याशा नहीं की जा सकती। माध्यमिक शिक्षा को, जो नागरिकों के अधिकांश भाग के लिये समस्त औपचारिक शिक्षण का अन्त होगी, इस प्रयोजन के लिये आवश्यक प्रशिक्षण का उपबन्ध करने के उत्तरदायित्व को ग्रहण करना चाहिए।

(१) विचार-स्वच्छता—इस सम्बन्ध में प्रथम अपेक्षित गुण स्पष्ट विचार के लिये क्षमता एवं नवीन विचारों की एक ग्राहिता का विकास करना है। प्रभावशाली होने के लिये, एक लोकतन्त्रात्मक नागरिक को सत्य को असत्य से, तथ्यों को प्रचार से छानने और धर्मान्धता एवं प्रतिकूलता के भयानक अभ्याह्वान[1] को अस्वीकार करने के लिये समझ तथा बौद्धिक पूर्णता प्राप्त करनी चाहिए। उसे वैषयिक रूप से सोचने और अपने निष्कर्षों को परीक्षित सामग्री पर स्थापित करने के लिये मस्तिष्क का एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करना चाहिए। उसे एक नवीन विचार-ग्राही और रीति-बाह्य[2] रूढ़ियों, परम्पराओं तथा विश्वासों की कारा-भित्तियों में न सीमित एक खुला मस्तिष्क भी रखना चाहिए। उसे न तो प्राचीन को अस्वीकार करना चाहिए क्योंकि यह प्राचीन है न नवीन को स्वीकार करना चाहिए क्योंकि यह नवीन है, अपितु दोनों की निष्पक्ष रूप से परीक्षा करनी चाहिए और जो भी न्याय एवं प्रगति की शक्तियों को पकड़े उसे साहसपूर्वक अस्वीकार करना चाहिए।

(२) भाषण एवं लेखन में स्पष्टता—विचार की स्वच्छता से निकटतः संबद्ध भाषण में तथा लेखन में स्पष्टता होती है। यह केवल एक महत्वपूर्ण सामाजिक परिसंपत्[3] ही नहीं है अपितु यह एक उस लोकतन्त्र में सफल जीवन के लिये एक आवश्यक पूर्वापेक्षित गुण भी है, जो शक्ति पर नहीं, अपितु स्वतन्त्र चर्चा, अनुनय, तथा विचारों के शान्तिपूर्ण विनिमय पर आधारित है।

(३) सहज गुण-सम्पन्नता—एक लोकतन्त्र एक मानव के

---

1 Appeal. 2 Out-moded. 3 Asset.

रूप में प्रत्येक एकल व्यक्ति की गरिमा एवं मूल्य में विश्वास पर आधारित होता है। यह सहज "गुण-सम्पन्नता" या तो आर्थिक अथवा जातीय अथवा सामाजिक विचार द्वारा ग्रहित[1] नहीं हो सकती। अतः एक लोकतन्त्रात्मक शिक्षा का प्रयोजन प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व का पूर्ण, सर्वतोमुखी विकास होता है। इसके लिये यह आवश्यक होता है कि शिक्षा को उसकी समस्त आवश्यकताओं—मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, भावनामय तथा प्रयोगात्मक—पर विचार करना चाहिए और उनमें से समस्त को आहारप्रदान करना चाहिए।

(४) सामाजिकता—तथापि, यह स्पष्ट है कि एक व्यक्ति अकेला नहीं रह सकता तथा विकास नहीं कर सकता। उसके अपने स्वस्थ विकास तथा समाज के हित दोनों के लिये यह आवश्यक है कि उसे दूसरों के साथ रहना और अन्य व्यक्तियों के साथ व्यावहारिक अनुभव तथा स्वतन्त्र अन्तर्ग्रहण[2] द्वारा सहयोग के मूल्य का अधिमूल्यन करना सीखना चाहिए। वह शिक्षा, जो एक व्यक्ति के साथियों के साथ दयापूर्वक, मधुरता-पूर्वक, तथा दक्षता-पूर्वक रहने के लिये आवश्यक गुणों को अन्तर्निविष्ट[3] नहीं करती, नाम के उपयुक्त नहीं है। अनुशासन, सहयोग, सामाजिक हृषता[4] तथा सहिष्णुता उन गुणों में होती है जो कृष्ट[5] किये जाने चाहिएँ।

(५) अनुशासन—अनुशासन सफल समूह-कार्य के लिये एक आवश्यक प्रतिबन्ध होता है। एक अननुशासित व्यक्ति न तो किसी निगम परियोजना[6] की समाप्ति की ओर कोई प्रभाव-

1 Eclipsed. 2 Interplay. 3 To inculcate.
4 Sensitiveness. 5 Cultivated. 6 Corporate Project.

शाली अंशदान कर सकता है न नेतृत्व के गुणों का विकास कर सकता है।

(६) सहयोग—तथापि, अनुशासन एक शून्यक[1] में विकसित नहीं किया जा सकता; यह स्वेच्छापूर्वक लिये गये तथा दक्षतापूर्वक पूर्ण किये गये सहकारी कार्य का फल, मूल्यवान उपसृष्ट[2] होता है। सहयोग की इच्छा को सबल करना विद्यालय को लक्ष्य बनाना चाहिए और छात्रों को इसे व्यवहार में अनूदित करने के लिये अवसर प्रदान करने चाहिएँ।

(७) सामाजिक हृषता[3]—उन सामाजिक पापों एवं विदोहन[4] की हृषता पर आधारित, जो जीवन के अनुग्रह को भ्रष्ट करता है, सामाजिक न्याय के लिये एक आवेश हमारी जनता के हृदय एवं मस्तिष्क में उद्दीप्त किया जाना चाहिए और इसके लिये नींव विद्यालय में रखी जानी चाहिए। यह सामाजिक हृषता अच्छे चरित्र का नैतिक आधार होती है; इसके बिना दक्षता, अनुशासन, सहयोग तथा अनेक अन्य सुन्दर गुण या तो अफल रह सकते हैं अथवा हीनतर प्रयोजनों के लिये भ्रष्ट किये जा सकते हैं।

(८) सहिष्णुता—एक लोकतन्त्रात्मक समाज का सार केवल सहन करना ही नहीं है अपितु उन भेदों का स्वागत करना (भी है) जो जीवन की समृद्धि करते हैं। प्रत्येक विद्यालय के लिये ऐसा करना, केवल विभिन्न विद्यालय-विषयों—विशेषतः भाषा-शात्र[5] तथा समाज विज्ञान[6]—द्वारा तथा इस तथ्य द्वारा उपबन्धित अवसरों द्वारा भी सम्भव है कि इसके छात्र भिन्न मतों जातियों, तथा वर्गों से आकृष्ट किये जाते हैं।

---

1 Vacuum. 2 By-product. 3 Sensitivenes.
4 Exploitation. 5 Humanities. 6 Social Studies.

(९) सच्ची देशभक्ति—एक अन्य महत्वपूर्ण उद्देश्य, जिसे माध्यमिक विद्यालय को बढ़ाना चाहिए, सच्ची देशभक्ति की एक भावना का विकास है। सच्ची देशभक्ति में तीन वस्तुओं का समावेश होता है—एक मनुष्य के देश की सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्राप्तियों का एक सद्भावी *अधिमूल्यन*, इसकी दुर्बलताओं को सीधे रूप में स्वीकृत करने की *उद्यतता* तथा उनके उन्मूलन के लिये कार्य करना और वैयक्तिक अभिरुचियों को विस्तृत राष्ट्रिय अभिरुचियों के साथ समरूप करके तथा उनके अधीन करके, अपनी सर्वोत्तम योग्यता से इसकी *सेवा करने का* एक हार्दिक *संकल्प*। विद्यालय को देशभक्ति की इस समृद्ध, त्रिगुण अवधारणा[1] का निर्माण करने के लिये अपने को सम्बोधित करना चाहिए।

(१०) विश्व नागरिकता की एक भावना—"मेरा देश, न्याय्य अथवा सदोष," की अपेक्षा आज के विश्व में अधिक भयानक सूत्र नहीं है। आजकल सम्पूर्ण विश्व इतनी निकटता से अन्तर्योजित है कि कोई राष्ट्र अकेला नहीं रह सकता अथवा रहने का साहस नहीं कर सकता और विश्व नागरिकता की एक भावना का विकास ठीक इतना महत्वपूर्ण हो गया है जितना राष्ट्रिय नागरिकता का।

(ख) व्यावसायिक दक्षता का सुधार

(१) कार्य की गरिमा के प्रति दृष्टिकोण—छात्रों को परिनिष्पत्ति[2] के लिये एक इच्छा प्राप्त करनी चाहिए और प्रत्येक वस्तु को इतनी पूर्णतया करने में गर्व लेना चाहिए जितनी (पूर्णतया) वे कर सकते हैं; उसी प्रकार अध्यापकों को

1 Conception. 2 Perfection.

उस समस्त कार्य को, जो अर्ध-हृदय का अथवा असावधानी का, अथवा आकस्मिक है, दृढ़तापूर्वक परन्तु सहानुभूति के साथ, अस्वीकृत करना सीखना चाहिए।

(२) प्रावैधिक दक्षता एवं क्षमता—इस दृष्टिकोण के विकास के साथ-साथ, औद्योगिक तथा प्रौद्योगिकीय[1] उन्नति की योजनाओं को साधित करने के लिये शिक्षा के समस्त प्रक्रमों पर प्रावैधिक[2] क्षमता एवं दक्षता को बढ़ाने की आवश्यकता है।

(ग) व्यक्तित्व का विकास

माध्यमिक शिक्षा का तृतीय मुख्य कार्य छात्रों में सर्जनात्मक ऊर्जा[3] के संसाधनों का मोचन करना है जिससे वे अपनी सांस्कृतिक पैतृक सम्पत्ति का अधिमूल्यन करने, उन समृद्ध अभिरुचियों का संवर्धन करने, जिनका वे अपने अवकाश में अनुसरण कर सकते हैं, और इस प्रकार, पिछले जीवन में, इस पैतृक सम्पत्ति की ओर अंशदान करने के योग्य हो सकें।

(घ) नेतृत्व के लिये शिक्षा

यह स्मरण होना चाहिए कि, छात्रों के एक बृहत् अधिकांश भाग के लिये, यह (माध्यमिक शिक्षा) उनकी औपचारिक शिक्षा की समाप्ति को अङ्कित करती है और, अतः, इसे मुख्यतः इसके अपने अन्तों एवं विशेष प्रयोजन के साथ एक पूर्ण प्रक्रम के रूप में देखा जाना चाहिए। माध्यमिक विद्यालय से उत्तीर्ण होने पर, ऐसे छात्रों को जीवन के विभिन्न गमन मार्गों में प्रवेश करने और जिसे मध्यमा प्रक्रम पर नेतृत्व पुकारा जा सकता है उसके भाग को भरने के योग्य होना

---

1 Technological. 2 Techmical. 3 Energy.

चाहिए, जो महाविद्यालय अथवा प्रावैधिक संस्थाओं में सम्मिलित होने की प्रस्थापना नहीं करते। प्राथमिक अथवा आधारभूत पाठशाला समस्त क्षमता में अनुशासित कार्य के लिये अन्तर्निविष्ट करेगी जबकि विश्वविद्यालय जीवन के भिन्न गमन मार्गों में उच्चतम स्तर पर नेतृत्व को प्रशिक्षित करेगा। इस प्रसङ्ग में माध्यमिक विद्यालय का विशेष कार्य, उन व्यक्तियों को शिक्षित करना है जो उनके अपने समुदाय के लघु समूहों अथवा संस्थिति[1] में नेतृत्व—सामाजिक, राजनैतिक, औद्योगिक अथवा सांस्कृतिक क्षेत्रों में—का उत्तरदायित्व लेने के योग्य होंगे।

(२) माध्यमिक शिक्षा का नवीन संघटनात्मक प्रतिरूप[2]

१—माध्यमिक शिक्षा की अवधि

हम ४ अथवा ५ वर्ष की प्राथमिक अथवा कनिष्ठ आधारभूत[3] शिक्षा के पश्चात् माध्यमिक शिक्षा के लिये निम्नलिखित नवीन संघटनात्मक संरचना का अभिस्ताव करते हैं:—

(१) एक मध्य अथवा कनिष्ठ माध्यमिक अथवा ज्येष्ठ आधारभूत प्रक्रम, जिसे ३ वर्ष की एक अवधि का समावेश करना चाहिए;

(२) एक उत्तर-माध्यमिक प्रक्रम, जिसे चार वर्ष की एक अवधि का समावेश करना चाहिए।

२—नवीन प्रतिरूप में उच्च शिक्षा संस्थाओं की स्थिति

(क) मध्यमा महाविद्यालय[4]

मध्यमा महाविद्यालयों की ओर मुड़ कर, हम अनुभव

---

1 Locality.   2 Pattern.   3 Junior Basic.
4 Intermediate. College.

करते हैं कि तीन वर्ष की उपाधि पाठचर्या द्वारा अनुसरित, चार वर्ष की उत्तर-माध्यमिक शिक्षा की प्रस्थापित योजना में अन्वायोजित होने के लिये उनकी संरचना में एक क्रमशः परिवर्तन होना चाहिए। वर्तमान मध्यमा प्रक्रम उत्तर-माध्यमिक प्रक्रम द्वारा प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए जो, वर्तमान मध्यमा की एक वर्ष का इसमें समावेश होने पर, चार वर्ष की अविध का होना चाहिए।

(ख) उपाधि महाविद्यालय

ऐसे महाविद्यालयों के दो प्रकार होते हैं। कुछ राज्यों में ये महाविद्यालय दो वर्ष की उपाधि पाठचर्या अर्पित करते हैं, अन्य में चार वर्ष की पाठचर्या—दो मध्यमा के लिये और दो उपाधि-प्रक्रम के लिये। दो वर्ष के उपाधि महाविद्यालयों की स्थिति में, हम अभिस्ताव करते हैं कि उन्हें एक वर्ष उपाधि पाठचर्या में जोड़ देनी चाहिए और, कर्मचारिवर्ग एवं व्यवस्थापन के द्वारा आवश्यक संकलनों के साथ, अपने को पूर्ण तीन वर्ष के उपाधि महाविद्यालयों में परिवर्तित कर लेना चाहिए। चार वर्ष के उपाधि-महाविद्यालयों की स्थिति में, हम अभिस्ताव करते हैं कि उन्हें एक पूर्व-विश्वविद्यालय[1] वर्ष के रूप में प्रथम वर्ष को उनके लिये रखना चाहिए जो उच्च विद्यालय प्रक्रम पूर्ण कर चुके हैं और उपाधि पाठचर्या लेना चाहते हैं। अन्य तीन वर्ष सम्यक् उपाधि पाठचर्या का निर्माण करेंगी।

(ग) व्यावसायिक महाविद्यालय

आजकल आभियान्त्रिकी[2], औषध, कृषि, पशु-विज्ञान इत्यादि के महाविद्यालयों में प्रवेश के लिये अपेक्षित न्यूनतम

1 Pre-university. 2 Engineering.

अर्हता मध्यमा है। यहाँ यह समालोचनाएँ हुई हैं कि वे छात्र, जो मध्यमा में उत्तीर्ण थे, विभिन्न व्यावसायिक पाठ-चर्याओं के लिये आवश्यक विषयों का पर्याप्त ज्ञान, तथा उनमें पर्याप्त प्रशिक्षण नहीं रखते थे। इस समालोचना की पूर्ति करने के लिये, यह वाञ्छनीय प्रतीत होता है कि इन पाठचर्याओं को लेने से पूर्व समस्त छात्रों द्वारा संबद्ध पूर्व-व्यावसायिक विषयों में गहन अध्ययन का एक वर्ष लिया जाना चाहिए।

(घ) बहुप्रविधि[1] अथवा प्रौद्योगिकीय[2] संस्थाएँ

हम प्रत्याशा करते हैं कि माध्यमिक पाठचर्या के सफल अन्त पर, छात्रों का एक अधिकांश भाग कुछ न कुछ उपयुक्त व्यावसायिक वृत्त ले लेगा और यथासमय या तो प्रयोग तथा अनुभव द्वारा अथवा शिशिशु-प्रशिक्षण द्वारा इसमें क्षमता की एक युक्तियुक्त मात्रा प्राप्त कर लेगा। परन्तु अनेक (ऐसे छात्र भी) होंगे जो उच्च अध्ययन का अनुसरण करना चाहेंगे, और (ऐसा करने की) एक स्थिति में होंगे। ऐसे छात्रों के लिये, बहुप्रविधि अथवा प्रौद्योगिकीय संस्थाएँ प्राप्य होनी चाहिएँ जहाँ दो अथवा अधिक वर्ष का समावेश करते हुए प्रावैधिक पाठचर्या उपबन्धित होगी। वे राज्य द्वारा प्रावैधिक शिक्षा के लिये अखिल भारतीय परिषद् द्वारा प्रदत्त प्रमाणपत्रों अथवा पत्रोपाधियों[3] को लेने के लिये योग्य होने चाहिएँ। वे, जो व्यावसायिक विषयों के साथ उत्तर-माध्यमिक प्रमाणपत्र लेते हैं, पाठचर्या के प्रथम वर्ष से मुक्त किये जा सकते हैं, जबकि वे, जो उच्च विद्यालय प्रमाणपत्र प्राप्त करते हैं, प्रशिक्षण की पूर्ण अवधि रखने के लिये अपेक्षित होने चाहिएँ।

---

1 Polytechnics. 2 Technological. 3 Diplomas.

३—माध्यमिक विद्यालयों के विभिन्न प्ररूपों की स्थिति

(क) उच्च विद्यालय[1]

जैसा कि पहले ही विनिर्दिष्ट है निकट भविष्य में समस्त प्रवर्तमान उच्च विद्यालयों को उत्तर-माध्यमिक विद्यालयों में परिवर्तित करना सम्भव न होगा। ऐसे विद्यालयों की स्थिति में, उनकी वर्तमान संरचना के भीतर उनकी दक्षता सुधारने की समस्या होगी और पाठ्यक्रम तथा अध्ययन की रीतियों का पुनर्निर्माण करने के लिये वे अभिस्ताव उन पर भी लागू होंगे जो हमने अन्यत्र किये हैं। अन्य मार्गों में भी, उन्हें अधिक दक्ष बनाने के लिये और अन्ततः उत्तर-माध्यमिक विद्यालय में परिवर्तित होने के लिये उन्हें समर्थ बनाने के लिये पर्याप्त-सुधारों की आवश्यकता होगी।

(ख) उत्तर-माध्यमिक[2] *विद्यालय*

तथापि, विद्यालयों की एक संख्या समधिक[3] वर्ष अपनी पाठचर्या में जोड़ने और अपने को उत्तर-माध्यमिक विद्यालयों में परिवर्तित करने की एक स्थिति में होगी। यदि ये विद्यालय दृष्टि-गत प्रयोजनों को प्राप्त करने योग्य दक्ष संस्थाओं में विकसित होने हैं, तो यह आवश्यक है कि उनकी मान्यता सावधानी से निर्धारित एवं कठोर ऐसे प्रतिबन्धों से शासित होनी चाहिए, जो ऐसी मान्यता के दिये जाने से पूर्व नितान्त पालित होने चाहिएँ।

(ग) बहुपार्श्व[4] *अथवा बहुप्रयोजन*[5] *विद्यालय*

(१) पाठचर्याओं के विभिन्नीकरण[6] की आवश्यकता—इस

---

1 High Schools. 2 Higher Secondary. 3 Additional.
4 Multilateral. 5 Multipurpose. 6 Diversification.

तथ्य की दृष्टि से कि संविधान में शिक्षा १४ वर्ष की अवस्था तक निःशुल्क एवं अनिवार्य बना दी गई है, भविष्य में प्रज्ञाओं[1] की एक अत्यन्त विस्तृत विभिन्नता सहित छात्र शिक्षा चाह रहे होंगे। यह यह उपधारण करता है कि अब हमारे माध्यमिक विद्यालयों को "एकल-पद्धति[2]" संस्थाएँ नहीं होना चाहिए, अपितु उन चल अभियोग्यताओं, अभिरुचियों तथा प्रज्ञाओं की पूर्ति करने के लिये उपयुक्त शैक्षणिक कार्यक्रमों की एक विभिन्नता प्रस्तुत करनी चाहिए, जो अनिवार्य शिक्षा की अवधि के अन्त की ओर प्रमुखता में आते हैं। उन्हें उन अधिक व्यापक पाठचर्याओं का उपबन्ध करना चाहिए, जो सामान्य एवं व्यावसायिक विषय दोनों का समावेश करेंगी तथा छात्रों को अपनी आवश्यकताओं के अनुसार उनमें से वरण करने का एक अवसर प्राप्त होना चाहिए। इस प्रश्न तक सम्पूर्ण आधुनिक पहुंच इस अन्तर्दृष्टि पर आधारित है कि भिन्न व्यक्तियों का बौद्धिक एवं सांस्कृतिक विकास माध्यमों[3] की एक विभिन्नता द्वारा सर्वोत्तम होता है, कि व्यक्तित्व के शिक्षण के लिये केवल पुस्तक अथवा परम्परागत साहित्यिक विषयों का अध्ययन ही द्वार नहीं है और कि, अनेक--संभवतः एक अधिकांश भाग—छात्रों की स्थिति में, बुद्धिपूर्वक संघटित प्रयोग कार्य उनकी गुप्त ऊर्जाओं[4] का ताला उन परम्परागत विषयों की अपेक्षा अत्यधिक सफलतापूर्वक खोल सकता है जो अपने को केवल मन, अथवा, तदापि निकृष्टतर, स्मरणशक्ति को सम्बोधित करते हैं।

(२) बहुपार्श्व अथवा बहुप्रयोजन[2] विद्यालय--हमने उन

1 Talents. 2 Single Track. 3 Media. 4 Energies.

विभिन्नीकृत पाठचर्याओं का अभिस्ताव किया है जो बहुपार्श्व अथवा बहुप्रयोजन विद्यालयों में उपबन्धित होंगी। एक बहुप्रयोजन विद्यालय विभिन्न उद्देश्यों, अभिरुचियों एवं योग्यताओं सहित छात्रों के लिये पाठचर्याओं के विभिन्न प्ररूपों का उपबन्ध करना चाहता है। यह प्रत्येक वैयक्तिक छात्र के लिये उसके द्वारा चुनी हुई अध्ययनों की विशेष पाठचर्या में उसकी स्वाभाविक अभियोग्यता एवं अभिनतियों[1] का प्रयोग एवं विकास करने के लिये उपयुक्त अवसर का उपबन्ध करने का प्रयास करता है। इसके लिये अभ्यर्थित[2] मुख्य लाभ (निम्नलिखित) हैं--

(i) यह हीनता की उस भावना का खण्डन करते हुए, अध्ययनों की भिन्न पाठचर्याओं के लिये तय्यारी करने वाले छात्रों के बीच समस्त डाहपूर्ण प्रभेदों को हटाता है जो व्यावसायिक विषयों से संबद्ध होती है और शिक्षा प्रणाली की एक वस्तुतः लोकतन्त्रात्मक आधार पर योजना करना शक्य बनाता है।

(ii) यह शैक्षणिक माध्यमों की एक अधिक विभिन्नता का उपबन्ध करता है और उसके द्वारा अध्ययनों के वरण[3] में समुचित शैक्षणिक मार्गप्रदर्शन को सुविधाजनक बनाता है।

(iii) यह दोषपूर्वक वर्गीकृत छात्रों की समस्या का समाधान करने के लिये सहायता करता है, क्योंकि एक विद्यालय से दूसरे को स्थानान्तरण की अपेक्षा

1 Inclinations. 2 Claimed. 3 Choice.

उसी विद्यालय में स्थानान्तरण प्रबन्ध करने में अधिक सुगम होता है।

(घ) एकपक्षीय[1] विद्यालय

जब हम बहुप्रयोजन विद्यालयों की एक कुछ संख्या आरम्भ करने का समर्थन करते हैं, तब हमारा अभिप्राय यह सुझाना नहीं है कि समस्त (विद्यालय) उसी प्ररूप के होने चाहिएँ। वहाँ एकपक्षीय विद्यालयों के लिये भी स्थान होगा, जहाँ समुदाय एवं संस्थिति[2] की व्यावसायिक आवश्यकताओं के अनुसार व्यावसायिक पाठचर्याओं के विशेष प्ररूपों में गहन शिक्षण उपबन्धित होगा।

(ङ) कृषि माध्यमिक विद्यालय : कृषि-शिक्षण

कृषि, जनसंख्या के ७५% से ऊपर के लिये सेवायोजन[3] का उपबन्ध तथा ग्रामीय क्षेत्रों में मुख्य व्यवसाय का निर्माण करता हुआ, देश का अत्यन्त महत्वपूर्ण उद्योग है। अतः उस कार्य के एक समुचित अधिमूल्यन के लिये देश के तरुणों को शिक्षित करने की आवश्यकता पर समस्त विद्यालयों में बल दिया जाना चाहिए, जो राष्ट्रिय अर्थव्यवस्था में कृषि करती है। इसके आधारभूत महत्व की दृष्टि से, हम यह अभिस्ताव करते हैं कि समस्त राज्यों को ग्रामीय विद्यालयों में कृषि-शिक्षण के लिये अत्यन्त अधिक अवसरों का उपबन्ध करना चाहिए, जिससे अधिक छात्र इसे ले सकें और इसे एक व्यवसाय के रूप में स्वीकार कर सकें। जैसाकि कृषि में प्रशिक्षण का उपबन्ध मुख्यतः खेत में किया जाने को है, छात्र को अपने अध्ययन के पर्याप्त भाग के लिये याथार्थिक दशाओं में

1 Unilateral. 2 Locality. 3 Empolyment.

कार्य करने का एक अवसर प्राप्त करना चाहिए, जिससे वह कृषि तक सम्यक् पहुंच प्राप्त कर सके। कृषि के साथ दो अन्य संबद्ध विषय निकटतः एकीकृत होने चाहिएँ—उद्यान-विज्ञान[1] तथा पशु-पालन[2]। यदि कृषि का अध्ययन किन्हीं सकारात्मक परिणामों तक मार्गप्रदर्शन करने के लिये है, तो छात्र को केवल कृषि-क्रियाओं की यान्त्रिकी[3] में ही नहीं अपितु उन सहाय व्यवसायों में भी प्रशिक्षित किया जाना चाहिए जिन्हें एक कृषक को पृथक्-ऋतु में अपने अवकाश का लाभप्रद रूप से उपयोग करने के लिये जानना चाहिए। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि, एक विशेष विषय के रूप में कृषि देने वाले समस्त विद्यालयों में कृषि के लिये भूमि के पर्याप्त खण्डक प्राप्य होने चाहिएँ और इस प्रयोजन के लिये आवश्यक समस्त क्रियाओं को कार्यान्वित करने के लिये छात्र प्रशिक्षत होने चाहिएँ। अथापि, अध्यापन इस प्रकार अधियोजित होना चाहिए जैसे इसके वैज्ञानिक पक्ष को समुचित रूप से प्रकट करे, जिससे छात्र औद्भिदी[4], जलवायु-विज्ञान के संबद्ध विज्ञानों, मिट्टी तथा बीज की प्रकृति, और उन भिन्न नाशिकीटों[5] का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर सकें जो कृषि-पौधों पर प्रभाव डालते हैं। यह (पशु-पालन) भेड़-पालन, कुक्कुट-पालन, गायों एवं सांडों के संधारण, और गव्यव्यवसाय[6] का समावेश करता है। ऐसे व्यवसायों में प्रशिक्षण को कृषि की पाठचर्या के भाग के रूप में समझा जाना चाहिए। यह भी आवश्यक है कि कृषि विद्यालयों में

---

1 Horticulture. 2 Animal Husbandry. 3 Mechanics.
4 Botany. 5 Pests. 6 Dairying.

कुटीर-उद्योगों के उपयुक्त प्ररूप सिखाये जाएँ। एक विद्यालय के लिये चुना हुआ विशेष उद्योग इसकी स्थिति, प्राप्य सुविधाओं और प्रदेश की आवश्यकताओं पर निर्भर करेगा। यह कताई तथा बुनाई हो सकता है अथवा चर्म-कार्य अथवा मृद्भाण्ड[1] अथवा पिटकनिर्माण[2] अथवा तक्षण[3] अथवा कुछ न कुछ अन्य कला अथवा उपयोगी शिल्प। यह प्रश्न उठाया गया है कि स्वतन्त्र कृषि विद्यालय संघटित किये जाने चाहिएँ अथवा कृषि का अध्यापन केवल बहुप्रयोजन विद्यालयों में ही उपबन्धित होना चाहिए। हमारा मत है कि, नगरीय तथा ग्रामीय क्षेत्रों में भी बच्चों को शिक्षा के उस प्ररूप का अनुसरण करने का एक अवसर प्राप्त होना चाहिए जो उनकी आवश्यकताओं तथा अभियोग्यताओं के सर्वोत्तम समुपयुक्त हो। अतः कृषि विद्यालय ग्रामीय पर्यावरण से अधिक स्वाभाविक रूप से अन्वायोजित होंगे परन्तु वे ग्रामीय बहुप्रयोजन विद्यालयों के प्रतिरूप में एकीकृत होने चाहिएँ। ग्रामीय जीवन को समृद्ध बनाने की अत्यन्त उपयोगी रीतियों में से एक शिक्षा संस्थाओं को ग्रामीय क्षेत्रों में स्थित करना है।

(च) औद्योगिक विद्यालय[4] : प्रावैधिक[5] शिक्षण

(१) प्रावैधिक शिक्षण का महत्व एवं उद्देश्य—सामान्यतः यह विश्वास किया जाता है कि वे भौतिक संसाधन, जो कोयला, लोहा, लोहक[6], स्वर्ण तथा खनिज सम्पत्ति के अनेक अन्य विभेदों में देश में प्राप्य हैं, एक अत्यन्त समृद्ध राज्य के निर्माण में सहायता करेंगे। परन्तु यह भुला दिया जाता है कि समृद्ध

---

1 Pottery. 2 Basketry. 3 Carpentry. 4 Technical Schools. 5 Technical. 6 Manganese.

खनिज संसाधनों की उपस्थिति स्वतः एक राज्य को समृद्ध नहीं बनायेगी, न संसाधनों के अभाव का अर्थ आवश्यक रूप से एक राज्य की निर्धनता होगा। शिक्षा के मुख्य प्रयोजनों में एक व्यक्ति को उसकी उन बौद्धिक शक्तियों तथा हस्त-कौशल से चेतन बनाना है जिसका वह अपने समुदाय के हित के लिये प्रयोग कर सकता है। अतः, प्रावैधिक शिक्षण शिक्षा का एक अत्यन्त स्वाभाविक रूप है, जिसमें प्रत्येक लड़का तथा लड़की, एक अथवा अन्य मात्रा में, लग सकती है। यह एक लड़के को अपनी उन योग्यताओं एवं अभियोग्यताओं को आंकने में समर्थ बनाता है जो अन्ततः एक व्यवसाय चुनने में उसकी सहायता कर सकती हैं। यदि वह एक औद्योगिक जीवन का अनुसरण करने की इच्छा नहीं भी करता, तो भी उन उपकरणों का प्रयोग, जो कि वह सीखता है, उसे आत्माभिव्यक्ति द्वारा महान् सन्तोष देगा और पिछले जीवन में एक उपयुक्त व्यासङ्ग[1] का अनुसरण करने के लिये समर्थ भी बनायेगा। वह अच्छे रूपाङ्क[2] तथा कर्मकौशल का अधिमूल्यन करेगा, वह कार्य के अच्छे व्यसनों[3] का आदर करेगा और उन सबका अधिमूल्यन करेगा जो अपने हाथों से कार्य करते हैं, तथा कलारूपाङ्क प्राप्त करने के योग्य होते हैं।

(२) प्रावैधिक शिक्षण का उद्योग से सम्बन्ध—उद्योग के सम्बन्ध में शिक्षा का तात्कालिक प्रयोजन, उद्योग के लिये अधिक अर्हताप्राप्त[4] व्यक्तियों की सेवाएँ प्राप्त करना है, एक (ऐसी) प्राप्ति जो स्वतः अधिक सेवायोजन में तत्काल परिणत नहीं होती। शिक्षा की विषयवस्तु एवं रीति में सुधार उद्योग में वर्धी दक्षता करेगा और उसके विस्तार के लिये अंशदान करेगा।

1 Hobby. 2 Design. 3 Habits. 4 Qualified.

यह व्यापार के गोल में नवीन विचारों का जनन तथा नवीन क्रियाएँ उत्पन्न भी करेगा। यह उद्योग के विकास की ओर मार्गप्रदर्शन करेगा जो क्रमशः वर्धी संख्याओं के लिये लाभप्रद सेवायोजन प्राप्य होना बनायेगा।

(३) शिशिक्षा[1]—प्रशिक्षण का एक अन्य प्ररूप, जो उद्योग में शिल्पकारों का सम्यक् प्रकार उत्पन्न करने के लिये अत्यधिक महत्वपूर्ण है, वह प्रशिक्षण है जो उद्योग-संथाओं में शिशिक्षुओं को दिया जा सकता है। यह पर्याप्त रूप से अनुभव नहीं किया गया है कि एक शिल्पकार के प्रशिक्षण के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान स्वयं उद्योग ही है, और औद्योगिक विद्यालय का कार्य सामान्यतः लड़कों को शिशिक्षु प्रशिक्षण के एक पूरक के रूप में सामान्य तथा प्रावैधिक शिक्षा देना है। एक निर्माणी[2] में शिशिक्षा प्रशिक्षण तथा एक विद्यालय में सामान्य एवं प्रावैधिक शिक्षण का एकीकरण व्यावसायिक तथा उपजीविका-प्रशिक्षण की एक आवश्यक संरचना होना चाहिए। यह एकीकृत प्रणाली, जहाँ तक माध्यमिक विद्यालय स्तर पर प्रावैधिक तथा व्यावसायिक शिक्षण का सम्बन्ध है, विकास के एक वाञ्छनीय पक्ष का निरूपण करती है। इस प्रयोजन को प्राप्त करने के लिये, दो सम्पूरक उपाय आहूत[3] होते हैं। प्रथमतः, १४ से ऊपर वयो-वर्ग के लिये विभिन्न व्यापारों में शिशिक्षा-प्रशिक्षण की एक सु-विचारित तथा सु-संघटित प्रणाली समस्त उद्योग-संस्थाओं की सामान्य विशेषता होनी चाहिए। द्वितीयतः बाल-शिशिक्षुओं के हित के लिये उसी स्तर पर सामान्य माध्यमिक विद्यालयों के रूप में कार्य करते हुए औद्योगिक विद्यालय स्थापित किये जाने चाहिएँ। ऐसे

1 Apprenticeship.   2 Factory.   3 Called for.

विद्यालयों को शिशिक्षु को विशेष व्यापारों में प्रावैधिक शिक्षण, तथा एक अंशकालिक आधार पर सामान्य शिक्षण में अपेक्षित राशि से सज्ज करना चाहिए। इस प्रयोजन के लिये, विद्यालय उद्योगों के निकट सामीप्य में स्थित होने चाहिएँ और (उन्हें) संबद्ध उद्योग के साथ निकट सहयोग में कार्य करना चाहिए। शिशिक्षा सहित औद्योगिक विद्यालय शिक्षण की सम्पूर्ण अवधि, एक विशेष शिल्प अथवा व्यापार में अपेक्षित शिशिक्षा प्रशिक्षण की अवधि पर निर्भर रहते हुए, ४ से ५ वर्ष तक विचरित हो सकती है। इस प्रकार एक लड़का १८ अथवा १९ की अवस्था पर एक सामान्य शिक्षण तथा एक प्रावैधिक शिक्षण दोनों प्राप्त कर चुकेगा जो उसे किसी लाभ-पूर्ण सेवायोजन के लिये योग्य बनायेंगे। एक यन्त्र का प्रयोग करने के लिये समुचित रूप से योग्य होने के लिये, शिक्षार्थी को एक विशेषज्ञ कर्मकारी द्वारा प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। व्यावहारिक प्रशिक्षण की यह रीति समस्त श्रेणियों में प्रविधिज्ञों[1] के प्रशिक्षणका अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग होती है। इस कार्य को उद्योग द्वारा सु-प्रस्वीकृत किया जा चुका है। अतः हम यह अभिस्ताव करते हैं कि उपयुक्त विधान[2] पारित किया जाना चाहिए जिससे उद्योग-संस्थाओं में शिशिक्षा उद्योग के उत्तरदायित्व का भाग हो सके और कि प्रत्येक उद्योग को प्रशिक्षण के लिये शिशिक्षुओं की एक निश्चित संख्या लेनी चाहिए। साथ ही, हम यह अनुभव करते हैं कि सर्वोत्तम परिणाम केवल उद्योग, व्यापार तथा वाणिज्य का पूर्ण-हृदय सहयोग प्राप्त करके ही प्राप्त होंगे। हम यह अभिस्ताव करते हैं कि समस्त स्तरों पर प्रावैधिक शिक्षण तथा प्रौद्योगिकीय[3] शिक्षण अधियोजित करने में, वाणिज्य

1 Technicians. 2 Legislation. 3 Technological.

तथा उद्योग के प्रतिनिधि शिक्षा के प्रतिनिधियों से निकटतः संबद्ध होने चाहिएँ, जिससे योजना बनाने तथा सञ्चालन करने में और स्तरों के संधारण में उनके विचार प्रभावशाली रूप से अभिव्यक्त होंगे। हम यह आलोकन करके प्रसन्न थे कि यदि ये निधियाँ ऐसी संस्थाओं का आरम्भण तथा विकास करने के लिये प्रत्यक्ष रीति से प्रयुक्त की जाएँ तो व्यापार, उद्योग तथा वाणिज्य ऐसे व्यावसायिक शिक्षण की ओर अंशदान करने के लिये अतत्पर न होंगे। हम यह अभिस्ताव करते हैं कि "औद्योगिक शिक्षण उपकर[1]" नाम्ना एक उपकर आरोपित किया जाना चाहिए और इस उपकर की आय प्रावैधिक शिक्षण को आगे बढ़ाने के लिये प्रयुक्त की जानी चाहिएँ।

(४) प्रावैधिक शिक्षण की मन्द प्रगति के कारण (i) अभिनव काल तक, प्रावैधिक शिक्षण का प्रश्न केन्द्र अथवा राज्य द्वारा एक व्यापक रीति में गम्भीरतापूर्वक साधित नहीं किया गया था, (ii) अध्ययन के पारिभाषिक विषयों के लिये अध्यापकों के प्रशिक्षण को संघटित करने के लिये यत्न न था, (iii) लगभग समस्त राज्यों में लोक-शिक्षण-विभाग को एक बुद्धिपूर्ण तथा व्यापक आधार पर इन पाठचर्याओं की योजना करने के लिये इसे (विभाग को) समर्थ बनाने के लिये पर्याप्त सेवाकाल के एक प्रावैधिक मन्त्रणाकार के द्वारा विशेषज्ञ मार्गप्रदर्शन का लाभ प्राप्त न था, (iv) शासन के भिन्न विभागों के बीच पर्याप्त समन्वय तथा सहकार नहीं रहा है। कुछ संस्थाएँ उद्योग-सञ्चालक के अधीन थीं; अन्य श्रम-सञ्चालक के अधीन थीं और शेष शिक्षा-सञ्चालक के अधीन, (v) अधिकांश श्रेष्ठ योजनाएँ वित्त की चट्टान पर शोक तक आ गईं। प्रावैधिक

1 Industrial Education Cess.

प्रशिक्षण के अधिकांश प्रकारों के लिये विद्यालय को सज्ज करना बहुव्यय होता है; इन विद्यालयों को चलाने के लिये समुचित रूप से प्रशिक्षित सेवि-वर्ग प्राप्त करना और अधिक बहुव्यय होता है।

(५) प्राविधिक शिक्षण के प्ररूप—प्राविधिक शिक्षण को चार भिन्न प्ररूपों के छात्रों के लिये आहारप्रदान करना होता है:—

(i) चार उच्च श्रेणियों में उत्तर माध्यमिक विद्यालयों के छात्र—छात्रों के प्रथम प्रवर्ग के लिये एक औद्योगिक उच्च विद्यालय अथवा बहुप्रयोजन विद्यालय में उपबन्ध किया जा सकता है, जो, इसके अतिरिक्त कि भाषाओं, विज्ञान, गणित तथा समाज-विज्ञान की कुछ मात्रा के समान आन्तरक[1] विषयों में शिक्षण देने के अतिरिक्त, यह (i) व्यावहारिक गणित तथा रैखिकीय औद्रैखिकी[2], (ii) निर्माणशाला-प्रौद्योगिकी के अंशकों[3], (iii) यान्त्रिक तथा वैद्युत आभियान्त्रिकी[4] के अंशकों के लिये उपबन्ध करेगा, सामान्य माध्यमिक विद्यालय से भिन्न नहीं होता है। विद्यालय का प्रयोजन उन उपकरणों, सामग्री तथा विधाओं[5] के प्रयोग में एक सर्वतोमुखी प्रशिक्षण देना है जो सभ्यता के चक्रों को घुमाने के लिये मुख्यतः उत्तरदायी होती हैं। विद्यालय शिल्पकारों का उत्पादन करने के लिये अभिप्रेत नहीं होता है।

(ii) वे छात्र जो माध्यमिक शिक्षा की पूर्ण पाठचर्या का अनुसरण करने के लिये अनुपयुक्त होते हैं अथवा

---

1 Core. 2 Geometrical Drawing. 3 Elements.
4 Engineering. 5 Processes.

जो आर्थिक कारणों से विद्यालय छोड़ देते हैं तथा यथा-शक्य शीघ्र एक निर्वाह अर्जित करना आवश्यक समझते हैं। छात्रों के द्वितीय प्रवर्ग के लिये यान्त्रिक[1] आभियान्त्रिकी, वैद्युत आभियान्त्रिकी तथा अन्य विषयों में व्यापार-पाठचर्याओं की एक संख्या का अध्ययन करते हुए एक उद्योग-विद्यालय अथवा एक व्यापार-विद्यालय में उपबन्ध किया जाता है।

(iii) वे, जो माध्यमिक विद्यालय पाठचर्या उत्तीर्ण कर लेते हैं और जो एक विश्वविद्यालय को गये बिना बहुप्रविधि अथवा व्यावसायिक संस्थाओं में प्रावैधिक शिक्षण का अनुसरण करना चाहते हैं। छात्रों के तृतीय प्रवर्ग के लिये प्रावैधिक संस्थाओं और कभी-कभी आभियान्त्रिकी महाविद्यालयों में उपबन्ध किया जाता है। पाठचर्याएँ सामान्यतः तीन वर्ष की होती हैं और एक पत्रोपाधि तक मार्गप्रदर्शित करती हैं।

(iv) ऊपर के प्रवर्गों में से किसी से सम्बन्ध रखने वाले वे (छात्र), जो अपनी पाठचर्याओं की समाप्ति के पश्चात् लाभप्रद रूप से सेवायोजित होते हैं और जो अपनी रुचि के विषयों में अंश-कालिक सायं श्रेणियों[2] द्वारा अपनी प्रत्याशंसाओं[3] को सुधारना चाहते हैं।

(६) प्रावैधिक शिक्षण के लिये अखिल भारतीय परिषद्—प्रावैधिक शिक्षण से संव्यवहार करने के लिये भारत-शासन द्वारा एक प्रावैधिक शिक्षण के लिये अखिल भारतीय परिषद् की व्यवस्था की जा चुकी है। माध्यमिक प्रक्रम पर संस्थाओं के

---

1 Mechnical. 2 Evening clasess. 3 Prospects.

सामान्य प्रतिरूप की एकरूपता के हित में, हम यह अभिस्ताव करते हैं कि प्रावैधिक शिक्षण के लिये अखिल भारतीय परिषद् तथा इसके अधीन पहले ही कार्य करते हुये निकाय[1] पाठ-चर्याओं की रूपरेखाएँ बनाने के लिये प्रयुक्त हों।

(छ) अभिजन पाठशालाएँ[2]

भारत में, अभिजन पाठशालाओं का अधिकांश भाग अपेक्षया अभिनव उद्भव का है और (वे) न्यूनाधिक इङ्गलैण्ड की अभिजन पाठशाला-प्रणाली पर प्रतिरूपित की गई हैं। आज-कल अभिजन-पाठशाला-सम्मेलन द्वारा प्रस्वीकृत ऐसी १४ पाठशालाएँ हैं। यहाँ एक संख्या अन्य शिक्षा-संस्थाओं की भी है जो न्यूनाधिक अभिजन पाठशालाओं की रेखाओं पर चलायी जाती हैं। इस विषय पर सावधानी से विचार करने के पश्चात्, हम इस निष्कर्ष तक आये हैं कि यदि अभिजन पाठशालाओं को समुचित रूप से संघटित किया जाता है और प्रशिक्षण सम्यक् रेखाओं पर दिया जाता है, तो वे ठीक दृष्टिकोणों तथा व्यवहार का विकास करने में सहायता कर सकती हैं और अपने छात्रों को उपयोगी नागरिक होने के लिये समर्थ बना सकती हैं। अतः, जो कुछ आवश्यक है वह यह है कि अभिजन पाठशालाओं में अनुसरित अच्छे सिद्धान्तों एवं रीतियों में से कुछ क्रमशः समस्त विद्यालयों में प्रोत्साहित की जानी चाहिएँ। तथापि, यह समय लेगा, और अतः, वर्तमान के लिये अभिजन पाठशालाएँ हमारी शिक्षा-प्रणाली में एक सीमित परन्तु निश्चित स्थान रखती हैं। तथापि, यह आवश्यक है कि अभिजन पाठशालाओं के प्रबन्धन में कुछ

---

1 Bodies. 2 Public Schools.

निश्चित सिद्धान्त मस्तिष्क में धारित किये जाने चाहिएँ। (१) अभिजन पाठशाला को एक विशेष अथवा अनन्य संस्था नहीं होना चाहिए। इसे अपने मूल देश की मिट्टी में रखने चाहिएँ तथा सामान्यतः राष्ट्रिय शिक्षा के सामान्य प्रतिरूप के अनुसार होना चाहिए, (२) अभिजन पाठशालाओं को केवल खिलाड़ीपन की भावना पर ही नहीं अपितु नागरिकता के समस्त अन्य महत्वपूर्ण पक्षों, श्रम की गरिमा तथा एक सामाजिक अनुभूति पर भी यथोचित बल रखना चाहिए। उन्हें यह देखने के लिये भी सावधानी लेनी चाहिए कि उनका सामान्य शैक्षणिक जीवन भारतीय संस्कृति, परम्पराओं तथा दृष्टिकोण के अनुसार हो। जहाँ तक इन पाठशालाओं की वित्तव्यवस्था से सम्बन्ध है, हमारा यह मत है कि अभिजन पाठशालाओं को केन्द्र अथवा संबद्ध राज्य द्वारा दिये गये अनुदानों[1] पर कम से कम निर्भर करना चाहिए, और यथा-शक्य शीघ्र आत्म-निर्भर हो जाना चाहिए। हम यह विश्वास करते हैं कि, सिद्धान्त में, वहाँ तक जहाँ तक वे मुख्यतः समृद्ध वर्गों के लिये अभिप्रेत महँगी पाठशालाएँ होती हैं, वे राज्य-सहायता को प्राप्त करने के लिये अभ्यर्थना[2] नहीं रखतीं और वे शासन अनुदान, जो उन्हें आजकल दिये जाते हैं, धीरे-धीरे कम कर दिये जाने चाहिएँ। परन्तु राज्य अथवा केन्द्र, प्रवरण के आधार पर प्रदत्त होने के लिये, अभिजन पाठशालाओं के लिये कुछ निःशुल्क छात्रवृत्तियों[3] का, ऐसी निःशुल्क छात्रवृत्तियों की राशि छात्रों द्वारा सामान्यतः किये गये व्यय के माध्य पर आधारित होकर, उपबन्ध कर सकता है।

1 Grants. 2 Claim. 3 Studentships

(ज) निवास विद्यालय[1]

निवास विद्यालय माध्यमिक शिक्षा की किसी भी योजना में एक निश्चित स्थान रखते हैं। (इसके तीन कारण हैं): (१) यह सत्य है कि किशोरावस्था की आयु तक सर्वोत्तम शिक्षा एक उस पर्यावरण में उपबन्धित की जा सकती है जिसमें गृह, विद्यालय तथा स्थानीय समुदाय सब अपना संबद्ध कार्य करें। तथापि, अभाग्यवश, समस्त गृह तथा मातापिता अपने बच्चों के लिये एक शैक्षणिक पर्यावरण देने की स्थिति में नहीं होते हैं, (२) इसके अतिरिक्त, जब ग्रामीय क्षेत्रों में विभिन्नकृत पाठचर्याओं सहित अनेक उच्च विद्यालय तथा उत्तर माध्यमिक विद्यालय आरम्भित किये जाएँगे—जैसाकि हमने अभिस्ताव किया है—तब निवास-व्यवस्थापन की आवश्यकता वर्धी रूप से अनुभूत होगी, (३) इसके साथ, निवास विद्यालय शिक्षा का एक ऐसा प्ररूप दे सकते हैं जहाँ छात्र सामाजिक व्यवहार, सामुदायिक जीवन तथा समाज सेवा में अधिक अच्छा प्रशिक्षित किया जा सकता है और एक दिवस विद्यालय की अपेक्षा पाठ्य-बाह्य क्रियाओं में अधिक पूर्णतः भाग ले सकता है। तथापि, इसके लिये यह आवश्यक होगा कि निवास विद्यालयों में अध्यापकों में से कुछ निवास में होने चाहिएँ जिससे वहाँ उनके तथा उनके छात्रों के बीच में संस्पर्श के बृहत् अवसर हो सकें।

(झ) निवास दिवस विद्यालय[2]

यह विद्यालय का एक (ऐसा) प्ररूप होता है-(जो) हमारे देश में अभी तक सामान्य नहीं है—जहाँ छात्र सवेरे शीघ्र आ सकते

1 Residential School. 2 Residential Day School.

हैं और सन्ध्या को देर तक ठहर सकते हैं, अर्थात्, प्रातः के ८ और सायं के ६ के बीच। इस निवास दिवस विद्यालय का लाभ, जैसाकि इसे पुकारा जा सकता है, यह है कि बच्चों में से अनेक दिन के बृहत् भाग के लिये विद्यालय की सुविधाओं का प्रयोग करने के योग्य होंगे। जैसा निवास विद्यालयों की स्थिति में (होता है), (यहाँ भी) बृहत् अध्यापक-छात्र संस्पर्श होगा जो चरित्र की शिक्षा के लिये अत्यन्त आवश्यक होता है। ऐसे विद्यालयों में, एक मध्याह्न-भोजन तथा सम्भवतः अपराह्न में कुछ स्वल्पाहार का उपबन्ध करना आवश्यक होता है। कुछ ऐसे स्थान का उपबन्ध करना भी आवश्यक होगा जहाँ छात्र दिन के मध्य में विश्राम कर सकें। ऐसे दिवस विद्यालय बृहत् औद्योगिक जनसंख्या सहित उन क्षेत्रों में विशेषतः उपयोगी होंगे, जहाँ निर्धन वर्ग सामान्यतः रहते हैं तथा स्वच्छता अल्प होती है और वहाँ बच्चों के कार्य तथा खेल के लिये अल्प स्थान होता है अथवा स्थान नहीं होता।

(ञ) बाधितों के लिये विद्यालय[1]

उन छात्रों के लिये विद्यालयों के विशेष प्ररूपों की आवश्यकता समस्त देशों में प्रस्वीकृत की जा चुकी है जो विभिन्न रूपों में बाधित होते हैं। ऐसे बच्चों के लिये प्रत्येक राज्य में कुछेक विद्यालय होने चाहिएँ जहाँ उनकी आवश्यकताओं के विशेषतः उपयुक्त रीतियाँ अभिगृहीत[2] की जा सकें। यह सामान्य बच्चों की सुचारु प्रगति के हित में भी आवश्यक है।

(ट) अन्ध, बधिर तथा मूक, इत्यादि के लिये विद्यालय

आवश्यकता के कारण इन विद्यालयों को निवास (विद्यालय)

---

1 Schools for the handicapped.　2 Adopted.

होना चाहिए जहाँ छात्र वर्षों की एक संख्या के लिये, जब तक वे कुछ न कुछ उपयोगी उपजीविका लेने के योग्य हों, रखे जा सकते हैं। यदि उन्हें बाधित बच्चों के इस अभागे वर्ग को आहारप्रदान करना है, तो ऐसे विद्यालयों की संख्या को पर्याप्त रूप से वर्धित होना आवश्यक है। इन विद्यालयों के अतिरिक्त, कुछ राज्यों में विशेष विद्यालय हैं जहाँ क्षयरोग के समान गम्भीर रोगों से अथवा गम्भीर शारीरिक विरूपता[1] से ग्रस्त बच्चे गृहित[2] किये जाते हैं अथवा खुले में पढ़ाये जाते हैं। हम यह अभिस्ताव करते हैं कि ऐसी संस्थाएँ ऐसे रोगों से ग्रस्त बच्चों के लिये कुछेक केन्द्रों में आरम्भित की जानी चाहिएँ।

४—सांतत्य श्रेणियाँ[3]

यद्यपि संविधान ने यह उपबन्ध किया है कि १४ की अवस्था तक समस्त बच्चों को पूर्ण-कालिक शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए, हमें यह आभास होता है कि प्रवर्तमान दशाओं में आने वाले अनेक वर्षों तक इस प्रयोजन को प्राप्त करना शक्य नहीं हो सकता। बच्चों की एक बृहत् बहुसंख्या अपनी प्राथमिक शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् लगभग ११ की अवस्था पर पाठशाला छोड़ देगी और जबकि उनमें से कुछ व्यापार-विद्यालयों को जा सकते हैं, उनके अधिकांश को अग्रिम अध्ययन के लिये कोई अवसर प्राप्त न होंगे। फिर भी ११ से १४ तक का अवस्था-काल एक निर्णायक काल होता है जब, यह आवश्यक होता है कि बच्चे एक शैक्षणिक वायुमण्डल में होने चाहिएँ। अतः, हम यह अभिस्ताव करते हैं कि एक

1 Deformity. 2 Housed. 3 Continuation Classes.

अन्तःकालीन उपाय[1] के रूप में अंश-कालिक संतत शिक्षा की कुछ न कुछ प्रणाली प्राप्य बनायी जानी चाहिए। ऐसी शिक्षा इन छात्रों को, जब तक वे १४ की अवस्था प्राप्त न करें, तब तक सामान्य विद्यालय-घण्टों के पश्चात् माध्यमिक[2] तथा उच्च पाठशालाओं में निःशुल्क दी जा सकती है। ऐसी सांतत्य श्रेणियों का संघटन विद्यालय-प्राधिकारियों, अन्य वैयक्तिक व्यक्तियों तथा समाजों द्वारा किया जा सकता है। इन अंशकालिक श्रेणियों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये विशेष पाठचर्याएँ उद्विकसित की जानी चाहिएँ।

५—स्त्री-शिक्षा

(क) स्त्री-शिक्षा की स्थिति

आयोग यह अनुभव करता है कि, हमारे सामाजिक उद्भव की वर्तमान अवस्था पर, स्त्री-शिक्षा से पृथक् पृथक् संव्यवहार करने के लिये विशेष औचित्य-समर्थन[3] नहीं है। पुरुषों के लिये खुला हुआ शिक्षा का प्रत्येक प्ररूप स्त्रियों के लिये भी खुला होना चाहिए।

(ख) स्त्री-शिक्षा का उद्देश्य

एक दृष्टिकोण यह है कि एक स्त्री के लिये केवल समुचित स्थान गृह है और कि अतः, लड़कियों की शिक्षा को लड़कों की शिक्षा से पर्याप्त रूप से भिन्न होना होगा। (वे) यह विचार करते हैं कि गृह-निर्माण के लिये प्रशिक्षण की तुलना में किसी व्यवसाय के लिये प्रशिक्षण को लघु महत्व का समझा जाना चाहिए। अन्य दृष्टिकोण यह है कि शिक्षा को अपने को उस स्थान से गम्भीरतापूर्वक संबद्ध करना चाहिए जो स्त्रियाँ सार्व-

---

1 Interim Measure.   2 Middle.   3 Justification.

जनिक जीवन में अभिधृत करती हैं। वे यह आग्रह करते हैं कि स्त्रियों को ठीक ठीक वही शिक्षा दी जानी चाहिए जैसी पुरुषों को, जिससे वे विद्यालय तथा महाविद्यालयों पर और विभिन्न व्यवसायों तथा सेवाओं में उसके साथ समान पदों पर स्पर्धा कर सकें। तथापि, वहाँ यह सामान्य सम्मेल[1] था कि लड़कियों के लिये—और लड़कों के लिये भी—शिक्षा को गृह तथा समुदाय से निकटतः संबद्ध होने की आवश्यकता होती है। यह शब्द के सङ्कीर्ण बोध में कम पुस्तकीय तथा अधिक व्यावहारिक होनी चाहिए और इसे हाथों के द्वारा मस्तिष्क के प्रशिक्षण की शक्यता का समन्वेषण[2] करना चाहिए। इसे उन्हें उस कार्य के लिये तय्यार करने के लिये बहुत अधिक करना चाहिए जो उन्हें मातापिता के रूप में तथा नागरिकों के रूप में पीछे करना होगा, अर्थात्, पारिवारिक जीवन की अध्यर्थनाएँ[3] उतनी ही महत्वपूर्ण समझी जानी चाहिएँ जितनी सार्वजनिक जीवन की अध्यर्थनाएँ।

(ग) सह-शिक्षा

वर्तमान परिस्थितियों में, देश के भिन्न भागों में लिङ्गों के सामाजिक समागम के बारे में पर्याप्त विभेद हैं। स्वभावतः, परम्परानिष्ठ प्रदेशों में सह-शिक्षा लोकप्रिय अथवा सफल नहीं हो सकती क्योंकि विद्यालय का वायुमण्डल परिवार तथा समुदाय के वायुमण्डल से अत्यन्त भिन्न होगा। अतः, हमें यह आभास होता है कि सह-शिक्षा के बारे में कठोर नीति नहीं हो सकती और कि इस दूरी तक हमारे विद्यालयों में शिक्षा का प्रतिरूप उस समुदाय के सामाजिक प्रतिरूप से बहुत अधिक कालपूर्व[4] नहीं हो सकता जहाँ विद्यालय स्थित होता है। हमारा यह मत

1 Agreement. 2 To explore. 3 Claims. 4 Advance.

है कि जहाँ यह शक्य हो वहाँ लड़कियों के लिये पृथक् विद्यालय स्थापित किये जाने चाहिएँ क्योंकि कि वे उनकी शारीरिक, सामाजिक तथा मानसिक अभियोग्यताओं का विकास करने के लिये मिश्रित विद्यालयों की अपेक्षा अधिक अच्छे अवसर देने के लिये सम्भाव्य होते हैं। परन्तु इसे उन लड़कियों के लिये, जिनके मातापिता इस विषय में आपत्ति नहीं रखते, लड़कों के विद्यालयों में सह-शिक्षात्मक सुविधाओं का लाभ उठाने के लिये खुला होना चाहिए।

(घ) *बालिका-शिक्षा का विस्तार*

समाज के उस प्रतिरूप की उन्नति करने के लिये, जिसका हम भविष्य के लिये विचार करते हैं, लड़कियों की शिक्षा का विस्तार लड़कों की शिक्षा के साथ समगति[1] से होना चाहिए।

(ङ) *मिश्रित विद्यालयों के लिये प्रतिबन्ध*

हम यह अनुभव करते हैं कि ऐसी समस्त संस्थाओं में लड़कियों की विशेष आवश्यकताओं का उपबन्ध करने के लिये निश्चित नियम निर्धारित किये जाने चाहिएँ। प्रथमतः, कर्मचारिवृन्द को पुरुषों तथा स्त्रियों दोनों से मिलकर बना होना चाहिए। द्वितीयतः, गृह-शिल्प, सङ्गीत, औद्रैखिकी[2], चित्रण, इत्यादि के समान विषयों के अध्यापन के लिये उपबन्ध किया जाना चाहिए, जो लड़कियों से विशेषतः अभ्याह्वान[3] करते हैं। तृतीयतः, पृथक् स्वच्छता-सुविधाओं, विश्राम-कोष्ठों[4], क्रीड़ा-क्षेत्रों, इत्यादि, के द्वारा लड़कियों के लिये आवश्यक सुख-सुविधाओं का उपबन्ध किया जाना चाहिए। यह भी वाञ्छनीय है कि ऐसे विद्यालयों के प्रबन्धक-वर्ग पर स्त्री-प्रतिनिधि होने

---

1 *pari pasu.* 2 Drawing. 3 Appeal 4 Retiring Rooms.

चाहिएँ जो यह देखने के योग्य होंगे कि प्रबन्धक-वर्ग द्वारा लड़कियों के लिये आवश्यक सुविधाएँ वस्तुतः उपबन्धित की जाती हैं।

(३) भाषाओं का अध्ययन

१—भाषाओं के समूह

हम यह अनुभव करते हैं कि भाषाओं के पाँच पृथग् समूह हैं जिन पर विचार किया जाना है:—(१) मातृ-भाषा; (२) प्रादेशिक भाषा, जबकि यह मातृ-भाषा नहीं है; (३) अधिक सामान्य रूप से संधान-भाषा[1] कही जाने वाली केन्द्र की शास्त्रीय भाषा; (४) संस्कृत, अरबी, फारसी, लैटिन, इत्यादि, शास्त्रीय भाषाएँ[2] और (५) आङ्गल जो एक अन्ताराष्ट्रिय भाषा के रूप में प्रस्वीकृत होने को आ चुकी है।

२—संधान-भाषा के अनुसार देश के भाग

जहाँ तक संधान-भाषा अथवा केन्द्र की शासकीय भाषा का सम्बन्ध है, हम यह अनुभव करते हैं कि देश के भिन्न भागों में क्षेत्र तीन प्रादेशिक समूहों में विभाजित किये जा सकते हैं (१) वे प्रदेश, जहाँ हिन्दी मातृभाषा है, और अतः प्रादेशिक भाषा है और केन्द्र की भाषा भी; (२) वे प्रदेश, जहाँ यद्यपि यह मातृ-भाषा नहीं है, हिन्दी प्रदेश की जनता की एक बृहत् संख्या द्वारा बोली जाती है; (३) वे प्रदेश, जहाँ हिन्दी न तो मातृ-भाषा है न प्रादेशिक भाषा, न (वह) जनता की विशाल बहु-संख्या द्वारा बोली अथवा समझी जाती है। इन्हें सामान्यतः अ-हिन्दी भाषी क्षेत्र के रूप में कहा जा सकता है।

---

1 Federal Language. 2 Classical Languages.

३–संविधान तथा भाषाएँ

संविधान के प्रावधानों[1] के एक सावधान अध्ययन से यह अनुमित[2] किया जा सकता है कि दो प्रयोजन दृष्टि में रखे गये थे। प्रथमतः, कि अन्ततः हिन्दी संघ शासन द्वारा राज्यों के साथ समस्त शासकीय पत्रव्यवहार में, तथा एक राज्य एवं दूसरे के बीच, अथवा एक राज्य एवं संघ के बीच संचार के लिये प्रयुक्त होगी। द्वितीयतः, हिन्दी विकसित की जानी चाहिए जिससे यह भारत की संग्रथित[3] संस्कृति के समस्त अंशकों[4] के लिये एक अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में सेवा कर सके।

४–शिक्षा का माध्यम : मातृ-भाषा तथा प्रादेशिक भाषा

यह सामान्यतः स्वीकार किया जाता है कि अपना अध्ययन आरम्भ करने वाले बच्चे के लिये एक शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा अत्यन्त उपयुक्त भाषा होती है। यदि प्रादेशिक भाषाओं में वही प्रगति हो चुकी होती जैसा अनेक विदेशीय भाषाओं में हो चुकी है, तो मातृ-भाषा अथवा प्रादेशिक भाषा शैक्षणिक-सोपान के समस्त प्रक्रमों पर शिक्षा का माध्यम हो गई होती। जैसाकि प्रादेशिक भाषा प्रदेश में बहुसंख्या द्वारा प्रयुक्त भाषा होने के लिये सम्भाव्य है, इस भाषा का ज्ञान अर्जित करना वाञ्छनीय होता है। इस उपबन्ध के अधीन कि भाषा अल्प-संख्यक-वर्ग के लिये शिक्षा के केन्द्रीय मन्त्रणा मण्डल द्वारा सुझायी गयी रेखाओं पर विशेष सुविधाएँ प्राप्य बनायी जानी चाहिएँ, सामान्यतः मातृभाषा अथवा प्रादेशिक भाषा को माध्यमिक विद्यालय प्रक्रम भर शिक्षा का माध्यम होना चाहिए।

---

1 Provisions. 2 Inferred. 3 Composite. 4 Elements.

५—हिन्दी का स्थान

हिन्दी के अध्ययन के बारे में, यह अनुभव किया गया है कि इसके केन्द्र की तथा कुछ राज्यों की शासकीय भाषा होने की दृष्टि से, माध्यमिक प्रक्रम पर प्रत्येक छात्र को इस भाषा का एक आधारभूत ज्ञान अर्जित करने के लिये एक अवसर दिया जाना चाहिए और इसे अपनी आवश्यकताओं के अनुसार विकसित करना उस पर छोड़ दिया जाना चाहिए। इस दृष्टिकोण से, यह बल दिया जाता है कि हिन्दी माध्यमिक पाठशाला[1] अथवा ज्येष्ठ आधारभूत[2] प्रक्रम की अवधि में पढ़ायी जानी चाहिए। हम हिन्दी-प्राध्यापक-सम्मेलन卐 द्वारा किये गये अभिस्तावों का पृष्ठाङ्कन[3] करते हैं कि हिन्दी-क्षेत्रों में स्तर क्रमशः उठाया जाना चाहिए, जबकि अ-हिन्दी-क्षेत्रों में स्तर मुख्यतः छात्र की भाषा को समझने तथा इसे प्रति दिन की स्थितियों में प्रयुक्त करने की क्षमता पर आधारित होना चाहिए।

६—आङ्ग्ल का स्थान

माध्यमिक विद्यालयों में आङ्ग्ल के अध्ययन को यथोचित स्थान दिया जाना चाहिए और माध्यमिक पाठशाला प्रक्रम पर एक वैकल्पिक आधार पर इसके अध्ययन के लिये सुविधाएँ प्राप्य बनायी जानी चाहिएँ। ज्येष्ठ आधारभूत पाठशालाओं अथवा माध्यमिक पाठशालाओं से उत्तीर्ण होने वाले उन छात्रों की स्थिति में, जिन्होंने आङ्ग्ल को अध्ययन के एक विषय के रूप में नहीं लिया है, पाठ्यक्रम में आङ्ग्ल की एक प्रारम्भिक पाठचर्या के लिये उपबन्ध किया

卐 यह सम्मेलन २० तथा २१ जनवरी, १९५३ को नई दिल्ली में हुआ था।

1 Middle School. 2 Senior Basic. 3 To endorse.

जा चुका है। उनकी स्थिति में, जो उच्च शिक्षण के लिये जाने की अभिलाषा करते हैं, आङ्गल में उच्च पाठचर्या लेने के लिये उन्हें समर्थ बनाने के लिये माध्यमिक विद्यालयों में विशेष प्रबन्ध किये जाने चाहिएँ। माध्यमिक पाठशाला प्रक्रम की अवधि में, प्रत्येक बच्चे को कम से कम दो भाषाएँ सिखायी जानी चाहिएँ। इस सिद्धान्त के अधीन कि उसी वर्ष में दो भाषाएँ प्रवेशित नहीं की जानी चाहिएँ, कनिष्ठ आधारभूत[1] प्रक्रम के अन्त पर आङ्गल तथा हिन्दी प्रवेशित की जानी चाहिए। यह अनुभव किया जाता है कि जब तक प्रादेशिक भाषा में लिखित पुस्तकें अब एक विदेशीय भाषा में प्राप्य पुस्तकों को प्रतिस्थापित नहीं करतीं, तब तक यह अपरिहार्य है कि छात्रों को उस भाषा में प्राप्य विषयों का अध्ययन करने के लिये आङ्गल का एक अच्छा ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता होगी।

७-शास्त्रीय भाषाओं[2] का स्थान

शास्त्रीय भाषाओं के बारे में, यह अनुभव किया गया है कि इन अध्ययनों को लेने की इच्छा करने वाले छात्रों के लिये या तो उच्च पाठशाला अथवा उत्तर-माध्यमिक विद्यालय प्रक्रम पर ऐसा करने के लिये आवश्यक अवसर प्राप्त करने का उपबन्ध किया जाना चाहिए।

८—भाषा-चुनाव का सिद्धान्त

तथापि, हम यह अनुभव करते हैं कि वर्तमान परिस्थितियों में एक बच्चे के लिये तीन भाषाएँ सीखना शक्य होना चाहिए। अतः, ज्येष्ठ आधारभूत अथवा माध्यमिक पाठशाला

---

1 Junior Basic. 2 Classical Languages.

प्रक्रम पर, जब बच्चे ने मातृ-भाषा को पहले ही सीख लिया है और यह इसके अध्ययन का अनुसरण करना चालू रखेगा, हिन्दी तथा आङ्गल प्रवेशित की जा सकती हैं। एक वह सिद्धान्त, जो हम यह अनुभव करते हैं कि अवलोकन करने के लिये आवश्यक है, यह है कि दो भिन्न भाषाएँ एक ही समय पर प्रवेशित नहीं की जानी चाहिएँ और अतः उनमें से एक प्रारम्भिक प्रक्रम पर प्रवेशित की जानी चाहिए तथा दूसरी एक वर्ष पीछे। निम्न माध्यमिक अथवा ज्येष्ठ आधारभूत प्रक्रम के अन्त पर, दो भाषाओं, अर्थात्, हिन्दी तथा आङ्गल, में से एक अथवा दूसरी के अध्यापन को चालू रखना और यदि वह ऐसी इच्छा करे, तो उच्च पाठशाला अथवा उत्तर-माध्यमिक विद्यालय प्रक्रम पर एक शास्त्रीय भाषा लेना, संबद्ध छात्र पर छोड़ दिया जाना चाहिए। अतः उच्च पाठशाला अथवा उत्तर माध्यमिक प्रक्रम पर उस पाठचर्या की प्रकृति पर निर्भर रहते हुए, जिसका अनुसरण करने के लिये वह प्रस्थापना करता है, भाषा का चुनाव छात्र पर छोड़ा जा सकता है।

६—अर्हताप्राप्त[1] अध्यापकों तथा सुद्धृत[2] रीतियों की आवश्यकता

हम विश्वस्त हैं कि यदि एक भाषा सीखी जाने के लिये है, तो उसका अध्यापन इस प्रकार से हो कि इसे लिखित अथवा बोले हुए रूप में सफलतापूर्वक तथा शुद्धता के साथ प्रयुक्त किया जा सके। उसी प्रकार हम यह अनुभव करते हैं कि, आजकल, यदि शासकीय भाषा, हिन्दी, समुचित रूप से सीखी जानी तथा प्रयुक्त की जानी है, तो सु-अर्हताप्राप्त

---

1 Qualified. 2 Improved.

तथा अनुभवी अध्यापकों की आवश्यकता है। हमने समुचित रूप से अर्हताप्राप्त अध्यापकों के अभाव को, विशेषतः अ-हिन्दी क्षेत्रों में, खेद के साथ लिखित किया है। हम यह अभिस्ताव करते हैं कि अन्य भाषाओं के बारे में भी, चाहे मातृ-भाषा अथवा प्रादेशिक भाषा, भाषा के अध्यापन में अभिगृहीत[1] रीतियों के एक पुनरनुस्थापन[2] के लिये आवश्यकता है। अब मातृ-भाषा अथवा प्रादेशिक भाषा पर सम्यक् रूप में रखे गये बल के साथ, हम यह आशा करते हैं कि (१) भाषाओं के अध्यापकों को ऐसे अध्यापन में अभिगृहीत होने के लिये रीतियों में प्रशिक्षण दिया जाएगा, और (२) कि पाठशाला-बच्चों की शिक्षा के भिन्न प्रक्रमों के उपयुक्त गद्य तथा पद्य में पुस्तकें उत्पन्न करने के लिये सुयोग्य व्यक्तियों को प्रत्येक प्रोत्साहन दिया जाएगा।

१०—विदेशीय भाषाओं से परिचय

व्यापार, वाणिज्य, राजनीति, तथा लोक-कार्यों में उनके प्रयोग के कारण, यह देश के हित के लिये है कि यहाँ ऐसे व्यक्ति होने चाहिएँ जो, यूरोपीय तथा एशियाई, अनेक विदेशीय भाषाओं में से एक अथवा दूसरी से सुपरिचित हों। हम यह अनुभव करते हैं कि अधिकांश स्थितियों में ऐसी भाषाओं का अध्ययन, विश्वविद्यालय अथवा उच्च शिक्षण की दूसरी संस्थाओं द्वारा, उच्च शिक्षा प्रक्रम पर उपयोगी रूप में ग्रहण किया जा सकता है। तथापि, हम यह अभिस्ताव करेंगे कि उत्तर-माध्यमिक विद्यालयों में से कुछेक में कम से कम कुछ

1 Adopted. 2 Reorientation.

छात्रों के लिये, यदि वे ऐसी इच्छा करें तो, इन भाषाओं में से एक अथवा दूसरी लेने के लिये अवसर प्राप्य होने चाहिएँ।

(४) माध्यमिक विद्यालयों में पाठ्यक्रम

१–प्रवर्तमान माध्यमिक विद्यालय-पाठ्यक्रम के दोष

(क) पाठ्यक्रम की एक सङ्कीर्ण अभिधारणा[1]

जैसाकि कुछ (व्यक्ति) संधारण करते हैं, यह कहना ठीक न होगा कि वर्तमान पाठ्यक्रम दृष्टि में कोई यत्नोद्देश[2] नहीं रखता। तथापि, सत्य तो यह है कि यह मुख्यतः महाविद्यालयों के प्रवेश की आवश्यकताओं के शब्दों में संकुचित रूप से विचारित होता है।

(ख) पुस्तकीय ज्ञान पर बल

उस महान् प्रभाव के कारण जिसे महाविद्यालय-पाठ्यक्रम माध्यमिक-विद्यालय पाठ्यक्रम के ऊपर प्रयोग में लाता है उत्तरोक्त अनावश्यक रूप से पुस्तकीय तथा सैद्धान्तिक हो चुका है। विश्वविद्यालय-पाठचर्याएँ, अपनी प्रकृति से, साहित्यिक तथा सैद्धान्तिक होती हैं और मुख्यतः कल्पनाओं एवं सामान्यानुमानों[3] से संव्यवहार करती हैं। उच्च पाठशाला प्रक्रम पर हमें एक निश्चित रूप से भिन्न पहुँच की आवश्यकता होती है। वस्तुतः, सामान्य परिस्थितियों में, उच्च पाठशाला छोड़ने वालों की बहुसंख्या व्यावहारिक जीवन में प्रवेश करती है और करना चाहिए। हमें उसे जीवन की कला में व्यावहारिक शिक्षण देना चाहिए और वास्तविक अनुभव द्वारा उसे यह दिखाना चाहिए

---

1 Conception. 2 Goal. 3 Generalizations.

कि सामुदायिक जीवन किस प्रकार संघटित एवं पोषित होता है। प्रथमतः, विषयों के बाहुल्य को यथा-शक्य कम करना वाञ्छनीय है। यहाँ प्रत्येक विषय के पाठ्यविषय को अत्यन्त अनेक तथ्यों तथा विस्तरों, प्रायः अल्प महत्व के तथा स्मरण-शक्ति पर एक अवाञ्छनीय भार, से संकुलित करने की भी एक असंदिग्ध प्रवृत्ति है। इस सम्बन्ध में मस्तिष्क में यह धारणा करना महत्वपूर्ण है कि बच्चों को उन समस्त तथ्यों को, उनमें से अत्यन्त महत्वपूर्ण को भी, पढ़ाना न तो शक्य है न वाञ्छनीय, जिनकी आवश्यकता के लिये वे पिछले जीवन में सम्भाव्य होते हैं। बच्चे के मस्तिष्क में अभिरुचि तथा जिज्ञासा जागृत करना और उसे ज्ञान अर्जित करने की रीतियाँ एवं प्रविधियाँ सिखाना "आपत्ति काल के लिये[1]" उसकी स्मरणशक्ति को प्रकीर्ण[2] सूचना से भारित करने की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण होता है।

(ग) वैयक्तिक भेदों से अनुकूलन का अभाव

किशोरावस्था काल में, छात्र वैयक्तिक स्वादों, अभिरुचियों तथा विशेष अभियोग्यताओं का विकास करते हैं, परन्तु वर्तमान पाठ्यक्रम संभव ही इन वैयक्तिक भेदों का आलोकन करता है। वह ठीक ठीक अवस्था चाहे जो हो जब ये भेद उपस्थित होते हैं, वे एक अत्यन्त महत्वपूर्ण शैक्षणिक महत्व रखते हैं जिनके साथ शिक्षण-विज्ञों को सङ्गणन करना चाहिए। जो कुछ आवश्यक है वह एक स्थूल रूप से विचारित पाठ्यक्रम है जो भिन्न प्ररूपों की योग्यताओं के विकास के लिये, ऐसे

---

1 Against the rainy day.	2 Miscellaneous.

विकास के उपयुक्त अध्ययनों एवं क्रियाओं के द्वारा अबाध स्थान देगा।

(घ) परीक्षाओं द्वारा अधिरोहण[1]

इसमें अल्प सन्देह ही हो सकता है कि वर्तमान माध्यमिक पाठ्यक्रम परीक्षाओं द्वारा अधिरोहित है। यह प्रति दिन के अनुभव का विषय है जिसके लिये अध्यापक, मातापिता, तथा बच्चे सब अभिसाद्य उठा सकते हैं क्योंकि इसके विकार में सभी ग्रस्त हैं।

(ङ) प्रावैधिक तथा व्यावसायिक अध्ययनों के उपबन्ध का अभाव

यहाँ एक चिरागत परिवाद[2] है कि माध्यमिक विद्यालयों ने प्रावैधिक तथा व्यावसायिक विषयों के लिये उपबन्ध नहीं किया है। संभवतः हम इन समस्त समालोचनाओं का यह कह कर संक्षेप कर सकते हैं कि, माध्यमिक-शिक्षा की भाँति, माध्यमिक-पाठ्यक्रम जीवन के साथ संस्वर[3] से बाहर है और छात्रों को जीवन के लिये तैयार करने में विफल रहता है। अतः, पाठ्यक्रम-पुनर्निर्माण के लिये प्रस्थान-बिन्दु विद्यालय-विषयों तथा उन समृद्ध एवं विभिन्न क्रियाओं के बीच खाड़ी का सेतुबन्धन करने की इच्छा होनी चाहिए जो जीवन के ताने बाने का निर्माण करती हैं।

२—पाठ्यक्रम-निर्माण के आधारभूत सिद्धान्त

(क) अनुभवों की समस्तता का सिद्धान्त

प्रथमतः, इसे स्पष्टतः समझा जाना चाहिए कि सर्वोत्तम आधुनिक शैक्षणिक विचार के अनुसार, इस प्रसङ्ग में पाठ्यक्रम

1 Domination. 2 Complaint. 3 Tune.

का अर्थ केवल विद्यालय में परम्परा से पढ़ाये जाने वाले साहित्यिक विषय नहीं अपितु इसमें उन अनुभवों की समस्तता का समावेश होता है जो एक छात्र उन बहुगुण क्रियाओं के द्वारा प्राप्त करता है जो विद्यालय में श्रेणी-कोष्ठ, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, निर्माण-शाला, क्रीड़ास्थलों में तथा अध्यापकों एवं छात्रों के बीच अनेक औपचारिक संस्पर्शों में होती हैं। इस अर्थ में, विद्यालय का सम्पूर्ण जीवन पाठ्यक्रम बन जाता है जो छात्रों के जीवन को समस्त बिन्दुओं पर स्पर्श कर सकता है, और एक सन्तुलित व्यक्तित्व के उद्विकास में सहायता कर सकता है।

(ख) विभिन्नता एवं प्रत्यास्थता[1] का सिद्धान्त

द्वितीयतः, पाठ्यक्रम में वैयक्तिक भेदों तथा वैयक्तिक आवश्यकताओं एवं अभिरुचियों से अनुकूलन पर छूट देने के लिये पर्याप्त विभिन्नता एवं लचक होनी चाहिए।

(ग) सामुदायिक जीवन से सम्बन्ध का सिद्धान्त

तृतीयतः, पाठ्यक्रम को, बच्चे के लिये इसकी प्रमुख तथा महत्वपूर्ण विशेषताओं का निर्वचन[2] करते हुये और इसकी महत्वपूर्ण क्रियाओं में से कुछ के साथ संस्पर्श में आने के लिये उसे अनुमत करते हुए, सामुदायिक जीवन से जीवनावश्यक रूप में तथा प्राङ्गारतः[3] संबद्ध होना चाहिए। स्पष्टतः, इसमें उत्पादक कार्य को, जो संघटित मानव जीवन का मेरु होता है, एक महत्वपूर्ण स्थान देना उपलक्षित होगा।

(घ) अवकाश के लिये शिक्षण का सिद्धान्त

चतुर्थतः, पाठ्यक्रम को छात्रों को केवल कार्य के लिये ही

---

1 Elasticity.   2 Interpretation.   3 Organically.

नहीं अपितु अवकाश के लिये शिक्षित करने के लिये भी आकल्पित किया जाना चाहिए। हम विद्यालय में क्रियाओं की एक विभिन्नता—सामाजिक, सौन्दर्यात्मक, क्रीड़ा, इत्यादि—के प्रवेशन के लिये स्थिति पर पहले ही तर्क कर चुके हैं।

(ङ) विषयों के अन्तर्सम्बन्ध का सिद्धान्त

पञ्चमतः, इसे एकलित, असमन्वित सर्वथा व्यवच्छिन्न[1] विषयों की एक संख्या में पृथक्करित होकर अपने शैक्षणिक मूल्य को निरर्थक नहीं करना चाहिए। विषय अन्तर्सम्बन्धित होने चाहिएँ, और, प्रत्येक विषय के अधीन विषयवस्तुएँ, जहाँ तक सम्भव हो वहाँ तक, उन "विस्तृत क्षेत्र" एककों[2] के रूप में विचारित होनी चाहिएँ जो जीवन से सूचना की सङ्कीर्ण बातों की अपेक्षा अधिक सहसंबद्ध की जा सकती हैं।

३–माध्यमिक पाठशाला प्रक्रम[3] के लिये पाठ्यक्रम

(क) आवश्यक विचार तथा मानदण्ड

(१) माध्यमिक अथवा ज्येष्ठ आधारभूत[4] प्रक्रम प्राथमिक-(कनिष्ठ[5] आधारभूत) प्रक्रम का एक सान्तत्य[6] होता है। अतः जब तक माध्यमिक पाठशालाएँ अस्तित्व में रहें, तब तक उनकी पाठचर्या ज्येष्ठ आधारभूत पाठचर्या से सारतः भिन्न नहीं होनी चाहिए। अन्ततः ये पाठशालाएँ सरलता से ज्येष्ठ आधारभूत पाठशालाओं में परिवर्तित की जा सकती हैं।

(२) पुनः, जैसाकि माध्यमिक अथवा ज्येष्ठ आधारभूत प्रक्रम प्राथमिक प्रक्रम का एक सान्तत्य होता है, इसके लिये पाठ्यक्रम को बनाने और कार्य की योजना करने में यह देखना आवश्यक

1 Water-tight. 2 "Broad-fields" Units. 3 Middle School Stage. 4 Senior Basic. 5 Junior. 6 Continuation.

है कि या तो पाठ्यक्रम की अथवा रीतियों की विषयवस्तुओं में पूर्व प्रक्रम से एक प्रचण्ड प्रस्थान[1] न हो।

(३) माध्यमिक प्रक्रम पर पाठ्यक्रम का विशेष कार्य छात्र को मानवीय ज्ञान तथा क्रिया के महत्वपूर्ण विभागों से एक सामान्य रूप में परिचित कराना होता है। हम "एक सामान्य रूप में" शब्दबन्ध[2] को रेखाङ्कित करना चाहेंगे। माध्यमिक पाठशाला विशेषीकरण के लिये स्थान नहीं होती है, अपितु वह प्रक्रम, जब ज्ञान के समस्त विस्तृत तथा महत्वपूर्ण क्षेत्रों का एक सामान्य परिचय दिया जा सकता है और दिया जाना चाहिए। अतः प्रयोजन द्विगुण होता है; बच्चा मानवीय सभ्यता के कोषागारों के दाय-प्राप्तकर्ता[3] के रूप में, प्रथमतः, यह जानने का कि इसके मुख्य अङ्ग क्या हैं, और द्वितीयतः, उस ज्ञान को अर्जित करने के एक परिणाम के रूप में, एक पिछले प्रक्रम पर, उस विशेष क्षेत्र को चुनने का अधिकार रखता है जिसमें वह, उसके अपने रूप में, मानवीय संस्कृति की इस निधि को अपने अंश का अंशदान कर सकता है।

(४) पाठ्यक्रम सूचना के अति अनेक तथ्यों तथा पदों से अतिभारित नहीं होना चाहिए। बच्चे को भिन्न क्षेत्रों में मानवीय प्राप्ति का एक अधिमूल्यन देना, उसके दृष्टिकोण को विस्तृत करना तथा उसकी सहानुभूतियों को चौड़ा करना उद्देश्य होना चाहिए।

(ख) माध्यमिक पाठशाला-पाठ्यक्रम

पूर्वत्र विचारों को दृष्टि में रखते हुए हम माध्यमिक

1 Departure.　2 Phrase.　3 Inheritor.

पाठशाला पाठ्यक्रम की निम्नलिखित स्थूल रूपरेखा सुझायेंगे:–

(१) भाषाएँ (२) समाज विज्ञान (३) सामान्य विज्ञान (४) गणित (५) कला तथा सङ्गीत (६) शिल्प और (७) शारीरिक शिक्षण।

भाषाओं के अधीन, आत्माभिव्यक्ति का स्वाभाविक माध्यम मातृ-भाषा अथवा प्रादेशिक भाषा आयेगी। अगली गणराज्य की शासकीय भाषा आयेगी, अर्थात्, हिन्दी, जिसका ज्ञान राष्ट्रिय जीवन तथा राष्ट्रिय एकता के अधिक व्यापक हितों में आवश्यक है। जहाँ हिन्दी मातृ-भाषा है, वहाँ छात्र एक अन्य भाषा का अध्ययन कर सकता है। वर्तमान के लिये माध्यमिक पाठशाला-पाठ्यक्रय में आङ्गल के लिये एक स्थान प्राप्त करना आवश्यक है। प्रत्येक पाठशाला को शासकीय भाषा, हिन्दी तथा अन्ताराष्ट्रिय भाषा, आङ्गल के अध्यापन के लिये उपबन्ध करना चाहिए। तथापि, यह उपबन्धित किया जा सकता है कि यदि छात्र अथवा संरक्षक इसका अध्ययन किये जाने की अभिलाषा नहीं करते, तो आङ्गल अध्ययन के एक अनिवार्य विषय के रूप में नहीं समझी जानी होगी। उन छात्रों की स्थिति में, जो आङ्गल का अध्ययन करने की अभिलाषा नहीं करते, एक अन्य भाषा के अध्ययन के लिये एक वैकल्पिक प्रबन्ध किया जाना चाहिए। उन पाठशालाओं में जो एक वैकल्पिक आधार पर आङ्गल के अध्ययन के लिये उपबन्ध करती हैं, उनके लिये, जो आङ्गल में वैकल्पिक पाठचर्या नहीं लेते, मातृ-भाषा में एक उच्च पाठचर्या के लिये वैकल्पिक प्रबन्ध भी होने चाहिएँ। बच्चे को दो भाषाओं के व्यावहारिक प्रयोग से परिचित कराना उद्देश्य होगा जबकि साहित्यिक पक्ष निश्चित रूप से पृष्ठभूमि में रखा जाएगा।

शिल्पों के बारे में, हम स्थानीय शिल्पों के महत्व तथा स्थानीय सामग्री के प्रयोग पर बल देना चाहेंगे।

४—उच्च तथा उत्तर माध्यमिक विद्यालय-प्रक्रम पर पाठ्यक्रम

(क) आवश्यक विचार तथा मानदण्ड

(१) माध्यमिक पाठशाला के अन्त पर छात्रों की विशेष योग्यताएँ तथा अभिरुचियाँ सामान्यतः निश्चित रूप ले रही होंगी; कम से कम छात्रों के अधिकांश के साथ ऐसा होगा। अतः उच्च पाठशाला प्रक्रम पर (उच्च पाठशालाओं तथा उत्तर-माध्यमिक पाठशालाओं दोनों के लिये), पाठ्यक्रम यथा-शक्य इन योग्यताओं तथा अभिरुचियों के आधार पर बनाया जाना चाहिए। अतः हमें उच्च पाठशालाओं तथा उत्तर माध्यमिक विद्यालयों में वरण के लिये एक पर्याप्त विस्तृत छूट के साथ विभिन्न पाठचर्याओं का उपबन्ध करना होता है। इसका प्राथमिक उद्देश्य छात्रों की विशेष अभिरुचियों के विकास के लिये उपयुक्त क्षेत्र का उपबन्ध करना है।

(२) इन किशोरों की बृहत् बहुसंख्या के लिये यह वह समस्त शिक्षा होगी जिसे वह प्राप्त करेंगे। अतः उनमें से अनेक को एक निर्वाह कमाने के लिये सोचना होता है और शैक्षणिक कार्यक्रम को उन्हें इस दिशा में कुछ प्रशिक्षण देना चाहिए—विशेष व्यवसायों के शब्दों में उतना नहीं जितना पीछे निश्चित व्यावसायिक कार्य के लिये तय्यारी में उनकी व्यावहारिक अभियोग्यताओं को प्रशिक्षित करने में। शैक्षणिक कार्यक्रम सङ्कीर्ण रूप से व्यावसायिक नहीं होगा, अपितु एक निश्चित

व्यावसायिक झुकाव रखेगा। उसे एक प्रावैधिक प्रकार का कुछ प्रशिक्षण देने के अतिरिक्त, पाठचर्या को उसे सामान्य शिक्षण की एक युक्तियुक्त राशि भी देनी चाहिए जिससे वह समस्त कलाओं में महानतम्—जीवन की कला—में प्रशिक्षित एक मानव तथा एक नागरिक के रूप में अपने कर्तव्यों का पालन करने के योग्य हो सके।

(३) उनमें छात्र माध्यमिक पाठशालाओं तथा उत्तर-माध्यमिक विद्यालयों से आयेंगे। अतः, हम यह सुझाते हैं कि प्रथम उच्च पाठशाला-वर्ष में पाठचर्याओं को, कुछ दूरी तक, पूर्वगत प्रक्रम की पाठचर्याओं के सामान्य प्रतिरूप का अनुसरण करना चाहिए और कि भेद द्वितीय वर्ष में आना चाहिए।

(४) उच्च पाठशालाओं तथा उत्तर-माध्यमिक विद्यालयों में पाठचर्याएँ समान प्रतिरूप का अनुसरण करेंगी। उनमें सब के लिये सामान्य कुछ आन्तरक विषयों[1] तथा कुछ वैकल्पिक विषयों का समावेश होगा।

(ख) उच्च पाठशाला तथा उत्तर-माध्यमिक प्रक्रम पर पाठ्यक्रम की रूपरेखा

I—आन्तरक विषय

क—(१) मातृ-भाषा अथवा प्रादेशिक भाषा अथवा मातृ-भाषा तथा एक शास्त्रीय भाषा की एक संग्रथित[2] पाठचर्या।

(२) निम्नलिखित में से चुनी जाने के लिये एक अन्य भाषा :

(i) हिन्दी (उनके लिये जिनकी मातृ-भाषा हिन्दी नहीं है)।

---

1 Core Subjects. 2 Composite.

(ii) प्रारम्भिक आङ्गल (उनके लिये जिन्होंने माध्यमिक प्रक्रम पर इसका अध्ययन नहीं किया है।)

(iii) उच्च आङ्गल (उनके लिये जो पूर्व प्रक्रम में आङ्गल का अध्ययन कर चुके थे)।

(vi) एक आधुनिक भारतीय भाषा (हिन्दी से अन्य)।

(v) एक आधुनिक विदेशीय भाषा (आङ्गल से अन्य)।

(vi) एक शास्त्रीय भाषा।

ख—(१) समाज विज्ञान—सामान्य पाठचर्या (केवल प्रथम दो वर्षों के लिये)।

(२) गणित सहित सामान्य विज्ञान—सामान्य पाठचर्या (केवल प्रथम दो वर्षों के लिये)।

ग—निम्नलिखित सूची में से चुना जाने के लिये एक शिल्प (जो स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार जोड़ा जा सकता है):

(१) कताई तथा बुनाई, (२) काष्ठ-कर्म, (३) धातु-कर्म, (४) उद्यान कर्म, (५) सूचिक-कर्म[1], (६) मुद्रण-कर्म, (७) कर्मशाला-प्रयोग, (८) सीवन[2], सूचीशिल्प तथा निषीवण[3], (९) प्रतिरूपण[4]।

II—वैकल्पिक विषय

घ—निम्नलिखित (सात) समूहों में से तीन विषय

समूह १ (भाषा-शास्त्र)—

(१) एक शास्त्रीय भाषा अथवा "क (२)" से पहले हो न

---

1 Tailoring. 2 Sewing. 3 Embroidery. 4 Modelling.

ली गई एक शास्त्रीय भाषा, (२) इतिहास, (३) अर्थशास्त्र तथा नागरिक-शास्त्र के अंशक[1], (४) मनोविज्ञान तथा तर्क-शास्त्र के अंशक, (५) गणित, (६) सङ्गीत, (७) गृह-विज्ञान।

समूह २ (विज्ञान)—

(१) भौतिकी, (२) रसायन, (३) जैविकी, (४) भूगोल, (५) गणित, (६) दैहिकी[2] तथा स्वास्थिकी[3] के अंशक (जैविकी के साथ न लिये जाने के लिये)।

समूह ३ (प्रावैधिक)—

(१) व्यावहारिक गणित तथा रैखिकीय औद्रैखिकी[4], (२) व्यावहारिक विज्ञान, (३) यान्त्रिक आभियान्त्रिकी[5] के अंशक, (४) वैद्युत आभियान्त्रिकी के अंशक।

समूह ४ (वाणिज्यिक)

(१) वाणिज्य-प्रयोग, (२) पुस्त-पालन[6], (३) वाणिज्य-भूगोल अथवा अर्थशास्त्र तथा नागरिक-शास्त्र के अंशक, (४) आशुलिपि[7] तथा मुद्रलेखन[8]।

समूह ५ (कृषि)

(१) सामान्य कृषि, (२) पशु-पालन, (३) औद्यानिकी[9] तथा उद्यान-कर्म, (४) कृषि-रसायन तथा औद्भिदी[10]।

समूह ६ (ललित कला)—

(१) कला का इतिहास, (२) औद्रैखिकी[11] तथा रूपाङ्कन[12], (३) चित्रण, (४) प्रतिरूपण, (५) सङ्गीत, (६) नृत्य।

---

1 Elements. 2 Physiology. 3 Hygiene.
4 Geometrical Drawing. 5 Mechanical Engineering.
6 Book-Keeping. 7 Shorthand. 8 Typewriting.
9 Horticulture. 10 Botany. 11 Drawing. 12 Designing.

समूह ७ (गृह-विज्ञान)—

(१) गृह-अर्थशास्त्र, (२) आहारपोषण तथा पाचन, (३) मातृकला तथा शिशु-अवेक्षा[1], (४) गृह्य प्रबन्ध तथा गृह-उपचारण।

ङ—पूर्वत्र के अतिरिक्त एक छात्र अपनी इच्छा से, चाहे उसने अपने अन्य विकल्प उस विशेष समूह से चुने हों अथवा नहीं, पूर्वत्र समूहों के किसी में से एक समधिक[2] विषय ले सकता है।

५—माध्यमिक विद्यालयों के लिये पाठ्य-पुस्तकें

(क) पाठ्य-पुस्तकों की वर्तमान स्थिति

उस साक्ष्य के अधिकांश भाग ने, जो प्रस्तुत किया गया था, विशेषतः पाठशालाओं तथा महाविद्यालयों के अध्यापकों द्वारा, सूचित किया कि आजकल छात्रों के लिये विहित[3] पाठ्य-पुस्तकों के स्तर में एक बड़ा अवह्रास है। हमारी सूचना को ऐसे उदाहरण लाये गये थे जहाँ एक विशेष श्रेणी के लिये विहित पाठ्य-पुस्तकें या तो अत्यधिक कठिन थीं अथवा अत्यधिक सुगम अथवा वे उस भाषा में अत्यन्त सदोष थीं जिसमें वे लिखी गई थीं और उस रीति में जिसमें विषय उपस्थित किया गया था। अतः पाठशालाओं के लिये समुचित पाठ्य पुस्तकें उत्पन्न करने का प्रश्न एक ऐसा प्रश्न है जिसे राज्य तथा केन्द्रीय शासनों दोनों का सत्यंकार ध्यान प्राप्त करना चाहिए। आजकल भिन्न राज्यों में पाठ्य-पुस्तक-समितियाँ होती हैं, और इन समितियों से उनको प्रकाशकों द्वारा उपस्थापित[4] पुस्तकों की समीक्षा करने तथा विभिन्न विषयों में उन पाठ्य-पुस्तकों का

1 Child Care. 2 Additional. 3 Prescribed. 4 Submitted.

अभिस्ताव करने की प्रत्याशा की जाती है जिनका छात्रों द्वारा भिन्न स्तरों में अध्ययन किया जा सकता है।

(ख) पाठ्य-पुस्तकों का उत्पादन : उत्पादन के स्तर

हम पाठशाला-पुस्तकों के उत्पादन के वर्तमान स्तर से अत्यन्त असन्तुष्ट हैं और यह आवश्यक समझते हैं कि इसे मूलतः सुधारा जाना चाहिए। उपस्थापित तथा विहित पुस्तकों में से अधिकांश प्रत्येक प्रकार से हीन प्रादर्श[1] होती हैं--सामान्यतः पत्र[2] निकृष्ट होता है, मुद्रण असन्तोषजनक होता है, चित्र हीन होते हैं तथा अनेक मुद्रण-अशुद्धियाँ होती हैं।

(ग) पाठ्य-पुस्तकों का प्रकाशन

अब तक, यह विषय सर्वथा उन वाणिज्य-प्रकाशकों पर छोड़ा जा चुका है जो कोई पर्याप्त सुधार लाने में विफल हुए हैं। हमारे मत में, पाठ्य-पुस्तकों में से कुछ प्रत्यक्षतः पाठ्य-पुस्तक-समिति के संरक्षण में प्रकाशित की जानी चाहिएँ। कुछ राज्यों में प्रत्येक श्रेणी के लिये प्रत्येक विषय में केवल एक पाठ्य-पुस्तक विहित करने की प्रथा है। हमारा मत यह है कि कुछ विहित पाठ्य-पुस्तकों पर शिक्षा की परिदृढ़ पराधीनता में आपरिवर्तन करना वाञ्छनीय है, और, अतः, हम यह अभिस्ताव करते हैं कि प्रत्येक विषय के लिये पाठ्य-पुस्तकें विहित नहीं की जानी चाहिएँ। भाषाओं की स्थिति में, समुचित क्रमबन्ध[3] सुनिश्चित करने के लिये प्रत्येक श्रेणी के लिये निश्चित पाठ्य-पुस्तकें विहित करना वाञ्छनीय प्रतीत होता है। जहाँ तक अन्य विषयों से सम्बन्ध है, पाठ्य-पुस्तक-समिति को प्रत्येक विषय में उपयुक्त पुस्तकों की एक संख्या का अनुमोदन

---

1 Specimens. 2 Paper. 3 Gradation.

करना चाहिए और वरण[1] संबद्ध संस्थाओं पर छोड़ देना चाहिए। ऐसी कोई पुस्तक अनुमोदित नहीं की जानी चाहिए जो समुदाय के किसी भाग की धार्मिक भावनाओं पर आघात करती हो, अथवा किसी युक्तियुक्त सामाजिक प्रथा और रूढ़ि को अवमान[2] में लाती हो। उन्हें जनता के भिन्न भागों में कटुता अथवा विसंवाद[3] की कोई भावना उत्पन्न नहीं करनी चाहिए। न वे, इसके अतिरिक्त कि जहाँ तक जीवन के लोकतन्त्रात्मक मार्ग तथा शासन के लोकतन्त्रात्मक रूप के वे सुस्थित सिद्धान्त छात्रों को हृदयङ्गत कराये जाते हैं, जिन्हें देश ने स्वीकार किया है, किसी विशेष राजनैतिक विचार-पद्धति के प्रचार अथवा विशेष राजनैतिक सिद्धान्तों से तरुण मस्तिष्कों को विचार-प्रतिपादित करने का यत्न करने के लिये प्रयुक्त की जानी चाहिएँ। पाठ्य-पुस्तकों को न केवल किसी उस विषय को छोड़ना चाहिए जो इन अवाञ्छनीय प्रतिक्रियाओं को रख सकता है, अपितु उन्हें सामाजिक, साम्प्रदायिक तथा अन्ताराष्ट्रिय सामञ्जस्य को बढ़ाने के लिये एक सकारात्मक यत्न करना चाहिए जिससे युवक अपने देश के अच्छे नागरिक तथा विश्व के अच्छे नागरिक होने के लिये प्रशिक्षित किये जा सकें।

(घ) चित्र[4]

जहाँ तक चित्रों का सम्बन्ध है, उनका वर्तमान स्तर तथा गुण लगभग एक कलङ्क होता है और यह आवश्यक है कि केन्द्रीय तथा राज्य शासनों दोनों को उनके सुधार में एक प्रत्यक्ष रुचि लेनी चाहिए। एतदर्थ, हम दो अभिस्ताव करना चाहेंगे। (१) या तो केन्द्रीय शासन को एक नवीन संस्था

---

1 Choice.   2 Contempt.   3 Discord.   4 Illustrations.

स्थापित करनी चाहिए अथवा एक विशेष पाठचर्या का विकास करने के लिये—होनहार कलाकारों को पुस्तक-चित्रों की प्रविधियों में प्रशिक्षित करने के लिये – एक प्रवर्तमान कला-विद्यालय की सहायता करनी चाहिए। (२) द्वितीयतः, हम यह अभिस्ताव करते हैं कि केन्द्रीय शासन को, और यदि सम्भव हो तो राज्य-शासनों को भी, अच्छे चित्रों के ऐसे चित्रेष्टकाओं[1] का एक पुस्तकालय रखना चाहिए जो केवल पाठ्य-पुस्तक-समितियों को ही नहीं अपितु प्रकाशकों को भी भेजे जा सकें। हम यह अभिस्ताव करते हैं कि पाठ्य-पुस्तक-समितियों को विभिन्न श्रेणियों के लिये पत्र, मुद्र[2], चित्रों तथा पुस्तकों के आकार के लिये निश्चित तथा स्पष्ट मापदण्ड निर्धारित करने चाहिएँ और उन्हें हिचकिचाहट-रहित रूप में उन (पुस्तकों) को अस्वीकृत कर देना चाहिए जो निर्दिष्ट माप-दण्डों के अनुसार न हों।

(ङ) उच्चशक्ति-समिति[3]

(१) समिति का संघटन—एक ऐसी समिति को एक स्वतन्त्र निकाय[4] के रूप में कार्य करना चाहिए। यह ७ सदस्यों से मिल कर बनी होनी चाहिए जो अपनी उच्च स्थिति, ज्ञान तथा अनुभव के विशेष निर्देश से चुने जाएँगे। वह समिति, जिसका हम विचार करते हैं, (१) राज्य की न्यायपालिका के एक उच्चपदधारी, अधिमानतः उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश; (२) संबद्ध प्रदेश के लोक-सेवा-आयोग के एक सदस्य; (३) संबद्ध प्रदेश के एक उप-कुलपति; (४) राज्य के एक मुख्याध्यापक अथवा मुख्याध्यापिका; (५) सदस्यों द्वारा

1 Blocks. 2 Type. 3 High Power Committee. 4 Body.

सहवृत[1] होने के लिये दो प्रतिष्ठित शिक्षा-विज्ञों; तथा (६) शिक्षा-सञ्चालक की बनी होगी। शिक्षा-सञ्चालक को समिति का सचिव होना चाहिए और समिति अपना सभापति निर्वाचित कर सकती है। समिति की सदस्यता पाँच वर्ष की एक अवधि के लिये होनी चाहिए। समिति इसका अपना कार्यालय रखेगी...।

(२) समिति के कार्य—(१) माध्यमिक विद्यालय शिक्षा-पाठ्यक्रम में अन्तर्निहित विषयों में से प्रत्येक के लिये विशेषज्ञ समीक्षकों की एक तालिका[2] तय्यार करना, (२) अपने को निर्दिष्ट पुस्तकों की उपयुक्तता पर विस्तृत प्रतिवेदन के लिये दो अथवा तीन सदस्यों की बनी विशेषज्ञ समितियाँ समय-समय पर नियुक्त करना। उन्हें एक उपयुक्त मानवेतन[3] दिया जाना चाहिए, (३) पाठ्य-पुस्तकें और यदि आवश्यक हो तो अध्ययन के लिये अन्य पुस्तकें लिखने के लिये विशेषज्ञों को निमन्त्रित करना, (४) जहाँ सम्भव हो वहाँ, एक प्रादेशिक आधार पर, संबद्ध भाषा में उपयुक्त पुस्तकें चुनने के लिये अन्य राज्यों में तत्सम समितियों से सहयोग करना, (५) पाठशालाओं के लिये अपेक्षित पाठ्य-पुस्तकों तथा अन्य पुस्तकों के प्रकाशन के लिये प्रबन्ध करना, (६) प्रकाशनों के विक्रय से प्राप्त राशि से एक निधि[4] का संधारण करना, (७) उन लेखकों को उपयुक्त मानवेतन अथवा उन प्रकाशकों को अधिशुल्क[5] प्रदान करना जिनकी पुस्तकें पाठशालाओं के लिये अध्ययन की पुस्तकों के रूप में अनुमोदित की जाती हैं, (८) ऐसे प्रयोजनों के लिये निधि के शेष का उपयोग करना जैसे

---

1 Co-opted.　2 Panel.　3 Honorarium.　4 Fund.
5 Royalties.

(i) निर्धन तथा योग्य अभ्यर्थियों को छात्रवृत्तियों का प्रदाय, (ii) ऐसे छात्रों को आवश्यक पुस्तकें देना, (iii) पाठशाला बच्चों के लिये दूध, मध्यान्ह-भोजन, तथा सायं-अल्पाहार के प्रदाय की लागत की ओर अंशदान करना, और (iv) सामान्यतः ऐसे अन्य प्रयोजनों के लिये जैसे माध्यमिक शिक्षा के सुधार में सहायक हों। समिति को, प्रत्येक वर्ष के अन्त पर, अपने कार्य पर एक प्रतिवेदन शासन के समक्ष रखना चाहिए।

(च) *प्रादेशिक भाषाओं में निर्देश-पुस्तकें*[1]

हम यह अनुभव करते हैं कि जब तक ऐसे प्रकाशनों की एक संख्या तथा प्रादेशिक भाषाओं एवं संघ की शासकीय भाषा में पुस्तकें प्रकाशित करने के लिये सक्रिय यत्न नहीं किये जाते, तब तक छात्रों का सर्वतोमुखी विकास गम्भीर रूप से बाधित होगा। अध्यापकों को भी भाषाओं में अपने लिये अधिक पुस्तकें प्राप्य होनी चाहिएँ जिससे वे लाभपूर्वक उनको निर्दिष्ट कर सकें और अपने ज्ञान को अद्यावधिक[2] रख सकें।

(छ) *पाठ्य-पुस्तकों का परिवर्तन*

हम ऐसे शीघ्र परिवर्तनों के लिये औचित्य-समर्थन नहीं पाते। पाठ्य-पुस्तकों तथा अध्ययन के लिये विहित पुस्तकों में बारंबार परिवर्तन निरुत्साहित किये जाने चाहिएँ।

(५) *अध्यापन की प्रावैगिक*[3] *रीतियाँ*

१—अध्यापन की सम्यक् रीतियों का महत्व

परन्तु अनुभव का प्रत्येक अध्यापक तथा शिक्षा-विज्ञ जानता है कि जब तक अध्यापन की सम्यक् रीतियों तथा

1 Books of Reference. 2 Up-to-date. 3 Dynamic.

अध्यापकों के सम्यक् प्रकार द्वारा जीवन में स्पन्दित न हो, तब तक सर्वोत्तम पाठ्यक्रम तथा अत्यन्त परिपूर्ण पाठ्यविषय भी मृत रहता है। अच्छी अथवा बुरी, कोई भी रीति अध्यापक तथा उसके छात्रों को सतत पारस्परिक मिथः-क्रिया[1] के साथ एक प्राङ्गारिक[2] सम्बन्ध में जोड़ती है; यह केवल छात्रों के मस्तिष्क पर ही नहीं, अपितु उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व, उनके कार्य तथा निर्णय के स्तरों उनकी बौद्धिक तथा भावनामय सज्जा, उनके दृष्टिकोणों तथा मूल्यों पर भी प्रतिक्रिया करती है। अच्छी रीतियाँ, जो मनोवैज्ञानिक रूप से तथा सामाजिक रूप से सुस्थित होती हैं, उनके जीवन के सम्पूर्ण गुण को उठा सकती हैं; बुरी रीतियाँ इसे अवनत कर सकती हैं।

२—सम्यक् रीतियों के उद्देश्य

(क) कार्य-प्रेम का अन्तर्निवेश[3]

वह उच्चतम मूल्य, जिसे अन्तर्निविष्ट करने के लिये समस्त रीतियों को यत्न करना चाहिए, कार्य का प्रेम तथा इसे दक्षता की उस उच्चतम मात्रा के साथ करने की इच्छा है जिसके योग्य एक व्यक्ति होता है।

(ख) सीखने को शुद्धता एवं वास्तवता देना

अतः, हम सबल रूप से यह अनुभव करते हैं कि केवल ऐसी रीतियाँ अभिगृहीत की जानी चाहिएँ जैसी सीखने को शुद्धता एवं वास्तवता देंगी तथा जीवन एवं सीखने के बीच और पाठशाला एवं समुदाय के बीच अवरोधकों को तोड़ने के लिये सहायता करेंगी।

---

1 Interaction.　2 Organic.　3 Inculcation.

(ग) स्पष्ट विचार की क्षमता का विकास

बौद्धिक पक्ष पर, अध्यापन-रीतियों का अत्यन्त महत्वपूर्ण उद्देश्य स्पष्ट विचार के लिये उस क्षमता का विकास करना होना चाहिए जो प्रत्येक वस्तुतः शिक्षित व्यक्ति को प्रभेदित[1] करती है और "बहुशक्यताओं[2]" के उस आधुनिक विश्व में वर्धी रूप से महत्वपूर्ण हो चुकी है, जहाँ प्रत्येक मनुष्य को निश्चय करना तथा प्रतिकूलता[3] अथवा आवेश के बिना विषयों एवं समस्याओं का विवेचन करना सीखना चाहिए।

(घ) छात्रों की अभिरुचि के परिसर[4] का विस्तार

अन्ततः, यह वाञ्छनीय है कि अध्यापन की रीतियों को छात्रों की अभिरुचि के परिसर का विस्तार करना चाहिए। एक संस्कृत व्यक्ति विभिन्न अभिरुचियों का एक व्यक्ति होता है और यदि स्वस्थ अभिरुचियाँ बढ़ायी जाती हैं, तो वे व्यक्तित्व को समृद्ध बनायेंगी।

३—क्रिया-रीतियों[5] का महत्व

(क) स्वतः-क्रिया[6] का महत्व

अतः अध्यापन का आधार विषय-वस्तु का एककों[7] अथवा अभिकार्यों[8] में संघटन होना चाहिए जो छात्रों के भाग पर स्वतः-क्रिया के लिये अवसर उत्पन्न करेंगे। इन्हें मुख्यतः उन औपचारिक पाठों का प्रतिस्थापन करना चाहिए जिनमें प्रायः अभिप्रेरणा[9] का अभाव रहता है और, अतः, वास्तविक अभिरुचि जागृत करने में विफल रहते हैं। अतः अध्यापक

---

1 To distingnish. 2 "Plural Possibilities". 3 Prejudice.
4 Range. 5 Activity Methods. 6 Self-Activity.
7 Units. 8 Projects. 6 Motivation.

का कार्य जीवन तथा ज्ञान के बीच शृंखला पुनर्स्थापित करना, अपने छात्रों के साथ अध्यापन के उद्देश्यों एवं प्रयोजनों में अंश लेना और कार्य के कार्यक्रम को एक ऐसे उपाय से अधियोजित करना होना चाहिए कि छात्र भाषण, लेखन, सामूहिक वाचन, स्वतन्त्र अन्वेषण, सर्जनात्मक क्रियाओं, तथा अन्य अभिकार्यों में, जो हस्त एवं मस्तिष्क को फलपूर्ण सहयोग में लाती हैं, आत्माभिव्यक्ति के लिये विभिन्न तथा विपुल अवसर रखेंगे।

(ख) दक्षता एवं परिपूर्णता-पूर्वक ज्ञानार्जन का सिद्धान्त

एक और सिद्धान्त होता है जिसे अध्यापक द्वारा अपने अध्यापन की रीतियों के अधियोजन में मस्तिष्क में धारित किया जा सकता है। जो आवश्यक है वह श्रेणी में दिये अथवा सीखे हुए ज्ञान की राशि नहीं है, अपितु वह दक्षता तथा परिपूर्णता जिसके साथ इसे छात्रों द्वारा अर्जित किया जाता है। अध्यापक को वस्तुओं पर संकेन्द्रित करना चाहिए—अभिरुचि का स्पन्दन और सीखने तथा अध्ययन की दक्ष प्रविधियों[1] में प्रशिक्षण। अतः बल ज्ञान की प्रमात्रा[2] से इसे अर्जित करने की सम्यक् रीतियों तक स्थानपरिवर्तन करता है। इस प्रयोजन के लिये, यह आवश्यक है कि प्रत्येक छात्र को अध्ययन की कला में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। परन्तु हम यह अनुभव करते हैं कि, पाठ्यक्रम के प्रत्येक विषय के निर्देश में, अध्ययन को समुचित रीतियों के अध्यापन को पाठशाला-कार्यक्रम के एक महत्वपूर्ण भाग का निर्माण करना चाहिए। इस कार्यक्रम का एक आवश्यक भाग निर्देश-सामग्रियों के प्रयोग में एक प्रशिक्षण होना चाहिए.......।

---

1 Techniques.　2 Quantum.

(ग) रीतियों के बुद्धि के भिन्न स्तरों के उपयुक्त होने का सिद्धान्त

उन्हीं रीतियों को मन्द, माध्य तथा दीप्त बच्चों पर यन्त्रवत् लागू करने की वर्तमान प्रथा पाठशालाओं में दिये जाने वाले शिक्षण की अप्रभाविता[1] के अधिकांश भाग के लिये उत्तरदायी है। परन्तु हम यह अभिस्ताव करते हैं कि पाठ्यक्रम को न्यूनाधिक योग्यता के छात्रों से समायोजित[2] करने के इस विचार को समन्वेषित[3] किया जाना चाहिए और, समान रूप से महत्वपूर्ण यह है कि, अध्यापन की रीतियाँ भी समरूपतः समायोजित की जानी चाहिएँ।

(घ) वैयक्तिक तथा समूह कार्य के सन्तुलन का सिद्धान्त

तथापि, एक बुद्धिमान् अध्यापक को वैयक्तिक कार्य की अभ्यर्थनाओं[4] का सहकारी[5] अथवा समूह कार्य के साथ सन्तुलन करना चाहिए। अतः, हम यह अभिस्ताव करते हैं कि अध्यापक इस प्रकार प्रशिक्षित किये जाने चाहिएँ कि वे पाठ्यक्रम के कम से कम एक भाग को उन अभिकार्यों[6] तथा क्रिया-एककों के रूप में मनसेक्षणित[7] तथा संघटित करने के योग्य हों, जिन्हें छात्रों के समूह ले सकें और समाप्ति तक ले जा सकें। वस्तुतः, प्रत्येक समुदाय के जीवन में ऐसे अनेक संसाधन होते हैं जो शैक्षणिक प्रयोजनों के लिये प्रयुक्त किये जा सकते हैं और किये जाने चाहिएँ।

४–पाठशालाओं में पुस्तकालय का स्थान

(क) पुस्तकालय का महत्व

वस्तुतः, इसके (पुस्तकालय) बिना, इस अध्याय में तथा

1 Ineffectiveness. 2 Adjusted. 3 Explored. 4 Claims.
5 Cooperative. 6 Projects. 7 Visualised.

अन्यत्र किये गये अभिस्तावों तथा प्रस्तावों में से अनेक संभवतः कार्यान्वित नहीं किये जा सकते। वैयक्तिक कार्य, समूह-अधिकार्यों का अनुसरण, अनेक विद्योचित व्यासङ्ग[1] तथा सह-पाठ्य-क्रियाएँ एक अच्छे, दक्षतापूर्वक कार्य करते हुए पुस्तकालय के अस्तित्व को उपधारण करती हैं। पुस्तकालय प्रगतिशील रीतियों को प्रयोग में रखने के लिये एक आवश्यक साधन के रूप में भली प्रकार समझा जा सकता है।

(ख) केन्द्रीय पुस्तकालय

(१) पुस्तकालय-प्रबन्ध—प्रथमतः, पुस्तकालय को पाठशाला में अत्यन्त आकर्षक स्थान बनाया जाना चाहिए जिससे छात्र सहजतः इस तक आकृष्ट होंगे। यह समुचित रूप से रञ्जित भित्तियों तथा पुष्पों एवं विख्यात चित्रणों के कलात्मक रूप से रचित चित्रों एवं रङ्गलेपों से अलंकृत कोष्ठों के साथ एक विशाल, सुप्रकाशित प्रशाल (अथवा कोष्ठ) में गृहित[2] होना चाहिए। यथा-शक्य, विवृत-निधाय-प्रणाली[3] प्रवेशित की जानी चाहिए जिससे छात्र पुस्तकों तक अबाध प्रवेश रख सकें, उनका हस्तन करना सीख सकें और अपने अवकाश में उन पर दृष्टि-पात कर सकें।

(२) पुस्तक-प्रदाय[4]—द्वितीयतः, पुस्तकालय की सफलता मुख्यतः पुस्तकों, पत्रिकाओं तथा नियतकालिक पत्रिकाओं के समुचित प्रवरण पर निर्भर करती है। यह उन अध्यापकों की एक लघु समिति का कार्य होना चाहिए जो पुस्तकों के लिये एक सच्चा प्रेम रखते हैं, पुस्तक-समीक्षाओं का अध्ययन कर सकते हैं, सूचीपत्रों से परामर्श कर सकते हैं और यदि, शक्य

1 Hobbies. 2 Housed. 3 Open Shelf System.
4 Supply of Books.

हो तो, पुस्तक विक्रयशालाओं को देख सकते हैं। यदि इसी समिति को बच्चों की वाचन-अभिरुचियों का अध्ययन करने का कार्य सौंप दिया जाए तो यह उपयोगी होगा। अध्यापक का अपना यह विचार कि छात्रों को कौन सी पुस्तकें पढ़नी चाहिएँ प्रवरण में मार्गप्रदर्शक सिद्धान्त नहीं होना चाहिए, अपितु उनकी स्वाभाविक तथा मनोवैज्ञानिक अभिरुचियाँ (मार्गप्रदर्शक सिद्धान्त होनी चाहिएँ)।

(३) पुस्तकालय-सेवा—इसे एक उच्च अर्हताप्राप्त एवं प्रशिक्षित पुस्तकाध्यक्ष की सेवाओं की आवश्यकता होगी जिसे वेतन तथा स्थिति में अन्य ज्येष्ठ अध्यापकों के साथ एक सममूल्य पर[1] होना चाहिए और हम निश्चित रूप से यह अभिस्ताव करते हैं कि प्रत्येक माध्यमिक विद्यालय में, इस प्ररूप का एक पूर्ण-कालिक पुस्तकाध्यक्ष होना चाहिए। इस सम्बन्ध में, यह अभिस्ताव किया जाता है कि उन अध्यापकों में से ऐसे (अध्यापकों को), जो प्रशिक्षण महाविद्यालयों में अध्ययन की अवधि में पुस्तकालय-कार्य में कोई प्रशिक्षण प्राप्त नहीं कर सके थे, ४ से ८ सप्ताह तक विस्तृत अवधियों के लिये पुस्तकाध्यक्षत्व में ग्रीष्म-पाठचर्याओं में उपस्थित होने के लिये अवसर दिये जाने चाहिएँ।

(ग) श्रेणी-पुस्तकालय[2]

श्रेणी-पुस्तकालय केन्द्रीय-विद्यालय-पुस्तकालय का एक महत्व पूर्ण तथा आवश्यक उपासङ्ग[3] होता है। इसे सुगमतापूर्वक संघटित किया जाता है और कल्पना के एक अध्यापक के हाथों में यह इसकी अपनी परिसीमाओं में उतना अच्छा कार्य कर

---

1 On a par with. 2 Class Library. 3 Adjunct.

सकता है जितना केन्द्रीय-पुस्तकालय। श्रेणी-पुस्तकालय के बारे में महत्वपूर्ण प्रश्न इसके स्कन्धों[1] को वारंवार समयान्तरों पर परिवर्तित करना तथा पूर्ति करना है जिससे बच्चे एक श्रेणी-कोष्ठ की चतुष्भित्तियों में भी बौद्धिक खाद्य की एक विस्तृत विभिन्नता अपने सामने फैली हुई पा सकें।

(घ) विषय-पुस्तकालय

प्रत्येक उच्च पाठशाला में श्रेणी-पुस्तकालय के अतिरिक्त विषय-अध्यापकों के प्रभार[2] में विषय-पुस्तकालय होने चाहिएँ। ये केवल पाठ्य-पुस्तकों तक ही सीमित नहीं होने चाहिएँ। उच्च कर्मान्त[3], निर्देश-पुस्तकें, संबद्ध विषयों तथा संबद्ध क्षेत्रों पर पुस्तकें, ये सब उस संग्रहण[4] में एक स्थान प्राप्त करेंगी ......।

(ङ) पुस्तकालय-सुविधाओं को सबल करने के लिये सामान्य सुझाव

(१) समस्त सार्वजनिक पुस्तकालयों में बच्चों तथा किशोरों के लिये विशेषतः अर्थ रखता हुआ एक ऐसा अनुभाग होना चाहिए जो स्थानीय पाठशाला-पुस्तकालयों की अनुपूर्ति कर सके।

(२) द्वितीयतः, यदि सम्भव हो तो, छात्रों तथा स्थानीय समुदाय के हित के लिये दीर्घावकाश तथा दीर्घ छुट्टियों में पाठशाला-पुस्तकालय को खुला रखने के लिये पग उठाये जाने चाहिएँ।

(३) उन स्थानों में, जहाँ सार्वजनिक पुस्तकालय न हो, पाठशाला को पाठशाला-घण्टों के बाहर जनता के लिये पाठशाला-पुस्तकालय को खुला रखने की शक्यता पर विचार भी करना चाहिए।

---

1 Stocks.   2 Charge.   3 Works.   4 Collection.

(४) हमारा विचार यह भी है कि, उन राज्यों में, जहाँ एक पुस्तकालय-उपकर[1] उगाहा जाता है, आय को पाठशाला-पुस्तकालयों को सबल करने तथा सुधारने के लिये भी प्रयुक्त किया जाना चाहिए।

(५) एक अन्य उपाय, जो इस सम्बन्ध में अत्यन्त सहायतापूर्ण होगा, समस्त शिक्षा-विभागों के भाग पर, अध्यापकों के मार्गप्रदर्शन के लिये उपयुक्त साहित्य, सुझावात्मक कार्यक्रम, अध्यापन-सामग्री, इत्यादि, को तय्यार करने के लिये एक क्रमबद्ध यत्न है।

५—संपरीक्षात्मक पाठशालाएँ[2]

कभी-कभी विचारों तथा कर्तव्य की एक भावना से युक्त अच्छे अध्यापक भी प्रगतिशील शिक्षा-रीतियों को प्रयोग में लाने में असमर्थ होते हैं। यह कठिनाई केवल तभी पार की जा सकती है यदि अच्छे प्रदर्शन तथा संपरीक्षात्मक पाठशालाएँ स्थापित की जाती हैं और अध्यापन की अधिक अच्छी रीतियों का विकास करने के लिये, समस्त आवश्यक सुविधाएँ, भौतिक तथा मनोवैज्ञानिक, दी जाती हैं। हम यह अभिस्ताव करते हैं कि संपरीक्षात्मक पाठशालाओं को, जैसी अस्तित्व में हैं अथवा जो भविष्य में स्थापित की जा सकती हैं, राज्य तथा केन्द्रीय शासनों के हाथों यथोचित प्रोत्साहन प्राप्त करना चाहिए।

६—संग्रहालय[3]

संग्रहालय पाठशाला-बच्चों के शिक्षण में एक महान् कार्य करते हैं क्योंकि वे अतीत के आविष्कारों तथा उन विभिन्न

---

1 Cess. 2 Experimental Schools. 3 Museums.

विकासों को, जो विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के अनेक क्षेत्रों में हो चुके हैं, उन्हें किन्हीं भी नीरस व्याख्यानों की अपेक्षा अधिक विशद रूप से हृदयङ्गम कराते हैं। हम विश्वास करते हैं कि कम से कम महत्त्वपूर्ण केन्द्रों में ऐसे संग्रहालय स्थापित करना शैक्षणिक दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है, जिनमें प्राचीन तथा आधुनिक दोनों संग्रहण[1] प्रदर्शित किये जाएँगे और कुछ स्थितियों में विभिन्न वैज्ञानिक आविष्कारों के विकास की वास्तविक प्रक्रिया के प्रदर्शन भी दिये जाएँगे। हम यह अनुभव करते हैं कि ऐसे संग्रहालयों के आरम्भण के लिये केन्द्र तथा राज्यों से सहायता आगे आनी चाहिए।

७—श्रव्य-दृश्य-सामग्री[2]

(१) चलचित्र—हम यह अभिस्ताव करते हैं कि प्रत्येक राज्य में शैक्षणिक चलचित्रों का एक केन्द्रीय पुस्तकालय प्राप्य होना चाहिए और कि महान् मूल्य के चलचित्र समय समय पर केन्द्रीय शासन से राज्यों को भेजे जाने चाहिएँ। हम यह भी अभिस्ताव करते हैं कि भारतीय दशाओं के उपयुक्त शैक्षणिक चलचित्र लिये जाने चाहिएँ तथा पाठशालाओं के लिये प्राप्य बनाये जाने चाहिएँ।

(२) वितन्तु[3]—वितन्तु के बारे में, हम यह जान कर प्रसन्न हैं कि आकाशवाणी के द्वारा पाठशाला-प्रसारणों के लिये प्रबन्ध किये जा चुके हैं। हमारे लिये यह बल देना सम्भव ही आवश्यक है कि ऐसे प्रसारण सु-अर्हताप्राप्त व्यक्तियों द्वारा होने चाहिएँ और (उन्हें) विषय में एक अभिरुचि उत्पन्न करनी चाहिए जिससे विषय के बारे में अधिक सीखने के लिये

1 Collections. 2 Audio-Visual Aids. 3 Radio.

लड़के की जिज्ञासा उकसायी जा सके। यह देखने के लिये सावधानी ली जानी चाहिये कि (क) संव्यवहृत होने के लिये विषय, (ख) उस रीति, जिसमें इसे संव्यवहृत होना चाहिए, तथा (ग) एक ऐसी वार्ता को देने के लिये क्षम[1] व्यक्तियों पर निर्णय करने के लिये मुख्याध्यापकों तथा अध्यापकों की एक विशेषज्ञ तालिका[2] संस्थापित की जाती है।

(६) चरित्र की शिक्षा

१—चरित्र की शिक्षा

(क) चरित्र की शिक्षा का महत्व

शिक्षा के उद्देश्यों तथा प्रयोजनों से संव्यवहार करने में, हमने यह स्पष्ट कर दिया है कि शिक्षण-प्रक्रिया का सर्वोच्च अन्त छात्रों के चरित्र तथा व्यक्तित्व का एक ऐसे प्रकार से प्रशिक्षण होना चाहिए कि वे अपनी पूर्ण क्षमताओं को समझने तथा समुदाय के कल्याण को अंशदान करने के योग्य होंगे।

(ख) आधारभूत सिद्धान्त

(१) पाठशाला तथा समुदाय के बीच सहयोग का सिद्धान्त—प्रथमतः, हमें इस तथ्य का यथोचित आलोक[3] लेना चाहिए कि पाठशाला एक बड़े समुदाय के भीतर एक लघु समुदाय होती है और कि वे दृष्टिकोण, मूल्य तथा व्यवहार की रीतियाँ—अच्छी अथवा बुरी—जो राष्ट्रिय जीवन में चलार्थ[4] रखती हैं, पाठशालाओं में प्रतिबिम्बित होने के लिये बद्ध होती हैं। जब हम छात्रों में अनुशासन अथवा सत्यङ्कारता[5] के अभाव अथवा श्रम को गरिमा का अधिमूल्यन[6] करने की विफलता का

---

1 Competent. 2 Expert Panel. 3 Note. 4 Currency.
5 Earnestness. 6 Appreciation.

परिवाद[1] करते हैं, तब हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि ये मुख्यतः समुदाय में दोषों के कारण हो सकते हैं। इस तक एक आमूल तथा व्यापक पहुँच पाठशाला तक सीमित नहीं हो सकती अपितु (उसे) सम्पूर्ण स्थिति का विचार करना चाहिए।

(२) अध्यापकों तथा मातापिता के बीच साहचर्य का सिद्धान्त--इसे विरल तथा विशेष अवसरों तक तथा पारस्परिक परिवादों एवं परिवेदनाओं[2] के भाजन तक ही सीमित नहीं होना चाहिए अपितु उनके बीच एक अच्छी समझ तथा उनके विचारों एवं मूल्यों के समाधान में परिणत होना चाहिए जिससे, यथा-शक्य, प्रेरकों[3], रीतियों तथा प्रेरणाओं[4] का समान प्रकार घर पर तथा पाठशालाओं में छात्रों के चरित्र का निर्माण कर सके।

(३) कार्य-योजना का सिद्धान्त--तृतीयतः, यह स्मरण रखा जाना चाहिए कि चरित्र की शिक्षा ऐसी कुछ वस्तु नहीं है जो एक विशेष काल अथवा एक विशेष अध्यापक अथवा क्रियाओं के एक विशेष कुलक[5] तक दूर की जा सकती है। यह एक परियोजना[6] होती है जिसमें प्रत्येक एकल अध्यापक तथा पाठशाला-कार्यक्रम के प्रत्येक पद को बुद्धिपूर्वक भाग लेना होता है। हम अभिस्ताव करते हैं कि मुख्याध्यापक तथा कर्मचारिवृन्द को आपस में इस निर्णायक समस्या पर चर्चा करनी चाहिए और अपने कार्य को इस प्रकार से अधियोजित करना चाहिए कि चरित्र एवं मस्तिष्क के वे गुण, जिन्हें अन्तर्निविष्ट करने की वे अभिलाषा करते हैं, उस प्रत्येक वस्तु में प्रतिबिम्बित हों जिसे वे करें—उन निबन्धों में जिन्हें वे लिखते हैं, उन भाषणों में

1 Complaint. 2 Grievances. 3 Motives. 4 Impulses. 5 Set. 6 Project.

जो वे वादविवाद-समाज में करते हैं, उन चित्रों में जिनका वे रङ्गलेपन करते हैं, उन मानचित्रों में जिन्हें वे खींचते हैं, उन सामाजिक क्रियाओं में जिनका वे संघट्टन करते हैं, उस शिल्प-कार्य में जिसका वे उपक्रमण करते हैं।

(४) पाठ्यक्रम के समुचित उपस्थापन[1] का सिद्धान्त--जब हम इस प्रसङ्ग में *कार्य* के आधारभूत महत्व को प्रस्वीकार करते हैं, तब हमें उस कार्य का अवमूल्यन[2] नहीं करना चाहिए जो इस सम्बन्ध में पाठ्यक्रम का समुचित उपस्थापन तथा महान् पुस्तकों का वाचन कर सकता है। अध्यापक समस्त पाठशाला-विषयों को--विशेषतः समाज-विज्ञान को--इस प्रकार उपस्थित कर सकते हैं कि छात्र उस विश्व पर एक सम्यक् दृष्टिकोण विकसित कर सकें जिसमें वे रह रहे हैं और मानवीय सम्बन्धों—वैयक्तिक तथा समूह सम्बन्ध—की प्रकृति का एक समुचित अधिमूल्यन अर्जित कर सकें।

२—अनुशासन

(क) अननुशासन के रूप

अननुशासन समूह-अननुशासन अथवा वैयक्तिक-अननुशासन का आकार ले सकता है। समूह अननुशासन दोनों में सबसे बुरा होता है। अनेक कारणों ने इस समूह-अननुशासन तक मार्ग प्रदर्शित किया है। विभिन्न कारणों से एक विदेशीय प्रशासन में, अननुशासन के कृत्य वारंवार[3] हो गये, प्रायः उन राजनैतिक क्रियाओं द्वारा आवश्यक बनाये जाकर, जो एक विदेशीय शासन के विरुद्ध आरम्भ की गई थीं। जबकि भिन्न व्यावहारिक परिस्थितियों में ऐसे अननुशासन के लिये औचित्य-समर्थन हो

---

1 Presentation. 2 To undervalue. 3 Frequent.

सकता है, हम यह अनुभव करते हैं कि स्वतन्त्रता की प्राप्ति के पश्चात् अननुशासन के ऐसे कृत्यों के लिये औचित्य-समर्थन[1] नहीं है।

(ख) अनुशासन का महत्व

शिक्षा का वास्तविक प्रयोजन युवक को नागरिकता के कर्तव्यों का समुचित रूप से पालन करने के लिये प्रशिक्षित करना है। समस्त अन्य प्रयोजन प्रासङ्गिक[2] होते हैं। अतः, अनुशासन मातापिता, अध्यापकों, सामान्य जनता तथा संबद्ध प्राधिकारियों का उत्तरदायित्व होना चाहिए।

(ग) भारतीय छात्र तथा अनुशासन

भारतीय छात्र की स्वाभाविक प्रवृत्ति अनुशासित होने की होती है। यह केवल तभी होता है जब शक्तियाँ उस पर सबल रूप से कार्य करती हैं कि वह कभी-कभी पथ-भ्रष्ट किया जा सकता है। वह नियमों का अधिमूल्यन करता है और सामान्यतः उनका पालन करने के लिये अभिनत होता है। पाठशाला-जीवन में इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करने के लिये बहुत किया जा सकता है।

(घ) अनुशासन की रीतियाँ

I—अस्ति-रीतियाँ[3]

(१) अध्यापक तथा छात्र में वैयक्तिक सम्बन्ध—अध्यापक तथा छात्र में वैयक्तिक सम्बन्ध आवश्यक होता है, और यह इसी दृष्टिकोण से है कि हम यह बनाये रखते हैं कि एक श्रेणी की भिन्न उपश्रेणियों में तथा सम्पूर्ण पाठशाला में प्रवेशित छात्रों की संख्या में कुछ सीमा होनी चाहिए। सामान्य अनु-

---

1 Justification. 2 Incidetnal. 3 Positive Methods.

शासन तथा छात्रों का कल्याण बढ़ाने में श्रेणी-अध्यापक तथा मुख्याध्यापक के कार्य पर भी बल रखा जाना है।

(२) गृह-प्रणाली[1]—स्वयं पाठशाला-जीवन के बारे में, अनुशासन के सन्धारण में स्वयं छात्रों पर अधिक उत्तरदायित्व पड़ना चाहिए। उन्हें यह देखने के लिये उनके अपने प्रतिनिधि चुनने चाहिएँ कि, दोनों, व्यक्तियों के लिये तथा पाठशाला की सुख्याति के लिये, व्यवहार की समुचित संहिताएँ[2] पालित की जाती हैं। यह इसी दृष्टिकोण से है कि हम उन नायकों[3] अथवा वेदारों[4] अथवा छात्र-परिषदों-सहित उसका संस्ताव[5] करते हैं जिसे पाठशालाओं में गृह-प्रणाली के नाम से जाना जाता है, जिनका उत्तरदायित्व व्यवहार की एक संहिता बनाना तथा पाठशाला में इसके पालन को लागू करना होगा।

(३) समूह-क्रीड़ाएँ—यह क्रीड़ा-क्षेत्रों पर होता है कि इसके अपने लिये क्रीड़ा करने का गुण तथा समूह-भावना संवर्धित की जा सकती है। ऐसी पाठ्य-बाह्य क्रियाएँ जैसे बाल-चर तथा बाल-चारिकाएँ, राष्ट्रिय छात्र-सेना, कनिष्ठ रक्त-स्वस्तिक[6] तथा समाज-सेवा-क्रियाएँ अनुशासन की एक समुचित भावना बढ़ायेंगी। पाठशाला में सामुदायिक जीवन के एक वस्तुतः मधुर तथा संयुक्त रूप का निर्माण समस्त संस्थाओं का प्रयास होना चाहिए।

II—नास्ति-रीतियाँ[7]

(१) उपयुक्त विधान[8]—किसी देश के युवक का अनुशासन

---

1 The House System. 2 Codes. 3 Prefects.
4 Monitors. 5 To Commend. 6 Junior Red Cross.
7 Negative Methods. 8 Legislation.

उस अनुशासन पर निर्भर करता है जो वयोवृद्धों द्वारा प्रयोग में लाया जाता है। देश के कुछ भागों में, अवसरों पर, नेताओं की कुछ क्रियाएँ ऐसी नहीं रही हैं जैसी उत्तर पीढ़ी[1] में अनुशासन की एक स्वस्थ भावना बढ़ाने के लिये उपयुक्त होती हैं। अतः हम यह अभिस्ताव करते हैं कि राजनैतिक प्रचार अथवा निर्वाचन-अभियान के प्रयोजनों में से किन्हीं के लिये १७ की अवस्था से नीचे के छात्रों का उपयोग करना एक निर्वाचन-अपराध बनाते हुए उपयुक्त विधान पारित किया जाना चाहिए।'

(२) राजनीतिज्ञों के अभिभाषणों[2] की प्रकाशना[3]—यह समुचित है कि हमारे राजनीतिज्ञों में से कुछ हमारे छात्रों को सम्बोधित करते हैं। वास्तविक व्यवहार में इसने ऐसी बैठकों को मुद्रणालय द्वारा दी गयी प्रकाशना में कुछ विषमताओं की ओर मार्गप्रदर्शन किया है। हम इस प्रश्न पर सामान्यकरण की अभिलाषा नहीं करते, क्योंकि अनेक सम्मानपूर्ण अपवाद होते हैं, परन्तु दी गयी प्रकाशना की दृष्टि में प्रवृत्ति अपने समक्ष श्रोतृगण से बोलना नहीं होती है, अपितु एक उस विस्तृत श्रोतृगण से, जिसका ध्यान आकर्षित करने की वे अभिलाषा करते हैं। पाठशाला-शिक्षा तथा अनुशासन के लिये यह एक स्वस्थ प्रवृत्ति नहीं है।

(३) कर्मचारिवृन्द में अनुशासन—अन्ततः छात्रों में अनुशासन केवल तभी बढ़ाया जा सकता है यदि कर्मचारि-वृन्द में अनुशासन हो। हमारी सूचना तक (ऐसे) उदाहरण लाये गये हैं जहाँ पाठशाला-प्रबन्धक अथवा प्रबन्धक-मन्डल के सदस्य राजनैतिक अथवा अन्य निर्वाचन-क्रियाओं में भाग

1 Younger Generation   2 Addresses.   3 Publicity.

लेने के लिये अध्यापकों तथा छात्रों पर प्रभाव डालने के लिये अपनी स्थिति का उपयोग करने से नहीं रुके हैं। वह अभिस्ताव जो हम कर चुके हैं कि छात्रों का उपयोग एक निर्वाचन-अपराध समझा जाना चाहिए, सम्भवतः इस वर्धी प्रवृत्ति का निरोध करने लिये दूर तक जाएगा।

३—धार्मिक तथा नैतिक शिक्षण

(क) धार्मिक तथा नैतिक शिक्षण का महत्व

चरित्र की वृद्धि में, धार्मिक तथा नैतिक शिक्षण भी एक महत्वपूर्ण कार्य करता है। इसमें अल्प सन्देह है कि जब तक देश के तरुणों के मस्तिष्क में कुछ निश्चित नैतिक सिद्धान्त अन्तर्निविष्ट नहीं किये जाते हैं, तब तक शिक्षा का सम्पूर्ण प्रयोजन पूरा नहीं होता है।

(ख) संविधान तथा धार्मिक शिक्षा

इसका (असाम्प्रदायिक[1] राज्य के निर्णय का) यह अर्थ नहीं होता है कि, क्योंकि राज्य असाम्प्रदायिक है, राज्य में धर्म के लिये स्थान नहीं है। वह सब जो समझा गया है यह है कि राज्य, राज्य के रूप में, किसी विशेष धर्म का सक्रिय अनुमोदन, सहायता करने, अथवा किसी प्रकार से उस पर अपने अनुमोदन की मुद्रा रखने का उपक्रमण नहीं करेगा। किसी भी उस धर्म का प्रयोग करना, जिसे वे अपनी अभिनतियों[2], परम्पराओं, संस्कृति तथा पित्रागत[3] प्रभाव के समनुरूप अनुभव करते हैं, लोगों पर छोड़ दिया जाना चाहिए।

(घ) वर्तमान स्थिति

धार्मिक शिक्षा के बारे में वर्तमान स्थिति यह है कि यहाँ

---

1 Secular. 2 Inclinations. 3 Hereditary.

कुछ पाठशालाएँ, विशेषतः साम्प्रदायिक अभिकरणों[1] द्वारा सञ्चालित, हैं, जहाँ धार्मिक शिक्षा दी जाती है। तथापि, वहाँ एक खण्ड[2] है, जो वर्धा रूप से क्रियान्वित किया जा रहा है, कि वह व्यक्ति, जो एक विशेष धर्म से संबद्ध नहीं है, धार्मिक शिक्षण में उपस्थित होने के लिये बाध्य नहीं किया जा सकता।

(घ) *धार्मिक अथवा नैतिक व्यवहार के तीन स्रोत*

धार्मिक अथवा नैतिक व्यवहार के बारे में स्वस्थ प्रवृत्तियाँ तीन स्रोतों से झरती हैं; (१) गृह का प्रभाव जो प्रमुख कारक[3] होता है; (२) स्वयं अध्यापकों के आचरण तथा व्यवहार और सम्पूर्ण पाठशाला-समुदाय में जीवन द्वारा पाठशाला का प्रभाव; (३) स्थान की जनता द्वारा प्रयुक्त प्रभाव तथा वह सीमा जिस तक लोक-मत आचरण की धार्मिक अथवा नैतिक संहिताओं[4] सम्बन्धी समस्त विषयों में प्रबल होता है। इन तीन आवश्यक कारकों को शिक्षण की कोई राशि निष्प्रभाव अथवा अनुपूरित नहीं कर सकती। तथापि, हम यह अनुभव करते हैं कि ऐसा शिक्षण, एक सीमित सीमा तक, पाठशालाओं में दिए जाने वाले समुचित रूप से संघटित शिक्षण द्वारा अनुपूरित किया जा सकता है।

(ङ) *अभिस्ताव*

असाम्प्रदायिक राज्य के संविधान के उपबन्ध के दृष्टिकोण से, एक स्वैच्छिक आधार पर तथा नियमित पाठशाला-घण्टों के बाहर के अतिरिक्त, पाठशालाओं में धार्मिक-शिक्षा नहीं दी जा सकती; ऐसी शिक्षा विशेष विश्वास के बच्चों को तथा संबद्ध मातापिता एवं प्रबन्धों की सम्मति से दी जानी

1 Denominational Agencies. 2 Clauses 3 Factor. 4 Codes.

चाहिए। इस अभिस्ताव को करने में हम यह बल देने की अभिलाषा करते हैं कि पाठशालाओं में अएकता. बद्धमूल शत्रुता, धार्मिक घृणा तथा धर्मान्धता की समस्त अस्वस्थ प्रवृत्तियाँ निरुत्साहित की जानी चाहिएँ।

४—पाठ्य-बाह्य[1] क्रियाएँ

(क) महत्व

वे एक पाठशाला की क्रियाओं का एक उतना ही अभिन्न अङ्ग होती हैं जितना इसका पाठ्य-कार्य और उनके समुचित सघटन को ठीक उतनी ही सावधानी तथा स्वतन्त्र-विचार की आवश्यकता होती है। ऐसी क्रियाएँ स्वाभाविक रूप से, सीमाओं के भीतर, पाठशाला से पाठशाला तक, इसकी स्थिति, इसके संसाधनों तथा कर्मचारिवृन्द एवं छात्रों की अभिरुचियों एवं अभियोग्यताओं पर निर्भर रहते हुए, विभिन्न होंगी। यदि वे समुचित रूप से सञ्चालित की जाती हैं, तो वे अत्यन्त मूल्यवान् दृष्टिकोणों तथा गुणों के विकास में सहायता कर सकती हैं।

(ख) बालचर तथा प्रदर्शक

भारत में, बालचर तथा प्रदर्शक आन्दोलन गहरी जड़ ले चुका है और नवीन संघटन, भारत बालचर तथा प्रदर्शक[2], समस्त राज्यों में अनेक शाखाएँ रखता है। बालचर चरित्र के प्रशिक्षण तथा सम्यक् नागरिकता के लिये आवश्यक गुणों के लिये अत्यन्त प्रभावशाली साधनों में से एक है। हम यह अभिस्ताव करते हैं कि राज्य को बालचर-आन्दोलनों को पर्याप्त वित्त-साहाय्य देना चाहिए और बालचर-शिविरों के लिये

---

1 Extra-Curricular. 2 Bharat Scouts and Guides.

उपयुक्त स्थान प्राप्त करने में सहायता करनी चाहिए। बालचर तथा प्रदर्शक को समुचित मार्गप्रदर्शन की आवश्यकता है और, इस प्रयोजन के लिये, यह वाञ्छनीय है कि अध्यापकों में से कुछ बालचर-समूहों का संघटन तथा उनकी क्रियाओं का पर्यवेक्षण करने में प्रशिक्षित किये जाने चाहिएँ। इस सम्बन्ध में हम पाठशाला-छात्रों के लिये सामान्यतः ग्रीष्म-शिविर तथा अवकाश-गृह[1] खोलने की आवश्यकता का भी नामनिर्देश कर सकते हैं। समस्त पाठशालाओं को, यथाशक्य, अपने छात्रों के समूहों के लिये ऐसे शिविरों में प्रति वर्ष कुछेक दिन व्यय करने के लिये एक अवसर देना चाहिए।

(ग) राष्ट्रिय छात्र-सेना[2]

गत कुछ वर्षों में, भारत शासन ने राष्ट्रिय छात्र-सेना के कनिष्ठ संभाग का संस्थापन किया है जो समस्त पाठशालाओं के छात्रों के लिये खुला है। अधिकारी मुख्यतः, अध्यापन व्यवसाय से खींचे जाते हैं। इसके समुचित संघटन, दक्षता तथा विकास को सुनिश्चित करने के लिये इसके कार्यकरण का केन्द्रीयण आवश्यक है। अतः, हम यह अभिस्ताव करते हैं कि राष्ट्रिय छात्र-सेना भारत शासन के अधीन लायी जानी चाहिए जिसे इसके समुचित संधारण, सुधार तथा विस्तार का उत्तरदायित्व रखना चाहिए। वस्तुतः, राज्यों को आन्दोलन को आगे बढ़ाने में पूर्णतः सहयोग करना चाहिए।

(घ) प्रथमोपचार[3], कनिष्ठ रक्त-स्वस्तिक[4], तथा सेण्ट जोन्स-चल-चिकित्सालय[5] में प्रशिक्षण

ये एक विशेष मूल्य रखते हैं क्योंकि वे छात्रों को समाज-

---

1 Holiday Homes. 2 National Cadet Corps (N.C.C.)
3 First Aid. 4 Junior Red Cross. 5 St. John's Ambulances.

सेवा के उपयोगी रूपों को करने और इस प्रकार वैयक्तिक तथा सामाजिक मूल्य की भावना प्राप्त करने में समर्थ बनाते हैं। हम यह अनुभव करते हैं कि यदि प्रत्येक छात्र प्रथमोपचार तथा कनिष्ठ रक्त-स्वस्तिक-कार्य में प्रशिक्षित किया जाता है और छात्रों में से कुछ सेण्ट जोन्स-चल-चिकित्सालय-कार्य में प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं, तो यह छात्रों को तथा समुदाय को महान् उपकार होगा। हम अन्यत्र यह अभिस्ताव कर चुके हैं कि कुछ अध्यापक चल-चिकित्सालय कार्य तथा प्रथमोपचार में प्रशिक्षित किये जाने चाहिएँ।

(ङ) *अन्य पाठ्य-बाह्य क्रियाएँ*

अनेक अन्य पाठ्य-बाह्य क्रियाएँ होती हैं जिन्हें पाठशालाएँ अपनी योग्यता तथा संसाधनों के सर्वोत्तम तक विकसित कर सकती हैं, तथा विकसित करना चाहिए, यथा दूर-प्रणयम्[1], पतवार से खेना[2], प्लव[3], विहार, वादविवाद, नाटक, उद्रेखण[4] तथा चित्रण, उद्यान-कर्म। हम यह पुनरावृत्ति करते हैं कि इन क्रियाओं की सफलता मुख्यतः अध्यापन-कर्मचारि-वृन्द द्वारा प्रकाशित अभिरुचि पर निर्भर करती है। यह इसी कारण से है कि हमने यह अभिस्ताव किया है कि समस्त अध्यापकों को एक निश्चित समय ऐसी क्रियाओं को देना चाहिए तथा उनके कार्य के अधिकतम घण्टे नियत करने में यह समय गणन में लिया जाना चाहिए। हम यह अनुभव करते हैं कि, जबकि धन का भाग छात्रों के ऐच्छिक अंशदान से आ सकता है अथवा इस प्रयोजन के लिये एक विशिष्ट शुल्क लिया जा सकता है, शिक्षा-विभाग को उनके प्रोत्साहनके लिये उदार अनुदान देने चाहिएँ।

---

1 Hiking. 2 Rowing. 3 Swimming. 4 Drawing.

(७) माध्यमिक पाठशालाओं में मार्गप्रदर्शन तथा समुपदेशन[1]

१—मार्गप्रदर्शन का महत्व

शिक्षण की भिन्नकृत[2] पाठचर्याओं का प्रबन्ध अध्यापकों तथा पाठशाला-प्रशासकों पर अपनी पाठचर्याओं एवं जीविकोपार्जनों के वरण में छात्रों को समुचित मार्गप्रदर्शन देने का समधिक उत्तरदायित्व आरोपित करता है। सम्यक् शिक्षा का गूढ़ छात्र को यह अनुभव करने के लिये समर्थ बनाने में समाविष्ट करता है कि उसकी प्रज्ञाएँ[3] तथा अभियोग्यताएँ क्या हैं और किस रीति से तथा किस मात्रा तक वह उनका इस प्रकार सर्वोत्तम विकास कर सकता है कि समुचित सामाजिक समायोजन[4] प्राप्त कर सके तथा सेवायोजन[5] के सम्यक् प्ररूप ढूंढ सके।

२—मार्गप्रदर्शन का अर्थ

यह केवल यह निर्णय करने का एक प्रश्न नहीं है कि एक लड़के को खेत पर ठहरना चाहिए, दूसरे को एक विमान-निर्माणी[6] में काम करना चाहिए, तीसरे को एक अध्यापक होना चाहिए, तथा चौथे को एक यानशाला[7] का प्रबन्ध लेना चाहिए। मार्गप्रदर्शन में उन समस्त कारकों[8] के पूर्ण प्रकाश में, उनके अपने भविष्य को बुद्धिपूर्वक अधियोजित करने के लिये लड़कों तथा लड़कियों की सहायता करने की कठिन कला का समावेश होता है जिन पर उनके अपने विषय में तथा उस विश्व के विषय में आधिपत्य प्राप्त किया जा सकता है जिसमें

---

1 Guidance and Counselling. 2 Diversified. 3 Talents.
4 Adjustment. 5 Employment. 6 Factory. 7 Garage.
8 Factors.

उन्हें रहना तथा कार्य करना होता है। इस अर्थ में मार्ग-प्रदर्शन केवल व्यावसायिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं होता है। यह तरुण समस्याओं के सम्पूर्ण ग्राम[1] को आच्छादित करता है और (इसे) समझ वाले मातापिता, अध्यापकों, मुख्याध्यापकों, प्राचार्यों एवं मार्गप्रदर्शन-अधिकारियों के सहकारी प्रयास के द्वारा शिक्षा के समस्त प्रक्रमों पर एक उपयुक्त रूप में उपबन्धित किया जाना चाहिए।

३—एक मार्गप्रदर्शन-अधिकारी की अर्हताएँ[2]

एक अच्छा मार्गप्रदर्शन-अधिकारी अनेक अच्छे गुण धारण करता है।

(१) उसे, वैज्ञानिक ज्ञान पर आधारित परन्तु सहानुभूति एवं लड़कों तथा लड़कियों के नेत्रों के द्वारा जीवन को देखने भालने की योग्यता से प्रोत्साहित, तरुण युवकों तथा उनकी समस्याओं की एक समझ रखनी चाहिए।

(२) उसे सम्यक् समुपदेशन-रीतियों, मनःस्वास्थ्य में तथा परीक्षाओं एवं पाठशाला-अभिलेखों के विभेदकारी प्रयोग में विशेष प्रशिक्षण प्राप्त करना चाहिए।

(३) व्यावसायिक मार्गप्रदर्शन के क्षेत्र में उसे व्यावसायिक अवसरों तथा आवश्यकताओं का एक ठीक ठीक ज्ञान रखना चाहिए।

(४) उसे छात्रों, मातापिता, तथा सेवायोजकों[3] के साथ संमन्त्रणाओं[4] के लिये पर्याप्त समय रखना चाहिए, तथा उसे पाठशाला के प्रयोजन एवं कार्यक्रम से पूर्णतः परिचित होना

1 Gamut. 2 Qualifications. 3 Employers. 4 Conferences.

चाहिए और अध्यापकों के साथ निकट सहकार में कार्य करने की क्षमता रखनी चाहिए।

४—अध्यापकों का कार्य

समस्त पाठशालाओं में मार्गप्रदर्शन-कार्य का अधिकांश भाग अध्यापकों के द्वारा श्रेणी में अपने छात्रों के साथ अनौपचारिक सस्पर्शों[1] के द्वारा किया जाना होगा। इस सम्बन्ध में वे एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य कर सकते हैं। मार्गप्रदर्शन-अधिकारी छात्रों तथा उनकी आवश्यकताओं एवं समस्याओं को समझने के लिये अपनी सहायता करते हुए उनसे पर्याप्त उपयोगी सूचना एकत्रित करेगा। उसी प्रकार वह उन्हें वह सूचना देगा जो उन्हें श्रेणी कार्य को छात्रों की अभियोग्यताओं एवं आवश्यकताओं से अधिक सावधानी से अन्वायोजित[2] करने के योग्य बनायेगी।

५—मार्गप्रदर्शन के सिद्धान्त

(१) वैयक्तिक भेद, जो इस अवस्था पर एक स्थायी मनोवैज्ञानिक विशेषता होते हैं, प्रस्वीकृत, अवबुद्ध[3] किये जाने चाहिएँ तथा यथोचित ध्यान दिया जाना चाहिए।

(२) उपजीविकाओं के बारे में तथा उच्च अध्ययन की संस्थाओं के बारे में ठीक ठीक, व्यापक तथा निरन्तर सूचना छात्रों को प्राप्य बनायी जानी चाहिए, क्योंकि इस सूचना के बिना वे अपनी क्रिया की भावी रेखा बुद्धिपूर्वक निर्धारित नहीं कर सकते।

(३) उसकी आर्थिक स्थिति, उसकी अभियोग्यताओं एवं

---

1 Contacts.   2 To fit.   3 Understood.

अभिरुचियों में शक्य परिवर्तनों तथा उन परिवर्तनों के कारण जो उपजीविका की प्रवृत्ति में होने के लिये सम्भाव्य हैं, व्यावसायिक तथा शैक्षणिक मार्गप्रदर्शन प्रत्येक छात्र को भिन्न प्रक्रमों पर प्राप्य बनाया जाना चाहिए।

(४) यह देखने के लिये सावधानी ली जानी चाहिए कि छात्र एक उपजीविका पर अति समयपूर्व अथवा अति शीघ्रता से नहीं अपितु केवल प्राप्य मार्गों के एक सावधान अध्ययन के पश्चात् तथा परीक्षाओं के द्वारा प्राप्त अनुभव के प्रकाश में निर्णय करते हैं। अतः, शिक्षा के भिन्न प्रक्रमों पर उनकी योजनाओं के पुनर्विचार के लिये उपबन्ध होना चाहिए।

६–जीविकोपार्जन-शिक्षक[1]

अधिकांश राज्यों में अभी तक प्राप्य जीविकोपार्जनों का एक वैज्ञानिक अध्ययन करने अथवा छात्रों को उनकी शिक्षा के भिन्न प्रक्रमों पर खुली शक्यताएँ हृदयङ्गत कराने के लिये गम्भीर यत्न नहीं हुआ है। यह यहीं सेवा प्राप्त करने का नहीं, अपितु छात्रों को कार्य के उपयुक्त प्ररूपों के लिये पर्याप्त रूप से सज्ज करने के लिये आवश्यक ज्ञान ढूंढने का प्रश्न है। यह इस अवस्था पर है कि व्यावसायिक मार्गप्रदर्शन अपेक्षित होता है और जीविकोपार्जन-शिक्षक इन छात्रों को उनकी समुचित स्थिति में रखने में अथवा उनके प्रशिक्षण एवं अभियोग्यताओं के उपयुक्त उपजीविका के वरण में छात्रों को मन्त्रणा देने में सहायता कर सकते हैं।

७–शासकीय अभिकरणों[2] का कार्य

भारत में प्रत्येक प्रदेश में मार्गप्रदर्शन-अधिकारियों तथा

---

1 Career Masters. 2 Agencies.

जीविकोपार्जन-शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिये एक केन्द्र होना चाहिए और उनकी सेवाएँ, एक वर्धी माप में, समस्त शिक्षा-संस्थाओं को प्राप्य बनायी जानी चाहिएँ, जिससे छात्रों को शिक्षा के भिन्न स्तरों पर, विशेषतः माध्यमिक प्रक्रम पर जिस पर छात्रों की एक बृहत् बहुसंख्या द्वारा सेवा के बारे में निर्णय किये जाने होते हैं, मार्गप्रदर्शन दिया जा सके।

८—दृष्टि-सहाय[1] का स्थान

दृष्टि-सहायों के नवीन प्ररूपों का विकास छात्रों के लिये उनके शिक्षा-सोपान के भिन्न प्रक्रमों पर उनके लिये खुली हुई भिन्न उपजीविकाओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिये असीमित शक्यताएँ प्रदान करता है। इस प्रकार उपजीविकाओं अथवा उद्योगों के क्षेत्र, प्रकृति, तथा महत्व की छात्रों की समझ विस्तृत करने के लिये, वे चित्रपट प्राप्य होने चाहिएँ, जो केवल एक विशेष उद्योग में कार्य की वास्तविक प्रकृति एवं दशाओं का चित्रण ही नहीं करते अपितु इसे कृत्यक पर[2] कर्मकारी के दैनिक नैत्यक[3] से सम्बन्धित सूचना से अनुपूरित भी करते हैं।

९—जीविकोपार्जन-सम्मेलन[4]

अध्यापकों, मातापिता, छात्रों, सेवायोजकों[5] तथा भिन्न उपजीविकाओं के सफल व्यक्तियों का "जीविकोपार्जन-सम्मेलन" उपजीविकाओं के बारे में सूचना देने के लिये अभिकरणों में है। एक ऐसा सम्मेलन रुचि को जागृत कर सकता है, व्यावसायिक आवश्यकताओं का एक अधिक पूर्ण ज्ञान दे सकता है और छात्रों को व्यावसायिक तथा शैक्षणिक मार्गप्रदर्शन-

---

1 Visual Aids. 2 On the job. 3 Daily Routine.
4 Career Conference. 5 Employers.

कर्मचारि-वृन्द द्वारा प्रदत्त सेवा का लाभ उठाने के लिये प्रोत्साहित कर सकता है। इस सम्मेलन पर, जीवन के विभिन्न गमनों[1] से उनके कार्य के विशेष क्षेत्र में आवश्यकताओं तथा अवसरों पर चर्चा करने के लिये सफल पुरुष एवं स्त्रियाँ निमन्त्रित की जा सकती हैं। छात्रों को भी इसमें भाग लेना चाहिए जिससे उनकी अभिरुचियाँ जागृत की जा सकें और उनकी जिज्ञासा पूर्णतः सन्तुष्ट।

१०–केन्द्र का उत्तरदायित्व

(क) प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थापना

यदि यह योजना सन्तोषजनक रूप से परिपालित की जानी है, तो हमारा मत है कि केन्द्र को, भिन्न प्रदेशों में, मार्गप्रदर्शन-अधिकारियों तथा जीविकोपार्जन-शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिये संस्थाएँ खोलने का उत्तरदायित्व लेना चाहिए, जिनमें प्रत्येक राज्य को अपने मनोनीत व्यक्ति प्रतिनियुक्त[2] करने चाहिएँ। इन केन्द्रों में से कुछ को अध्यापक-प्रशिक्षण संस्थाओं से संबद्ध करना शक्य हो सकता है जिससे, मार्गप्रदर्शन-अधिकारियों तथा जीविकोपार्जन-शिक्षकों के लिये आवश्यक प्रशिक्षण प्रदान करने के अतिरिक्त, वे अध्यापकों को शैक्षणिक तथा व्यावसायिक मार्गप्रदर्शन के सामान्य सिद्धान्तों में प्रशिक्षित भी कर सकें।

(ख) केन्द्रीय अन्वेषण संघटन[3]

मार्गप्रदर्शन-अधिकारियों के लिये उन प्रशिक्षण संस्थाओं के अतिरिक्त जिनका हमने विचार किया है, हम यह अभिस्ताव करते हैं कि शैक्षणिक तथा व्यावसायिक मार्गप्रदर्शन में

1 Walks. 2 To depute. 3 Central Research Organization.

अन्वेषण का पालन करने और सम्बद्ध छात्रों की भारतीय दशाओं एवं आवश्यकताओं तथा समय समय पर उनके लिये प्राप्य अवसरों के विशेष निर्देश के साथ परीक्षाओं की तय्यारी के लिये एक केन्द्रीय अन्वेषण-संघटन स्थापित किया जा सकता है।

११—व्यावसायिक तथा शैक्षणिक मार्गप्रदर्शनालय[1]

उन समस्त प्रयोजनों को पूरा करने के लिये, जो हम दृष्टि में रखते हैं, हम यह अभिस्ताव भी करते हैं कि प्रत्येक राज्य में एक व्यावसायिक तथा शैक्षणिक मार्गप्रदर्शनालय होना चाहिए जिसका कर्तव्य ऊपर अभिस्तावित क्रियाओं को अधियोजित तथा समन्वित करना होगा।

(६) छात्रों का शारीरिक कल्याण

१—शारीरिक एवं स्वास्थ्य-शिक्षण का महत्व

यह केवल शारीरिक कारणों से ही आवश्यक नहीं है अपितु इसलिए भी कि अच्छा मानसिक स्वास्थ्य अच्छे शारीरिक स्वास्थ्य पर निर्भर रहता है। अतः यह देखना समस्त पाठशालाओं का एक उत्तरदायित्व होना चाहिए कि उनके बच्चे स्वस्थ रहें जिससे वे उनके शिक्षण से अधिकतम शक्य लाभ प्राप्त कर सकें। यह सुनिश्चित करने के लिये कि वे स्वास्थ्य तथा शारीरिक विकास के स्तरों में सामान्य हैं, समस्त छात्रों को एक स्वास्थ्य-परीक्षा के अधीन करना, इस प्रयोजन के लिये आवश्यक है।

---

1 Bureau of Vocational and Educational Guidance.

२—आवश्यक उपाय

(क) स्वास्थ्य-परीक्षा

(१) असन्तोषजनक परिणामों के कारण—यद्यपि अनेक राज्यों में पाठशाला स्वास्थ्य-परीक्षा की प्रणाली वर्षों की एक संख्या से अस्तित्व में रही है, हमारा मत है कि निम्नलिखित कारणों से परिणाम सन्तोषजनक नहीं रहे हैं : (i) स्वास्थ्य-परीक्षण एक अनवहित[1] रीति से किया गया है, (ii) वे दोष, जो परीक्षा के इस प्ररूप द्वारा भी प्रकाशित किये गये हैं, सुधारे नहीं गये हैं क्योंकि सुझाये गये प्रत्युपायों[2] का पालन नहीं किया गया है, (iii) यहाँ अनुसरण[3] नहीं होता है, उनकी स्थिति में भी नहीं, जो सदोष के रूप में घोषित किये जा चुके हैं, (iv) पाठशाला-प्राधिकारियों तथा मातापिता के बीच प्रभावशाली सहकार स्थापित नहीं किया गया है, और या तो अज्ञान के द्वारा अथवा वैत्तिक संसाधनों के द्वारा अथवा दोनों के द्वारा, मातापिता ने पाठशाला-स्वास्थ्य-अधिकारियों के प्रतिवेदनों में अल्प रुचि ली है।

(२) सुझाव—आवश्यक सुधार लाने के लिये हम यह अभिस्ताव करते हैं कि (i) स्वास्थ्य-परीक्षा साद्यन्त एवं पूर्ण होनी चाहिए। पाठशाला में प्रत्येक छात्र की प्रति वर्ष, जब वह पाठशाला में हो, कम से कम एक पूर्ण परीक्षा होनी चाहिए, तथा एक ठीक पाठशाला छोड़ने से पूर्व, (ii) गम्भीर दोषों वाले छात्र तथा वे जो कठोर अस्वस्थता सहन करते हैं, अधिक बारंबार परीक्षित किये जाने चाहिएँ, (iii) जब कभी परीक्षाएँ शोधक अथवा प्रत्युपाय उपायों के लिये आवश्यकता को प्रकाश

1 Perfunctory. 2 Remedial Measures. 3 Follow-up.

में लायें, तभी सत्वर एवं प्रभावशाली अनुसरण सुनिश्चित करने के लिये बहुत अधिक किया जाना चाहिए, (iv) स्वास्थ्य-प्रतिवेदन की एक प्रतिलिपि पाठशाला-स्वास्थ्य-अधिकारी द्वारा रखी जानी चाहिए, दूसरी प्रतिलिपि मातापिता को जानी चाहिए, तथा तीसरी प्रतिलिपि छात्रों के एक विशेष समूह के प्रभारी अध्यापक को। इस प्रतिलिपि को छात्र के वैयक्तिक अभिलेख[1] के भाग के रूप में रखा जाना चाहिए और इस पर उसके स्वास्थ्य-शिक्षण तथा शारीरिक-शिक्षण के लिये कार्यक्रम आधारित होना चाहिए। स्वास्थ्य-परीक्षाओं के प्रतिवेदनों का अध्ययन करना तथा उन व्यक्तियों को चुनना पाठशाला-चिकित्सक का कर्तव्य होना चाहिए, जिनके लिये प्रत्युपाय अथवा शोधक उपचार निर्दिष्ट किया जाता है।

(ख) पाठशाला-स्वास्थ्य-सेवा का समुदाय तक प्रसरण

पाठशाला के बच्चों का स्वास्थ्य केवल पाठशाला में बीत[2] घण्टों में ही निर्धारित नहीं होता, अपितु इससे भी अधिक ऐसा घर पर तथा घर के पड़ौस में और कार्य पर बीत घण्टों में होता है। यदि पाठशाला गृह तथा सामुदायिक कारकों की उपेक्षा करती है, तो ये पाठशाला-बाह्य प्रभाव बच्चे के स्वास्थ्य को सुधारने के लिये पाठशाला के प्रयास के हितकारी प्रभावों में से अनेक को रोक सकते हैं अथवा विलोपन[3] कर सकते हैं। हम और आगे जा सकते हैं तथा कह सकते हैं कि यदि पाठशाला एक लघु, चुने हुए स्थान में स्वच्छता की दशाओं को सुधारने के लिये वस्तुतः कुछ कर सकी, तो यह छात्रों तथा मातापिता दोनों और, वस्तुतः सम्पूर्ण समुदाय के लिये सर्वोत्तम

1 Record.　2 Spent.　2 Cancel.

स्वास्थ्य-शिक्षण होगा। इस प्रयास में, स्थान के स्वास्थ्य-प्राधिकारियों को अपना सक्रिय सहयोग तथा सहायता पाठशाला को देनी चाहिए।

(ग) अध्यापकों का प्रशिक्षण

यदि स्वास्थ्य-सन्धारण के प्रथम सिद्धान्तों में ऐसा प्रशिक्षण दिया जाता है, तो अध्यापक एक पर्याप्त समयपूर्व अवस्था पर सामान्य से विचलन[1] की किन्हीं स्थितियों को पाठशाला-स्वास्थ्य-अधिकारी अथवा अन्य संबद्ध प्राधिकारियों की सूचना तक लाने में एक मूल्यवान् कार्य कर सकते हैं।

(घ) चलते-फिरते चिकित्सालय रोगि-वाहन[2]

यह किसी प्रकार से ध्वनित नहीं है कि ग्रामीय बच्चों की उपेक्षा की जानी चाहिए। वे संबद्ध संस्थाओं को ले जाए जाने चाहिएँ अथवा भैषजिक कर्मचारि-वृन्द, इस प्रयोजन के लिये चलते फिरते चिकित्सालय रोगि-वाहनों का प्रबन्ध करके, निश्चित दिवसों पर ऐसी पाठशालाओं को देख सकते हैं।

(ङ) सन्तुलित आहार

स्वास्थ्य में अनेक दोषों तक मार्गप्रदर्शित करने वाले महत्त्व-पूर्ण कारकों में से एक कुपोषण[3] है। हम यह अभिस्ताव करते हैं कि, निवास-पाठशालाओं तथा छात्रावासों में, भिन्न अवस्थाओं के उपयुक्त सन्तुलित आहार पोषाहार-विशेषज्ञों द्वारा विहित किये जाने चाहिएँ तथा बच्चों के आहार के लिये समुचित स्तरों के बारे में प्रबन्धक-वर्ग सूचित किये जाने चाहिएँ।

---

1 Deviation. 2 Mobbile Hospital Ambulances.

3 Malnutrition.

३—शारीरिक शिक्षण

(क) शारीरिक शिक्षण का अर्थ

अतः शारीरिक शिक्षण केवल योग्या[1] अथवा विनियमित व्यायाम की एक माला की अपेक्षा बहुत कुछ अधिक होता है। इसमें शारीरिक क्रियाओं के उन समस्त रूपों तथा क्रीड़ाओं का समावेश होता है जो शरीर तथा मस्तिष्क के विकास को बढ़ाती हैं।

(ख) सुझाव

(१) व्यक्ति के उपयुक्त क्रियाएँ—यदि यह समुचित रूप से दिया जाने को है, तो शारीरिक शिक्षण के अध्यापकों को छात्रों द्वारा अनुसरित होने के लिये एक व्यापक योजना का उद्विकास करना चाहिए और यह स्वास्थ्य-परीक्षा के परिणामों पर आधारित होनी चाहिए। इन क्रियाओं में से अधिकांश समूह क्रियाएँ होती हैं, परन्तु वे, शारीरिक सहनशक्ति के लिये उसकी क्षमता का आलोक[2] लेते हुए, व्यक्ति के उपयुक्त होने के लिये भी बनायी जानी चाहिएँ।

(२) समुदाय से संस्पर्श[3]—जैसा कि स्वास्थ्य शिक्षण की स्थिति में, पाठशाला को "समुदाय तक जाना" चाहिए और शारीरिक शिक्षण को आगे बढ़ाने में इसकी सहायता ढूंढनी चाहिए।

(३) अध्यापकों का प्रशिक्षण—जब तक पाठशाला के अन्य अध्यापक, शारीरिक-शिक्षक के साथ इस विषय में भाग नहीं लेते, तब तक शारीरिक-शिक्षण एक सफलता न होगा। हम यह अभिस्ताव करते हैं कि समस्त अध्यापकों को अथवा कम से

1 Drill.   2 Note.   3 Contact.

कम उन्हें जो ४० की अवस्था से नीचे हैं, शारीरिक-शिक्षण की क्रियाओं में से अनेक में सक्रिय रूप से भाग लेना चाहिए और इस प्रकार इसको एक पृथक्कृत कर्मचारि-सदस्य को सौंपे गये एक पार्श्व-विषय[1] होने के स्थान में, समस्त पाठशाला-कार्यक्रम का एक सजीव भाग बनाना चाहिए।

(४) क्रीड़ा-क्षेत्रों का छात्रों की बहुसंख्या द्वारा उपयोग—पाठशाला-समुदाय के स्वास्थ्य का विकास करने के लिये, इसकी अपेक्षा कि एक लघु अल्पसंख्यक-वर्ग को चक्र-स्पर्धा[2] जीतने और पाठशाला को व्यावसायिक श्रेयस्[3] का एक प्रकार लाने के लिये ऐसा करना चाहिए, यह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है कि छात्रों की बहुसंख्या को क्रीड़ा-क्षेत्रों का उपयोग करना चाहिए।

(५) पाठशाला-अभिलेखों[4] का सन्धारण—हमने समस्त छात्रों के लिये पाठशाला-अभिलेखों के सन्धारण का अभिस्ताव किया है, और यहाँ यह जोड़ना चाहेंगे कि इनमें क्षेत्र की समस्त क्रियाओं के एक पूर्ण बिम्ब[5] का समावेश होना चाहिए।

(६) शारीरिक-शिक्षण के अध्यापकों का प्रशिक्षण—हमारा मत है कि स्वास्थ्य-शिक्षण, प्रथमोपचार[6], पोषण इत्यादि के समान समस्त पक्षों का समावेश करते हुए इस प्रशिक्षण को व्यापक होना चाहिए। यह महत्वपूर्ण है कि उन्हें सामान्य शिक्षण का एक अच्छा स्तर रखना चाहिए। माध्यमिक पाठशालाओं में शारीरिक शिक्षण के अध्यापकों को कम से कम *S. S. L. C.* परीक्षा उत्तीर्ण और शिक्षा तथा बाल-मनोविज्ञान के सामान्य सिद्धान्तों में कुछ प्रशिक्षण प्राप्त कर लेना

---

1 Side Issue. 2 Tournament. 3 Credit. 4 School Records 5 Record. 6 First Aid.

चाहिए। उन्हें दैहिकी[1] तथा स्वास्थ्यविज्ञान के समान विषयों के अध्यापन से सम्बद्ध होना चाहिए और वही स्थिति दी जानी चाहिए जैसी पाठशाला में समान अर्हताओं[2] के अन्य अध्यापकों को। यदि प्रशिक्षण संस्थाएँ प्रभावशाली रूप से अपने कर्तव्यों का पालन करने को हैं, तो उन्हें सावधानी से चुने हुए प्रावैधिक क्षमता के तथा सु-शिक्षित व्यक्तियों से कर्मचारित होना चाहिए। अधिक उत्तरदायित्व के पदों के बारे में जैसे शारीरिक शिक्षण के सञ्चालक अथवा निरीक्षक, हम यह अनुभव करते हैं कि दो वर्ष के लिये प्रशिक्षण आवश्यक हो सकता है। सम्पूर्ण देश की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये हम यह अभिस्ताव करते हैं कि इन संस्थाओं में से कुछ अखिल-भारतीय प्रशिक्षण केन्द्र के रूप में प्रस्वीकृत की जा सकती हैं और सेवि-वर्ग[3] की एक बृहत् संख्या को प्रशिक्षित करने के लिये उन्हें समर्थ बनाने के लिये केन्द्र तथा राज्य दोनों के द्वारा सहायता दी जा सकती है।

(६) परीक्षण तथा अर्हापण[4] तक एक नवीन प्रवेश-मार्ग

१—परीक्षण तथा अर्हापण का महत्व

मातापिता तथा अध्यापकों को समय समय पर यह जानना आवश्यक है कि छात्र किस प्रकार प्रगति कर रहे हैं और किसी विशेष अवस्था पर उनकी प्राप्तियाँ[5] क्या हैं। समाज के लिये अपने को यह आश्वासन देना समान रूप से आवश्यक है कि इसकी पाठशालाओं को सौंपा गया कार्य सन्तोषजनक रूप से किया जा रहा है और कि वहाँ अध्ययन करने वाले बच्चे

---

1 Physiology. 2 Qualifications. 3 Personnel.
4 Evaluation. 5 Achievements.

शिक्षा का सम्यक् प्ररूप प्राप्त कर रहे हैं तथा प्रत्याशित स्तर प्राप्त कर रहे हैं। पाठशाला-कार्य के परीक्षण का यह प्रकार समस्त सम्बद्ध व्यक्तियों—छात्र, अध्यापक, मातापिता तथा जनता—के हितों में आवश्यक है।

२—परीक्षाओं के प्ररूप तथा वर्तमान प्रणाली की सीमाएँ

परीक्षाएँ या तो आन्तरिक[1] हो सकती हैं अथवा बाह्य। इस देश में आन्तरिक तथा बाह्य दोनों परीक्षाएँ न्यूनाधिक समान रेखाओं पर प्रतिरूपित[2] होती हैं और वे समान सामान्य प्रतिरूप का अनुसरण करती हैं। दोनों एक छात्र की मुख्यतः साहित्यिक प्राप्तियों तथा बौद्धिक वृत्तियों में उसकी प्रगति की परीक्षा करने के लिये अभिप्रेत होती हैं। यदि परीक्षाएँ वास्तविक अर्हा[3] की होने के लिये हैं, तो उन्हें नवीन तथ्यों को विचार में लेना चाहिए और छात्रों के सर्वतोमुखी विकास की विस्तार से परीक्षा करनी चाहिए।

३—वर्तमान परीक्षा-प्रणाली का प्रभाव

(क) शिक्षा पर प्रभाव

परीक्षाएँ केवल शिक्षा की विषयवस्तुओं का ही नहीं, अपितु अध्यापन की रीतियों—वस्तुतः, शिक्षा तक समस्त पहुँच—का भी निर्धारण करती हैं। जब तक एक विषय परीक्षा-योजना में सम्मिलित नहीं किया जाता है, तब तक छात्र इसमें हित-परायण[4] नहीं होता। यदि कोई पाठशाला-क्रिया प्रत्यक्षतः अथवा अप्रत्यक्षतः परीक्षा से सम्बद्ध नहीं होती है, तो यह उसके उत्साह का आह्वान अथवा प्राप्ति करने में विफल रहती

---

1 Internal. 2 Modelled. 3 Value. 4 Interested.

है। वह पाठ्य-पुस्तकों तथा मूल कर्मान्तों[1] की अपेक्षा आलोकों[2] तथा अशुचि-प्रयोगों[3] में अधिक हित-परायण होता है; वह बुद्धिपूर्ण समझ की अपेक्षा कण्ठस्थ करने के लिये जाता है क्योंकि यह परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिये उसकी सहायता करेगा जिस पर उसका भविष्य निर्भर रहता है।

(ख) अध्यापक पर प्रभाव

परीक्षा की प्रणाली अध्यापक को उसकी अनेक समस्याओं के लिये एक सुगम समाधान देती है। (१) बौद्धिक प्राप्तियों तथा साहित्यिक प्रगति में परिणाम प्रदर्शित करना अधिक सुगम होता है, (२) अथापि, तुलनात्मक दृष्टि से बोलते हुए परीक्षाएँ छात्रों का क्रमस्थापन करने तथा उनके कार्य पर निर्णय अधिघोषित[4] करने की एक सुगम रीति होती हैं, (३) पुनः, और यह अत्यन्त अभाग्यपूर्ण है एक अध्यापक के रूप में उसकी सफलता अति प्रायः परीक्षाओं में उसके छात्रों के परिणामों द्वारा मापित की जाती हैं।

(ग) मातापिता पर प्रभाव

सेवायोजन[5] तथा बाह्य परीक्षाओं को उत्तीर्ण करने के बीच निकट सम्पर्क के कारण, माध्य[6] मातापिता किसी अन्य वस्तु की अपेक्षा अपने बच्चे के उस परीक्षा को उत्तीर्ण करने में अधिक हितपरायण होते हैं।

(घ) प्राधिकारियों[7] पर प्रभाव

वे प्राधिकारी भी, जो उच्च पाठचर्याओं का उपबन्ध अथवा तरुण व्यक्तियों को सेवायुक्त करते हैं, प्रायः केवल

---

1 Works. 2 Notes. 3 Cribs. 4 To pronounce.
5 Employment. 6 Average. 7 Authorities.

बाह्य परीक्षाओं के परिणामों पर प्रदत्त प्रमाणपत्रों द्वारा मार्गप्रदर्शित होते हैं।

(ङ) *महाविद्यालय-प्रवेश पर प्रभाव*

इसमें सार्वजनिक परीक्षाओं पर प्राप्त अङ्कों को अधिकांश महाविद्यालयों में छात्रों के प्रवेश के लिये केवल मानदण्ड के रूप में उपयोजित करने की अभिनव कालों की अभाग्यपूर्ण प्रवृत्ति जोड़ी जा सकती है।

४—सुधारार्थ सुझाव

(क) *परीक्षाओं का रूप*

I—बाह्य परीक्षाओं के लिये

(१) प्रथमतः, अति अनेक बाह्य परीक्षाएँ नहीं होनी चाहिएँ।

(२) द्वितीयतः, वह प्रातीतिक[1] तत्व यथा-शक्य कम किया जाना चाहिए, जो वर्तमान सर्वथा निबन्ध-प्ररूप[2] परीक्षा में अपरिहार्य होता है। अतः, निबन्ध-प्ररूप परीक्षाओं के प्रातीतिकता के तत्व को कम करने के लिये, प्राप्तियों की वैषयिक[3] परीक्षाएँ साथ-साथ विस्तृत रूप से प्रवेशित की जानी चाहिएँ।

(३) अथापि, परीक्षाओं की प्रकृति तथा प्रश्नों का प्ररूप पूर्णतया परिवर्तित किया जाना चाहिए। वे ऐसे होने चाहिएँ कि कण्ठस्थ-करण को निरुत्साहित तथा बुद्धिपूर्ण अवबोध[4] को प्रोत्साहित करें। उन्हें विस्तारों से संव्यवहार नहीं करना चाहिए, अपितु, अपने को समस्याओं की एक युक्तियुक्त समझ

---

1 Subjective. 2 Essay-type. 3 Objective.

4 Understanding.

तथा विषय-वस्तु के एक सामान्य आधिपत्य[1] से सम्बन्धित रखना चाहिए। इस सम्बन्ध में हम यह विचार करते हैं कि एक तथा उसी दिन प्रत्येक तीन घण्टों के दो प्रश्नपत्र रखना अवाञ्छनीय है।

(४) अन्ततः, छात्र का अन्तिम निर्धारण पूर्णतः बाह्य परीक्षा के परिणामों पर आधारित नहीं होना चाहिए; ऐसी अन्य वस्तुएँ जैसे आन्तरिक परीक्षाएँ तथा अध्यापकों द्वारा संधारित पाठशाला-अभिलेख[2], विचार में लिये जाने चाहिएँ और उन्हें यथोचित श्रेयस् दिया जाना चाहिए।

II—आन्तरिक परीक्षाओं के लिये

(१) एक सर्द-महत्वपूर्ण वार्षिक-परीक्षा पर बल कम किया जाना चाहिए।

(२) एक बच्चे के सम्पारण[3] को केवल वार्षिक अन्तिम परीक्षा के परिणामों पर ही नहीं, अपितु नियतकालिक[4] परीक्षाओं के परिणामों तथा पाठशाला-अभिलेखों में प्रदर्शित प्रगति पर भी निर्भर रहना चाहिए।

(३) आन्तरिक परीक्षा के प्रतिरूप को भी परिवर्तित किया जाना चाहिए।

(४) निबन्ध-प्ररूप परीक्षाओं को अनुपूरित करने के लिये वैषयिक परीक्षाएँ विस्तृत रूप से प्रयुक्त की जानी चाहिएँ।

(ख) सञ्चयी अभिलेख[5]

परन्तु न तो बाह्य परीक्षा न आन्तरिक परीक्षा, अकेले अथवा साथ, एक छात्र की, उसकी शिक्षा के किसी विशेष प्रक्रम पर,

1 Mastery. 2 Records. 3 Promotion. 4 Periodic.
5 Cumulative Records.

सर्वतोमुखी प्रगति का एक शुद्ध तथा पूर्ण चित्र दे सकती है। इस प्रयोजन के लिये, प्रत्येक छात्र के लिये, उसके द्वारा पाठशाला में दिन प्रतिदिन, मास प्रतिमास, अवधि प्रति-अवधि, तथा वर्ष प्रतिवर्ष किये गये कार्य को निर्दिष्ट करते हुए पाठशाला-अभिलेखों की एक समुचित प्रणाली सन्धृत की जानी चाहिए। हम यह अभिस्ताव करते हैं कि इन्हें समस्त देश में समस्त पाठशालाओं की एक सामान्य विशेषता होना चाहिए। सञ्चयी अभिलेख श्रेणी-अध्यापक द्वारा सन्धृत किये जाएँगे। अभिलेखों के संधारण को प्रशिक्षण की एक कुछ राशि की आवश्यकता होगी। हमें संदेह नहीं है कि शिक्षा के राज्य-विभागों द्वारा ऐसे प्रशिक्षण का उपबन्ध करने के लिये, सम्भवतः अध्यापकों के लिये प्रशिक्षण महाविद्यालयों में, प्रबन्ध किये जाएँगे। इन क्षेत्रों में निरन्तर अन्वेषण की आवश्यकता है।

(ग) अर्हापण तथा अङ्कन (प्रतीकात्मक[1] अङ्कन-प्रणाली)

प्रतिशतकों[2] द्वारा, अर्थात् एक सौ में से संख्यात्मक अङ्कों द्वारा, अर्हापण की वर्तमान प्रणाली कुछ सुविधाएँ रख सकती है, परन्तु असुविधाएँ सुविधाओं से अधिक भारी होने के लिये होती हैं। प्रथमतः, यह अति अनेक अन्तर्विभाजन प्रवेशित करती है जो केवल अनुपयोगी ही नहीं, अपितु बाधक भी होते हैं; और द्वितीयतः, दो ऐसे छात्रों के बीच भेद करना वस्तुतः कठिन होता है जिनमें से एक ४५ अङ्क प्राप्त करता है तथा दूसरा ४६ या ४७। एक अधिक सुगम तथा अच्छी प्रणाली पञ्च-पद-श्रेणी है जिसमें 'A' श्रेष्ठ[4] के लिये खड़ा होता है, 'B'

---

1 Symbolic. 2 Percentiles. 3 Five-point Scale.

4 Excellent.

अच्छा[1] के लिये, 'C' पर्याप्त तथा माध्य[2] के लिये, 'D' हीन[3] के लिये और 'E' अत्यन्त हीन[5] के लिये। हम यह अभिस्ताव करते हैं कि यह प्रणाली पाठशाला-अभिलेखों के लिये अभिगृहीत की जा सकती है। लिखित परीक्षाओं के लिये, चाहे बाह्य अथवा आन्तरिक, वही श्रेणी इस आपरिवर्तन के साथ प्रयुक्त की जा सकती है कि यहाँ D तथा E "विफलता" निर्दिष्ट करने के लिये संयुक्त होंगे। यहाँ A "वरेण्यता[5]" का निर्देश करेगा, B "श्रेयस्[6]" का तथा C "उत्तीर्ण" का और D तथा E "विफलता" अथवा "पीछे निर्दिष्ट विषयों[7]" का।

(घ) एक एकल अन्तिम[8] परीक्षा

हम अभिस्ताव करते हैं कि पाठशाला-पाठचर्या की समाप्ति का निर्देश करने के लिये केवल एक सार्वजनिक परीक्षा होनी चाहिए। उस पाठशाला की प्रकृति पर निर्भर रहते हुए जहाँ छात्र अपनी पाठचर्या पूर्ण करता है, यह या तो उच्च पाठशाला-अन्तिम-परीक्षा हो सकती है अथवा उत्तर माध्यमिक-परीक्षा। इससे पूर्व अन्य सार्वजनिक परीक्षा नहीं होनी चाहिए। अन्तिम सार्वजनिक परीक्षा को भी सबके लिये अनिवार्य होने की आवश्यकता नहीं है, अर्थात्, यदि छात्र ऐसी इच्छा करते हैं, तो इसे लेने की आवश्यकता नहीं।

(ङ) प्रमाणपत्र

माध्यमिक पाठशाला[9] अथवा किसी अन्य पाठशाला-श्रेणी की समाप्ति का निर्देश करने के लिये प्रदत्त होने के लिये प्रमाणपत्र स्वयं पाठशाला द्वारा दिया जाएगा और यह सर्वथा

---

1 Good. 2 Fair and Average. 3 Poor. 4 Very Poor.
5 Distinction. 6 Credit. 7 Cases Referred Back.
8 Single Final. 9 Middle School.

उन पाठशाला-अभिलेखों पर आधारित होगा जिनमें नियत-कालिक एवं वार्षिक-परीक्षाओं के परिणामों का समावेश होगा। वे छात्र, जो पाठशाला-पाठचर्या पूर्ण करते हैं तथा अन्तिम परीक्षा लेते हैं, परीक्षा धारण करने वाले प्राधिकारियों द्वारा प्रदत्त होने के लिये एक प्रमाणपत्र प्राप्त करेंगे। इन प्रमाणपत्रों के प्रपत्रों[1] के परिवर्तित होने की आवश्यकता है। परीक्षक-प्राधिकारियों को एक प्रपत्र विहित करना चाहिए जिसमें पाठ-शालाएँ संबद्ध छात्र के पाठशाला-अभिलेख के ब्यौरे भर सकें। सार्वजनिक परीक्षा के समय पर, पाठशाला परीक्षक-प्राधिकारी को अभिलेख अग्रेषित[2] करेगी। परीक्षक प्राधिकारी, अपने वर्तन[3] में, उसमें सार्वजनिक परीक्षा के परिणाम लिखेगा और संबद्ध छात्र को अग्रेषित होने के लिये इसे पाठशाला को लौटायेगा।

(च) *संविभागीय प्रणाली*[4]

हमारा मत है कि जहाँ तक अन्तिम सार्वजनिक परीक्षा सम्बन्धित है, संविभागीय-प्रणाली प्रवेशित की जानी चाहिए। यदि एक अभ्यर्थी[2] सार्वजनिक परीक्षा के एक अथवा अधिक विषयों में विफल होता है, तो वह एक अनुवर्ती परीक्षा पर सार्वजनिक परीक्षा के इन विषयों को लेने के लिये अनुमत होना चाहिए, परन्तु ऐसी स्थितियों में, पाठशाला-अभिलेख गणन में नहीं लिये जाएँगे। उसे पुनः उन विषयों के लिये बैठने की आवश्यकता नहीं जिनमें वह एक उत्तीर्ण प्राप्त कर चुका है। उसे अनुवर्ती परीक्षाओं पर उपस्थित होने के लिये तीन अवसरों से अधिक नहीं दिये जाएँगे।

---

1 Forms. 2 Forwarded. 3 Turn 4 Compartmental System. 5 Candidate.

(१०) अध्यापन सेवि-वर्ग[1] का सुधार

१—अध्यापक

(क) अध्यापक का महत्व

तथापि, हम विश्वस्त हैं कि आयोजित शैक्षणिक पुन-र्निर्माण में अत्यन्त महत्वपूर्ण कारक[2] अध्यापक है—उसके वैयक्तिक गुण, उसकी शैक्षणिक योग्यताएँ, उसका व्यावसायिक प्रशिक्षण, और वह स्थान जो वह पाठशाला में तथा समुदाय में अभिघृत करता है। एक पाठशाला की विख्याति तथा समुदाय के जीवन पर इसका प्रभाव सदैव इसमें कार्य करने वाले अध्यापकों के प्रकार पर निर्भर रहता है। अतः, उनकी स्थिति के सुधार से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं को विचार-पूर्वता दी जानी चाहिए।

(ख) भर्ती की रीति : प्रवरण-समिति[3]

अध्यापकों की भर्ती के बारे में, भिन्न राज्यों में, एकसम प्रणाली होने के लिये प्रतीत नहीं होती। हम यह अनुभव करते हैं कि अध्यापकों के प्रवरण तथा नियुक्ति के लिये एक युक्तियुक्त रूप से एकसम कार्य-प्रणाली होनी चाहिए और इसे शासकीय पाठशालाओं तथा वैयक्तिक अभिकरणों[4] के प्रबन्धों के अधीन पाठशालाओं के बीच अधिक भिन्न नहीं होना चाहिए। हम अभिस्ताव करते हैं कि वैयक्तिक रूप से प्रबद्ध[5] समस्त पाठ-शालाओं में, एक पदेन् सदस्य के रूप में मुख्याध्यापक के साथ, कर्मचारि-वृन्द की भर्ती के उत्तरदायित्व से न्यस्त[6] एक लघु प्रवरण-समिति होनी चाहिए। यह भी वाञ्छनीय है कि शिक्षा-

1 Personnel. 2 Factor. 3 Selection Committee.
4 Agencies. 5 Managed. 6 Entrusted.

विभाग का एक मनोनीत व्यक्ति प्रबन्धक-मण्डल पर होना चाहिये। हम यह भी अभिस्ताव करते हैं कि, स्थानीय-मण्डलों अथवा नगरपालिकाओं द्वारा संधृत पाठशालाओं में, एक समान नीति अभिगृहीत की जानी चाहिए और या तो राज्य के लोक-सेवा-आयोग अथवा समान रेखाओं पर गठित एक निकाय[1] को अध्यापकों का प्रवरण करने का कार्य सौंपा जाना चाहिए।

(ग) परिवीक्षा[2] की अवधि

आजकल अध्यापकों के लिये विहित परिवीक्षा की अवधि के बारे में एकसमता नहीं है। जब तक यह एक अल्पावधि रिक्तस्थान न हो, यह वाञ्छनीय है कि, एक स्थायी स्थान पर नियुक्त, एक प्रशिक्षित अध्यापक एक वर्ष के लिये परिवीक्षा पर होना चाहिए और अवधि की सन्तोषजनक समाप्ति के पश्चात् पुष्टिकृत[3] कर दिया जाना चाहिए। आपवादिक स्थितियों में, प्रबन्धक वर्ग उस अवधि को एक वर्ष द्वारा बढ़ा सकते हैं जो पुष्टिकरण को निश्चित करने से पूर्व परिवीक्षा की अधिकतम अवधि होनी चाहिए। पुष्टिकरण के पश्चात्, अध्यापक सामान्यतः सेवानिवृत्ति[4] की अवस्था तक सेवा में चालू रखा जाना चाहिए।

(घ) अध्यापकों की योग्यताएँ

उच्च पाठशालाओं में कार्य करने वाले अध्यापक शिक्षा में एक उपाधि के साथ स्नातक होने चाहिएँ; वे, जो पारिभाषिक विषय पढ़ाते हैं, इसे पढ़ाने के लिये आवश्यक प्रशिक्षण के साथ संबद्ध विषय में स्नातक होने चाहिएँ; उत्तर माध्यमिक

1 Body. 2 Probation. 3 Permanent. 4 Retirement.

पाठशालाओं में अध्यापकों को कुछ विश्वविद्यालयों में मध्यमा महाविद्यालयों[1] के अध्यापकों के लिये विहित (योग्यताओं) के कुछ न कुछ समान उच्च योग्यताएँ धारण करनी चाहिएँ। यह अत्यन्त वाञ्छनीय है कि, सामान्य शिक्षण तथा अध्यापन दोनों में, अध्यापकों में से कम से कम कुछ को उच्च शैक्षणिक योग्यताएँ धारण करनी चाहिएँ। ऐसी समधिक[2] योग्यताओं के अर्जन के लिये एक उद्दीपक के रूप में, हम यह सुझाते हैं कि पाठशाला प्राधिकारियों को उन अध्यापकों के लिये कुछ समधिक वृद्धियाँ प्रदान करनी चाहिएँ जो सेवा में (रह कर) उच्च उपाधियाँ प्राप्त करते हैं। इससे पूर्व कि किसी पाठशाला को एक उत्तर माध्यमिक पाठशाला के रूप में प्रस्वीकृत किया जाता है, यह आवश्यक है कि कर्मचारि-वृन्द में उच्च योग्यताओं के साथ अध्यापक नियुक्त किये जाने चाहिएँ।

(ङ) *सेवा की दशाएँ : आवश्यक सुखसुविधाएँ*

(१) वेतन-श्रेणियाँ—एक सामान्य सिद्धान्त के रूप में हम यह अभिस्ताव करते हैं कि वे, जो समान योग्यताएँ रखते हैं तथा समान उत्तरदायित्व लेते हैं, उस संस्था के प्ररूप से अनपेक्ष[3] जिसमें वे कार्य कर रहे हैं, वेतन के विषय में सम समझे जाने चाहिएँ। अतः, हम सबल रूप से आग्रह करते हैं कि राज्यों को समस्त श्रेणियों के अध्यापकों की वेतन की श्रेणियों का सिंहावलोकन करने तथा ऐसे अभिस्ताव करने के लिये विशेष समितियाँ नियुक्त करनी चाहिएँ जो, एक पर्याप्त एवं उचित रीति में, जीवन की वर्तमान लागत की पूर्ति करें।

---

1 Intermediate Colleges.. 2 Additional. 3 Irrespective.

(२) भविष्य-निधि[1] तथा निवृत्तिवेतन[2]—वेतन की श्रेणियों से अलग, सेवा की सामान्य दशाएँ ऐसी होनी चाहिएँ कि अध्यापक अपने भविष्य तथा सेवा-सुरक्षा के बारे में चिन्ता के बिना अपने पारिवारिक तथा नागरीय उत्तरदायित्वों का यथावत् पालन कर सकें। आजकल, अधिकांश राज्यों में वे भविष्य-निधि के लाभों के लिये अधिकारी होते हैं। तथापि, कुछ राज्यों में, संबद्ध पक्षों द्वारा भविष्य-निधि के लिये एक समान अंशदान नहीं किया जाता है।

(३) पदावधि की सुरक्षा—इस प्रयोजन के लिये, विवाचन-मण्डल[3] अथवा समितियाँ नियुक्त की जानी चाहिएँ…। यह मण्डल शिक्षा-सञ्चालक अथवा उसके मनोनीत व्यक्ति, प्रबन्धक-वर्ग के एक प्रतिनिधि तथा राज्य-अध्यापक-संघ के एक प्रतिनिधि का बना होना चाहिए। शासकीय सेवकों की स्थिति के अतिरिक्त, जो एक उच्च प्राधिकार, अर्थात् शासन, से पुनरावेदन करने का अधिकार रखते हैं, मण्डल का निर्णय अन्तिम होना चाहिए। जहाँ एक स्थानीय-मण्डल अपने प्रबन्धक-वर्ग के अधीन पाठशालाओं की एक संख्या रखता है, वहाँ हम इसे वाञ्छनीय समझते हैं कि इसके अधीन सेवायुक्त अध्यापकों की सेवा की दशाओं को देखने भालने के लिये शिक्षा-विभाग का विशेष अधिकारी होना चाहिए। बालिका-पाठशालाओं की स्थिति में, विशेष अधिकारी एक पाठशाला-निरीक्षिका की स्थिति की एक महिला होनी चाहिए। ये अधिकारी विषय की प्रकृति के अनुसार या तो शिक्षा-सञ्चालक अथवा विवाचन-मण्डल से पुनरावेदन के

1 Provident Fund. 2 Pension. 3 Arbitration Board.

एक अधिकार के अधीन, स्थानान्तरणों, नियुक्तियों, इत्यादि, से संव्यवहार करने के लिये प्राधिकृत किये जाने चाहिएँ।

(४) सेवानिवृत्ति की अवस्था--हम यह अनुभव करते हैं कि अर्हताप्राप्त अध्यापकों के लिये विस्तारी आवश्यकता की दृष्टि से तथा अभिनव वर्षों में जीवन की सामान्य प्रत्याशा में सुधार की दृष्टि से भी, यदि अध्यापक शरीरतः तथा अन्य प्रकार से स्वस्थ है तो, शिक्षा-सञ्चालक के अनुमोदन से सेवानिवृत्ति की अवस्था ६० तक बढ़ायी जा सकती है।

(५) बच्चों की निःशुल्क शिक्षा--हम इस नीति का अभिस्ताव करते हैं तथा यह सुझाते हैं कि अध्यापकों के बच्चों को पाठशाला-प्रक्रम भर निःशुल्क शिक्षा दी जानी चाहिए।

(६) संयान-यात्रा-छूट[1]--हमें बताया गया था कि संयान-प्राधिकारियों ने कुछ यात्रा-छूटें उन तक विस्तृत कर दी हैं। हम इस प्रस्ताव का स्वागत करते हैं तथा अभिस्ताव करते हैं कि उसे इस प्रकार विस्तृत किया जाना चाहिए कि स्वास्थ्य-आश्रयों[2] अथवा अवकाश-शिविरों को जाने अथवा शिक्षा-सम्मेलनों, विमर्शगोष्ठियों, इत्यादि में उपस्थित होने की अभिलाषा करने वाले अध्यापकों को अर्ध-शुल्क पर यात्रा-छूटें दी जाएँ।

(७) अवकाश-गृह तथा स्वास्थ्य-आश्रय—दीर्घावकाश में स्वास्थ्य-आश्रयों अथवा अवकाश-गृहों को जाने के लिये अध्यापकों को प्रोत्साहित करते हुए एक राष्ट्र-व्यापक आन्दोलन आरम्भ करना लाभ का होगा।

---

1 Railway Travel Concessions.   2 Health Resorts.

(८) भैषजिक सहायता[1]—हम अनुभव करते हैं कि अध्यापन-व्यवसाय भैषजिक-सहायता के लाभ, चिकित्सालयों तथा औषधालयों में निःशुल्क उपचार, और, जहाँ आवश्यक हो वहाँ, राज्य-चिकित्सालयों में निःशुल्क व्यवस्थापन के लिये अधिकारी होना चाहिए।

(९) अवकाश-छूट—अवकाश के तीन प्ररूप होते हैं जिन पर इस सम्बन्ध में विचार किया जा सकता है—आकस्मिक[2]-अवकाश, भैषजिक-अवकाश, और, महिला अध्यापकों की स्थिति में, प्रसूति[3]-अवकाश। हम अभिस्ताव करते हैं कि समस्त शिक्षा-संस्थाओं के लिये एकसम अवकाश-नियम होने चाहिएँ।

(१०) अध्ययन-अवकाश—उनको, देश के भीतर, भिन्न संस्थाओं को देखने के लिये अवसर दिये जाने चाहिएँ और उनमें से कुछ को उत्तरदायी स्थितियों में, उच्च शिक्षण के लिये अथवा विदेशों में शिक्षा-कार्य का अध्ययन करने के लिये, ६ से १२ मास तक विचरक[4] अवधियों के लिये, विदेश जाने के लिये पूर्ण वेतन पर अध्ययन-अवकाश दिया जा सकता है। ऐसा अध्ययन-अवकाश केन्द्र अथवा संबद्ध राज्य-शासन द्वारा प्रदत्त किया जाना चाहिए।

(च) समधिक सेवायोजन की समस्या

हम सन्तुष्ट हैं कि इसमें (समधिक सेवायोजन में) अनेक पाप उपस्थित होते हैं और इसे यथा-शक्य समयपूर्व दूर करने के लिये पग उठाये जाने चाहिएँ।

(छ) समाज में अध्यापक की स्थिति

महत्वपूर्ण सार्वजनिक तथा समारोह-अवसरों पर, राज्य

---

1 Medical Relief. 2 Casual. 3 Maternity. 4 Ranging

के प्रमुख अथवा मन्त्रियों अथवा संबद्ध जिला-अधिकारी को अध्यापन-व्यवसाय के प्रतिनिधियों को निमन्त्रित करना चाहिए और उन्हें एक आदर का स्थान देना चाहिए। वे शिक्षा-सम्बन्धी समस्त महत्वपूर्ण विषयों में परामृष्ट[1] भी किये जाने चाहिएँ जिससे उनकी व्यावसायिक उत्तरदायित्व की भावना सबल हो।

(ज) *मुख्याध्यापक*

एक पाठशाला में मुख्याध्यापक की स्थिति का विशेष उल्लेख किया जाना चाहिए। पाठशाला का समुचित कार्यकरण अन्ततः उसी पर निर्भर रहता है। अपनी अभ्याप्तियों[2] तथा योग्यताओं, एक अध्यापक के रूप में अपने पूर्व-अभिलेख, अपनी सामाजिक अभियोग्यताओं द्वारा, उसे अपने सहयोगियों, तथा जनता के विश्वास और अपने छात्रों के आदर का समादेश[3] करना चाहिए। हम विश्वास करते हैं कि एक मुख्याध्यापक को चुनने में ज्येष्ठता[4] वारंवार सर्वोत्तम मानदण्ड नहीं होती है। साहित्यिक तथा व्यावसायिक के अतिरिक्त, बल दिये जाने के लिये विशेष योग्यताएँ कम से कम १० वर्ष का अध्यापन तथा/अथवा प्रशासनात्मक अनुभव और नेतृत्व के गुण तथा प्रशासनात्मक योग्यता हैं। हम विश्वास करते हैं कि एक ऐसी उत्तरदायी स्थिति के लिये सम्यक् प्ररूप के व्यक्ति आकृष्ट करने के लिये, पद की उपलब्धियाँ[5] पर्याप्त रूप से आकर्षक होनी चाहिएँ। इस प्रयोजन के लिये, वेतन की एक विशेष श्रेणी अथवा उसके वेतन के अतिरिक्त एक भत्ता दिया जाना चाहिए। अपने कर्तव्यों का दक्षतापूर्वक पालन

---

1 Consulted. 2 Attainments. 3 To Command.
4 Seniority. 5 Emoluments.

करने में उसे समर्थ बनाने के लिये, पाठशाला में छात्रों की संख्या सीमित होनी चाहिए। हम अन्यन्त्र कह चुके हैं कि कुछ बहु-प्रयोजन पाठशालाओं के अतिरिक्त जहाँ यह १,००० हो सकती हैं, एक पाठशाला में अनुकूलतम[1] संख्या ५०० होती है और अधिकतम ७५०। जहाँ संख्या इस सीमा से अधिक होती है, एक ज्येष्ठ अध्यापक सहायक मुख्याध्यापक के रूप में नियुक्त किया जाना चाहिए और मुख्याध्यापक के कुछ कर्तव्य उसे सौंप दिये जाने चाहिएँ।

२—अध्यापक-प्रशिक्षण

(क) अध्यापक-प्रशिक्षण संस्थाओं के प्ररूप तथा अवधि

स्थूल रूप से बोलते हुए, प्रवर्तमान अध्यापक-प्रशिक्षण-संस्थाएँ तीन शीर्षकों में वर्गीकृत की जा सकती हैं; (१) प्राथमिक (अथवा आधारभूत) अध्यापक-प्रशिक्षण ; (२) माध्यमिक अध्यापक-प्रशिक्षण; तथा (३) स्नातक अध्यापक-प्रशिक्षण संस्थाएँ। हमारे मत से, अध्यापक-प्रशिक्षण के लिये संस्थाओं के केवल दो प्ररूप होने चाहिएँ:—

(१) माध्यमिक-प्रक्रम-प्रशिक्षण—यदि इस अत्यन्त प्रभाव डालने योग्य प्रक्रम पर एक अच्छी नींव रखी जाने को है, तो यह देखने के लिये प्रयत्न किये जाने चाहिएँ कि अधिक सु-सज्ज तथा अधिक सु-प्रशिक्षित अध्यापक प्राप्य हैं। अतः, हमारा मत है कि समस्त प्राथमिक पाठशाला-अध्यापकों के लिये न्यूनतम सामान्य शैक्षणिक स्तर पाठशाला-त्याग-प्रमाणपत्र[2] होना चाहिए और कि उनके प्रशिक्षण की अवधि

---

1 Optimum. 2 School Leaving Certificate.

दो वर्षों के ऊपर विस्तारित होनी चाहिए तथा इसमें सामान्य एवं व्यावसायिक दोनों विषयों में प्रशिक्षण का समावेश होना चाहिए। वे (प्रशिक्षण-संस्थाएँ) इस प्रयोजन के लिये नियुक्त एक पृथक् मण्डल के नियन्त्रण में होनी चाहिएँ तथा शिक्षा-विभाग के अधीन नहीं। प्रथम वर्ष मुख्यतः सामान्य शिक्षण को अर्पित होगा। द्वितीय वर्ष में, संशिक्षा[1] तथा अध्यापन की रीतियों के प्रयोग-सम्बन्धी विशेष विषयों को पाठ्यक्रम के एक बृहत् भाग का निर्माण करना चाहिए। माध्यमिक-प्रक्रम-प्रशिक्षित अध्यापक मुख्यतः शिशु-शालाओं तथा प्राथमिक अथवा कनिष्ठ आधारभूत[2] पाठशालाओं के लिये सेवायुक्त किये जाने चाहिएँ।

(२) स्नातक अथवा प्रथम-प्रक्रम-अध्यापक-प्रशिक्षण—उन स्नातकों के लिये जिनके लिये प्रशिक्षण, आजकल, एक विद्या-वर्ष का होना चाहिए। हम एक दीर्घावधि कार्यक्रम के रूप में यह सुझाते हैं कि स्नातक अध्यापकों को अपना प्रशिक्षण दो विद्या-वर्षों तक विस्तृत रखना चाहिए। यह तुरन्त शक्य नहीं है। प्रशिक्षण के इस एक वर्ष में, स्नातक अध्यापक कम से कम दो विषयों के अध्यापन की रीतियों में प्रशिक्षित किये जाने चाहिएँ। इस प्रकार चुना हुआ विषय कम से कम मध्यमा अथवा उत्तर माध्यमिक प्रमाणपत्र-स्तर तक अध्ययन किया हुआ होना चाहिए।

(ख) व्यावहारिक प्रशिक्षण[3]

हम विश्वास करते हैं कि यदि प्रत्येक अध्यापक-प्रशिक्षण महाविद्यालय, व्यावहारिक प्रशिक्षण के लिये, अपने से संबद्ध एक

1 Pedagogy. 2 Junior Basic. 3 Practical Training.

पर्याप्त निकट दूरी पर, एक प्रदर्शन[1]-पाठशाला—अधिक सामान्यतः आहूत[2] एक निदर्शन[3]-पाठशाला—तथा अन्य पाठशालाओं की एक निश्चित संख्या रखे, तो यह सुस्थित प्रशिक्षण के लिये सहायक होगा। व्यावहारिक प्रशिक्षण को केवल अध्यापन, अवलोकन, प्रदर्शन तथा पाठों की समालोचना में अभ्यास का ही नहीं बना होना चाहिए, अपितु (उसे) ऐसे विषयों का भी समावेश करना चाहिए जैसे पाण्डित्य-परीक्षाओं[4] का निर्माण तथा प्रबन्ध, पर्यवेक्षण[5] अध्ययन तथा छात्र-परिषदों का संघटन, पुस्तकालय-घण्टों का सञ्चालन, तथा संचयी अभिलेखों[6] का संधारण।

(ग) सह-पाठ्य क्रियाएँ

प्रत्येक छात्राध्यापक को सह-पाठ्य क्रियाओं (पुस्तकाध्यक्षत्व, शारीरिक-शिक्षण, भैषजिक अवेक्षा[7]) में से एक अथवा दूसरी में विशेष प्रशिक्षण प्राप्त करना चाहिए।

(घ) अन्तर्सेवा-प्रशिक्षण[8]

अध्यापक-प्रशिक्षण संस्थाओं को अध्यापक-प्रशिक्षण की इस अन्तर्सेवा-अवस्था में सहायता करने के लिये अपने उत्तरदायित्व को स्वीकार करना चाहिए। उन क्रियाओं में, जिनका प्रशिक्षण महाविद्यालय को उपबन्ध करना चाहिए अथवा जिनमें इसे सहयोग देना चाहिए, (१) अभिनवन-पाठचर्याएँ[9], (२) विशेष विषयों में लघु गहन पाठचर्याएँ, (३) निर्माण-शाला में व्यावहारिक प्रशिक्षण, (४) विमर्शगोष्ठियाँ तथा व्यावसायिक सम्मेलन हैं। इसे अपने कर्मचारि-वृन्द को, जहाँ शक्य हो वहाँ, सुधार के

---

1 Demonstration. 2 Called. 3 Model. 4 Scholastic Tests. 5 Supervision 6 Cumulative Records. 7 Medical Care. 8 Inservice Training. 9 Refresher Courses.

किसी कार्यक्रम का सञ्चालन करने वाली एक पाठशाला अथवा पाठशालाओं के समूह के परामर्शदाताओं के रूप में सेवा करने के लिये भी अनुमत करना चाहिए।

(ङ) प्रशिक्षण संस्थाओं तथा अन्य अभिकरणों के बीच सम्पर्क

प्रशिक्षण संस्थाओं को शिक्षा-विभाग तथा पाठशालाओं के निकट सम्पर्क में होना चाहिए। अतः, अध्यापकों को भर्ती करने में विभाग द्वारा तथा अन्य अभिकरणों द्वारा प्रशिक्षण महाविद्यालयों को परामृष्ट किया जाना चाहिए।

(च) प्रशिक्षण महाविद्यालयों में अन्वेषण

इस प्रयोजन के लिये शैक्षणिक अन्वेषण का सञ्चालन करने की अभिलाषा करने वाले प्रत्येक प्रशिक्षण महाविद्यालय को अपने नियन्त्रण के अधीन पहले ही उल्लिखित अभ्यास-शालाओं के अतिरिक्त एक संपरीक्षा[1] अथवा प्रदर्शन-पाठशाला रखनी चाहिए।

(छ) प्रवेश

प्रशिक्षण महाविद्यालयों में भर्ती सावधानी से की जानी चाहिए जिससे केवल वही प्रवेशित किये जा सकें जो सफल अध्यापक होने का सर्वोच्च होनहारत्व[2] रखते हैं। प्रवेश सामान्यतः सावधानी से प्रकल्पित परीक्षाओं तथा समक्षकारों[3] के पश्चात् होना चाहिए।

(ज) शुल्क

अध्यापकों की एक अत्यन्त बृहत् संख्या के लिये आवश्यकता तथा व्यवसाय तक अध्यापकों का सम्यक् प्ररूप आकर्षित करने के लिये आवश्यकता को भी विचार में लेते

1 Experimental.   2 Promise.   3 Interviews.

हुए, हम अभिस्ताव करते हैं कि प्रशिक्षण महाविद्यालयों में शुल्क नहीं लिया जाना चाहिए और समस्त छात्राध्यापकों को प्रशिक्षण की अवधि में राज्य द्वारा उपयुक्त शिष्यवृत्तियाँ[1] दी जानी चाहिएँ। हम यह भी सुझाते हैं कि पहले से ही सेवा में अध्यापकों को, प्रशिक्षण की अवधि में, वही वेतन दिया जाना चाहिए जो वे पा रहे थे।

(झ) *अवधि*

हम यह सुझाते हैं कि प्रशिक्षण की अवधि, अनावश्यक छुट्टियों की संख्या को हटा कर, १८० दिवसों के एक न्यूनतम तक बढ़ायी जा सकती है।

(ञ) *प्रकृति : निवास प्रशिक्षण महाविद्यालय*[2]

अतः, हम समस्त छात्रों के लिये प्रशिक्षण संस्थाओं के एक निवास प्ररूप का सबल रूप से समर्थन करते हैं। ऐसा निवास उन्हें आत्म-निर्भरता में प्रशिक्षित करेगा, हस्त-श्रम की एक निश्चित राशि प्रदान करेगा, और पाठशाला-परिकरों[3] के भीतर तथा बाहर सामुदायिक जीवन संवर्धित करेगा।

(ट) *शिक्षा में उत्तर-स्नातक पाठचर्या : एम० एड०-उपाधि*

हम अनुभव करते हैं कि शिक्षा में उत्तर-स्नातक पाठ-चर्याओं के लिये क्षेत्र है। वस्तुतः, यह उच्च शिक्षण शिक्षा में नेतृत्व के गुण संवर्धित करने के लिये प्रकल्पित किया जाना चाहिए। हम यह विश्वास करते हैं कि यदि शिक्षा में इस उच्च उपाधि के लिये केवल वही प्रशिक्षित अध्यापक चुने जाते हैं जो सामान्यतः एक पाठशाला में तीन वर्ष के अध्यापन का एक न्यूनतम कर चुके हैं, तो यह एक लाभ होगा। यह वाञ्छनीय है

---

1 Stipends. 2 Residential Training Colleges. 3 Premises.

कि ऐसे अध्यापकों के लिये अध्ययन की उस अवधि के लिये जिसे उन्हें उच्च उपाधि के लिये लेना होगा, छात्रवृत्तियों की एक निश्चित संख्या प्राप्य बनायी जानी चाहिये।

(ठ) *कर्मचारि-वृन्द*

हम विश्वास करते हैं कि (१) एक सामान्य शैक्षणिक योग्यता; (२) अध्यापन में एक उपाधि; तथा (३) एक पाठशाला में एक अध्यापक में रूप में अनुभव के कम से कम पांच वर्ष धारण करते हुए अध्यापकों का एक चुना हुआ कर्मचारि-वृन्द होना चाहिए। तीन से पाँच वर्ष का एक निरीक्षक के रूप में अनुभव समधिक योग्यता हो सकती है। द्वितीय वर्ग-प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थिति में, न्यूनतम योग्यता एक एल० टी० अथवा बी० टी०-योग्यता के साथ एक प्रथम अथवा द्वितीय वर्ग-स्नातक-उपाधि होनी चाहिए। स्नातक प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थिति में न्यूनतम योग्यता (१) एक प्रावीण्य[1] अथवा अधिस्नातक[2]-उपाधि, अथवा विशेष विषय में एक प्रथम वर्ग बी० ए० अथवा बी० एस-सी०-उपाधि, (२) एक व्यावसायिक योग्यता---तीन वर्ष के अध्यापन-अनुभव के साथ एक शिक्षाधिस्नातक[3]-उपाधि अथवा एक निरीक्षक अथवा मुख्याध्यापक के रूप में पाँच वर्ष की सेवा के साथ एक एल० टी० अथवा बी० टी०-उपाधि होनी चाहिए।

(ड) *महिला-अध्यापिकाएँ*

हम स्वीकार करते हैं कि जहाँ तक शिक्षण के शिशु तथा प्राथमिक प्रक्रम सम्बन्धित हैं, पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक अच्छी होती हैं। माध्यमिक पाठशालाओं के बारे में भी, मत

---

1 Honours.   2 Master's.   3 Master of Education.

का एक पर्याप्त अंश इन संस्थाओं में अध्यापिकाओं के रूप में सेवायुक्त होने के लिये महिलाओं को विपुल अवसर देने के पक्ष में है। हम इस मत से सहमत हैं। स्पष्टतः, बालिकाओं की पाठशालाओं में अध्यापक स्त्रियाँ होनी चाहिएँ। एक अल्पावधि नीति के रूप में किसी मूल्य पर, हम उन स्त्रियों के लिये अंश-कालिक पाठचर्याओं के प्राप्य बनाये जाने का अभिस्ताव करेंगे जो कुछ समय दे सकती हैं तथा जो उपयुक्त प्रशिक्षण के साथ अंश-कालिक कर्मकारी के रूप में अध्ययन ले सकती हैं। हम सुझाते हैं कि तीन वर्ष द्वितीय वर्ग-अध्यापिकाओं के लिये अवधि हो सकती हैं तथा दो विद्या-वर्ष स्नातक अध्यापिकाओं के लिये। ये अंश-कालिक छात्राध्यापिकाएँ भी अपने प्रशिक्षण की अवधि में कुछ शिष्यवृत्तियों के लिये पात्र होनी चाहिएँ।

(११) प्रशासन[1] की समस्याएँ

१—संघटन तथा प्रशासन

(क) *समन्वय*

(१) **मन्त्रिसमिति[2] : विभिन्न विभागों तथा मन्त्रालयों में समन्वय**—हमने अवलोकन किया है कि राज्यों में तथा केन्द्र पर, विभिन्न विभाग तथा मन्त्रालय १० से १७ के आयु-काल के लिये शिक्षा के विभिन्न पक्षों के लिये उत्तरदायित्व रखते हैं। इस प्रकार, जबकि शिक्षा-विभाग पाठशाला-शिक्षा से सम्बन्धित क्रियाओं के अधिकांश के लिये उत्तरदायी होता है, अन्य मन्त्रालय हैं जो विशेष प्ररूपों की शिक्षा देने के लिये उनके अपने संघटन रखते हैं। हम अभिस्ताव करते हैं कि,

---

1 Administration. 2 Committee of Ministers.

केन्द्र पर तथा राज्यों में संस्थापित, शिक्षा के विभिन्न प्ररूपों से संबद्ध भिन्न मन्त्रियों तथा वित्त-मन्त्री की बनी एक समिति होनी चाहिए। शिक्षा-मन्त्री समिति का सभापति तथा शिक्षा-सञ्चालक सचिव हो सकता है।

(२) विभाग-अध्यक्ष-समन्वय-समिति—यहाँ हम सुझाते हैं कि शिक्षा, सामान्य, प्रावैधिक[1], कृषि, वाणिज्यिक, तथा अन्य प्ररूपों, के लिये उत्तरदायी विभागों के अध्यक्षों को मिलना चाहिए तथा प्रवर्तमान प्रबन्ध के कार्यकरण एवं इसके विस्तार तथा सुधार की शक्यताओं पर चर्चा करनी चाहिए। शिक्षा-सञ्चालक इस समिति का आयोजक हो सकता है तथा एक उप-शिक्षा-सञ्चालक सचिव के रूप में कार्य कर सकता है।

(ख) शिक्षा-सञ्चालक

शिक्षा-सञ्चालक अपने कार्य में, प्रावैधिक शिक्षण पर विशेषज्ञ मन्त्रणा देने के लिये व्यावसायिक अथवा प्रावैधिक शिक्षा के एक संयुक्त सञ्चालक[2] सहित, विशेषज्ञों की एक संख्या द्वारा साहाय्यित किया जाना चाहिए। विभिन्न उप-सञ्चालकों को शिक्षा के विशेष पक्षों अथवा श्रेणियों से संव्यवहार करना चाहिए और एक उप-शिक्षा-सञ्चालिका होनी चाहिए, जिसका मुख्य उत्तरदायित्व बालिकाओं की शिक्षा को देखना-भालना, तथा यह देखना होना चाहिए कि उनके लिये राज्य की शिक्षा प्रणाली में पर्याप्त सुविधाएँ उपबन्धित की जाती हैं। उसे स्त्री-शिक्षा के विकास के लिये तथा उनकी विशेष आवश्यकताओं एवं समस्याओं पर मन्त्रणा देने के लिये भी उत्तरदायी होना चाहिए।

---

1 Technical. 2 Joint Director.

(ग) माध्यमिक शिक्षा-मण्डल[1]

(१) संघटन—हम अभिस्ताव करते हैं कि माध्यमिक प्रक्रम (सामान्य तथा प्रावैधिक) पर शिक्षा के समस्त विस्तारों से संव्यवहार करने के लिये शिक्षा-सञ्चालक के सभापतित्व में एक माध्यमिक शिक्षा मण्डल होना चाहिए। यह मण्डल विस्तृत अनुभव तथा माध्यमिक शिक्षा के भिन्न पक्षों के ज्ञान से युक्त व्यक्तियों से मिल कर बना होना चाहिए। हम अभिस्ताव करते हैं कि यह २५ से अधिक सदस्यों का, जिनमें से दस व्यावसायिक तथा प्रावैधिक शिक्षा-सम्बन्धी विषयों से विशेषतः सुपरिचित होने चाहिएँ, नहीं बना होना चाहिए। यह उस प्रयोजन के लिये एक पूर्णकालिक कार्यालय-सचिव के साथ इसका अपना कार्यालय तथा स्थापन रखेगा।

(२) मण्डल के कार्य—(i) उच्च पाठशालाओं, उत्तर माध्यमिक पाठशालाओं को मान्यता देने के प्रतिबन्धों तथा शिक्षक-वर्ग को योग्यताओं को रचना, (ii) अध्ययन की भिन्न पाठचर्याओं के लिये, पाठ्यविषयों, इत्यादि पर मन्त्रणा देने के लिये विशेषज्ञों की समितियाँ नियुक्त करना, (iii) उन विशेषज्ञ-समितियों के अभिस्तावों पर पाठचर्याएँ बनाना जो इस प्रयोजन के लिये नियुक्त की जा सकती हैं, (iv) प्रश्नपत्र बनाने वालों, मुख्य-परीक्षकों तथा सहायक-परीक्षकों की तालिकाएँ[2] बनाना, (v) परीक्षकों, सहायक परीक्षकों, इत्यादि के लिये न्यूनतम प्रतिबन्ध विहित करते हुए नियम बनाना, तथा सामान्यतः ऐसे अन्य नियम बनाना जैसे इसके प्रभावशाली कार्यकरण के लिये आवश्यक हो सकें, तथा

---

1 Board of Secondary Education. 2 Panels.

(vi) सामान्यतः, जब अपेक्षित हो, तब माध्यमिक शिक्षा-सम्बन्धी समस्त विषयों पर शिक्षा-सञ्चालक को मन्त्रणा देना।

(३) परीक्षा-समिति—परीक्षाओं के सञ्चालन के बारे में, हम अभिस्ताव करते हैं कि, आयोजक के रूप में शिक्षा-सञ्चालक अथवा सञ्चालकालय के एक ज्येष्ठ सदस्य के साथ, मण्डल की एक लघु समिति, जो पाँच से अधिक सदस्यों की न बनी हो नियुक्त की जानी चाहिए। यह समिति इसकी योजना बनाने तथा सार्वजनिक परीक्षाएँ सञ्चालित करने के लिये और परिणामों को प्रकाशित करने लिये उत्तरदायी होगी।

(घ) *अध्यापक-प्रशिक्षण-संस्था-मण्डल*[1]

जबकि स्नातकों का प्रशिक्षण विश्वविद्यालय-महाविद्यालयों में विन्यस्त[2] होगा, स्नातक-पूर्व अध्यापकों का प्रशिक्षण केन्द्रों की एक बृहत् संख्या में चलाया जाएगा, जिनके पर्यवेक्षण[3] तथा मार्गप्रदर्शन के लिये, हम एक मण्डल की स्थापना का अभिस्ताव करते हैं जो उनके समुचित प्रशिक्षण के लिये आवश्यक प्रतिबन्ध निर्धारित करेगा। सामान्यतः इस मण्डल के कार्य निम्नलिखित होंगे; (१) स्नातक-पूर्व अध्यापक के प्रशिक्षण के लिये योजनाएँ तथा पाठ्य-विषय रचना, (२) ऐसे माध्यमिक-वर्ग-प्रशिक्षण-केन्द्रों को मान्यता देने के लिये प्रतिबन्ध बनाना, (३) इन अध्यापकों के लिये परीक्षाओं की योजनाएँ बनाना, (४) प्रशिक्षण संस्थाओं में भिन्न विषयों के अध्यापकों के लिये आवश्यक योग्यताएँ लिखना, (५) जब कभी आवश्यक हों, विशेषज्ञ-समितियाँ[4] नियुक्त करना तथा अध्ययन के भिन्न

---

1 Board of Teacher Training Institutions. 2 Arranged.
3 Supervision. 4 Export Committees.

व्यावसायिक विषयों में आवश्यक विशेष प्रशिक्षण की योजनाओं पर मण्डल को मन्त्रणा देना, तथा (६) सामान्यतः, जब अपेक्षित हो, तब अध्यापक-प्रशिक्षण-सम्बन्धी समस्त विषयों पर शिक्षा सञ्चालक को मन्त्रणा देना।

(ङ) *शिक्षा का केन्द्रीय मन्त्रणा मण्डल*[1]

हमारा मत है कि एक ऐसे निकाय[2] को शिक्षा से सम्बन्धित अखिल-भारतीय समस्याओं पर विचार करने वाले एक समन्वयकारी अभिकरण के रूप में चालू रहना चाहिए।

(च) *प्रान्तीय मन्त्रणा-मण्डल*

हम अभिस्ताव करते हैं कि शिक्षा-सम्बन्धी समस्त विषयों में विभाग को मन्त्रणा देने के लिये समस्त राज्यों में प्रान्तीय मन्त्रणा-मण्डल संस्थापित किये जाने चाहिएँ। मण्डल शिक्षा के केन्द्रीय मन्त्रणा-मण्डल के समान रेखाओं पर कार्य कर सकता है और अध्यापन-व्यवसाय, विश्वविद्यालयों, उच्च पाठशालाओं तथा उत्तर माध्यमिक पाठशालाओं के प्रबन्धक-वर्गों, शिक्षा के भिन्न क्षेत्रों से संव्यवहार करने वाले विभागों के अध्यक्षों के प्रतिनिधियों, उद्योग, व्यापार तथा वाणिज्य, एवं विधान-मण्डल और सामान्य जनता के प्रतिनिधियों से मिल कर बना होना चाहिए। शिक्षा-मन्त्री को मण्डल का सभापति होना चाहिए और शिक्षा-सञ्चालक अथवा शिक्षा-सचिव को सचिव होना चाहिए।

२—पाठशालाओं का पर्यवेक्षण तथा निरीक्षण

(क) *निरीक्षक*

आजकल निरीक्षक-वर्ग की रचना भिन्न राज्यों द्वारा

---

1. Central Advisory Board of Education. 2 Board.

विभिन्न प्रकार से की जाती है। हमारा विचार है कि एक निरीक्षक के रूप में चुना जाने के लिये व्यक्ति को उच्च साहित्यिक उपाधियाँ (जैसे प्रावीण्य[1] अथवा अधिस्नातक[2] उपाधि) धारण करनी चाहिएँ तथा पाठशालाओं में कम से कम दस वर्ष का अध्यापन-अनुभव रखना चाहिए, अथवा तीन वर्ष की एक न्यूनतम अवधि के लिये एक उच्च पाठशाला का एक मुख्याध्यापक रहा होना चाहिए। प्रत्यक्ष भर्ती के अतिरिक्त निरीक्षक (१) दस वर्ष के अनुभव के अध्यापकों, (२) उच्च पाठशालाओं के अनुभवी मुख्याध्यापकों, (३) प्रशिक्षण महाविद्यालयों के अर्हताप्राप्त कर्मचारि-वृन्द से भी आकृष्ट किये जाने चाहिएँ। हम आगे अभिस्ताव करते हैं कि इन प्रवर्गों के किसी (प्रवर्ग) से उपयुक्त व्यक्ति तीन से पाँच वर्ष की अवधियों के लिये निरीक्षक के रूप में नियुक्त किये जा सकते हैं जिसके पश्चात् वे अपने मूल स्थानों को प्रत्यावर्तित[3] हो सकते हैं।

(ख) निरीक्षक के कर्तव्य

एक निरीक्षक के कर्तव्य प्रशासनात्मक तथा शैक्षणिक में विभाज्य होते हैं। प्रशासनात्मक कर्तव्य अभिलेखों, लेखों, कार्यालय-नैत्यक[4], इत्यादि के वार्षिक निरीक्षण से संबद्ध होते हैं। इस प्रयोजन के लिये उसे एक क्षम कर्मचारि-वृन्द की सहायता प्राप्त होनी चाहिए। इस प्रयोजन के लिये आवश्यक समय ने शैक्षणिक पक्ष पर उसकी क्रियाओं के क्षेत्र को आवश्यक रूप से आयन्त्रित कर दिया है। अतः, हम अभिस्ताव करते हैं कि पाठशाला का शैक्षणिक कार्य सभापति के रूप में

---

1 Honours. 2 Master's. 3 Revert. 4 Routine.

निरीक्षक के साथ विशेषज्ञों की एक तालिका[1] द्वारा पूर्णतया निरीक्षित किया जाना चाहिए और यह तीन वर्ष में एक बार किया जाना चाहिए। हम अभिस्ताव करते हैं कि ज्येष्ठ अध्यापकों अथवा मुख्याध्यापकों में से तीन व्यक्ति चुने जा सकते हैं....।

३—प्रबन्धक-वर्ग तथा मान्यता के प्रतिबन्ध

(क) *प्रबन्धक-वर्गों के प्ररूप*

अपने निरीक्षाटन की अवधि में हमने अनुभव किया कि पाठशाला-प्रबन्धक-वर्गों के अनेक प्ररूप थे। इनमें से ये उल्लिखित किये जा सकते हैं: (१) राज्यों अथवा केन्द्र के द्वारा प्रबद्ध पाठशालाएँ, (२) स्थानीय निकायों, जैसे, जिला मण्डल अथवा नगरपालिकाएँ, द्वारा प्रबद्ध पाठशालाएँ, (३) धार्मिक संघटनों तथा अन्य साम्प्रदायिक निकायों द्वारा प्रबद्ध पाठशालाएँ, (४) पञ्जीयित न्यास मण्डलों[2] द्वारा प्रबद्ध पाठशालाएँ, (५) कुछ वैयक्तिक निकायों द्वारा प्रबद्ध पाठशालाएँ, (६) व्यक्तियों द्वारा प्रबद्ध पाठशालाएँ। जैसाकि वैयक्तिक प्रबन्धक-वर्गों की स्थिति में होता है, स्थानीय मण्डलों को पाठशालाओं के प्रबन्ध के लिये एक लघु निष्पादन-निकाय[3] रखना चाहिए। इस निष्पादन-निकाय को, मण्डल के एक पदेन् सदस्य के रूप में जिला शिक्षा-अधिकारी अथवा निरीक्षक-वर्ग के किसी मनोनीत व्यक्ति के साथ ९ सदस्यों से अधिक नहीं होना चाहिए। नगरपालिकाओं अथवा पञ्चायतों की स्थिति में, जो अपने प्रभार[4] में केवल एक पाठशाला रखती हैं, मुख्याध्यापक निष्पादन समिति का पदेन् सदस्य होना चाहिए।

---

1 Panel. 2 Registered Trust Boards. 3 Executive Body. 4 Charge.

भिन्न राज्यों में धार्मिक संघटनों की एक संख्या भी पाठ-शालाओं का सञ्चालन करती है। तथापि, उनमें से कुछ अन्यत्र निर्देशित विभिन्न दोषों से ग्रस्त हैं, जैसे अधिसंख्या तथा त्रुटियुक्त अर्हताप्राप्त कर्मचारि-वृन्द। कुछ स्थितियों में कर्मचारि-वृन्द की भर्ती धार्मिक अथवा पन्थसीमित विचारों द्वारा प्रभावित की जाती है। साम्प्रदायिक संघटनों द्वारा चालित संस्थाएँ भी देश के भिन्न भागों के ऊपर फैली हैं और उनमें से कुछ उन रेखाओं पर चलायी जाती हैं जो अस्वथ प्रवृत्तियों को बढ़ाने के लिये प्रवृत्त हुई हैं। हम अभिस्ताव करते हैं कि ऐसी पाठ-शालाओं (पञ्जीयित न्यास मण्डलों द्वारा प्रबद्ध) में समस्त बच्चों के प्रवेश को अनुज्ञा देने के लिये ऐसी स्थितियों में (जब प्रबन्धक-वर्ग अपनी पाठशालाओं को सबके लिये खोलने को तय्यार हों, परन्तु न्यास के निबन्धन[1] उसमें बाधक हो रहे हों) विधान पारित किया जाना चाहिए। परन्तु जब तक वह किया जाता है, वे अन्य पाठशालाओं के समान सहायक अनुदान प्राप्त करने के लिये पात्र होनी चाहिएँ। आजकल वैयक्तिक निकायों की एक बृहत् संख्या प्रबन्ध-पाठशालाएँ होती हैं। हमारा मत है कि ऐसे समस्त निकाय पञ्जीयित किये जाने चाहिएँ तथा (उन्हें) पञ्जीयित संस्थाओं के रूप में कार्य करना चाहिए। उन पाठशालाओं की पर्याप्त बृहत् संख्या भी है जो व्यक्तियों के द्वारा "स्वामित्व[2] पाठशालाओं" के रूप में चलायी जाती हैं। हम अनुभव करते हैं कि माध्यमिक पाठशालाएँ ऐसी रेखाओं पर नहीं चलायी जानी चाहिएँ परन्तु कि वे समवाय-अधिनियम[3] के अधीन पञ्जीयित एक उपयुक्त प्रबन्ध-मण्डल से शासित होनी चाहिएँ।

---

1 Terms of the trust.　2 Proprietory.　3 Companies Act.

(ख) वैयक्तिक प्रबन्धक-वर्ग

हम अनुभव करते हैं कि वैयक्तिक प्रबन्धक-वर्ग शिक्षा की योजना में करने के लिये एक महत्वपूर्ण कार्य रखते हैं। तथापि, यह समान रूप से अलंघनीय[1] है कि उन प्रबन्धक-वर्गों को, जो दक्षता के युक्तियुक्त स्तर तक पहुँचने में विफल हुए हैं अथवा जिन्होंने शैक्षणिक अभिरुचियों के प्रति घोर अनियमिताओं अथवा उदासीनता का प्रदर्शन किया है, एक निश्चित अवधि के भीतर इन दोषों को सुधारने के लिये एक स्पष्ट निदेश दिया जाना चाहिए। हम अभिस्ताव करते हैं कि, जहाँ कहीं शक्य हो वहाँ, राज्यों को ऐसी पाठशालाओं को (जो विहित प्रतिबन्धों के अनुरूप होने में विफल रहती हैं) समरूपतः (ब्रिटिश शिक्षा-मन्त्रालय की भाँति) ले लेना चाहिए। यदि यह शक्य न हो, तो इसे ऐसी पाठशालाओं को बन्द करने तथा उन संस्थाओं के छात्रों की शिक्षा के लिये वैकल्पिक प्रबन्ध करने में हिचकिचाना नहीं चाहिए।

(ग) मान्यता[2] के सामान्य स्तर तथा प्रतिबन्ध[3]

(१) पाठशालाओं को केवल उन स्पष्ट रूप से निर्धारित प्रतिबन्धों पर मान्यता दी जानी चाहिए जो उनके समुचित चालन तथा समुचित स्तरों के सन्धारण को सुनिश्चित करेंगे, (२) समस्त पाठशालाओं के प्रबन्ध-मण्डल पञ्जीयित किये जाने चाहिएँ तथा एक पदेन् सदस्य के रूप में मुख्याध्यापक के साथ व्यक्तियों की सीमित संख्या के बने होने चाहिएँ, (३) प्रबन्ध-मण्डल के किसी सदस्य को प्रत्यक्ष रूप से अथवा अप्रत्यक्ष रूप से पाठशाला के आन्तरिक प्रशासन में बाधा

---

1 Imperative. 2 Recognition. 3 Conditions.

नहीं डालनी चाहिए, (४) प्रत्येक प्रबन्धक-वर्ग से सेवा के निश्चित नियम लिखने की अपेक्षा की जानी चाहिए जिनमें वेतन, अवकाश, इत्यादि-सम्बन्धी प्रतिबन्ध निश्चित रूप से निर्धारित किये जाने चाहिएँ, (५) एक पाठशाला के समुचित चालन के लिये, एक स्थायी निधि[1] का उपबन्ध करने के लिये प्रत्येक प्रबन्धक-वर्ग से अपेक्षा की जानी चाहिए तथा इससे प्रोद्भावी[2] आय वर्ष की प्राप्तियों में दिखायी जानी चाहिए, (६) एक पाठशाला के प्रबन्धक-वर्ग द्वारा नियत शुल्क की श्रेणियाँ शिक्षा-विभाग द्वारा अनुमोदन के अधीन होनी चाहिएँ, (७) जब आवश्यक हो, तब शिक्षण-शुल्कों तथा अन्य शुल्कों की एकसम श्रेणी लगाने के प्रश्न पर जाने के लिये शिक्षा-विभाग द्वारा एक समिति नियुक्त की जानी चाहिए और पाठशाला के समस्त लेखे विभाग द्वारा लेखापरीक्षा के अधीन होने चाहिएँ (८) प्रबन्धक-वर्गों को विभाग को यह सन्तोष देना चाहिए कि अर्हताप्राप्त कर्मचारि-वृन्द प्राप्य है तथा विभाग द्वारा सम्बन्धन के लिये निर्धारित नियमों के अनुसार नियुक्त किये जाएँगे, (९) प्रबन्धक-वर्ग को विभाग को यह सन्तोष देना चाहिए कि पाठशाला के दक्ष चालन के लिये पर्याप्त स्थान तथा उपकरण, इत्यादि उपबन्धित किये गये हैं, (१०) प्रत्येक श्रेणी में उपश्रेणियों[3] की संख्या सीमित होनी चाहिए तथा इससे पूर्व कि उपश्रेणियों की संख्या में कोई वृद्धि की जाती है, विभाग का पूर्व अनुमोदन प्राप्त किया जाना चाहिए, (११) पाठशालाओं की सामान्य दक्षता के हितों में, पड़ौसी पाठशालाओं में अनुचित स्पर्धा को रोकते हुए नियम बनाये जाने चाहिएँ,

---

1 Endowment. 2 Accruing. 3 Sections.

(१२) शिक्षक-वर्ग किसी विशेष जाति अथवा समुदाय तक सीमित नहीं होना चाहिए अपितु, यथा-शक्य, एक विस्तृत आधार पर भर्ती किया जाना चाहिए, (१३) शिक्षण की विभिन्नकृत[1] पाठचर्याओं का उपबन्ध करने के महत्व तथा अतिपात[2] की दृष्टि से, अध्ययन की विभिन्नकृत पाठचर्याएँ प्रदान करने वाली प्रवर्तमान पाठशालाओं तथा नवीन पाठशालाओं को वित्त-सहायता एवं प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए, (१४) पाठशालाएँ खोलने से पूर्व प्रबन्धक-वर्गों को शिक्षा-सञ्चालक का पूर्व अनुमोदन प्राप्त करना चाहिए तथा जब तक विहित न्यूनतम प्रतिबन्ध नितान्त पालित न किये गये हों, तब तक अनुमोदन नहीं दिया जाना चाहिए।

४--पाठशाला-भवन तथा सज्जा

(क) *आकाश-पाठशालाएँ*[3]

तथापि, दो कारक आलोकित किये जा सकते हैं: (१) आकाश-प्रणाली अपने को छात्रों के लघु समूहों को वहाँ पढ़ाये जाने के लिये उधार देती है, तथा यह सन्तोषजनक रूप से शिक्षण करने के लिये अच्छी छाया एवं एक बृहत् क्षेत्र की अपेक्षा करती है; (२) जबकि कुछ विषयों में पर्याप्त सैद्धान्तिक शिक्षण आकाश-श्रेणियों में दिया जा सकता है. जब तक उनके लिये उपयुक्त स्थान उपबन्धित नहीं किया जाता है, तब तक कुछ अन्य विषय पढ़ाना असम्भव होता है। इस प्रकार प्रयोगशालाएँ, पुस्तकालय तथा निर्माणशालाएँ उपयुक्त रूप से निर्मित भवनों में स्थित होनी चाहिएँ।

---

1 Diversified. 2 Urgency. 3 Open-Air Schools.

(ख) ग्रामीय पाठशालाएँ

ये पाठशालाएँ जनसंख्या की एक पर्याप्त राशि सहित तथा पड़ौसी गाँवों के लिये सुगमतापूर्वक प्रवेश्य गाँवों में स्थापित की जानी चाहिएँ। वहाँ पाठशाला के क्रीड़ा-स्थलों तथा पाठ्य-बाह्य क्रियाओं के लिये प्राप्य पर्याप्त खुली भूमि भी होनी चाहिए।

(ग) नगरीय पाठशालाएँ

एक नगरीय पाठशाला के लिये स्थान अत्यन्त संकुलित[1] क्षेत्रों में अथवा औद्योगिक क्षेत्रों में नहीं होना चाहिए। पाठशाला यथा-शक्य इस प्रकार स्थित होनी चाहिए कि, जबकि छात्रों के परिवहण के लिये सुविधाएँ प्राप्य हैं, पाठशाला स्वयं नगर-जीवन के कोलाहल तथा संकुलता से मुक्त एक क्षेत्र में होनी चाहिए।

(घ) क्रीड़ा-स्थल

यह वाञ्छनीय है कि समस्त नगरों में, अधिक विशेषतः बड़े नगरों में, "क्रीड़ा-क्षेत्र-आन्दोलन" को बढ़ाने तथा समय समय पर यह देखने के लिये कि नगर में प्राप्य क्रीड़ास्थल पाठशाला जाने वाली जनसंख्या के द्वारा प्रभावशाली रूप से प्रयुक्त किये जाते हैं, राज्य के प्रतिनिधियों के साथ पाठशाला-प्रबन्धक-वर्गों, मुख्याध्यापकों, नगर प्राधिकारियों तथा छात्रों के शारीरिक कल्याण में हितपरायण अन्य व्यक्तियों की प्रतिनिधि एक समिति संघटित की जानी चाहिए।

(ङ) विवृत-स्थान-विधान[2]

नगरों में प्राप्य खुले स्थान पाठशालाओं के समूहों द्वारा

1 Congested. 2 Legislation for Open Spaces.

क्रीड़ास्थल के रूप में उपयोजित होने के लिये संरक्षित किये जाने चाहिएँ तथा राज्य एवं केन्द्रीय शासन को, विधान के द्वारा, उन पर औद्योगिक अथवा वाणिज्यिक प्रयोजनों के लिये अथवा गृह-निर्माणी-समितियों द्वारा अन्याक्रान्ति[1] को रोकना चाहिए। हम अभिस्ताव करते हैं कि जहाँ भी ऐसे खुले स्थान प्राप्य हों, वहाँ उन्हें उपयुक्त क्रीड़ा-क्षेत्रों में परिवर्तित करने के लिये तथा उन्हें संबद्ध क्षेत्र की पाठशालाओं एवं जनता के अधीन रखने के लिये स्थानीय प्राधिकारियों तथा ग्रामीय समुदाय से परामर्श करके राज्य के द्वारा पग उठाये जाने चाहिएँ।

(च) पाठशालाओं की प्ररचना[2]

हम विश्वास करते हैं कि प्रत्येक श्रेणी-कोष्ठ[3] को १० वर्ग फीट प्रति छात्र से कम एक क्षेत्र के लिये उपबन्ध नहीं करना चाहिए। हमारा मत यह भी है कि किसी भी श्रेणी में छात्रों की संख्या सीमित होनी चाहिए जिससे श्रेणी-कोष्ठ इस संख्या को व्यवस्थापित करने के लिये बनाये जाएँ। हम सबल रूप से यह अनुभव करते हैं कि इस आयु-काल पर, अध्यापक तथा अध्यापित के बीच वैयक्तिक संस्पर्श स्थापित करने तथा छात्र पर एक स्वस्थ प्रभाव डालने के दृष्टिकोण से, वह अनुकूलतम संख्या, जो किसी श्रेणी में प्रवेशित की जानी चाहिए, ३० होनी चाहिए तथा अधिकतम ४० से अधिक न होनी चाहिए। हम अभिस्ताव करते हैं कि भविष्य में, पाठशालाएँ इस प्रकार बनायी जानी चाहिएँ कि वे पीछे विभिन्नकृत पाठचर्याओं के एक प्ररूप से अधिक के लिये सुविधाएँ देते हुए बहु-प्रयोजन पाठशालाओं के प्रतिरूप में विकसित हो सकें। हमारा मत है

1 Encroachment. 2 Design. 3 Class Room

कि कुछ पाठशालाओं में प्रत्येक श्रेणी में उपश्रेणियों की संख्या बढ़ाने तथा पाठशाला में समस्त संख्या में वृद्धि करने की वर्तमान प्रवृत्ति प्रोत्साहित नहीं की जानी चाहिए।

(छ) पाठशालाओं का निर्माण

पाठशाला को (१) छात्रों के लिये ऐसी कुछ सुखसुविधाओं जैसे सामान्य-कोष्ठ, स्वच्छता-सुविधाएँ, लिया जाने के लिये मध्याह्न-भोजन तथा अल्पाहार, और बालिका छात्रों की स्थिति में पृथक् पृथक् आवश्यक सुविधाओं के साथ विश्राम-कोष्ठ; (२) उनके लिये प्राप्य एक सामान्य-कोष्ठ के साथ अध्यापकों के लिये स्थान; (३) एक वाचनालय तथा एक पुस्तकालय; (४) एक दर्शक-कोष्ठ, जहाँ वे मातापिता अथवा सम्बन्धी प्रतीक्षा कर सकें जो मुख्याध्यापक से मिलने की अभिलाषा करते हैं; (५) मुख्याध्यापक के लिये एक कोष्ठ तथा एक कार्यालय-कोष्ठ; और, यदि एक ऐसा व्यक्ति नियुक्त किया जाए, तो सहायक मुख्याध्यापक के लिये एक कोष्ठ; (६) जहाँ आवश्यक हों, वहाँ प्रयोगशालाओं तथा निर्माणशालाओं का, ऐसी प्रयोगशालाएँ तथा निर्माणशालाएँ एक अनुमोदित योजना पर तथा छात्रों की एक निश्चित संख्या के लिये बनायी जाकर, उपबन्ध करना चाहिए।

(ज) भवन-निर्माण में अन्वेषण

पाठशालाओं को प्ररूप प्ररचना[1] तथा उपस्कर[2], इत्यादि में कार्यकारी दक्षता को सुधारने तथा उन्हें भारतीय दशाओं के उपयुक्त बनाने के लिये अन्वेषण किया जाना चाहिए। उपस्कर, समुचित बैठकासनों[3], इत्यादि को विकसित करने के लिये, वयो-वर्ग के उपयुक्त होने चाहिएँ।

---

1 Type Design. 2 Furniture. 3 Sitting Postures.

(झ) *सज्जा*

हम अनुभव करते हैं कि यह अध्ययन की विभिन्नकृत पाठचर्याओं में और अधिक आवश्यक होगी...। अतः हम अभिस्ताव करते हैं कि, निर्माणशाला-सज्जा तथा उन छात्रों की संख्या समेत, जो निर्माणशाला में सुविधापूर्वक उपस्थापित किये जा सकते हैं, इन विभिन्नकृत पाठचर्याओं में से प्रत्येक के लिये अपेक्षित सज्जा निर्धारित करने के लिये विशेषज्ञ-समितियाँ नियुक्त की जानी चाहिएँ।

(ञ) *श्रव्य-दृश्य-साहाय्य*[1]

हम अनुभव करते हैं कि इस प्रयोजन के लिये उपयुक्त उपबन्ध किया जाना चाहिए। ऐसी सज्जा में चलचित्र तथा चित्रपट्टी-प्रक्षेपक[2], वितन्तु[3], माया-दीप[4] तथा छाया-क्षेपित्र[5], इत्यादि उल्लिखित किये जा सकते हैं।

(ट) *निवास-पाठशालाएँ*

निवास-पाठशालाओं को केवल छात्रों के लिये ही नहीं, अपितु अध्यापकों में से कुछ के लिये भी स्थान का उपबन्ध करना चाहिए। निवास-पाठशालाओं की प्ररचना में, पुस्तकालय के लिये, आभ्यन्तर खेलों, भोजनप्रशालों, शयनागारों तथा अस्वस्थ की अवेक्षा एवं पृथकता के लिये पृथक् स्थान के लिये समुचित स्थान का उपबन्ध किया जाना चाहिए।

(ठ) *दिवस-निवास पाठशालाएँ*

इस सम्बन्ध में हम समस्त दिवस पाठशालाओं में खोली जाने के लिये एक आहारिका[6] के लिये आवश्यकता पर बल देने की अभिलाषा करते हैं।

---

1 Audio-Visual Aids. 2 Film-Strip Projectors.
3 Radio. 4 Magic Lantern. 5 Epidioscopes. 6 Cafeteria.

(ड) सहकारी विक्रयागार[1]

हम यह भी अभिस्ताव करते हैं कि, लगभग क्रय-मूल्य पर पाठशाला-आवश्यकताओं का उपबन्ध करते हुए, समस्त पाठशालाओं में सहकारी विक्रयागार स्थापित हों। पाठशाला-प्ररचना को स्वभावतः आहारिका तथा सहकारी विक्रयागार की आवश्यकताओं का आलोक लेना चाहिए।

(ढ) पाठशाला-कर्मचारि-वृन्द के लिये वासगृह[2]

हम विचार करते हैं कि यह, स्त्री-अध्यापिकाओं के लिये बालिका-पाठशालाओं की स्थिति में, विशेष रूप से आवश्यक है तथा केवल वाञ्छनीय ही नहीं। हम यह अभिस्ताव भी करते हैं कि बाल-पाठशालाओं के शिक्षक-वर्ग के लिये वासगृहों का उपबन्ध किया जाना चाहिए, विशेष रूप से ग्रामीय क्षेत्रों में जहाँ आजकल अध्यापकों की बहुसंख्या के लिये वासगृह प्राप्य नहीं हैं। नगरीय क्षेत्रों में भी यथा-शक्य वासगृह उपबन्धित हों। ऐसा करने में, राज्य को पाठशालाओं की सहायता के लिये आना चाहिए।

५—कार्य के घण्टे तथा ग्रीष्मावकाश

(क) कार्य के घण्टे

हम अनुभव करते हैं कि पाठशालाओं को अपने पाठशाला-घण्टों को इस प्रकार से विन्यस्त करने के लिये पर्याप्त छूट दी जानी चाहिए कि वे समुदाय के जीवन में अथवा उसमें प्रवर्तमान सामान्य दशाओं में हस्तक्षेप न करें। न हम ऋतु-विभेदों से स्वतन्त्र रूप में समस्त पाठशालाओं के लिये सामान्य नियत घण्टे

---

1 Co-operative Stores. 2 Quarters.

रखना वाञ्छनीय समझते हैं। हम अभिस्ताव करते हैं कि एक पाठशाला में कार्य-दिवसों की कुल संख्या २०० से कम नहीं होनी चाहिए, कि प्रति सप्ताह कार्य-समय, पाठशाला को पाठ्य-बाह्य-क्रियाओं में से कुछ के लिये प्रयुक्त समय समेत, प्रत्येक ४५ मिनिट्स की कम से कम ३५ अवधियाँ[1] हो। पाठशाला को सप्ताह में ६ दिवस के लिये, इन दिवसों में से एक अर्ध दिवस हो कर जब अध्यापक तथा अध्यापित पाठ्य-बाह्य क्रियाओं के अनुसरण को विशेष ध्यान दे सकते हैं, नियमित रूप से कार्य करना चाहिए।

(ख) *ग्रीष्मावकाश तथा छुट्टियाँ*

सम्भवतः, कोई देश उतनी छुट्टियों का उपभोग नहीं करता जितनी भारत तथा विभिन्न धार्मिक कार्यों के लिये दी गयी असंख्य छुट्टियों के साथ, पाठशाला का कार्य गम्भीर रूप से बाधित होता है। हम अभिस्ताव करते हैं कि पाठशाला छुट्टियों को शासन द्वारा घोषित छुट्टियों के अनुसार होने की आवश्यकता नहीं है, कि ग्रीष्म में दो मास का ग्रीष्मावकाश दिया जाना चाहिए, और कि वर्ष में उपयुक्त अवसरों पर १० से १५ दिवस के दो अन्तराय[2] होने चाहिएँ।

६—लोक-सेवाओं में भर्ती

(क) *वर्तमान स्थिति*

आजकल लोक-सेवाओं की भिन्न श्रेणियों के लिये अभ्यर्थियों[3] को चुनने के लिये लोक-सेवा-आयोग एक स्पर्धी-परीक्षा करता है। कार्य के स्वाभावानपेक्ष सेवाओं के अधिकांश में भर्ती के लिये अधिकतम अवस्था २५ वर्ष होती है। इस प्रकार

1 Periods. 2 Breaks. 3 Candidates.

एक लड़के से इस व्यर्थ आशा में २५ की आयु तक अध्ययन की उच्च पाठचर्याओं का बलात् अनुसरण कराया जाता है कि, किसी न किसी प्रकार, अपने शैक्षणिक जीवन के किसी समय पर वह एक स्पर्धा-परीक्षा के द्वारा एक निम्न-संभाग-लिपिक[1] का अति उत्सुक पद प्राप्त करने के योग्य हो सकता है। शिक्षा के उच्च क्षेत्रों में शिक्षा-संस्थाओं की अतिभीड़ इसके परिणामों में से एक है। एक उच्च पद के लिये पदोन्नति उसके कार्य अथवा उसके द्वारा उत्तीर्ण विशेष परीक्षाओं पर नहीं अपितु उसके एक उपाधि के लिये योग्य करने पर आधारित होती है। यह गृह-अध्ययन के पश्चात् विश्व-विद्यालय परीक्षाओं के लिये उपस्थित होने के लिये शासन-सेवा के सेवायुक्तों को अनुज्ञा देने तथा एक उच्च अर्हता प्राप्त करने के लिये विश्वविद्यालयों के ऊपर एक सतत भार में परिणत हो चुका है।

(ख) सुधारार्थ सुझाव

(१) भर्ती के तीन स्तर—भर्ती १६ से १८, १९ से २१ तथा २२ से २४ विभिन्न वयो-अवधियों पर की जानी चाहिए। उस कार्य के प्ररूप के लिये अग्रिम प्रशिक्षण की रीति अधि-योजित करना संबद्ध विभाग पर छोड़ दिया जाना चाहिए जो प्रत्याशित है।

(२) भर्ती की दशाओं का अध्ययन—अतः हम अभिस्ताव करते हैं कि भर्ती की दशाओं का एक सावधान अध्ययन किया जाना चाहिए और कि एक विश्वविद्यालय-उपाधि केवल ऐसे पदों के लिये विहित[2] की जानी चाहिए जैसे, मुख्यतः व्यावसायिक—

---

1 Lower Division Clerk. 2 Prescribed.

जहाँ उच्च साहित्यिक योग्यताप्राप्तियाँ[1] स्पष्टतः आवश्यक होती हैं।

(३) लोक-सेवा-परीक्षण--हम अभिस्ताव करते हैं कि लोक-सेवा के लिये भर्ती की सम्पूर्ण प्रणाली विशेष रूप से यह देखने के लिये नियुक्त एक दक्ष समिति द्वारा नये सिरे से निरीक्षित की जानी चाहिए कि भर्ती की रीतियाँ कहाँ तक सुधारी जा सकती हैं तथा शिक्षा के भिन्न स्तरों में वे किस प्रकार सर्वोत्तम प्रयुक्त की जा सकती हैं।

(४) अन्वीक्षा[2]-- हम यह भी अभिस्ताव करते हैं कि एक संक्रमण-काल के लिये भर्ती की वे रीतियाँ, जो हमने आयु-सीमा पर आधारित सुझायी हैं, पदों के लगभग ५० प्रतिशत के लिये अन्वीक्षित की जानी चाहिएँ, जबकि शेष के लिये भर्ती वर्तमान आधार पर की जा सकती है। इन रीतियों के परिणाम, इससे पूर्व कि समस्त पद एक एकसम आधार पर समझे जाते हैं, सावधानी से देखे जाने चाहिएँ।

(१२) वित्तव्यवस्था

१—केन्द्र तथा राज्यों के बीच सहयोग

अतः, यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि माध्यमिक शिक्षा के सुधार से सबद्ध समस्त विषयों में राज्यों तथा केन्द्र के बीच उन रेखाओं, जिन पर शिक्षा को विकसित होना चाहिए तथा उस रीति, जिसमें अभिस्ताव परिपालित किये जाने चाहिएँ, दोनों में पूर्णतम सहयोग होना चाहिए।

---

1 Academic Attainments. 2 Trial.

२—आगम के स्रोत[1]

(क) वर्तमान स्रोत

आजकल, राज्य-स्तर पर शैक्षणिक प्रयोजनों के लिये आगम के स्रोत हैं : (१) राज्य-शासन-अनुदान; (२) नगर-पालिका तथा अन्य स्थानीय निकायों द्वारा प्रत्यक्षतः अथवा एक शिक्षा-उपकर[2] के द्वारा किये गये अनुदान; (३) वैयक्तिक धर्मदान[3] तथा वैयक्तिक प्रबन्धक-वर्गों द्वारा किये गये अनुदान; तथा (४) पाठशाला शुल्क।

(ख) वित्तव्यवस्था के अन्य स्रोत

(१) प्रावैधिक शिक्षा-उपकर—अतः, हम अभिस्ताव करते हैं कि, इसकी ठीक-ठीक दर तथा संग्रह की रीतियों का निर्धारण प्रत्येक संबद्ध उद्योग के सम्बन्ध में निर्धारण करने के लिये एक विशेषज्ञ समिति पर छोड़ा जा कर, औद्योगिक-शिक्षा-उपकर आहूत[4] एक उपकर लगाया जाए। यह उपकर प्रत्येक उद्योग की आवश्यकताओं को विचार में लेते हुए, माध्यमिक प्रक्रम पर, केवल प्रावैधिक तथा व्यावसायिक शिक्षा को आगे बढ़ाने के लिये उपयोजित किया जाना चाहिए। उद्योग, व्यापार तथा वाणिज्य के प्रतिनिधि प्रावैधिक शिक्षा के कार्य-क्रम से संबद्ध होने चाहिएँ।

(२) लोकोपकार[5]–हमें प्रतीत होता है कि शैक्षणिक प्रयोजनों के लिये लोकोपकारी सहायता को आकर्षित करने के लिये कुछ विशेष उद्दीपक अपेक्षित हैं। इसका आलोक लेते हुए, केन्द्रीय शासन पहले ही कुछ नियम पारित पर चुका है जिनके

---

1 Sources of Revenue. 2 Educational Cess. 3 Benefactions.
4 Called. 5 Public Philanthropy.

अधीन विश्वविद्यालयों तथा अन्वेषण संस्थाओं के समान कुछ संस्थाओं को किये गये अंशदान एक विहित सीमा तक आयकर से मुक्त किये जाते हैं। हम अभिस्ताव करते हैं कि यह नियम विस्तृत हो जिससे किसी वर्ष में किसी व्यक्ति द्वारा माध्यमिक शिक्षा के लिये सामान्यतः २५,०००) की एक सीमा तक तथा प्रावैधिक शिक्षा के लिये ५०,०००) की एक सीमा तक किये गये अंशदान आयकर-अधिनियम के प्रयोग से मुक्त किये जा सकें।

(३) धार्मिक तथा पूत नीवियाँ[1]—हम विश्वास करते हैं कि, कुछ राज्यों में, धार्मिक तथा पूत नीवियों की आय का कुछ शैक्षणिक प्रयोजनों के लिये प्रयुक्त होने के लिये विधान-मण्डल के एक अधिनियम द्वारा उपबन्ध किया जा चुका है। हम विश्वास करते हैं कि तत्सम उपबन्ध उन अन्य राज्यों में किये जाएँगे जहाँ ऐसा विधान पहले ही लागू नहीं है।

(४) सम्पत्ति-शुल्क[2]—हम यह भी अभिस्ताव करेंगे कि एक मृत व्यक्ति के इच्छापत्र में सामान्य शैक्षणिक प्रयोजनों के लिये सार्वजनिक संस्थाओं को दी गयी राशियाँ केन्द्र द्वारा किसी कर के अधीन नहीं होनी चाहिएँ और कि इस राशि का सम्पूर्ण उन शैक्षणिक प्रयोजनों के लिये विनियोजित किया जाना चाहिए जिनके लिये वे अर्थ रखती हैं।

(ग) अन्य उपाय

(१) शैक्षणिक भवनों पर स्थानीय करों से मुक्ति—यदि शिक्षा एक राष्ट्रिय उत्तरदायित्व है, तो यह वाञ्छनीय नहीं है कि उनके भवनों तथा स्थलों पर कर लगाये जाने चाहिएँ और हम अभिस्ताव करते हैं कि चाहे वे नगरीय अथवा ग्रामीय

---

1 Charitable Endowments. 2 Estate Duties.

क्षेत्रों में, नगरपालिकाओं में अथवा निगमों में स्थित हों, वे इस कर के आरोपण से मुक्त किये जाने चाहिएँ।

(२) पुस्तकों तथा वैज्ञानिक साधित्रों[1] की सीमाशुल्कों[2] से मुक्ति—उस समय तक जब तक आवश्यक वैज्ञानिक साधित्र तथा उपकरण देश में निर्मित किये जा सकते हैं, हम अभिस्ताव करते हैं कि वे शैक्षणिक संस्थाएँ सीमाशुल्क से मुक्त की जानी चाहिएँ जिन्हें वैज्ञानिक साधित्र तथा निर्माणशाला-उपकरण विदेश से प्राप्त करने पड़ते हैं। उसी प्रकार हम अभिस्ताव करते हैं कि पाठशाला-पुस्तकालयों के लिये पुस्तकें समरूपतः कर से मुक्त हो सकती हैं।

(३) माध्यमिक शिक्षा के लिये केन्द्रीय सहायता—हम अनुभव करते हैं कि जहाँ तक केन्द्र का सम्बन्ध है, माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में कुछ प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व लिये जा सकते हैं। केन्द्र ऐसे प्रयोजनों के लिये वित्त-साहाय्य दे सकता है जैसे निम्नलिखित : (१) विभिन्नकृत पाठचर्याएँ उपबन्धित करते हुए माध्यमिक पाठशालाओं का आरम्भण, अधिक विशेष रूप से ग्रामीय क्षेत्रों में, (२) बच्चों तथा अध्यापकों के लिये अधिक अच्छी पुस्तकों का उत्पादन, (३) पारिभाषिक विषयों में अध्यापकों को प्रशिक्षित करने के लिये संस्थाओं की स्थापना; (४) माध्यमिक शिक्षा की ऐसी महत्त्वपूर्ण समस्याओं में अन्वेषण को प्रोत्साहित करने के लिये केन्द्रों की स्थापना; जैसे (i) अध्ययन के पाठ्यक्रम, (ii) व्यावसायिक मार्गप्रदर्शन, (iii) शारीरिक एवं स्वास्थ्य-शिक्षा, (iv) अध्यापन की रीतियाँ, (v) पुस्तक-उत्पादन-अन्वेषण, (vi) परीक्षा की प्रविधि[3];

---

1 Apparatus.　2 Customs Duties.　3 Technique.

(५) अभिनवन पाठचर्याओं[1], विमर्शगोष्ठियों तथा मुख्याध्यापकों के सम्मेलनों का संघटन; (६) उपयुक्त शैक्षणिक चलचित्रों तथा श्रव्य-दृश्य-साहाय्यों[2] का उत्पादन, (७) अनुमोदित संपरीक्षा[3] पाठशालाओं का प्रोत्साहन।

३——व्यावसायिक-शिक्षण-संधानीय-मण्डल[4]

अतः, हम अभिस्ताव करते हैं कि कुछ कुछ तत्सम (अमेरिका का *Moral Act, 1862* तथा *National Vocational Education Act [Smith-Hughes Act], 1915*) आधार पर एक उपयुक्त अधिनियम पारित किया जाना चाहिए जो संबद्ध भिन्न मन्त्रालयों को माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में अपने संसाधनों को संगृहीत करने तथा भिन्न राज्यों में व्यावसायिक शिक्षण के विकास को पर्यवेक्षित करने के लिये समर्थ बनायेगा। हम अभिस्ताव करते हैं कि केन्द्र पर व्यावसायिक शिक्षण-संधानीय-मण्डल पुकारा जाने के लिये एक मण्डल संस्थापित किया जाना चाहिए। इस मण्डल के लिये निधियाँ भिन्न मन्त्रालयों द्वारा अंशदत्त की जानी चाहिएँ, अधिक विशेष रूप से शिक्षा, संयान[5] तथा संचार, अन्न तथा कृषि, उद्योग, व्यापार तथा वाणिज्य मन्त्रालय। मण्डल, वित्त तथा प्रतिरक्षा-मन्त्रालयों के प्रतिनिधियों के साथ, ऊपर उल्लिखित भिन्न मन्त्रालयों के प्रतिनिधियों का बना होना चाहिए। सामान्य जनता का प्रतिनिधित्व करने के लिये, गणराज्य का राष्ट्रपति इसके लिये तीन प्रतिष्ठित व्यक्ति मनोनीत कर सकता है। मण्डल का

1 Refresher Courses. 2 Audio-Visual Aids.
3 Experimental. 4 Federal Board for Vocational Education. 5 Railway.

सभापति केन्द्र पर शिक्षा-मन्त्री होना चाहिए तथा शिक्षा-मन्त्रालय का सचिव इसका सचिव होगा। मण्डल अधिनियम के उपबन्धों को कार्यान्वित करने में राज्य-मण्डलों से सहयोग करने की शक्ति रखेगा।

ग—समीक्षा

पूर्वगत पृष्ठों में माध्यमिक शिक्षा-आयोग के अभिस्तावों का उल्लेख किया गया है। सैद्धान्तिक दृष्टि से, इनमें से अनेक अभिस्तावों से विचारकों को मतभेद हो सकता है, परन्तु यह निर्विवाद है कि वे अत्यन्त व्यावहारिक अभिस्ताव हैं और, यदि उनके अनुसार भारत की माध्यमिक शिक्षा-प्रणाली का पुनःसंघटन किया जाए तो इससे देश का बड़ा हित होगा। एक देश की शिक्षा-प्रणाली में माध्यमिक प्रक्रम की स्थिति कुछ ऐसी होती है कि शिक्षा-सुधार के किसी भी कार्यक्रम में उसे ही पूर्वता मिलनी चाहिए। इसके चार मुख्य कारण हैं: (१) प्राथमिक एवं प्रौढ़-शिक्षा-क्षेत्रों के लिये अध्यापकों का उत्पादन इसी प्रक्रम पर होता है, (२) यह प्रक्रम छात्रों को उच्च शिक्षा के लिये तय्यार करता है, (३) यह प्रक्रम छात्रों की बहुसंख्या को जीवन के प्रत्यक्ष संस्पर्श में लाता है, तथा (४) यह प्रक्रम देश के नेतृत्व की नींव रखता है। अभाग्यवश, आर्थिक कारणों से अभी तक माध्यमिक शिक्षा-आयोग के समस्त अभिस्तावों को व्यावहारिक रूप नहीं दिया जा सका है। आगामी पंक्तियों में हम इस आयोग के अभिस्तावों के प्रकाश में भारत की माध्यमिक शिक्षा की प्रगति का अधिमूल्यन करेंगे।

(क) माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य

मुदालिअर-प्रतिवेदन का यह अभिस्ताव सचमुच एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अभिस्ताव है कि भारतीय माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण लोकतन्त्रात्मक भारत की शैक्षणिक आवश्यकताओं के अनुसार होना चाहिए। कहने की आवश्यकता नहीं कि माध्यमिक शिक्षा-आयोग द्वारा अभिस्तावित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये पहले हमें अपनी माध्यमिक शिक्षा-प्रणाली का पुनःसंघटन करना होगा जो एक अत्यन्त व्ययसाध्य कार्य है। अतः भारत की वर्तमान माध्यमिक शिक्षा अपने प्राचीन उद्देश्यों से पूर्ववत् प्रभावित है। वह छात्रों को मुख्यतः विश्वविद्यालयों के लिये ही तय्यार करती है। उसकी जीवन की अभिधारणा मुख्यतः लिपिक-कार्य (*Clerical Work*) तक ही सीमित है। फलतः वह छात्रों को जीवन के लिये तय्यार नहीं करती और जो छात्र माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् पढ़ना समाप्त कर देते हैं वे या तो केवल क्लर्कों के रूप में अपना निर्वाह अर्जित कर सकते हैं अथवा बेकारों की संख्या में वृद्धि करते हैं। दुख एवं आश्चर्य की बात तो यह है कि माध्यमिक पाठशालाओं में विशेष एवं व्यावसायिक पाठ-चर्याओं को लेने वाले छात्र भी स्वतन्त्र रूप से हस्त-कार्य की अपेक्षा क्लर्क होना अधिक महत्वपूर्ण समझते हैं। हमें अपने छात्रों की इस भावना में परिवर्तन करना चाहिए तथा उनमें श्रम की गरिमा का अधिमूल्यन करने की क्षमता का विकास करना चाहिए।

(ख) माध्यमिक शिक्षा की अवधि

लक्ष्मणस्वामी-आयोग ने सप्तवर्षीय माध्यमिक शिक्षा प्रक्रम

का अभिस्ताव किया है। उसने मध्यमा (*Intermediate*)-महा-विद्यालयों का अन्त करके उसके प्रथम वर्ष को माध्यमिक शिक्षा-प्रक्रम में तथा द्वितीय वर्ष को प्रथम उपाधि-प्रक्रम में जोड़ देने की योजना का भी समर्थन किया है। वस्तुतः, मध्यमा प्रक्रम के उत्सादन से हमें कोई हानि न होगी। परन्तु इस अभिस्ताव को व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिये एक बड़ी धनराशि की आवश्यकता होगी। सैद्धान्तिक रूप से भारत के समस्त राज्यों ने इस व्यवस्था को स्वीकार कर लिया है और केन्द्र को यह आश्वासन् दिया है कि वे यथा-शीघ्र उसे व्यावहारिक रूप देने का प्रयत्न करेंगे। इस व्यवस्था से भारतीय शिक्षा-प्रणाली के विभिन्न प्रक्रमों के बीच समन्वय आ जाएगा तथा पारस्परिक अतिक्रमण का अन्त हो जाएगा जो कि एक सुस्थित शिक्षा-प्रणाली की प्रथम विशेषता होती है।

(ग) बहुपार्श्व अथवा बहुप्रयोजन पाठशालाएँ

प्रो० हुमायूँ कबीर के शब्दों में "इस आयोग ने जो अनेक महत्वपूर्ण अभिस्ताव किये थे, उनमें से सबसे महत्वपूर्ण स्थान बहुप्रयोजन विद्यालयों की स्थापना के अभिस्ताव को दिया जा सकता है।" आधुनिक मनोवैज्ञानिकों के मतानुसार लगभग १३ वर्ष की अवस्था से बालकों की विशेष अभियोग्यताएँ एवं अभिरुचियाँ पृथक् पृथक् दिखायी पड़ने लगती हैं। अतः यह आवश्यक है कि प्रत्येक छात्र की माध्यमिक शिक्षा उसकी विशेष अभिरुचियों एवं अभियोग्यताओं के अनुसार हो। इस समय समस्त बच्चों को एकपक्षीय पाठशालाओं में शिक्षा देना उचित नहीं कहा जा सकता। भारत शासन तथा राज्य शासन दोनों ने बहुप्रयोजन पाठशालाओं के महत्व को समझा है और इस

प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया है। फलतः प्रथम पञ्चवर्षीय योजना के अन्तर्गत भारत में लगभग २५० बहु-प्रयोजन पाठशालाओं की स्थापना की गयी थी और द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना का उद्देश्य इस संख्या को ११८७ तक पहुँचा देना है।

(घ) *कृषि-शिक्षण*

माध्यमिक शिक्षा-आयोग ने कृषि-शिक्षण के विकास के लिये समस्त देश में कृषि-विद्यालयों की स्थापना का सुझाव दिया है। भारत-शासन कृषि-शिक्षण के विकास के लिये अत्यन्त प्रयत्नशील है। फलतः उसने १९५४ में एक "ग्रामीण उच्च-शिक्षण-समिति" की नियुक्ति की है। इस समिति के अभिस्तावों के अनुसार ग्रामीय उच्च शिक्षण के विकास से सम्बन्धित समस्त विषयों पर शासन को मन्त्रणा देने के लिये एक "ग्रामीय क्षेत्रों में उच्च शिक्षण के लिये राष्ट्रिय परिषद्" की स्थापना की गयी है। परिषद् ने १० संस्थाओं को ग्रामीय संस्थाओं में विकसित करने के लिये चुना है।

(ङ) *प्रावैधिक शिक्षण*

माध्यमिक शिक्षा-आयोग ने प्रावैधिक शिक्षण के विकास के लिये अनेक महत्वपूर्ण सुझाव दिये हैं। आजकल भारत में प्रावैधिक शिक्षण के विकास की ओर पर्याप्त ध्यान दिया जा रहा है। केन्द्रीय शासन की योजना के अनुसार उपाधि एवं पत्रोपाधि (*Diploma*)-पाठचर्याएँ प्रदान करने वाली प्रौद्योगिकीय संस्थाओं को अनावर्ती व्यय (*Non-recurring expenditure*) का ७५% केन्द्र द्वारा दिया जाता है, तथा शेष २५% की पूर्ति राज्यों एवं संबद्ध संस्थाओं द्वारा की जाती है। प्रथम

पञ्चवर्षीय योजना के अधीन, १९५५ तक प्रावैधिक शिक्षण के लिये केन्द्र द्वारा १.४४ करोड़ रुपये के अनुदान दिये गये थे। द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना में केन्द्र द्वारा ८ नवीन आभियान्त्रिक महाविद्यालयों (*Engineering Colleges*) तथा ३१ नवीन बहु-प्रविधि विद्यालयों (*Polytechnics*) का उपबन्ध करने की योजना है। अब तक इनमें से ६ महाविद्यालयों तथा १८ बहुप्रविधि विद्यालयों ने कार्य करना आरम्भ कर दिया है। इसके अतिरिक्त वैयक्तिक क्षेत्र (*Private Sector*) में केन्द्रीय सहायता से ६ आभियान्त्रिक महाविद्यालयों तथा १२ बहुप्रविधि विद्यालयों ने कार्य करना प्रारम्भ कर दिया है। "प्रावैधिक शिक्षण के लिये अखिल-भारतीय-परिषद्" के अभिस्तावों के अनुसार अनेक राज्यों में "प्रावैधिक शिक्षण एवं प्रशिक्षण-राज्य-मण्डल" स्थापित किये जा चुके हैं।

(च) स्त्री-शिक्षा

माध्यमिक शिक्षा-आयोग ने स्त्री-शिक्षा-सम्बन्धी समस्त प्रश्नों पर विस्तारपूर्वक विचार नहीं किया है। आयोग के ये अभिस्ताव अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं कि जहाँ माँग हो वहाँ बालिकाओं के लिये पृथक पाठशालाएँ खोली जानी चाहिएँ तथा मिश्रित पाठशालाओं में उन्हें उनकी विशेष आवश्यकताओं के अनुसार सुविधाएँ दी जानी चाहिएँ। परन्तु, हम आयोग के इस मत से सहमत नहीं हैं कि गृह-विज्ञान के अतिरिक्त लड़कों तथा लड़कियों की शिक्षा में कोई भेद नहीं होना चाहिए। हमारा विचार है कि शिक्षा लड़कों को लड़कों के रूप में तथा लड़कियों को लड़कियों के रूप में दी जानी चाहिए और दोनों के लिये अपने अपने क्षेत्र में समान एवं समस्त सुविधाओं की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(छ) *भाषाओं का अध्ययन*

मुदालिअर-आयोग ने भाषाओं के अध्ययन के प्रश्न पर दो महत्वपूर्ण बातें कही हैं : (१) माध्यमिक प्रक्रम पर शिक्षा का माध्यम मातृभाषा अथवा प्रादेशिक भाषा होनी चाहिए तथा (२) माध्यमिक प्रक्रम पर प्रत्येक बच्चे को कम से कम तीन भाषाओं का अध्ययन करना चाहिए, मातृभाषा अथवा प्रादेशिक भाषा, हिन्दी तथा आङ्गल। इस त्रिभाषा-सूत्र को समस्त राज्यों ने स्वीकार किया है और मद्रास के अतिरिक्त समस्त राज्यों में माध्यमिक प्रकम पर हिन्दी का अध्ययन अनिवार्य बना दिया गया है। राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी के विकास के लिये केन्द्र द्वारा एक पन्द्रह-वर्षीय-कार्यक्रम स्वीकार किया गया है और हिन्दी में पारिभाषिक शब्दावलि के निर्माण के लिये "वैज्ञानिक-पारिभाषिक-शब्दावलि-मण्डल" के अधीन २३ विशेषज्ञ समितियाँ नियुक्त की गयी हैं। अब तक लगभग १,०७,००० पारिभाषिक शब्दों का निर्माण हो चुका है।

(ज) *पाठ्यक्रम*

शिक्षा के केन्द्रीय मन्त्रणा-मण्डल ने आयोग के अवधि तथा पाठ्यक्रम-सम्बन्धी अभिस्तावों पर विचार किया और भारत शासन ने उन्हें स्वीकार कर लिया। तत्सम्बन्धी दोषों को दूर करने के लिये शिक्षा के केन्द्रीय मन्त्रणा-मण्डल तथा उपकुलपति-सम्मेलन, १९५५ के द्वारा तीन अभिस्ताव किये गये हैं : (१) अष्ट-वर्षीय एकीकृत प्रारम्भिक (आधारभूत) शिक्षा, (२) विभिन्नकृत पाठ्यक्रम समेत त्रिवर्षीय उत्तर माध्यमिक शिक्षा, तथा (३) त्रि-वर्षीय प्रथम उपाधि-शिक्षा। यह भी स्वीकार किया जा चुका है कि उत्तर माध्यमिक प्रक्रम पर

पाठ्यक्रम के दो भाग होने चाहिएँ: (१) आन्तरक *(Core)* पाठ्यक्रम, जिसमें भाषाएँ, समाज विज्ञान, सामान्य विज्ञान तथा एक अनिवार्य शिल्प सम्मिलित हो, और (२) विभिन्नकृत पाठचर्याएँ, जिनमें से किसी एक का चुनाव करना प्रत्येक छात्र के लिये अनिवार्य हो। विभिन्नकृत पाठचर्याओं के नाम इस प्रकार से हैं: भाषा-शास्त्र, विज्ञान, प्रावैधिक, वाणिज्य, कृषि, ललितकलाएँ, तथा गृह-विज्ञान। ये पाठचर्याएँ बहुप्रयोजन पाठशालाओं में उपबन्धित की जाएँगी। फलतः उच्च पाठशालाओं को बहुप्रयोजन पाठशालाओं में परिणत किया जा रहा है।

(झ) पाठ्य-पुस्तकें

आयोग ने विहित पाठ्यपुस्तकों के गुण को सुधारने के लिये एक उच्च शक्ति पाठ्यपुस्तक-समिति के निर्माण का अभिस्ताव किया था। उसके स्थान पर १९५४ में "पाठ्य-पुस्तक-अन्वेषण-केन्द्रीय-विभाग" *(Central Bureau of Textbook Research)* स्थापित किया जा चुका है जो अन्वेषण-कार्य के साथ-साथ राज्यों का मार्गप्रदर्शन भी करता है। यह विभाग गुणात्मक रूप से पुस्तकों का मूल्याङ्कन करने के लिये मानदण्डों का विकास भी कर रहा है। राज्यों में पाठ्यपुस्तकों के बारंबार परिवर्तित करने पर प्रतिबन्ध लगाया जा रहा है तथा प्रत्येक विषय के लिये अनेक पुस्तकें विहित की जा रही हैं। परन्तु पाठ्यपुस्तकों का स्तर उठाया जाना अभी तक शेष है।

(ञ) अध्यापन की रीतियाँ

अध्यापन की रीतियों के सम्बन्ध में, भारतीय माध्यमिक शिक्षा का एक दोष यह भी है कि हमारे अध्यापक आज भी व्याख्यान-रीति का प्रयोग करते हैं तथा छात्रों को विषयवस्तु को कण्ठ करने के लिये बाध्य करते हैं। इसका मुख्य कारण

है हमारी शिक्षा का उद्देश्य उपाधियाँ प्राप्त करने के लिये परीक्षाओं में उत्तीर्ण होना। अध्यापन की रीतियों का शिक्षा के उद्देश्यों से निकटतम सम्बन्ध होता है। हम अपने अनुभव के आधार पर यह कह सकते हैं कि वर्तमान परीक्षाओं को उत्तीर्ण करने के लिये व्याख्यानों, कण्ठकरण तथा मूल पुस्तकों के स्थान पर "अनुमान-प्रश्नपत्रों" "मार्गदर्शिकाओं" जैसी पुस्तकों के अध्ययन से अच्छा अन्य मार्ग हो नहीं सकता। अतः, यदि हम भारतीय शिक्षा-प्रणाली में आधुनिक क्रिया-रीतियों को स्थान देना चाहते हैं, नयी नयी सहाय-सामग्रियों के प्रयोग से अध्यापन को सजीव बनाना चाहते हैं और छात्रों को पुस्तकालयों के महत्व से परिचित कराना चाहते हैं, तो हमें अपनी शिक्षा-प्रणाली को आधुनिक मनोवैज्ञानिक उद्देश्यों के आधार पर पुनःसंघटित करना चाहिए। हम इस सम्बन्ध में, शिक्षा के केन्द्रीय मन्त्रणा-मण्डल के अभिस्तावों के अनुसार पाठशालाओं तथा महाविद्यालयों के पाठ्यक्रम में गांधी जी की शिक्षाओं को सम्मिलित करने के प्रश्न पर विचार करने के लिये १९५५ में नियुक्त समिति की नियुक्ति का स्वागत करते हैं।

(ट) *मार्गप्रदर्शन तथा समुपदेशन [Counselling]*

माध्यमिक शिक्षा-आयोग के मार्गप्रदर्शन तथा समुपदेशन-सम्बन्धी अभिस्तावों को व्यावहारिक रूप देने के लिये भारत शासन के द्वारा अभी तक विशेष प्रयत्न नहीं किये गये हैं। पञ्चवर्षीय योजना में आधारभूत, सामाजिक तथा शिशु-शिक्षा, व्यावसायिक तथा शैक्षणिक मार्गप्रदर्शन, बाल-अपचार *[Juvenile Delinquency]*, इत्यादि शिक्षा-पक्षों पर कार्य करने वाले अशासकीय संघटनों को सहायता देने के लिये जो योजना

बनायी गई है, तथा द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना में इस योजना के लिये १०० लाख रुपये की जो व्यवस्था की गयी है, वह पर्याप्त नहीं है।

(ठ) छात्रों का शारीरिक कल्याण

केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्रालय ने १९५३ से तरुण-कल्याण के एक योजनाबद्ध कार्यक्रम का आरम्भण किया है। परन्तु केन्द्रीय शासन विश्वविद्यालय-छात्रों के शारीरिक कल्याण की ओर ही विशेष ध्यान दे रहा है। अतः राज्य-शासनों को माध्यमिक छात्रों के शारीरिक कल्याण का उत्तरदायित्व स्वीकार करना चाहिए। केन्द्रीय शिक्षा-मण्डल ने एक "शारीरिक शिक्षण एवं विनोद-राष्ट्रिय-योजना" प्रकाशित की है जिसके द्वारा शारीरिक शिक्षा तथा विनोद की प्रवर्तमान दशाओं का आपरीक्षण किया जा रहा है तथा उनके सुधार के लिये अनेक तात्कालिक एवं दीर्घावधि सुझाव दिये जा रहे हैं। इसमें उत्तर माध्यमिक प्रक्रम तक के लड़कों तथा लड़कियों के लिये दो पृथक् पृथक् पाठ्यविषय भी सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय शासन योग-प्रणाली को बढ़ाने के लिये वित्त-साहाय्य दे रहा है, भारत बालचर-संस्था को प्रोत्साहन दे रहा है, शिविरों के आयोजन की ओर ध्यान दे रहा है, तथा सन्तरण-तड़ागों *[Swimming Pools]* इत्यादि के लिये पाठशालाओं एवं महाविद्यालयों को अनुदान दे रहा है। वह क्रीड़ाओं के स्तर को उठाने के लिये १९५४ में "अखिल-भारतीय क्रीड़ा-परिषद्" की स्थापना कर चुका है। राज्य-शासनों को केन्द्रीय शासन के इन कार्यों से प्रेरणा लेनी चाहिए।

(ड) परीक्षण तथा अर्हापण [Evaluation]

वर्तमान परीक्षा-प्रणाली भारतीय शिक्षा-प्रणाली का एक

अत्यन्त घातक दोष है। आयोग ने उसे सुधारने के लिये अनेक मूल्यवान् सुझाव दिये हैं, उदाहरणार्थ, बाह्य परीक्षाओं की संख्या का प्रह्रास, पाठशाला-अभिलेख-प्रणाली, संख्यात्मक अङ्कन-प्रणाली के स्थान पर प्रतीकात्मक [Symbolic] अङ्कन-प्रणाली, एवं संविभागीय [Compartmental] परीक्षा-प्रणाली का प्रवेश तथा माध्यमिक पाठशाला–पाठचर्या की समाप्ति पर केवल एक सार्वजनिक परीक्षा। हमारा विचार है कि माध्यमिक शिक्षा–प्रणाली का पुनःसंघटन करते समय इन अभिस्तावों को पूर्वता मिलनी चाहिए थी, परन्तु हमें यह देख कर आश्चर्य होता है कि अभी तक उनकी उपेक्षा की जा रही है।

(ढ) अध्यापक सेवि-वर्ग (Personnel)

सांख्यिकीय सूचना के अनुसार १९५५-५६ में भारत में ३२,५६८ माध्यमिक पाठशालाएँ थीं, जिनमें लगभग ६३ लाख छात्र अध्ययन तथा ३ लाख ४० हजार अध्यापक अध्यापन करते थे। देश के समस्त प्रशिक्षण महाविद्यालयों में १४,१८१ छात्राध्यापकों ने अध्ययन किया। लक्ष्मणस्वामी-आयोग ने माध्यमिक अध्यापकों की सुखसुविधाओं, सेवा-सुरक्षा तथा प्रशिक्षण के सम्बन्ध में जो अभिस्ताव किये हैं, उन्हें आर्थिक कारणों से तत्काल लागू किया जाना सम्भव नहीं है। अब तक भारत शासन ने इस सम्बन्ध में दो महत्वपूर्ण कार्य किये हैं: (१) १९५३ से प्रति वर्ष एक विमर्शगोष्ठी-सह-ग्रीष्म-शिविर का आयोजन, तथा (२) कुछ चुने हुए प्रशिक्षण महाविद्यालयों में प्रसार-सेवा [Extension Services] का प्रवेश। पूर्वोक्त के द्वारा विभिन्न राज्यों के मुख्याध्यापकों तथा निरीक्षक-कर्मचारि-वृन्द को परस्पर विचार-विमर्श करने का अवसर दिया जाता

है तथा उत्तरोक्त के द्वारा प्रशिक्षण महाविद्यालय एक निश्चित क्षेत्र में स्थित समस्त माध्यमिक पाठशालाओं के सम्पर्क में आते हैं। हमारा विचार है कि आयोग के प्रवरण तथा नियुक्ति, परिवीक्षा *(Probation)* की अवधि, वेतन, विवाचन-मण्डल *(Arbitration Board)*, पाठशाला-प्रक्रम भर अध्यापकों के बालकों की निःशुल्क शिक्षा, स्वास्थ्य, तथा निःशुल्क प्रशिक्षण-सम्बन्धी अभिस्तावों को यथाशीघ्र व्यावहारिक रूप दिया जाना चाहिए। वेतन-नीति के प्रश्न पर हमारा विचार यह है कि समान अर्हताएँ रखने वाले व्यक्तियों में अन्तर उनकी वेतन-श्रेणियों में नहीं अपितु शक्तियों में होना चाहिए और विभिन्न क्षेत्रों में समान अर्हताओं के आधार पर सेवा करने वाले समस्त व्यक्तियों को समान वेतन दिया जाना चाहिए। एक पद पर निर्धारित अर्हता से कम अथवा अधिक अर्हता वाले व्यक्ति किसी भी दशा में नियुक्त नहीं किये जाने चाहिएँ।

(ण) प्रशासन

लक्ष्मणस्वामी-आयोग ने प्रशासन की समस्याओं के अन्तर्गत संघटन तथा प्रशासन, निरीक्षण, प्रबन्धक-वर्गों तथा मान्यता की दशाओं, भवन तथा सज्जा, कार्य के घण्टों तथा अवकाशों से सम्बन्धित दोषों को सुधारने के लिये अनेक उपयोगी सुझाव दिये हैं। प्रबन्धक-वर्गों तथा भवनों के प्रश्नों पर हमारा विचार है कि भारत के अधिकांश प्रबन्धक-वर्ग स्वार्थी, अयोग्य, तथा दलबन्द व्यक्तियों के हाथों में हैं जो पाठशालाओं को आगे बढ़ाने के स्थान पर पतन की ओर ले जाने में ही सहायक होते हैं। अतः प्रत्येक प्रबन्धक-वर्ग के लिये प्रति वर्ष एक निश्चित धनराशि का प्रबन्ध करना

अनिवार्य होना चाहिए और अध्यापकों की नियुक्ति एवं वियुक्ति तथा पाठशाला के दैनिक कार्यकरण में उनके हस्तक्षेप को असम्भव बना दिया जाना चाहिए। हमारा विश्वास है कि हमारी अधिकांश पाठशालाएँ शुल्क तथा शासन-अनुदानों के बल पर चल रही हैं और उनकी स्थिति में प्रबन्धक-वर्गों की कोई आवश्यकता नहीं है। भवनों की दृष्टि से अधिकांश माध्यमिक पाठशालाओं को बन्द कर दिया जाना चाहिए। शिक्षा-प्रसार के नाम पर, स्वास्थ्य की दृष्टि से घातक पाठशाला-भवनों में बालकों को पढ़ने के लिये बाध्य करना सर्वथा अनुचित है।

(त) वित्तव्यवस्था

आजकल हमारी अधिकांश वैयक्तिक माध्यमिक पाठशालाएँ घाटे में चल रही हैं। वे अपने अध्यापकों को समय पर वेतन नहीं दे पातीं; वे अपने छात्रों के लिये उपयुक्त भवनों एवं सज्जा का प्रबन्ध नहीं कर पातीं। अतः केन्द्रीय तथा राज्य-शासनों को उनकी वित्तव्यवस्था की समस्या के समाधान की ओर तत्काल ध्यान देना चाहिए। वित्तव्यवस्था के सम्बन्ध में माध्यमिक शिक्षा आयोग ने जो अभिस्ताव किये हैं उन्हें तत्काल व्यावहारिक रूप देना कठिन नहीं है। अतः उन पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाना चाहिए। हमारा विचार है कि, यदि राष्ट्रिय स्तर पर विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग के समान, राज्य-स्तर पर माध्यमिक पाठशाला-अनुदान-आयोग स्थापित कर दिये जाएँ तो माध्यमिक पाठशालाओं की वित्तव्यवस्था की समस्या का समाधान सुगमतापूर्वक किया जा सकता है। जो हो, माध्यमिक पाठशालाओं को घाटे में चला कर तथा अध्यापकों को वेतन के बारे में अनिश्चितता की

स्थिति में रख कर राष्ट्र-निर्माण के स्वप्न देखना स्वप्न देखने से अधिक कुछ भी न होगा।

(थ) अखिल-भारतीय माध्यमिक-शिक्षा-परिषद्

१—स्थापना—माध्यमिक शिक्षा-परिषद् की स्थापना माध्यमिक शिक्षा-आयोग के अभिस्तावों को कार्यान्वित करने के लिये, अगस्त १९५५ में भारत-शासन द्वारा की गयी थी।

२—संघटन—माध्यमिक शिक्षा-परिषद् के कर्मचारिवृन्द में अनेक शिक्षा-विशेषज्ञ सम्मिलित हैं, जिन्हें क्षेत्र-मन्त्रणाकार (*Field Advisors*) के नाम से पुकारा जाता है। ये विशेषज्ञ या तो राज्य शिक्षा-विभागों में कार्य करने वाले अधिकारियों में से चुने जाते हैं अथवा अनुभवी शिक्षण-विज्ञों में से।

३—उद्देश्य एवं कार्य—माध्यमिक शिक्षा-परिषद् के दो मुख्य कार्य हैं: (१) समय समय पर, देश भर में माध्यमिक शिक्षा की प्रगति का सिंहावलोकन करना, तथा (२) इसकी समस्त प्रावस्थाओं (*Phases*) में, माध्यमिक शिक्षा के सुधार एवं विस्तार पर राज्य तथा केन्द्रीय शासनों को एक विशेषज्ञ-समिति के रूप में मन्त्रणा देना। उपर्युक्त मन्त्रणा-कार्य के अतिरिक्त परिषद् माध्यमिक शिक्षा में कुछ परियोजनाओं (*Projects*) को भी चला रही है परिषद् के द्वारा "फोर्ड-फाउण्डेशन-परियोजना" के अन्तर्गत, १९५५-५६ से प्रथम त्रिवर्षीय विस्तार-सेवा-परियोजना (*Extension Services Project*) में २४ प्रशिक्षण महाविद्यालय सम्मिलित किये गये हैं। द्वितीय योजना में ३० अन्य महाविद्यालय सम्मिलित किये जाएँगे। इस योजना का उद्देश्य अन्तर्सेवा-अध्यापकों के लिये एक कार्यक्रम का उपबन्ध करना है जिससे उनकी दक्षता

में वृद्धि हो। परिषद् मुख्याध्यापकों तथा शिक्षा-अधिकारियों के लिये विमर्शगोष्ठियों के संघटन का कार्य भी करती है। परिषद् मार्च १९५७ तक ११ विमर्शगोष्ठियों तथा परीक्षाओं पर ७ कर्मशालाओं (*Workshops*) का संघटन कर चुकी थी।

घ—उपसंहार

प्रस्तुत अध्याय के भाग 'ख' में माध्यमिक शिक्षा-आयोग के अभिस्तावों का उल्लेख किया गया है तथा भाग 'ग' में शासन द्वारा किये गये उन कार्यों का उल्लेख जो उन अभिस्तावों को कार्यान्वित करने के लिये किये गये हैं। अभिस्तावों के अध्ययन से हमें ज्ञात होता है कि वे न केवल महत्वपूर्ण अपितु पूर्णतः व्यावहारिक भी हैं। तुलनात्मक-शिक्षा के छात्रों को, विशेषतः उन छात्रों को जो आङ्गल, अमेरिकन तथा रूसी शिक्षा-प्रणालियों तथा उनके विकास का अध्ययन कर चुके हैं, इस निष्कर्ष तक पहुँचने में कठिनाई न होगी कि लक्ष्मण-स्वामी-आयोग के अभिस्तावों पर इन देशों के शैक्षणिक विकासों तथा कार्यक्रमों का एक बड़ी मात्रा तक प्रभाव पड़ा है। यह कहा जा सकता है कि मुदालिअर-प्रतिवेदन के अधिकांश अभिस्ताव विदेशीय प्रतिवेदनों के भारतीय संस्करण हैं। परन्तु, अन्य देशों से अच्छी बातों को ग्रहण करना बुरा नहीं है। हमारा विश्वास है कि विदेशीय प्रतिवेदनों से प्रभावित होने के कारण लक्ष्मणस्वामी-प्रतिवेदन के अभिस्तावों के मूल्य एवं महत्व में वृद्धि ही हुई है। समीक्षा के अध्ययन से हमें ज्ञात होता है कि भारत शासन तथा राज्य-शासन माध्यमिक शिक्षा के पुनःसंघटन की ओर पर्याप्त ध्यान दे रहे हैं और इस

माध्यमिक शिक्षा-आयोग के अभिस्तावों की वैसी उपेक्षा होने की सम्भावना नहीं है जैसी स्वतन्त्रता से पूर्व विभिन्न शिक्षा-प्रतिवेदनों के अभिस्तावों की हो चुकी है। अनेक कारणों से, मुख्यतः आर्थिक, मुदालिअर-प्रतिवेदन के समस्त अभिस्तावों को तत्काल कार्यान्वित किया जाना सम्भव नहीं है। तथापि, राष्ट्र के पुनर्निर्माण में रत हमारे राज्य एवं केन्द्रीय शासनों को यह न भूलना चाहिए कि राष्ट्रिय-पुनर्निर्माण का राजमहल शिक्षा की नींव पर ही स्थायी रूप से टिक सकता है।